अमूल्य शास्त्र दानदाता

जैन स्वधर्म दानवीर

जैन समाजके धर्म धुरंधर

जैन प्रकाशक मुद्रालय, सिकंदराबाद, (दक्षिण)

स्व. राजा बहादुर लाला सुखदेवसहायजी जौहरी

लाला ज्वालाप्रसादजी जौहरी

उत्तराध्ययन सूत्र की प्रस्तावना

वंदे वीर जिन नामी उद्धारार्थ चउ तीर्थक । उत्तराध्ययन सूत्रस्य बालावबोध कुरूते मया ॥ १ ॥

साधु साध्वी श्रावक श्राविका इन चारों तीर्थ के उद्धार के लिये श्री महावीर परमात्माने मोक्ष पधा रती वक्त में यह उत्तराध्ययन सूत्र फरमाया है उन को वंदन नमस्कार करके अल्पज्ञ जीवों को सुलमता से अवबोध होने के लिये मैं इस का हिन्दी भाषानुवाद करता हूं ॥ १ ॥ जिस प्रकार कोई पुरुष अपने बहुमूल्य प्राणप्यारे पदार्थ कि जो जन्ममात्र से संचकर रखा हुवा हो उसे अपनी अन्तिम अवस्था मृत्यु समयमें अपने प्यारे पुत्र के सुपरत करता है, वैसे ही अपने महान पिता चौवीसवे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजीने निर्वाण मोक्ष पधारती वक्त प्यारे पुत्र चारों तीर्थ को यह सर्व शास्त्रों के सारभूत व सर्व गुणों के मूल रूपी उत्तराध्ययन शास्त्र रूप बहुमूल्य परम पदार्थ सुपरत किया है यह शास्त्र इस वक्त चारों तीर्थों को बडा ही आधारभूत बना है

जिस प्रकार उत्तर प्रधान+धेनु=गौ अर्थात् सर्व गौ में प्रधान गौ कामधेनु के सेवन करने से सर्व रोग का हर्ता, महा पुष्टी बल वीर्य का कर्ता, अमृत रूप अखुट दुग्ध की प्राप्ति होती है मानो उस ही प्रकार इस उत्तरायने रूप कामधेनु के सेवक को अनादि कर्म रोग का नाशक तप सयमादि गुणों में महा पुष्टी बल वीर्य कर्ता ज्ञान रूप अखुट अमृत की प्राप्ति होती है

को भेहिका (लकडी) गगनगामी को विमान जलपथी को; जहाज सहायक होते हैं तैसे ही मोक्ष गामी जीवों को विनय सहायक होता है किं बहुना ! जिस में विनय रूप, गुण नहीं है उस का क्षमादि धर्म और अनशनादि तप क्या काम का है ? अर्थात् कुछ भी काम का नहीं है ! निरर्थक है !! यथा "मूलं नास्ति कुतः शाखा" जिस का मूल ही नहीं तो शाखा होगी कहां से ? अर्थात् नहीं होगी इस ही प्रकार विनय गुन विना किसी भी गुन की प्राप्ति नहीं होती है कहा है यथा-" विणओ णाण णाणाओ दसणं दसणाओ चरणं, चरण हुति मोक्खो " अर्थात्-विनय से ज्ञान गुण की प्राप्ति होती है ज्ञान से सम्यक्त्व गुण की सम्यक्त्व से चारित्र गुण की और " सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्ष मार्गः " अर्थात् सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप गुण की प्राप्ति होने से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है इस प्रकार विनय को सब गुण के जिन सासन के व मुक्ति सुख के मूल रूप जान इस उत्तराध्ययन जी शास्त्र में प्रथम विनय नामक अध्ययन का ही प्रतिपादन किया है २ जो विनीत होता है उस पर ही परिषह पडता है " और विनीत ही परिषह सहन कर सकता है इसलिये दूसरा परिषह नामक अध्ययन कहा है ३ जो चार अंग की प्राप्ति परम दुर्लभ जानेंगे वेही परिषह सहन करेंगे इसलिये तीसरा चतुरंग नामक अध्ययन कहा है ४ चतुरंग प्राप्ति का लाभ आयुष्य असंख्यित तक ही ले सकते हैं, इसलिये चौथा असंखय अध्ययन कहा है ५ आयुष्य क्षय अकाम सकाम दो प्रकार से होता है इसलिये पांचवा अकाम सकाम मरण कहा है ६ अविद्यावन्त

यथा जिस में उत्तर प्रधान+ध्ययन×अध्ययन अर्थात् क्रम से एकेक स प्रधान अध्ययनों का समावेश होने से इस का उत्तराध्ययन नाम गणधरोंद्वारा परमोचित है यथा—

गाथा विनओ जिण सासण मूलो,विणओ निव्वाण साहगो॥ विणओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ॥ १ ॥ अर्थात् जिस प्रकार (काव्य) मूलओ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधओ पच्छा समुवेति साहा ॥ साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ से पुप्फं च फलो रसोयं ॥ १ ॥ अर्थात् कल्प वृक्ष के प्रथम १ मूल होता है, फिर २ मूल से कंद होता है ३ कंद से स्कंध, ४ स्कंध से त्वचा, ५ त्वचा से शाखा, ६ शाखा से प्रति शाखा, ७ प्रति शाखा से पल्लव, ८ पल्लव से पत्र, ९ पत्र से पुष्प, १० पुष्प से फल, और ११ फल में मधुर रस यह इग्यारह गुन की प्राप्ति अनुक्रम से होती है (गाथा) एवं धम्मस्स विणओ, मूल परमो असे मोक्खो ॥ जेण कित्तिं सुयं सिग्घं, निस्सेसं चाभिगच्छइ ॥ २ ॥ अर्थ—ऐसे ही धर्म रूप कल्प वृक्ष का—१ विनय रूप मूल है, २ धैर्य रूप कन्द है, ३ ज्ञान रूप स्कन्ध है, ४ शुभ भाव रूप त्वचा है, ५ पंच महाव्रत रूप शाखा है, ६ पंच महाव्रत की २५ भावना रूप प्रति शाखा हैं ७ धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान रूप पल्लव हैं, ८ सतरह प्रकार के संयम रूप व पंचेन्द्रिय की २३ विषय के निग्रह रूप पत्र हैं, ९ क्षमादि दश श्रमण धर्म रूप पुष्प हैं १० मोक्ष रूप फल हैं और ११ जिस से अनन्त अक्षय अव्याबाध मोक्ष के सुख रूप परम रस की प्राप्ति होती है यों एक विनय से अनुक्रमसे सब गुणों की प्राप्ति होती है इसलिये श्री जिन शासन का मूल विनय है तैसे ही जिस प्रकार वृद्ध पुरुष

इसलिये इक्कीसवा अध्ययन समुद्रपाल का कहा है २२ सदोष (स्त्री सहित) स्थानक सेवन के दो स्थान बावीसवा रहनमी का अध्ययन कहा २३ निर्दोष स्थानक के सेवक संशय रहित होते हैं इस लिये तेवीसवा केसीगोतम का अध्ययन कहा २४ संशय रहित सामिति गुप्तिवंत होते हैं इसलिये चोवीसवा आठ प्रवचन का अध्ययन कहा २५ आठ प्रवचन के पालक ब्राह्मण होते हैं इसलिये पचीसवा जयघोष विजयघोष का अध्ययन कहा २६ ब्राह्मण समाचारी पालक होते हैं इसलिये छब्बीसवा समाचारी का अध्ययन कहा २७ समाचारी का पालन धूर्तता के त्यागी ही कर सकते हैं इसलिये सतावीसवा गगाचार्य का अध्ययन कहा २८ धूर्तता के त्यागी मोक्ष मार्ग गामी होते हैं इसलिये अठावीसवा मोक्षमार्गका अध्ययन कहा २९ मोक्षमार्गी सम्यक्त्वमें पराक्रमी होते हैं इसलिये गुनतीसवा सम्यक्त्व पराक्रम (७३ प्रश्नोत्तर) का अध्ययन कहा ३० सम्यक्त्व में पराक्रमी तप में पराक्रम करते हैं इस लिये तीसवा 'तप मार्ग' अध्ययन कहा ३१ तपस्वी शुद्धाचारी होते हैं इस लिये इगतीसवा 'आचार विधी' अध्ययन कहा ३२ शुद्धाचारी के इन्द्रिय निग्रह होता है इस लिये बत्तीसवा 'प्रमाद स्थान' अध्ययन कहा ३३ इन्द्रिय निग्रह से कर्मक्षय होते हैं इस लिये तेतीसवा 'कर्म प्रकृति' का अध्ययन कहा ३४ कर्म बंध लेश्या से होता है इस लिये चौतीसवा 'लेश्या' का अध्ययन कहा ३५ शुद्ध लेश्या वाले अनगार होते हैं इस लिये पेंतीसवा 'अनगार' का अध्ययन कहा और ३६ अनगार जीवा जीव के ज्ञान होते हैं इस लिये छत्तीसवा 'जीवा जीव विभक्ति' का अध्ययन कहा इस

का प्रकाम और विद्यावन्त का सकाम मरण होता है इसलिये छठा अकाम सकाम मरण नामका अध्ययन कहा है ७ अविद्यावन्त रसगृद्धी हो दुःखी होता है इसलिये सातवा एलक अध्ययन कहा है, ८ रसना जीतन वाले ही तृष्णा जीत सकते हैं इसलिये आठवा कपिल अध्ययन कहा है ९ तृष्णा जीतन वाले इन्द्रादि के पूज्य होते हैं इसलिये नववा नमी पव्वजा अध्ययन कहा है १० इन्द्रादि के पूज्य हो प्रमादी नहीं बनना इसलिये दशवा अप्रमाद अध्ययन कहा है ११ अप्रमादी बहुसूत्री होते हैं इसलिये इग्यारवा बहुसूत्री अध्ययन कहा है १२ बहु सूत्री देव पूज्य ब्रह्मचारी व मिथ्या खण्डन वाले होते हैं इसलिये बारवा हरिकेशी अध्ययन कहा है १३ उत्तमगुण सम्पन्न नियाना करने से करनी का फल बिगाड देते हैं इसलिये तेरवा चित्तसंभूती अध्ययन कहा है १४ नीयाना नहीं करते हैं वे मोक्ष प्राप्त करते हैं इसलिये चउदवा इक्षुकार अध्ययन कहा है १५ मोक्षाभिलाषी शुद्ध संयम पालते हैं इसलिये पन्द्रवा भिक्षु अध्ययन कहा है १६ शुद्ध संयमी ब्रह्मचारी होते हैं इसलिये सोलवा ब्रह्मगुप्ति अध्ययन कहा है १७ ब्रह्मचर्य की अगुप्ति वाले पापी श्रमण होते हैं इस लिये सतरवा पापी श्रमण अध्ययन कहा है १८ पापी श्रमण नहीं होता है वही संयती होता है इसलिये अठारवा संयती अध्ययन कहा है १९ संयमी सावद्य औषधी के त्यागी होते हैं, इसलिये उन्नीसवा मृगापुत्र का अध्ययन कहा है २० निर्वद्य औषध करने वाले अनाथी निर्ग्रन्थ का वीसवा अध्ययन कहा है २१ निर्वद्य औषधी सेवक को निर्दोष (स्त्रीआदि रहित) स्थानक सेवन करना

इत्यनुक्रमणिका

☞ परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजीमहाराज के सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजीने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिंदी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रों की १०००-१००० प्रतों को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादुर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को उस का अमूल्य लाभ दिया है!

प्रकार एकेक से उत्तरोत्तर एकेक से श्रेष्ठ ग्रन्थ ३६ ही अध्ययन होने से इस का नाम उत्तराध्ययन है सो यथोचित है इस का उतारा शा० जीवराज घेलाभाइ के तरफ से छपी प्रत से तथा एक कथा वाली और दो अन्य मेरे पास की प्रत से किया है, कथाओं में कितनेक स्थान शुद्धि वृद्धि भी कीगइ है इस में जो कोइ अशुद्धियों रहगइ है उस को विद्वद्गणों सुधार कर पठन करेंगे

उत्तराध्ययन सूत्र की विषयानुक्रमणिका,

इत्यनुक्रमणिका

☞ परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजीमहाराज के सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजीने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिंदी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रों की १०००— १००० प्रतों को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादुर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को उस का अमूल्य लाभ दिया है !

एकोनत्रिंशत्तम उत्तराध्ययन सूत्र-द्वितीय मूल.

॥ विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययनम् ॥

सजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ॥ विणय पाउकरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥ १ ॥ आणानिद्देस करे, गुरूण मुववायकारए ॥ इगियागार सपण्णे,

श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को कहते हैं कि नव प्रकार का बाह्य व चउदह प्रकार का आभ्यतर परिग्रह यों दोनो प्रकार के संयोगों का त्याग करने वाले अनगार भिक्षुकों का विनय रूप आचार जिस प्रकार है वैसाही प्रगट करूंगा, सो तू अनुक्रम से श्रवण कर॥ १॥ विनीत के लक्षण कहते हैं—जो सदैव गुरुकी आज्ञा प्रमान करने वाला होवे गुरु की दृष्टि गत में अथवा गुरु के वचन मुख से श्रवण किया जावे वैसे स्थान में निवास करन वाला होवे, मुख नेत्रादिक के चिन्हों से गुरु के मनोभाव जान कर वैसा ही कार्य करने वाला

वे माते हुए देवताओं को भ्रमाकर अपने तरफ खींचता है ! यों विचार कर अपने ५०० छात्रों सहित भगवान श्री महावीर स्वामी के पास आये वहां समवसरण की रचना देखते ही दिगमूढ हो गये परंतु लज्जा से पीछे फीरसके नहीं, मन में ही चिंतवना करने लगे कि मैंने मेरा संशय जो गुप्त कर रखा है उसे यदि यह दूर कर देवे तो मैं उस को सर्वज्ञ मानूं इतने में भगवान उन को उन के गोत्र के नाम से बोलाने लगे अहो गोतम ! वेद में तीन दकार हैं इस का सदेह तेरे मन में बहुत काल से है, इस का अर्थ दान, दया व दम होता है इतना सुनते ही उस का संशय दूर हो गया अपने ५०० छात्रों सहित भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की त्रिपदी (उपनेवा, विघनेक धुवेवा) से चौदह पूर्व के ज्ञान के धारक बने अपने ज्ञानादि गुणों से सब साधुओं में मुख्य भगवान के गणधर हुए अनेक लब्धि पात्र और श्रुत ज्ञान के पारगामी होने पर भी सदैव भगवान के समीप रहते थे संशय होने पर या बिना हुए अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे हैं आप जानते हुवे भी प्रथम किसी को अर्थ नहीं प्रकाशते, एक भगवती सूत्र में भगवान ने ३६००० प्रश्न पूछे हैं किसी प्रकार की उछरग उन को नहीं थी सब गुण सपन्न होने पर भगवान पर मोहभाव होने से केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुइ थी इन के सन्मुख अनेक साधुओं को केवल ज्ञान होता देख कर आप बहुत हताश होगये तब भगवान ने उन को संबोध कर कहा अहो गौतम ! तेरे और मेरे में बहुत काल से प्रीति है गत काल में अपन बहुत वक्त साथ रहे हैं तुम मेरे सब साधुओं में मुख्य हो, सब वादियों में प्रतिष्ठित हो, परंतु तुम्हारा मेरे पर मोह होने से तुम को

से विणीएत्ति वुच्चइ ॥ २ ॥ आणानिद्देसकरे, गुरूण मणुववाय कारए ॥ पडिणीए

होवे, वही शिष्य विनीत कहाता है ॥ २ ॥ विनीतपना पर गौतमस्वामी का दृष्टांत कहते हैं—यह गोबर ग्राम के रहने वाले गौतम गोत्रीय वसुभूति ब्राह्मण के पुत्र और पृथ्वी नामक उन की स्त्रीके आत्मज थे इन का नाम इन्द्रभूति था ये चारवेद और चउदे विद्यादि पढ़ शास्त्र में प्रवीण बने हुवे थे ब्राह्मणों की क्रिया करने से ब्राह्मण संप्रदाय में प्रसिद्धि पाये हुवे थे एकदा राजगृही नगरी में पावुल ब्राह्मण ने यज्ञ की रचना रच ब्राह्मणों को निमंत्रण किया था, जिस से इग्यारह बडे ब्राह्मण चार हजार चारसो ब्राह्मण के परिवार से आयेथे. और भी बहुत से दूसरे ब्राह्मण एकत्र हुवे थे उस समय श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में पधारे वहां देवताने समवसरण की रचनकी उस समय देवता यज्ञ मंडप उपर से होते हुए समवसरण में जाने लगे दूरसे देवताओं को आते हुए देखकर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों बोलने लगे कि अपने यज्ञ से आकर्षित होकर देवता भी आरहे हैं परंतु वे देवों यज्ञ पर से होते हुए आगे चले गये, तब संशय हुआ कि ये देवता कहां जा रहे हैं? पृच्छा करने से किसीने कहा कि राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं उन के दर्शन के लिये देवता जा रहे हैं ऐसा सुनकर इन्द्रभूति अभिमान सहित बोला कि मैं अकेलाही सर्वज्ञ हूं, पर दूसरा सर्वज्ञ का दोंग करने वाला कौन इन्द्रजालिक है कि जो यज्ञ के अतिक्रम

गुण युक्त बहुत शिष्यों के परिवारवाले कोई आचार्य थे उन के शिष्यों में से एक शिष्य अविनीत था जो उपस्थपन से बने हुए गुरु के दोषों सदैव निकालता था, और उन की हिलना निंदा करता था रहता था इतना अविनय करने पर भी आचार्य उसकी आत्मा का सुधारा के लिये बहुत हित शिक्षा देते थे, और ज्ञानाभ्यास कराते थे परंतु सब को वह उल्टी श्रद्धता था और गुरु से सदैव वैरभाव रखता था ग्रामानुग्राम विचरते हुवे एकदा गुरु को पर्वत पर से नीचे उतरने का था उस समय उन के साथ के दूसरे शिष्य आगे पीछे हो गये और मात्र वह कुशिष्य आचार्य के पीछे आ रहा था उस ने इधर उधर देखकर आचार्य की घात करने का इरादा किया और एक बड़ा पत्थर ऊपर से नीचे गुडाया उस का आवाज सुनकर आचार्य ने पीछे देखा तो अपने कुशिष्य का दुष्कृत्य मालुम हुआ परंतु समय देखकर अपने दोनों पाँव पसार दिये जिससे आता हुवा पत्थर दोनों पाँव के बीच में से पसार होगया अब गुरु शीघ्रमेव अन्य शिष्यों के साथ हो गये और उन के सन्मुख उस अविनीत शिष्य का कर्तव्य बताया सब साधु उस कुशिष्य का तिरस्कार करने लगे तब उसने गुरु का ही दोष बताया, गुरु समताभावी होने पर भी उस दुष्ट के प्रसंग से क्रोधातुर हो गये और उस को श्राप दिया कि तेरा दुष्ट स्त्री से विनाश होगा और अनंत भव भ्रमण करेगा गुरु के तिरस्कार युक्त वचन सुनकर दुष्ट शिष्य हास्य करने लगा और बोलने लगा कि क्या तुम्हारे कहने मात्र से मुक्ति चली जायगी, जब मेरा आत्मा शुद्ध है तो मुझे दोष कहां से प्राप्त होगा ऐसा कहकर गुरु

अमणुक्के, अविणीए त्ति वुच्चइ ॥ ३ ॥ जहा सुणी पूइकण्णी, निक्कसिज्जइ सव्वसो

केवल ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है आगामिक काल में अपन दोनों बराबर हो जावेंगे ऐसा सुनकर गौतम स्वामी बहुत आनंद पाये भगवान का अंतिम चतुर्मास पावापुरी में था तब आयुष्य का थोडा रहा मानकर गौतम स्वामी का प्रतिबन्ध क्षय करने के लिये देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने को भेज दिये और भगवान कार्तिक वद्य अमावास्या की अर्ध रात्रि में निर्वाण पधारे निर्वाण उत्सव में देवताओं का गमनागमन देखकर गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण का मालूम हुआ तत्काल आप मूर्च्छित हुए अनेक प्रकार के विलापात करने लगे तब वह प्रतिबोधित देवश्रमण बोला अहो प्रभू ! आप जैसे ज्ञानियों को गुरु के वियोग से ऐसा करना उचित नहीं है ऐसा सुन तत्काल सावधान होकर मोहदशा क्षय करते हुए क्षपक श्रेणी पर चढे और केवल ज्ञान प्राप्त हुआ केवल पर्याय पाल कर मोक्ष पधारे यह गौतम स्वामी की विनय पर पहिली कथा सपूर्ण हुई ❁ ❁

अब अविनीत के लक्षण कहते है—जो विनीत के लक्षण कहे है उस से विपरीत अविनीत के लक्षण जानना यथा जो गुरु अथवा तीर्थंकर की आज्ञा का अनादर करता है, जो गुरु की दृष्टि गत से अथवा गुरु के वचन सुनने में नहीं आवे ऐसे दूरस्थान में रहता है गुरु के साथ प्रत्यनीक-वैरीपना रखता है और जो तत्त्वज्ञान का ज्ञाता नहीं है; वह अविनीत कहाता है ॥ ३ ॥ अविनीत पर कुलवालु की कथा कहते हैं पांच आचार के पालने वाले और आचार्य के

रानी को बहुत समजाइ और कहा कि-यह मेरे भाइ के पास हार हाथी है सो मेरा ही है तू उस को लेने का आग्रह मत कर परंतु उसने एक बात मानी नहीं और अपना आग्रह, चालू रखा इस से कूणिक राजाने हलविहल कुमार को बोलाकर कहा कि हार और हाथी जो तुम्हारे पास है यह राजा के भंडार में ही शोभनिक दीसते हैं इस से हम को दे दो उनोंने उत्तर दिया कि यह दोनों वस्तु पिताने अपने हाथ से हम को दी है इस से इस में आप का किसी प्रकार का हक नहीं है और भी पिता के राज्य का भाग भी हम को नहीं मीला है, यदि हम को राज्य का विभाग देते हो तो हम यह हार व हाथी आपको देंगे कूणिक राजाने राज्य का भाग देने की ना कही और हार व हाथी उन के पास से लेने का निश्चय किया इस से वे दोनों भाई वहां से निकल कर अपने स्थान आये और कूणिक राजा से डर कर अपने परिवार सहित विशाला नगरी में अपने नाना चेडा राजा के पास गये, अपना नानाजी से अपना सब हाल कहा कि इस इस कारन से हम यहां आये हैं कणिक राजा को यह समाचार मालुम हुआ कि दोनों भाइ विशाला नगरी में चेडा राजा के पास गये हैं तब दूत द्वारा कोणिक राजाने चेडा राजाको कहलाया कि हार व हाथी सहित दोनों भाइयोंको हमारे पास भेज दो चेडा राजाने उत्तर दिया कि मेरी पुत्रीके तीनों पुत्र मुझे ता समान है, यदि तुम्हारी इच्छा हार व हाथी लेने की होवे तो इन को राज्य में से विभाग दो. यदि ऐसा करने की तुम्हारी इच्छा न होवे तो जैसी तुम्हारी इच्छा होवे वैसा करो यह सुन कूणिक राजा अपने कालिकादि दशों भाइयों की समति से ३३ हजार

का त्याग कर वहां से चलदिया और वेणा नदी के तटपर योगियों के आश्रम में रहकर दुष्कर तपश्चर्या करने लगा वहां कोई सार्थवाह प्रमुख आता तो उस के पास से निर्दोष आहार लेकर चारित्र का पालन करने लगा इतने में चतुर्मास आया जिस में वर्षा बहुत होने से नदी में इतना पानी आया कि आस पास के आश्रम ग्राम वगैरह नदी के साथ बह जाने का समय आ पहुंचा उस समय उस साधु के तप के प्रभाव से पानी का प्रवाह फिर गया और आश्रम वगैरह सब निर्भय होगये ऐसा चमत्कार देखकर नदी के कूल को वालने (फिराने) वाला होनेसे उस साधु का नाम कुलवालु रखा और वही नाम प्रसिद्ध होगया उस समय में राजगृही नगरी में श्रेणिक राजाने अपने हल्ल विहल्ल कुमार को सींचानक गंध हस्ती और वंकचूडामणि नामक आठारहसरा हार दियेथे कोणिक कुमार अपने पिता श्रेणिक राजा को मार कर अपने अग्यारह भाइयों को राज्य का विभाग कर स्वयं राज्य करता हुवा विचरता था अपने हाथ से पिता को मारने का पीछे से उस को बहुत पश्चाताप हुवा जिस से राजगृही नगरी छोड कर चंपा नगरी में आकर वह कूणिक राजा रहता था एकदा कूणिक राजा की पद्मावती रानीने हल्ल विहल्ल कुमार की राणियों को सींचानक हाथी व वंकचूडा हार सहित क्रीडा करती हुई सुनी, सुनकर विचार हुवा कि यह हार व हाथी मेरे पास होवे तो बहुत अच्छा इस से उसने कूणिक राजाको कहा और उनके पास से हार व हाथी लेनेका बहुत आग्रह किया तब कूणिक राजाने

विशाला नगरी का घेरा डालकर बहुत दिन पर्यन्त रहे परंतु नगर का कोट नहीं टूटा। जिस से अंदर प्रवेश नहीं होनेसे वह बहुत आकुल व्याकुल हुआ इतने में आकाशवाणी हुइ कि–मागधिका नामक गणिका कुलबालु साधु को भ्रष्ट करे तो विशाला नगरी कूणिक राजा लेसके-ऐसा सुनकर मागधिका गणिका को बोलाइ और सब बात कह दी गणिका यह कार्य करने का वचन देकर कृत्रिम श्राविका बनी और साथ आदमी लेकर कुलवालु साधु के पास गइ उन की बहुत मान पूर्वक भक्ति करने लगी साधु उस के वहां गौचरी के लिये आये, गणिकाने अजेपालिये मीश्रित लड्डू वेहराये जिसका आहार करने से उस साधुको अतिसारका रोग हुआ, अब वह गणिका उस साधु की वैयावृत्य करने लगी यों करते २ उस का मन चलितकर अपना पति बना लिया फिर उस को कहने लगी के पैसा के लिये कुच्छ उद्यम करो वह शास्त्र का ज्ञाता होने से निमित्तिया बना और निमित्त प्रकाशने लगा कूणिक राजाने उस को विनंति की कि हमारा जय होवे वैसा करो उसने विशाला नगरीमें फीरते २ एक मुहूर्त* स्थुभिका देखी इस नगरी का कोट बांधते पहिले उसका मुहूर्त हुआ था जबलग वह मुहूर्तस्थूभिका रहेगी तबलग कोई भी इस विशाला नगरी ले सके नहीं, ऐसी प्रभाविक वह स्थुभिका थी ऐसा जानकर नगरी के लोगों से कहने लगा कि तुमको दुःखसे बचना होवे तो तुमारे गांवमें एक मुहूर्त स्थुभिका है उसका समय पुरा होगया है यह जहां लग रहेगा वहां लग परचक्री के कष्ट से तुम मुक्त नहीं होवेंगे, इससे इसको मूलमें से निकाल दो। इधर कूणिक

* मुनि सुव्रत स्वामी के जन्म समय दिशा कुमारिकाने वहां उन का नाल गाडकर उस पर स्थुभिका बनाइ थी

हाथी, ३३ हजार घोडे ३३ रथ व ३३ क्रोड पदाति सहित चेडा राजा के साथ युद्ध करने को आया चेडा राजा उन के धर्मात्मा नव मल्ली नव लच्छी यों अठारह देश के राजाओं को यह सब हाल कहा था, तब उन ने कहलाया की शरणागत को छोडना योग्य नहीं है हम आप की मदद के लिये तैयार हैं यों कह वे प्रत्येक २ तीन २ हजार हाथी, घोडे रथ व तीन २ क्रोड पदाति सहित चेडा राजा के पास आये, चेडा राजा सहित १९ ही राजाओं के ५७ हजार हाथी ५७ हजार घोडे ५७ हजार रथ व ५७ क्रोड पदाति के साथ कुणिक राजा ने युद्ध किया चेडा राजाने दश दिन में दश भाइ को अपने अमोघ बाण से मार डाले, इस से कुणिक राजा भयभीत हुए और अपने पूर्व भव के मित्र चमरेन्द्र व शक्रेन्द्र की आराधना की वे आकर उनसे कहने लगे कि हम को किसलिये याद किये हैं कुणिकने कहा हमारा शत्रु चेडा राजा को मारो उनोंने उत्तर दिया कि यह हमारा धर्मबंधु है, इस लिये यह कार्य हमारे से नहीं बन सकेगा, परन्तु हम तुमारे शरीर का रक्षण करेंगे यों कहकर चमरेन्द्र ने कुणिक राजा को वज्रमय कोट पहिना और दोनों इन्द्र कोणिक राजा के आगे पीछे हाथी पर बैठकर महाशिला कंटक व रथमूसल यों दो संग्राम की रचना की इस में दो दिन में एक क्रोड अस्सी लाख मनुष्य मारे गये * फीर चेडा राजाने कुणिक राजा को मारने के लिये बाण मारा परन्तु देवयोग से उन को बाण लगा नहीं इस से चेडा राजा के लश्कर में ऐसा होगया है कि राजा का पुण्य अब पूरा हो गया यों सब लश्कर में भागाभाग होगई चेडा राजा भी दरवाजा बंध कर के नगर में चला गया अब कुणिक राजा ने प्रतिज्ञा की कि विशाला नगरी में मैं गद्धे से हल चलाऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा लेकर

* इन में से एक जीव साधर्म देवलोक में एक जीव मनुष्य गति में, और बाकी के सब जीव नरक व तिर्यंच में गये

साणस्स, सूयरस्स नरस्सय ॥ विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो ॥ ६ ॥ तम्हा विणय मेसिज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ ॥ बुद्धपुत्त नियागट्ठी, न निक्कसिज्जइ कण्हुई ॥ ७ ॥ निसंते सिया मुहरी, बुद्धाणं अंतिए सया ॥ अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए ॥ ८ ॥ अणुसासिओ न कुप्पिज्जा खंतिं सेविज्ज पंडिए ॥ खुड्डेहिं

अविनितपना रूप दुष्टाचार में रमण करता है ॥ ५॥ श्वान सूअर और अज्ञानी मनुष्य का भाव सुनकर अर्थात् इन तीनों दृष्टांत को श्रवण कर अपने आत्माका हित इच्छने वाला अपने आत्माको विनय में स्थापन करे ॥ ६ ॥ इसलिये विनय की गवेषणा करना और अच्छे आचार की प्राप्ति करना ऐसा करने वाला शिष्य आचार्य को पुत्रवत् प्रियकारी होता है वह किसी स्थान से नहीं निकाला जाता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है ॥७॥ आभ्यन्तर कषाय पतली व बाह्य कषाय प्रशांत करने वाला व सदैव वाचाल पना रहित अल्पभाषी ऐसा विनीत शिष्य आचार्य के पास रहकर अर्थयुक्त अर्थात् हेय ज्ञेय व उपादेय वस्तु स्वरूप के ज्ञानपने युक्त बनकर सिद्धांत का अभ्यास करे और जो निरर्थक स्त्रियादि कथाओं है उस का त्याग करे ॥८॥ सूत्रार्थ का शिक्षण अथवा नीति मार्ग में प्रवृत्ति कराते कदाचित् गुरु शिक्षा देवे तो कोप करे नहीं परंतु क्षमा धारनकरे और द्रव्य से छोटी वयवाले बालक क्षुद्र और भाव से अज्ञानी पीठ पासत्थ (शिथिलाचारी) क्षुद्र की संगति, हास्य और

॥ एवं दुस्सील पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जइ ॥ ४ ॥ कणकुण्डग चइत्ताण, विट्ठं भुजइ सूयरो ॥ एव सील चइत्ताण, दुस्सीले रमई मिए ॥ ५ ॥ सुणिया मात्र

राजाको समझाया कि अब ये मुर्ति स्थुभिका निकालने लगे तब तुम अपने लश्कर सहित थोडे दूर पीछे चले जाना और मूल सहित उसे निकाल दूंगे तब भाशाला नगरी के सब लोग उस निमाधिया के वचन मानकर उस को खोदने लगे कि कूणिक राजा दूर चला गया इस से विशाला नगरी के लोगों में विश्वास भरा हुआ और उस मूर्ते स्थुभिका को मूल से निकाल दी तब कूणिक राजा का लश्कर आकर कोट को तोड कर नगरी में जाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की, याने गधे का हल गांव में फीराया चेडा राजा का देवना से गये वहां राजा बारह व्रत की आलोचना कर संथारा सहित आयुष्य पूर्ण कर देव लोक में गये, हाथी आदि की खाइमें पडके मरगया, हल विहल कुमारने दीक्षा ली, हार देवता ले गया, और कुलबालुक अविनीत मरकर नरक में गया यह कुलबालु की दूसरी कथा संपूर्ण हुई ॥ २ ॥

अब अविनीत शिष्य को सडे हुए कानवाली कुत्ति की उपमा देते हैं जैसे रुधिर से झरते सडे कानवाली कुत्ती जहां जाती है वहां से उसे निकालते हैं, वैसे ही दुष्ट आचारवाला, गुरु का प्रत्यनिक [शत्रु] तुल्य और असंबंध वचन बोलने वाला शिष्य जिस गच्छमें जाता है वहां से उसको निकाल देते हैं ॥ ४ ॥ जैसे सूअर (भंडसुरा) चावल प्रमुख कणके कुंड को छोडकर विष्टा खाता है वैसेही अविनीत अज्ञानी साधु विनयको व अच्छे आचारको छोडकर

मिउपि चण्डं पकरांति सीसा ॥

॥ १२ ॥ (काव्य) अणासवा थूलवया कुसीला,

घोडा अपने सवार के मन प्रमाणे लगाम के आधारे मार्ग से चलता हुवा आप भी सुखी होता है और सवार को भी प्रसन्न करता है तैसे ही विनीत शिष्य गुरु की चित्त वृत्ति अंग चेष्टादिक से जानकर प्रमाद का त्याग कर कार्य करता है जिस से वह भी सुखी रहता है और गुरु को भी प्रसन्न करता है ॥ १२ ॥ जो शिष्य गुरु की आज्ञा नहीं सुननेवाला, मिथ्या बोलनेवाला और दुष्ट स्वभाववाला होता है, वह कोमल स्वभाववाले गुरु को भी क्रोधी बनाता है इस पर चंडकौशिक सर्प की तीसरी कथा कहते हैं—किसी एक साधु को अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से दुष्ट शिष्य मीला था वह शिष्य गुरु को दुःख देने में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं करता था तथापि क्षमावान महात्मा उस पर किसी प्रकार से क्रोध नहीं करते थे एकदा गुरु शिष्य दोनों बाहिर स्थंडिल भूमि में गये, मार्ग में सुका हुवा छोटा मेंडक का कलेवर गुरु के पांव नीचे आगया ऐसा देखकर शिष्यने गुरु से कहा कि—आपके पांव नीचे छोटा मेंडक मरगया है गुरुने नीचे बैठकर देखा तो वह सुका हुवा मृत कलेवर था, इस से गुरु आगे चलने लगे शिष्य गुरु को वारंवार कहने लगा कि आपके पांव नीचे छोटा मेंडक मरगया है इस लिये आप प्रायश्चित लो गुरुने बहुत नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि भाइ ! यह मृत मेंडक का कलेवर था परन्तु शिष्यने इस बात का स्वीकार किया नहीं और सारा दिन यही बात कहता रहा फीर रात्रि को प्रतिक्रमण हुए पीछे भी शिष्यने गुरु को उस बात का स्मरण कराया और वारंवार यही बात कहने लगा, जिससे गुरु क्षमा

सह ससगिंग हासं कीड च वज्जए ॥ ९ ॥ मा य चण्डालियं कासी, बहुयं माय आलवे ॥ कालेणय अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ ॥ १० ॥ आहच्च चण्डालियं कट्टु, न निण्हविज्ज कयाइवि ॥ कडकडेत्ति भासेज्जा अकडं नो कडेत्तिय ॥ ११ ॥ मागलियस्सेव कस वयणमिच्छे पुणो पुणो ॥कस व दट्ठु माइण्णे, पावग परिवज्जए

क्रीडा का त्याग करे ॥ ९ ॥ विनीत शिष्य को गुरु हितशिक्षा देते हैं कि अहो शिष्य ! जैसे चांडाल निःशंकपने घृणा रहित हिंसादिक कृत्य करता है वैसा चाण्डाल समान निर्दयी क्रोध का आचरन करनेवाला मत बन और समय रहित व प्रयोजन विना बोल नहीं क्यों कि बहुत बोलने से बहुत दोषों लगते हैं. दिन तथा रात्रि के प्रथम व अंतिम प्रहर में पाठ का अभ्यास कर और शेष समय में ध्यान कर ॥ १० ॥ छद्मस्थपना स कदाचित् चाण्डालिक कृत्य (क्रोध में अयोग्य काम हो गया होवे तो उस छिपाना नहीं परंतु किये हुवे को किया हुवा और नहीं किये हुवे को नहीं किया हुवा वैसा कहे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार गलियार घोडा दोनों पाँव चलन लगाम और चाबुक इन पांचों प्रहार को वारंवार इच्छता है अर्थात् पांचों प्रहार लगने से चलता है तैसे अविनीत शिष्य वारंवार गुरु आदि के वचन से दंड प्रायश्चित व अपमानादिक से प्रेराया हुवा अपूर्ण काम कर छोड देता है वह आप भी राग से घबराया हुवा पश्चाताप करता है और गुरु को भी दुःखी करता है जैसे आतिमत

॥ १२ ॥ (काव्य) अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकराति सीसा ॥

घोडा अपने सवार के मन प्रमाने लगाम के इशारे मात्र से चलता हुवा आप भी सुखी होता है और सवार को भी प्रसन्न करता है तैसे ही विनीत शिष्य गुरु की चित्त वृत्ति अंग चेष्टादिक से जानकर प्रमाद का त्याग कर कार्य करता है जिस से वह भी सुखी रहता है और गुरु को भी प्रसन्न करता है ॥ १२ ॥ जो शिष्य गुरु की आज्ञा नहीं सुननेवाला, मिथ्या बोलनेवाला और दुष्ट स्वभाववाला होता है, वह कोमल स्वभाववाले गुरु को भी क्रोधी बनाता है इस पर चंडकौशिक सर्प की तीसरी कथा कहते हैं—किसी एक साधु को अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से दुष्ट शिष्य मीला था यह शिष्य गुरु को दुःख देने में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं करता था तथापि क्षमावान महात्मा उस पर किसी प्रकार से क्रोध नहीं करते थे एकदा गुरु शिष्य दोनों बाहिर स्थंडिल भूमि में गये, मार्ग में मुका हुवा छोटा मेंडक का कलेवर गुरु के पांव नीचे आगया ऐसा देखकर शिष्यने गुरु से कहा कि—आपके पांव नीचे छोटा मेंडक मरगया है गुरुने नीचे बैठकर देखा तो वह मुका हुवा मृत कलेवर था; इस से गुरु आगे चलने लगे शिष्य गुरु को वारंवार कहने लगा कि आपके पांव नीचे छोटा मेंडक मरगया है इस लिये आप प्रायश्चित्त लो गुरुने बहुत नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि भाई ! यह मृत मेंडक का कलेवर था परंतु शिष्यने इस बात का स्वीकार किया नहीं और सारा दिन यही बात कहता रहा फीर रात्रि को प्रतिक्रमण हुए पीछे भी शिष्यने गुरु को उस बात का स्मरण कराया और वारंवार यही बात कहने लगा, जिससे गुरु क्षमा

मान होने पर भी क्रुद्ध होकर शिष्य को रजोहरण की दांडी से मारने के लिये दौडे अंधेरे में नहीं दीखने से स्तंभ से उन का मस्तक अफडाया और मूर्च्छित होकर नीचे गिर गये और कालधर्म को प्राप्त होकर विराधिक बनकर ज्योतिषी देवता में उत्पन्न हुए वहां से काल के अवसर में काल कर किसी तापस के वहां जन्म लिया यहां पर अपने बगीचे में किसी राजपुत्र को विना आज्ञा से फूल चुनता देखकर कुपित हुआ, और खंजर लेकर मारने गया क्रोधावेश में दौडते हुए एक कुवे में गिरगया और मर गया वहां से मरकर महा प्रचंड दृष्टिविषवाला चंड कोशिक नागपने उत्पन्न हुआ यह बहुत जीवों की घात करता था एकदा महावीर स्वामी छद्मस्थपने में उस के बिम्ब (बिल) पर आकर कायोत्सर्ग करके रहे वहां यह कौशिक सर्प भगवान के अंगुठे पर दंश देकर उन का रुधिर पीने लगा, परंतु वह क्षीर समान मधुर मालुम हुआ इस से विचार करने लगा कि यह कौन होगा ? तब भगवानने इस को उपदेश किया कि अहो चंड कोशी ! तने क्रोध के आवेश से तेरा पवित्र चारित्र का नाश करके ऐसी अधम गति को तू प्राप्त हुआ है, तथापि क्रोध का त्याग नहीं करता है ऐसा सुनकर उस को जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुवा और अपना पूर्व भव देखा फिर ऐसे पाप में से मुक्त होने के लिये अनशन व्रत अंगीकार किया अपना मुंह बिल में रख कर शरीर का त्याग किया लोगों नाग देव की पूजा निमित्त से उन के शरीर को दुध, दही, घृत वगैरह चढाने लगे जिस से अनेक चिंटीयां आकर उस के शरीर को खाने लगी तथापि उसने किंचिन्मात्र उन पर क्रोध किया नहीं ऐसी क्षमा धारन

चिचाणुया लहु दक्खोववेया पसाइए ते हु दुरासयंपि ॥ १२ ॥ (गाथा) नापुट्ठो
करके वह आठवे दवलोकमें गया आगे मोक्ष में जानेगा यह चन्कोशिक सर्प की तीसरी कथा संपूण॥३॥
ऐसे अविनात शिष्य दोनों के आत्मा का बिगाड करनेवाला होता है आर गुरु के अभिप्राय अनुसार चलनेवाला, शीघ्र विलंब रहित काय करनेवाला ऐसा विनीत शिष्य अति क्रोधी गुरु को भी शांत करता है ॥ ११ ॥इस पर चद्ररुद्राचार्य की कथा कहते हैं उज्जयनी नगरी में चद्ररुद्राचाय कितनेक साधु के साथ वृद्धावस्था क कारन से स्थिर वास रहे थे आचाय स्वभाव से क्रोधी होने से अपने आत्मा को बचाने क लिये अलग उपाश्र में रहते थे विनय पूर्वक अभ्यास से आचार्य को प्रसन्न करके उन के पास से एक श्रेष्ठि पुत्र ने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया उस का मन वैराग्य में होते हुए भी उस क पिताने उस का लग्न कर दिया लग्न हुए पीछे शाला बहनोइ दोनों मिलकर आचार्य के दर्शन करन को आये वहां शाला बहनोइ की मस्करी करता हुवा बोला कि अहो महाराज ' यह मेरे बहनोइजी बडे ज्ञानी हैं बडे ही वैरागी हैं आपके शिष्य होने योग्य हैं आप इन को दीक्षा देवें यों दो चार वार कहन से आचाय क्रोधातुर बनकर उस का मस्तक पकडकर लोचकर दीक्षा दे दी उस का शाला दरकर भग गया अब वह शिष्य गुरु से कहने लगा कि आपने तो मेरे पर उपकार कर मुझे ससार से तारा परंतु मेरे लिये आप को बहुत परिषह पडेगा क्यों कि मैं मेरे पिता को एक ही पुत्र हू और वह यहां पर अवश्य आवेंगे इस लिये यहां से चला जाना अच्छा है उस समय संध्या होने आई थी तथापि डर से वहां से

निकाल चले वृद्धावस्था होने से गुरु चल सके नहीं, जिस से शिष्य पर क्रुद्ध होकर बोलने लगे कि अरे पापिष्ट ! तेरे लिये मुझे यह कष्ट उठाना पड़ा मैं अब नहीं चल सकता हूं तब शिष्य बोला कि-आप मेरे स्कंध पर बैठ जावो आप को मैं ले चलूंगा अब वह शिष्य आचार्य को अपने स्कंध पर लेकर चलने लगा, परन्तु अंधेरे में अच्छी तरह नहीं दीखने से शिष्य का पांव ऊंचा नीचा पड़ता था जिस से आचार्य का शरीर हिचकारे खाता हुवा खेदित होने लगा आचार्य क्रोधातुर बनकर शिष्य के मस्तक में लाष्ट मुष्टि आदि प्रहार से मारने लगे परन्तु शिष्य किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं करता था और शांत भाव से विचार करता था कि मेरे जैसे पापी को धिक्कार होवो कि सुख से रहे हुए गुरु को मैंने दुःखित कर दिये यों पश्चाताप करते हुए क्षपक श्रेणि में चढ कर घन घातिक कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया सब दर्शनी ज्ञान से अच्छे मार्ग पर चलने लगे गुरु हिचकारा नहीं पाने लगे तब गुरु बोलने लगे कि "भार सार" शिष्य बोले-'गुरु उपकार' गुरुने पुच्छा कि क्या ज्ञान हुवा है ? शिष्यने कहा हां, गुरु ने पुछा कि प्रतिपाति किंवा अप्रतिपाति ? शिष्यने कहा कि-अप्रतिपाति ज्ञान मुझे हुवा है तब गुरु उन के स्कंध से शीघ्रमेव नीचे उतर गये और पश्चाताप करने लगे कि मैंने दुष्टने केवली की अशातना की इस तरह पश्चाताप करते हुए वह भी क्षपकश्रेणि में चढकर कर्म का क्षय कर केवलज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हुए यों विनीत शिष्य दोनों के आत्मा का कल्याण करने वाला होता है यह चौथी कथा संपूर्ण हुई ॥ ४ ॥

+ +

वागरे किंचि, पुट्ठो या नालियं वए ॥ कोहं असच्चं कुव्वज्जा, धारज्जा पियमप्पियं॥

गुरु आदि के बिना पूछे विनीत शिष्य कुच्छ भी बोले नहीं और पूछने पर मृषा बोले नहीं कदाचित् क्रोध के आधीन बनकर जो कुच्छ अयोग्य काय किया होवे तो उस क्षमाकर निष्फल बनावे, और विनयवंतका कर्तव्य प्रियकारी व अविनयवंत का कर्तव्य अप्रियकारी है ऐसा धारन कर विनयकरे ॥१४॥ इसमें क्रोध का असत्य करने पर कुलपुत्र की कथा कहते हैं-किसी गाम में अपनी माता सहित दो क्षत्रिय पुत्र रहते थे इन दोनों भाइयों में बडे भाइ को किसीने मारडाला जिस से इस की माता बोली कि—क्षत्रिय का धर्म है कि दुश्मन से वैर लेना इस से तू दुश्मन को ले आ यह अपने भाइ की घात करनेवाले को पकड लाया और अपनी माता के सन्मुख खडा कर खड्ग उठाकर मारने लगा तब वैरी मुख में तृण लेकर बोला कि मैं आप के शरण हूं ऐसा सुन उस की माता बोली-अहो पुत्र! शरणागत को मारनेका क्षत्रियों का धर्म नहीं है तब पुत्र बोला कि मुझे क्रोध आ रहा है तो अब मैं क्या करूं? तब माता बोली कि सब स्थान क्रोधको सफल करनेका नहीं है विशेष उपशमा दे माताका वचन मान्यकर पुत्रने दुश्मनको अच्छा सन्मान दिया और उन के स्थान पहुंचा दिया ऐसे ही साधु के छ ही काया के जीवों शरणागत हैं उन में से कोई अज्ञानतासे अपराध करे तो उस पर क्षमा रखना चाहिये और उस को ज्ञान देना चाहिये यह कुलपुत्र की पांचवी कथा संपूर्ण हुई॥ ५ ॥ * *

अब प्रिय व अप्रिय हितशिक्षा धारन करने पर तीन मंत्र वादी की कथा कहते हैं किसी गांव में राजा

॥ १४ ॥ अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो ॥ अप्पादतो सुही होइ अस्सिं

राज्य करता था उस का पुत्र बहुत व्याधिग्रस्त था वह राजा प्रतिदिन बहुत वैद्य वगैरह को बोला कर उस का उपचार करता था तदपी उस का रोग नहीं मीटता था अन्यदा उस ही गांव में तीन मंत्रवादी आगये राजा का खबर होते ही उन तीनों वैद्य को बोलाये और अपने पुत्र का सब कथन कहा तब उन में से एक वैद्य बोला कि मेरी औषधि से पुराना रोग चला जाता है और रोग नहीं होवे तो नया रोग आता है राजा बोला-पेट मसल कर शूल करने जैसी तेरी औषधि हम को पसन्द नहीं है दूसरा बोला कि मेरी औषधिसे रोग चला जाता है परंतु गुण अवगुण कुच्छ करे नहीं ऐसा है तब राजा बोला कि पानी मन्थन करने समान तुम्हारी औषधि की हमे जरूर नहीं है तीसरा वैद्य बोला कि मेरी औषधि से रोग होवे तो चला जाता है और रोग होवे नहीं तो शरीर में पुष्टि करता है राजाने उस की पास से औषधि दिलाकर पुत्र को निरोगी किया ऐसे ही साधु भी तीसरे वैद्य की औषधि समान हितकारी कर्तव्य का आचरण करे यह तीन वैद्यों की छठी कथा सपूर्ण हुई ॥ ६ ॥

आत्मा का दमन करना दुष्कर है परंतु आत्म दमन करने वाला ही इसलोक व परलोक में सुखी होता है, इसलिये आत्म दमन करना चाहिये ॥१५॥ आत्म दमन पर पल्लीपति की कथा कहते हैं—कोई साधु चौमासा करने को जाते रास्ता भूल कर चोर पल्ली में चले गये वहां पल्लीपति से बोले कि भाई! आज संध्या से चतुर्मास लगता है फिर हम को विहार करना नहीं कल्पता है इसलिये यहि स्थानकी

लाए परत्थय ॥ १५ ॥ वर मे अप्पा दंतो, सजमेण तवेण य ॥ मा ह परेहि दम्मतो,
आज्ञा होवे वो यहां रहे पल्लीपति ने कहा कि-आप यहां सुख से रहो परंतु उपदेश करना नहीं पल्ली
पति ने दिये हुए स्थान में ज्ञान ध्यान तप व संयम से आत्मा का भावते हुए साधुने चतुमास पूण करके
विहार किया और पल्लीपति पहुंचाने गया साधुजी ने उस पल्लीपति को समजाकर अनजान
फल खाने का सोगन कराये एकदा सब चोरों राजा का खजाना लुन्टकर भयकर अटवि में छिपगये
तीन दिन तक कुच्छ खाने पीने का मीला नहीं चौथे दिन किंपाक वृक्षों को देखकर उन के फलों
को सब चोर तोड २ कर खाने लगे और पल्लीपति को भी दिये पल्लीपति ने उस फल का नाम पुछा
परतु किसी को इस का नाम मालुम नहीं था तब पल्लीपति ने कहा कि मुझे ऐसे अनजान फल खाने के
सोगन हैं इस से मैं खाऊंगा नहीं ऐसे विकट प्रसंग में भी व्रत पर कायम रहा और फल खाये नहीं
थोडी देर पीछे उन फलों का विष सब चोरों को परगमगया और सब चोर मरगये फक्त पल्लीपति रहगया यह
पल्लीपति आनदित होता हुवा और साधुओं के गुन गाता हुवा सब धन लेकर अपने घर आया और सुखी
हुवा इस प्रकार जो आत्मदमन नहीं करते हैं वे चोरों के तरह दुःख पाते है और आत्म दमन करने
वाले पल्लीपति कैसे सुखी होते हैं यह पल्लीपति की सातवी कथा हुई ॥ ७ ॥ *

मुझे अन्य कोइ वध बधन से न मारे इस लिये सत्तरह प्रकार के सयम व बारह प्रकार के तपसे आत्मा का
दमन करना श्रेय है ॥ १६ ॥ आत्मदमन पर सींचानक हस्ती की कथा कहते हैं—विन्ध्या चल

घवणहि वहहि य ॥ १६॥ पडिणीयस्स युद्धाण वाया अदुव कम्मुणा ॥ आवी वा

पर्वत के मूल में एक तापस के आश्रम में बहुत तापस रहते थे उस आश्रम के पास जंगल में हाथि व हथणियों का यूथ रहता था, उस यूथ का अधिपति हाथी हथणियों के भोग में ऐसा लुब्ध बना था कि जो नर हस्ती पैदा होता तो जन्मते ही उस को मार डालता था एकदा एक हथणी को गर्भ रहा और कदाचित् पुत्र होगा तो हाथी मार डालेगा इस विचार से पुत्र की रक्षा के लिये लंगडापने का ढोंग धारन कर पीछे २ रहने लगी कभी एक दिन कभी दो दिन बीच में अन्तर डाल मिलने लगी इस से हाथी को ऐसा विश्वास हुवा कि गर्भवती होने से यह अपनी साथ नहीं चल सकती है यों करते २ हथणीने तापसों के आश्रम में पुत्र प्रसवा वह बच्चा बडा होकर उन तापसों के बालकों के साथ वृक्षों को अपनी सूंड में पानी लेकर सींचता था इस से तापसोंने उस का नाम सींचानक दिया जब वह सींचानक यवावस्था को प्राप्त हुवा तब वह हथणियों के यूथ में चलागया और उस वृद्ध हस्ती को मार कर सब हथणीयों का अधिपति बना फीर विचार किया कि जिस प्रकार तापस के आश्रम में मेरी माताने मुझे जन्म दिया और मैंने मेरे पिता को मार डाला वैसे ही दूसरी कोई हथणी दूसरे पुत्र को जन्म दे वह जन्म कर मुझे मार डाले! इस विचार से वह तापस के आश्रमों के पास आया और उन को उपसर्ग करने लगा। यह तापसों वहां से घबरा कर श्रेणिक राजा के पास आये और कहा कि राज्य योग्य सींचानक नामक गंध हस्ती हमारे आश्रमों के पास विन्ध्याचल पर्वतमें है वह आप के पाटवी हस्ति होने योग्य है राजाने यह बात सुनकर किसी प्रकारसे

सींचानक हस्ती को पकड मंगवाया और मल स्तंभ से बांध दिया तब तापस लोग कहने लगे कि-रे सींचानक ! हम ने तेरा रक्षण किया था इस से यथा शन कर तैने हम को दुःखी किया तेरे इस दुष्कृत्य का यही फल है हाथी रोश में आकर अपने बंधन तोडकर जंगलमें चला गया पुनः उसे पकडने के लिये श्रेणिक राजाने बहुत उपाय किये, परंतु वह हाथ में आया नहीं तब राजाने अपनी कुलदेवी का आराधन किया देवीने आकर कहा कि हे राजन् ! चंपा नगरी में धनवान व ब्राह्मण के शास्त्र में पारगामी ऐसा वसु नाम का ब्राह्मण रहता था उस को धनदत्त नामक जैन के साथ मित्रता थी वह उस वसु ब्राह्मण को सदैव कहा करता था कि सुपात्र दान दे जिस से तेरे धन का व जन्मका सार्थक होवे वह कहा करता था कि ब्राह्मण ही सुपात्र हैं यो वारंवार विवाद होता था वे दोनों वहां से काल कर धनदत्त तेरी नंदारानी की कुक्षि से नंदीषेण कुमार हुवा और वसु ब्राह्मण कुपात्र दान के प्रभाव से सींचनक गंध हस्ती हुवा है यह कथन नंदीषेण कुमार जाकर उस हाथी से कहेगा तो उसको जाति स्मरण ज्ञान होगा और कुमार के साथ वह हस्ती चला आवेगा इतना कहकर कुलदेवी चली गई श्रेणिक राजाने नंदीषेण कुमार को भेजकर सींचानक गंध हस्ती का बडी धूमधाम से मंगवाया, और अभिषेक हस्ती बनवाया यही हाथी श्रेणिक राजाने हल विहल कुमार को दिया था और इस ही के लिये चेडा राजा व कूणिक राजा को बडा संग्राम हुवा था, जिस का कथन कुलवालु पुष की दूसरी कथा पृष्ट ६ में है जैसे इस हाथीने स्वयमेव अपना

२

जइ वा रहस, नेव कुज्जा कयाइवि ॥ १७ ॥ न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ॥ नजुंजे ऊरुणा ऊरु, सयणे नो पडिस्सुणे ॥ १८ ॥ नेव पल्हत्थियं कुज्जा पक्खपिंड च संजए ॥ पाए पसारिए वावि, नचिट्ठे गुरुणांतिए ॥ १९ ॥ आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ न कयाइवि ॥ पसायपेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरूण

आत्मा वश किया जिस से दूसरे के वध प्रहार वगैरह से बचकर पाम्भीय अभिषेक योग्य हाथी हुवा वैसे ही जो साधु स्वयमेव आत्मदमन करते हैं वे अन्य वध बंधन को प्राप्त नहीं होते हुए आचार्यादिक की पद्वी को प्राप्त होते हैं यह सींघानक हाथी की आठवी कथा संपूर्ण हुइ ॥८॥

यदि गुरु कठोर वचन से शिक्षा देवे तो भी प्रगटपने अथवा गुप्तपने, वचन से अथवा कार्य से गुरु के साथ शत्रुता करे नहीं ॥ १७ विनीत शिष्य गुरु के बराबर बैठे नहीं, गुरु के आगे बैठे नहीं और गुरु को पीठकर के भी बैठे नहीं गुरुके पास पांवपर पांव चढाकर बैठे नहीं वैसे ही शयनमें तथा बिछानेमें रहा गुरुके वचन श्रवण करे नहीं परंतु आसन छोडकर गुरु के वचन प्रमाण कर सुने ॥ १८ ॥ विनयवान संयती गुरु के पास वस्त्र से अथवा हाथों से पालखी (दोनों घुटन) बंध कर बैठे नहीं, वैसे ही पांव पसारकर भी बैठे नहीं ॥ १९ ॥ गुरु की मेरे पर कृपा दृष्टि है ऐसा जानने वाला मोक्षार्थी सदैव गुरु के पास रहे और जब कभी गुरु बोलावे तब मौनस्थ रहे नहीं, रोगावस्था में होवे तो भी बिना बोला रहे नहीं ॥ २० ॥

सया ॥ २० ॥ आलवत लवत वा, ननिसीएज्ज कयाइवि ॥ चइऊण मासण धीरो जओ जत्त पडिस्सुगे ॥ २१ ॥ आसणगओ न पुच्छेज्जा, नेवसेज्जागओ कया ॥ आगम्मुक्कुडुओ सतो, पुच्छिज्जा पजलीउडो ॥ २२ ॥ एव विणय जुत्तस्स, सुत्त अत्थ च तदुभय ॥ पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुय ॥ २३ ॥ मुस परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए ॥ भासादोस परिहरे, माय च वज्जए सया ॥ २४॥ न लवज्ज पुट्ठो सावज्ज, न निरट्ठ न मम्मय ॥ अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्स

गुरु एक बार या बारबार बोलावे तो बैठा रहे नहीं कदाचित् व्याख्यानादि काय करता हावे तो अपना आसन छोडकर गुरु जो आदेश करे सो धैर्यता पूवक व सावधानपने श्रमण करे और वैसा ही कार्य करे ॥ २१ ॥ कोई बहु मूशी हावे तो भी अपने आसन व संथारे पर रहा हुआ गुरु को प्रश्न पूछे नहीं, परंतु गुरु के समीप आकर नमस्कार सहित दोनों हाथ जोडकर नम्रता युक्त शास्त्रार्थादि जो इच्छा होवे सो पूछ ॥ २२ ॥ ऐसा विनयवान शिष्य गुरु को सूत्र अर्थ व गृभाध पूछे तो गुरु उस को जैसा स्वतःने अपने आचार्य से सुना होवे वैसा कहे ॥ २३ ॥ साधु मृषा वाद का त्याग करे, वैसे ही निश्चय कारिणी भाषा बोले नहीं भाषा के दोषों का त्याग करे और माया कपट सदव वर्जे ॥२४॥ कोई पुछे तो अपने लिये या दूसरे के लिये अथवा इन सिवाय और किसी

तरेण वा ॥ २५ ॥ समरेसु आगारेसु, सधीसु य महापहे ॥ एगो एगत्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न सल्वे ॥ २६ ॥ जम्मे बुद्धाणुसासाति, सीएण फरुसेण वा ॥ मम लाहो त्ति पेहाए, पयओ त पडिस्सुणे ॥ २७ ॥ अणुसासणमोवायं दुक्कडस्स य चोयण ॥ हिय त मण्णइ पण्णो, वेस हाइ असाहुणो ॥ २८ ॥ हिय विगयभया बुद्धा, फरुस पि अणुसासण ॥ वस त होइ मूढाण, खतिसोहिकर पय ॥ २९ ॥ आसणे उवचिट्ठेज्जा,

कार्य के लिये सावद्य भाषा बोले नहीं, वैसे ही निरर्थक व मर्मकारी वचन भी बोले नहीं ॥ २५ ॥ लोहारादिक शाला में, किसी मकान में, दोनों घर की संधी (गली) में, और राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ खडा रहे नहीं वैसे ही वार्तालाप भी करे नहीं ॥ २६ ॥ कोमल अथवा कठोर वचनों से गुरु मुझे जो हितशिक्षा देते हैं वे मेरा लाभ के लिये देते हैं ऐसी बुद्धि से गुरु की शिक्षा सावधान पूर्वक श्रवण करे ॥ २७ ॥ कदाचित् शिष्य से कोई दुष्कृत्य हुवा होवे और गुरु उसे कोमल अथवा कठोर भाषा से हित शिक्षा देवे तो प्रज्ञावान साधु उस शिक्षा का हितकारी मानते हैं और अविनीत शिष्य को वो शिक्षा द्वेष उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ २८ ॥ जो विनीत तत्त्वज्ञ और जिन के सब प्रकार के भय दूर हो गये हैं वैसे शिष्य कठोर अनुशासन को भी हितकारी मानते हैं, ऐसी क्षमादि धर्मोत्पादक व सौम्यकारी हितशिक्षा को मूढ अविनीत शिष्य द्वेष रूप मानते हैं ॥ २९ ॥ विनीत शिष्य उपछोला

अणुच्चे अकुए थिरे ॥ अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्ज अप्पकुक्कुए ॥ ३० ॥ कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेणय पडिक्कमे ॥ अकालंच विवज्जेत्ता, कालेकाल समायरे ॥ ३१ ॥ परिवाडीए न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणचरे ॥ पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥ ३२ ॥ नाइदूर मणासन्ने, नन्नेसिं चक्खुफासओ ॥

पाट आदि आसन गुरु के आसन से नीचा और जो डगमगता न होवे परन्तु स्थिर जमा हुवा होवे ऐसा रखता है, चपल आसन नहीं रखता है, वैसे ही गुरु समीप रहा हुवा विना प्रयोजन उठे नहीं प्रयोजन होने पर थोडा उठे अर्थात् एक काम में अनेक काम कर लेवे, तैसे ही बैठा हुवा भी हाथ पांव प्रमुख अंग को बिना प्रयोजन हिलावे नहीं ॥ ३० ॥ विनीत शिष्य की एषणा समिति कहते हैं—विनीत शिष्य भिक्षा का काल अनुमान प्रमान से जाने जिस ग्राम में भिक्षा का समय हुवा होवे तब भिक्षा के लिये जावे भिक्षा काल होजाय कि तुरत ही पीछा फीर जावे समय विना भिक्षा के लिये जावे नहीं यों सब क्रिया इस ही के २६ वे अध्ययन में कहे अनुसार कालोकाल काम करे अनियमित रहे नहीं ॥ ३१ ॥ भिक्षा निमित्त निकला हुवा साधु जहां जिमने की पंक्ति बैठी होवे वहां खडा रहे नहीं गृहस्थने दिया हुवा शुद्ध निर्दोष आहार यथायोग्य गवेषणा करके ग्रहण करे और सिद्धांतोक्त मर्यादित समय में आहार करे ॥ ३२ ॥ गृहस्थ के वहां कोई भिक्षुक खडा होवे तो साधु उस के बहुत पास व उस से बहुत

पगा चिट्ठिज्ज भत्तट्ठा लंघिया त नाइक्कमे ॥ ३३ ॥ नाइउच्च न नीएवा नासन्ने नाइदूरओ ॥ फासुय परकड पिंड, पडिगाहेज्ज सजए ॥ ३४ ॥ अप्पपाणप्प बीयमि पडिच्छन्नमि संवुडे॥ समय सजए भुंजे, जय अपरिसाडिय ॥ ३५ ॥ सुक्कडिचि

दूर खडा रहे नहीं वैसे ही गृहस्थ अथवा भिक्षुक की दृष्टिगत खडा रहे नहीं उस को उल्लंघ कर गृहस्थके घर में प्रवेश करे नहीं, परंतु भातपानी का अर्थी बना हुआ राग द्वेष रहित भकेश किस को नहीं में आवे नहीं वैसे खडा रहे ॥ ३३ ॥ भिक्षा के लिये गया हुआ विनयवान साधु दातार से बहुत ऊंचा बहुत नीचा बहुत आसन्न-नजदीक न बहुत दूर खडा नहीं रहता हुआ अन्य के लिये बनाया हुआ प्रासुक एषणिक पिंड आहार ग्रहण करे ॥ ३४ ॥ अब भोजन करने का स्थान बताते हैं—जो स्थान चारों तरफ व उपर से ढका हुआ होवे जिस में द्वीन्द्रियादि प्राणी तथा अनाज के दाने बीज वगैरह न होवे एस मकान में अपने जैसे आचारवाले साधु होवे उन के साथ अन्नादि नीचे नहीं डालता हुआ सबडकादि स्वाद नहीं करता हुआ यत्ना पूर्वक आहार करे ॥ ३५ ॥ अब आहार करते समय भाषा समिति कहते हैं यह भोजन बहुत अच्छा बना यह पक्वान्न अच्छे पकाये यह शाकादि का अच्छा छेदन किया इन करेलादिक की कडवाश अच्छी हरण की, इन मोदकादिक में घृत अच्छा भरा हुआ है यह कुष्माण्डादि की पकी आदि अच्छी बनाई है. यह भोजन पथ्यापथ्यादि मये मशाले

सुपक्किचि, सुच्छिमे सुहडे मडे ॥ सुणिट्ठिए सुलट्ठेचि, सावज्ज वज्जए मुणी ॥३६॥
रमए पडिए सास, हय भद्द व वाहए ॥ बाल सम्मइ सासतो, गलियस्स व वाहए

कर अच्छे बिणगारे इत्यादि प्रकार की सावद्य भाषा बोले नहीं अर्थात मनोज्ञ भक्त पान की प्राप्ति होनेपर उस में लुब्ध बनकर उस की प्रशसा करे नहीं, वैसे ही अमनोज्ञ भोजन प्राप्तकर उस की निंदा भी करे नहीं; ऐसे ही अन्य स्थान भी सावद्य भाषा बोलने का विचार रखना जैसे-यह मकानादि अच्छे बनाये, यह भोजन अच्छा पकाया, यह वृक्षादि अच्छा छेदा इस कृपणका धन अच्छा हरा, यह पापी जीव मरगया सो अच्छा हुवा, यह वस्त्र भूषणादि अच्छे स्थापन किय, यह रूपवती कन्या पति के योग्य है इत्यादि आरंभ की प्रशसा करे नहीं और वैसी सावद्य भाषा का सर्वथा त्याग करे परन्तु कार्य प्रसग से ऐसा बोले कि इसने धर्म ध्यान अच्छा किया, इस का वैराग्य अच्छा पका, इस के स्नेह का छेदन अच्छा हुवा, इस का मोह अच्छा हरा, यह पंडित मरण अच्छा मरा इसने सम्यक्त्व में अपने आत्मा को अच्छा स्थापन किया, इस का संयम अच्छा शोभता है इत्यादि निर्दोष भाषा प्रयोजन होने पर बोले ॥ ३६ ॥ अब विनीत अविनीत पर घोडे का दृष्टांत कहते हैं जैसे उत्तम जाति के घोडे को कलाभ्यास कराते स्वार आनंद पाता है, वैसे ही विनीत शिष्य को हित शिक्षा देते हुए गुरु आनंद मानते हैं और जैसे गलीयार घोडे को शिक्षा देने में स्वार खेदित होता है, वैसे ही अविनीत शिष्य को शिक्षा देने में गुरु खेदित होते हैं

॥ १७ ॥ खड्डयामे चवेडामे, अक्कोसा य वहाय मे । कल्लाण मणुसासंतो, पाव

॥ १७ ॥ इस पर दो घोडे की कथा कहते हैं एकदा म्लेच्छ लोगों कहीं जाते हुए एक नदी के किनारे पर रथ को छोड घोडों को घास पास चारा चरने के लिये छोड दिये उन दोनों घोडोंने वहां एक हृष्ट पुष्ट गद्धा देखकर उस से पूछा कि-अरे तू कौन है ? उसने उत्तर दिया कि-मेरा स्वामी मेरे पर बहुत वजन लादता था और मुझे बहुत सताता था एक समय मैं यहां आगया और यह अच्छा स्थान देखकर यहांही रहने का विचार किया जब वह कुमार मुझे पकडने लगा तब मैं यहां ही नीचे जमीन पर गिरगया कुंभारने मुझे बहुत मार मारी; परंतु मैं उठा ही नहीं तब मुझे यहां छोड कर वह चला गया अब मैं यहां आनन्द में रहता हूं ऐसा सुनकर उन में से एक घोडेने ऐसा ही विचार, किया अब उन का मन के लिये म्लेच्छ लोक आये तब वह घोडा नीचे गिरगया उस को उठाने का बहुत प्रयत्न किया परतु वह उठा नहीं, इस से क्रोधावेश में आकर उस की गरदन काट डाली और उस के स्थान उस गद्धे को जोतलिया गद्धेने विचार किया कि-यदि मैं भी ऐसे करूंगा तो मुझ भी यह मार डालेंगे यों मान व दूसरे घोडे के साथ चलने लगा यों अविनीत की कुशिक्षा मानने वाले बहुत दुःख पाते हैं यह दो घोडों की नवमी कथा सपूर्ण हुइ ॥ ९ ॥

अब दुष्ट अविनीत शिष्य को गुरु हित शिक्षा देवे तो वह द्वेषी बनकर लोगों के सन्मुख कहता है कि गुरु मुझे चपेटा (थप्पड) मारते हैं, ठकोर मारते हैं, मेरे पर आक्रोश करते हैं, मेरा वध करते हैं. इस

> ।दिट्ठी त्ति मन्नइ ॥ ३८॥पुत्तो मे भाइ नाइ त्ति, साहू कल्लाणं मन्नइ ॥ पावदिट्ठिओ
> अप्पाणं, सासं दासि त्ति मन्नइ ॥ ३९ ॥ नकोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए ॥
> बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्त गवेसए ॥ ४० ॥ आयरियं कुवियं नच्चा,

तरह यह निन्दा करता है ॥ ३९ ॥ और विनीत शिष्य गुरु की हित शिक्षा से प्रसन्न बनकर विचारता है कि यह गुरुजी मुझे पिता पुत्र की तरह बड़े छोटे भाई की तरह अथवा ज्ञाति जन की तरह हितशिक्षा देते हैं मेरे आत्मा को यह शिक्षा हितकर्ता, ज्ञानादि गुन की वृद्धि करता व कल्याणकारी होगी और जो अविनीत पाप दृष्टि शिष्य है वह ऐसा विचारता है कि गुरु मुझे दास की तरह तर्जना ताडना करते हैं ॥ ३९ ॥ जो विनीत शिष्य होते हैं वे सदैव ऐसे प्रवर्तते हैं कि न तो वह आचार्य को कुपित करते हैं और न आप कदापि कुपित बनते हैं गुरु की घात का चिंतवन कदापि नहीं करते हैं और गुरु के छिद्र की गवेषणा करनेवाले भी नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ इस पर आचार्य की कथा कहते हैं कोई एक आचार्य महा गुणवान अपने शिष्य के परिवार से बहुत वर्ष पर्यंत ग्रामानुग्राम विचरते भव्य जीवों को प्रतिबोध करते जंघा बल क्षीण होने से विहार करने में अशक्त बन किसी ग्राम में कि जहां श्रावकों का अच्छा समुदाय था और वे सुखी थे वहां स्थिरवास रहे आचार्यने अपने पास एक विनीत शिष्य को रखकर शेष सब शिष्यों को विचरने की आज्ञा दी यहां विनीत शिष्य गुरु को सब प्रकार से साता

उपजाता था और आचार्य की बहुत अच्छी तरह वैय्यावृत्य करता था इस से गाम के मालिक श्रावक उस की अच्छी प्रशंसा करते थे अब दूसर साधु फीरत २ पुनः आचार्य के पास आये तब आचार्यने और गाम के श्रावकोंने उस विनीत शिष्य की बहुत प्रशंसा की यह सुनकर कितनेक विनीत भद्रक शिष्यों को यह पान रुचे परंतु एक कदाग्रही शिष्य को ईर्षा उत्पन्न हुई और मन में विचार करने लगा कि क्या यह वैय्यावृत्य कर सकता है वैसी मैं नहीं कर सकता हूं अब तो आचार्य के पास में रहूंगा और वैय्यावृत्य करुंगा यों विचार कर आचार्य के पास रहने की अपनी इच्छा प्रदर्शित कर वह वहां ही रहा दूसर शिष्य फीर अन्य स्थान विहार कर गये थोडे दिन तक तो अच्छी तरह वैय्यावृत्य की, परंतु पीछे से घबराकर विचारने लगा कि यह गुरु कब मरे और पाप कटे. ऐसा सदैव काम मरे से तो नहीं हो सकता है इन के काम में मुझे घडी भर की फुरसद ही नहीं मीलती है इससे जल्दी मरजाय तो अच्छा यों गुरु को मारनेका उपाय रचा जब वह गोचरी जाय और गृहस्थ उन को अच्छा सरस आहारादि बहोरावे तब शिष्य ग्रहण करे नहीं और कहे कि गुरुजी का संथारा करने का भाव है इस से सरस स्निग्ध आहार का त्याग करते हैं ऐसा कहता हुवा सरस आहार लावे नहीं, और असातकारी आहार लावे ऐसा देखकर गुरुजीने शिष्य से पूछा कि ऐसा आहार क्यों आता है? तब शिष्य बोला कि आपको यहां रहते बहुत दिन होगये हैं जिस से श्रावकों के भाव मन्द पडगये हैं कहा है कि-"श्री पीअर नर सासरे संयमीयो स्थिरवास, इतन होवे अलखामने जो रे अधिक निवास॥" इस अनुसार अब अपन इन श्रावकों को हो गये हैं अच्छी वस्तु की भावना

पविएण पसायए ॥ विञ्झनेञ्ज पञलिउडो, वएज्ज न पुणोत्तिय ॥ ४१ ॥ धम्मज्जिय
च ववहार, बुद्धेहायरिय सया ॥ तमायरतो ववहार, गरहं नाभिगच्छइ ॥ ४२ ॥

करने पर भी यहां के श्रावकों देते नहीं हैं यों गुरजी को समजाया इतने में गामते श्रावको मीलकर आचार्य के पास आकर विनति करने लग कि-आपका सयारा करनेका विचार है ऐसा चेलाजी कहते हैं इस से हम दिलगीर हुवे हैं अहो भगवन् ' आप का शरीर अभी अच्छा है तो आप को सथारा क्यों करना आचाय महाराज अपने अविनीत शिष्यका कपट समज गये और विचार किया कि श्रावकोंका तो वैसा हा भाव है परंतु यह सब अविनीत शिष्यका प्रपन्च है अब इस में सथारा नहीं करू तो धर्मकी हीलना होवे इस लिय सयारा करना ही मुझे उचित है ऐसा विचार अपने दुष्ट शिष्यके अवगुन प्रसिद्ध नहीं करते हुए सयारा कर दिया और आयुष्य पूर्णकर स्वर्ग गये अविनीत शिष्य अनत ससारी बना यह आचायकी दृष्टान्त कथा हुइ *

किसी समय आचाय कुपित होजावे तो उन का प्रतीतकारी वचनों से शात करे दोनों हाथ जोड कर विनति करे कि मेरा अपराध क्षमा करो पुन मैं ऐसा नहीं करुगा ॥ ४१ ॥ सत्त्वरेता ज्ञाता बुद्धिवत दशविध यति धर्म से प्राप्तकिया हुआ व्यवहार का पालन करे शुद्ध व्यवहार पालने वाले की कोइ निंदा नहीं करता है ॥ ४२ ॥ आचार्य के मनोगत अथवा कहा हुवा कार्य को

मणोगय वक्कगय, जाणित्ता यरियस्सउ ॥ त परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए ॥ ४३ ॥ वित्ते अचोइए निच्च खिप्प हवइ सुचोइए ॥ जहोवइट्ठ सुकय कि चाइ कुव्वइ सया ॥ ४४ ॥ नच्चा नमइ मेहावी, लोए किची से जायए ॥ हवइ किच्चाण सरण, भूयाण जगई जहा ॥ ४५ ॥ पुज्जा जस्स पसीयति, सबुद्धा पुव्व-सथुया ॥ पसन्ना लाभइस्सति विउल अट्ठिय सुय ॥ ४६ ॥ (काव्य)-सपुज्ज सत्थे सुविणीय ससए मणोरुई चिट्ठइ कम्मसपया ॥ तवो समायारि समाहि सबुडे,

शीघ्रमेव वचन से ग्रहण करे अर्थात् यह कार्य मैं करूंगा यों कहकर फिर काया से वही शीघ्रमेव कर देवे ॥ ४३ ॥ विनीत शिष्य गुरु आदि की प्रेरणा विना ही जाने प्रेरणा की है इस प्रकार शीघ्र मेव गुरु का काम करे इस से गुरु भी प्रसन्न हो कर उस की प्रशंसा करे ॥ ४४ ॥ विनयवान की सब लोक में कीर्ति होती है ऐसा मानकर मेधावी विनय का आचरण करे और जैसे पृथ्वी सब को आधार भूत है वैसे ही वह विनीत शिष्य सब का आधार भूत होवे ॥ ४५ ॥ जिनने विनय-नम्रता से आचार्य की सेवा की है उसे शिष्य पर आचार्य प्रसन्न होकर विशेष श्रुत ज्ञान का लाभ देते हैं ॥ ४६ ॥ उपसहार-वे ही पूज्यनीय हैं कि जिन का गुरु की आज्ञा में प्रवृत्ति रूप उपासना द्वारा शास्त्रार्थ प्राप्त कर सर्व प्रकार से संशय रहित बने हैं, मन की रुचि-उत्साह पूर्वक साधु की कर्म सम्पदा कर्तव्य में

महज्जुई पचवयाइ पालिया ॥ ४७ ॥ सदेव गधव्व मणुस्स पूइए, चइत्तु देह मल पक पुव्वय ॥ सिद्धे वा हवइ सासए, देवेवा अप्परए महड्डिए ॥ ४८ ॥ त्तिबेमि

इति विणयसुयणा मज्झयण सम्मत्त ॥ १ ॥ * * * *

रहे हैं तप तथा समाचारी में समाधिवंत व सवृतात्मा हैं, और महाद्युतिवंत—निर्मल पंच महाव्रत के पालक हैं ॥ ४७ ॥ ऐसे गुण युक्त जो विनीत शिष्य होते हैं वे चारों प्रकार के देवता विद्याधरों मनुष्यों के पूज्यनीय होते हैं यह मलमूत्रादि कीचड से भरा हुवा औदारिक शरीर का त्याग कर अनत अक्षय अव्याबाध शाश्वत सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं अथवा कर्म रज अल्प रह जाने से (पुण्य वृद्धि होने से) महा ऋद्धिक देवता होते हैं ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू! जैसा मैंने महावीर स्वामी के पास से सुना है वैसा ही तेरे से कहा है यह विनय श्रुत नामक पहिला अध्ययन सपूर्ण हुवा ॥ १ ॥ * * *

॥ परिषह नामकं द्वितिय मध्ययनम् ॥

सुयमे आउस तेण भगवया एव मक्खाय, इह खलु बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ॥ कयर खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ? ॥ इमे खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया,जे भिक्खू सुच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा

अहो आयुष्यन् जम्बू ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है इस लोक में बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं इन को सुन कर इन को जान कर इन पर जय कर और इन के सन्मुख बन कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे संयमकी घात करे नहीं प्रश्न-वे बावीस परिषह कौनसे २ हैं कि जिन को जान कर यावत् उन के सन्मुख होकर भिक्षा के लिये भ्रमता हुवे साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे नहीं ? उत्तर वे निम्नोक्त बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं जिन को सुन कर, जान कर जिस पर जय कर और जिस के सन्मुख हो कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए

यरियाए परिव्वयतो पुट्ठो ना विहण्णेज्जा ॥ तजहा—दिगच्छा परिसहे, पिवासा परिसहे, सीयपरिसहे उसिण परिसहे, दसमसय परिसहे, अचेल परिसहे, अरइ परिसहे, इत्थीपरिसहे, चरिया परिसहे, निसीहिया परिसहे, सेज्जा परिसह, अक्कोस परिसहे, वहपरिसहे, जायणा परिसहे अलाभ परिसह रोगपरिसहे, तणफास परि सहे जल्लपरिसहे, सक्कार पुरक्कार परिसहे, पन्नापरिसहे, अन्नाण परिसहे, दसण परिसहे ॥ १ ॥ (गाहा)—परिसहाण पविभत्ती, कासवेण पवइया ॥ त भे उदा-

साधु को परिषह होवे तो भी वे हणावे नहीं जिन के नाम कहते हैं—१ क्षुधा परिषह, २ तृषा परिषह, ३ शीत परिषह, ४ उष्ण परिषह ५ दशमशक परिषह, ६ अचेल परिषह, ७ अरति परिषह, ८ स्त्री परिषह, ९ चर्या परिषह, १० निषद्या परिषह ११ शय्या परिषह १२ आक्रोश परिषह, १३ वध परिषह, १४ याचना परिषह १५ अलाभ परिषह, १६ रोग परिषह १७ तृणस्पर्श परिषह १८ जल मैल परिषह १९ सत्कार पुरस्कार परिषह, २० प्रज्ञा परिषह, २१ अज्ञान परिषह, और २२ दर्शन परिषह॥॥ अब इन बावीस परिषह का वर्णन विस्तारपूर्वक दो दो गाथा द्वारा कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं, कि अहो जम्बू ! काश्यप गोत्रीय श्री महावीर स्वामीने

॥ परिषह नामकं द्वितीय मध्ययनम् ॥

सुयमे आउस तेण भगवया एव मक्खाय, इह खलु बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ॥ कयरे खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ? ॥ इमे खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया, जे भिक्खू सुच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा

अहो आयुष्मन् जम्बू ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है इस लोक में बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं इन को सुन कर इन को जान कर इन पर जय कर और इन के सन्मुख बन कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे संयमकी घात करे नहीं प्रश्न—वे बाइस परिषह कोनसे २ हैं कि जिन को जान कर यावत् उन के सन्मुख होकर भिक्षा के लिये भ्रमता हुवे साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे नहीं ? उत्तर वे निम्नोक्त बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं जिन को सुन कर, जान कर जिस पर जय कर और जिस के सन्मुख हो कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए

परियाए परिव्वयतो पुट्ठो ना विहण्णेज्जा ॥ तजहा—दिगच्छा परिसहे, पिवासा परिसहे, सीयपरिसहे उसिण परिसहे, दसमसय परिसहे, अचेल परिसहे, अरइ परिसहे, इत्थीपरिसहे, चरिया परिसहे, निसीहिया परिसहे, सेज्जा परिसह, अक्कोस परिसहे, वहपरिसहे, जायणा परिसहे, अलाभ परिसह रोगपरिसहे, तणफास परिसहे, जल्लपरिसहे, सक्कार पुरक्कार परिसहे पन्नापरिसहे अन्नाण परिसहे, दसण परिसहे ॥ १ ॥ (गाहा)—परिसहाण पविभत्ती, कासवेण पवेइया ॥ त मे उदा-

साधु को परिषह होवे तो भी वे हणावे नहीं जिन के नाम कहते हैं—१ क्षुधा परिषह, २ तृषा परिषह, ३ शीत परिषह ४ ऊष्ण परिषह ५ दंसमशक परिषह, ६ अचेल परिषह, ७ अरति परिषह, ८ स्त्री परिषह, ९ चर्या परिषह, १० निषद्या परिषह ११ शय्या परिषह १२ आक्रोश परिषह, १३ वध परिषह, १४ याचना परिषह १५ अलाभ परिषह, १६ रोग परिषह १७ तृणस्पर्श परिषह १८ जल मैल परिषह, १९ सत्कार पुरस्कार परिषह २० प्रज्ञा परिषह, २१ अज्ञान परिषह, और २२ दर्शन परिषह॥*॥ अब इन बावीस परिषह का वर्णन विस्तारपूर्वक दो दो गाथा द्वारा कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं, कि अहो जम्बू ! काश्यप गोत्रीय श्री महावीर स्वामीने

हरिस्सामि आणुपुव्वि सुणेहमे ॥ १ ॥ दिगिंच्छा परिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामव॥ नछिंदे नछिंदावए, नपए न पयावए ॥ २ ॥ कालीपव्व सकासे, किसेधमणि सतते ॥ मायन्ने असणपाणस्स अदीणमणसो चरे ॥ ३ ॥ तओ पुट्ठो पिवासाए,

बाईस परिषह मसग २ कहे हैं उन का ही कथन मैं दृष्टान्त सहित अनुक्रम से कहता हूं सो तू श्रवण कर ॥ १ ॥ सब परिषह में क्षुधा परिषह सहन करना दुष्कर है इसलिये प्रथम इसका कथन करते हैं-संयम व तप में जिन का आत्मा बलवान है वैसा तपस्वी साधु को क्षुधा व्याप्त हो जावे और अचित्त निर्दोष आहार का योग बने नहीं तो सचित्त वस्तु फलादि का स्वयं छेदन करे नहीं अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करने वाले को अच्छा भी जाने नहीं वैसे ही स्वयं अशनादि पकावे नहीं अन्य से पकवावे नहीं पकाते को अच्छा जाने नहीं ॥ २ ॥ काक पक्षी की जंघा समान जिस का शरीर दुर्बल होगया होवे रक्त मांस सूक गये होवे और मात्र नसा मात्र रही होवे वैसा तपस्वी असन पान की मात्रा प्रमाण का जान मना हुवा अदीन पना से विचरे अर्थात् आहार बिना शरीर इतना शुष्क होजावे तो भी दीनता धारन करे नहीं ॥ ३ ॥ क्षुधा परिषह पर हस्तीमित्र शेठ की कथा कहते हैं-उज्जयनी नगरी में हस्तिमित्र नामक कोई श्रेष्ठि रहता था किसी कारण वशात् पिता पुत्र वैरागी बनकर दीक्षा अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुवे कोई अटवि में पडगये वृद्धावस्था के कारण से हस्ति

भिन्न, साधु विहार करसके नहीं, जिस से अपने आचार्य से बोले कि-मेरा शरीर श्रम से अत्यंत खेदित होगया है और मैं नहीं चल सकता हूं इसलिये मैं अनशन व्रत लेकर संथारा अंगीकार करूं और आप आगे पधारो आचार्यने उन की शक्ति देखकर संथारा करवाया और उन का पुत्र साधु को आचार्यने अपने साथ आने के लिये बहुत कहा परंतु पितापर मोह होने के कारन वह वहां ही रहा. कालांतर में पिता साधु आयुष्य पूर्ण कर देव लोक में गये, और अवधि ज्ञान से अपने पूर्व भव के पुत्र साधु को शरीर की रक्षा करता हुआ देख कर मोह होने से वह देवता वहां आया, और उस मृत कलेवर में प्रवेश कर के अपने क्षुधा से पीडित पुत्र को कहने लगा कि-अहो मुने! इस जगह में जो वृक्ष फले हैं वे खाने योग्य हैं इसलिये खाओ, पुत्र साधु ने उत्तर दिया कि साधु को वैसा सचित्त आहार अकल्पनीय है, इसलिये मैं प्राणांत में भी वैसा आहार नहीं करूंगा उस साधु की ऐसी दृढता देखकर देवने वैक्रेय से श्रावक श्राविका का संघ बनाया और आहारादिक का आमंत्रण किया, परंतु उसे भी देव कृत्य जानकर ग्रहण किया नहीं तत्पश्चात् आस पास में ग्राम नगरादि बसाये और आहार की निमंत्रणा की परंतु उन में से भी आहार लिया नहीं इस से देवताने प्रसन्न होकर जहां उन का साधु समुदाय था वहां उस साधु को पहोंचा दिया और उन के गुरु को देवताने की हुई सब हकीकत कह सुनाइ गुरु खुश हो गये और उन की बहुत प्रशंसा की उस पुत्र साधुने भी शुद्ध संयम का पालन कर आत्म कल्याण किया इस तरह अन्य साधु को भी क्षुधा परिषह सहन

हरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेहमे ॥ १ ॥ दिगिंच्छापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं॥ नछिंदे नछिंदावए, नपए न पयावए ॥ २ ॥ कालीपव्वं सकासे, किसेधमणि सतते ॥ मायन्ने असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥ ३ ॥ तओ पुट्ठो पिवासाए,

बाइस परिषह प्रसंग २ कहे हैं उन का ही कथन में दृष्टांत सहित अनुक्रम से कहता हुं सो तू श्रवण कर ॥ १ ॥ सब परिषह में क्षुधा परिषह सहन करना दुष्कर है इसलिये प्रथम इसका कथन करते हैं-संयम व तप में जिन का आत्मा बलवान है वैसा तपस्वी साधु को क्षुधा व्याप्त हो जाव और अविध निर्दोष आहार का योग बने नहीं तो सचित वस्तु फलादि का स्वयं छेदन करे नहीं अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करने वाले को अच्छा भी जाने नहीं वैसे ही स्वय अशनादि पकावे नहीं अन्य से पकवावे नहीं पकाते को अच्छा जाने नहीं ॥ २ ॥ काक पक्षी की जंघा समान जिस का शरीर दुबल होगया होवे रक्त मांस सूक गये होवे और मात्र नसा जाल रही होवे वैसा तपस्वी अशन पान की मात्रा प्रमाण का जान बना हुवा अदीन पना से विचरे अर्थात् आहार बिना शरीर इतना शुष्क होजावे तो भी दीनता धारन करे नहीं ॥ ३ ॥ क्षुधा परिषह पर हस्तीमित्र श्रेठ की कथा कहते हैं-उज्जयनी नगरी में हस्तिमित्र नामक कोई श्रेष्टि रहता था किसी कारण वशात् पिता पुत्र वैरागी बनकर दीक्षा अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुवे कोई अटवी में पहुंचे वृद्धावस्था के कारण से हस्ति

विरयं लूह सीय फुमइ एगया ॥ नाइवलं मुणी गच्छे, सोच्चाण जिनसासण ॥ ६ ॥

पडा देख कर सोचा कि और कोई नहीं देखते हैं; परतु अनंतज्ञानी तो देख रहे हैं यह असंख्य जीवों का पिंड मेरे एक जीव की रक्षा के लिये नाश करना, तैसे ही महा पुण्योदय के प्राप्त अनंत भव निध्वंसक संयम का एक भव के क्षणिक सुख के लिये नाश करना मुझे उचित नहीं है इस विचार से लिया हुआ पानी यत्ना पूर्वक नीचा रख दिया फिर वहां से उठते हुए चक्कर आया और मूर्च्छित होकर नीचे गिरगया वहां से वह आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में देवता हुआ वहां अवधि ज्ञान से अपना पीछे का भव देखा, और पिता साधु का मनोगत हुए भाव जाना इस पाप की निवृत्ति कराने के लिये वह देव अपने कलेवर में प्रवेश कर जहां आचार्य और पिता साधु थे वहां आया और आचार्य को वंदनानमस्कार किया, परतु पिता साधु को वंदना नमस्कार किया नहीं आचार्य के पूछने पर वह देव बोला कि-अहो भगवन्! सचित्त पानी भोगवाने का इन्होंने मुझ मन से आदेश किया था, यों अथ इति सब कथन कह सुनाया और पिता साधु को प्रायश्चित्त दिलाकर शुद्ध किया स्वय वहां से देवलोक में चला गया यह तृषा परिषह सहन करने पर धनमित्र साधु की बारहवी कथा हुई ॥ १२ ॥ ✽

क्षुधा तृषा से रहित निर्बल शरीरवाले को शीत विशेष होवे, इस से तीसरा शीत परिषह कहते हैं जो अग्नि आदि के आरंभ से निवर्ते हैं जिन का शरीर तपादिक से रूक्ष बना है अथवा तैलादिक विलेपन रहित रूक्ष है वैसे ग्रामानुग्राम विचरते हुए साधु को कदाचित् शीत का परिषह होवे तो वह साधु जिन भगवान की आज्ञा श्रवण कर क्रिया काल का उल्लंघन करे नहीं परंतु कालोकाल क्रिया

दोगुंछालज्जसंजए ॥ सीओदग न सेविज्जा, वियडस्सेसण चरे ॥ ४ ॥ छिन्नावएसु पथेसु, आउरेसु विवासिए॥ परिसुक्क मुहे दीणे, त तितिक्खे परिसहे ॥ ५ ॥ चरत

करना चाहिये पर प्रथम क्षुधा परिषह पर हस्ति मित्र साधु की इग्यारवी कथा पूर्ण हुई ॥ ११ ॥ ❁ ❁ आहार करने से तृषा होती है इसलिये दूसरा तृषा परिषह का कथन करते है—अनाचार की दुगंछा करनेवाला और संयम की लज्जावाला संयति को तृषा की परिषह होवे तो सचित्त ठंडा पानी पीवे नहीं परन्तु निर्दोष अचित्त पानी की गवेषणा करता हुवा विचरे ॥ ४ ॥ जिस मार्ग में कोई भी मनुष्य नहीं आवे जावे वसे मार्ग में तृषा से आकुल व्याकुल बना हुवा और जिस का मुख सूक गया है वैसा साधु दीनपना रहित तृषा परिषह सम्यक् प्रकार से सहन करे परंतु सचित्त पानी का सेवन करे नहीं ॥ ५ ॥ इस परिषह पर धनमित्र साधु की कथा कहते हैं। किसी आचार्य के पास पिता पुत्रने दीक्षा ली थे ऊष्ण काल में विहार करते हुवे तृषातुर हो गये पुत्र साधु का शरीर कोमल होने से वह बहुत घबराया आगे चलते हुए कोइ जलाशय दृष्टिगत हुवा, तब पिता साधुने विचार किया कि मेरी लज्जा से यह पानी नहीं पीवेगा इसलिये जल्दी २ पांव उठाकर आगे चलेगये पुत्र साधु पीछे से आ रहे थे उनोंने जलाशय देखकर पानी पीने का विचार किया, और चारों तरफ देखते कोइ दिखा नहीं इस से उस जलाशय में जाकर उस में से पानी की अंजली भरकर पीने का विचार किया जिनने में उस पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब

परिवेत्रए ॥ ८ ॥ उण्हाहि तत्तो मेहावी, सिणाण नो वि पत्थए ॥ गायं नो परिसिं
चेज्जा, न वीएज्जाय अप्पयं ॥ ९ ॥ पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरेव महामुणी ॥ नागो

मेघ धोरह से, अभ्यतर तृषा से पीडित बना हुवा साधु वृष्टि वायु से साता होवे वैसा इच्छे नहीं ॥ ८ ॥ ऊष्ण ताप से पीडित बना हुवा साधु स्नान की भी प्रार्थना करे नहीं, पानी से गात्र का सिंचन मात्र भी करे नहीं, वैसे ही वींजने से हवा भी करे नहीं ॥९॥ इस ऊष्ण परिषह पर अरणक मुनि की कथा कहते हैं-तगरा नगरी के दत्त साहुकारने अपनी भद्रा भार्या और अरणिक पुत्र के साथ दीक्षा अंगीकार की दत्त साधु वृद्धावस्था के कारन से आप ज्ञानाभ्यास कर सके नहीं, परतु अपने पुत्र साधु को ज्ञानाभ्यास में लगाया और आप उस की वैय्यावृत्य करने लगा अब वह पिता साधु उस के लिये आहार वस्त्र पात्र वगैरह जो चाहिये सो लाकर देता था कालान्तर में वह पिता साधु काल के अवसर में काल कर देवलोक में गया अब अरणिक मुनि को ही भिक्षा करने के लिये जाना पडा भीक्षार्थ भ्रमण करते हुए ताप से पीडित हो आकुल व्याकुल बन कर एक गृहस्थ के प्रासाद की छाया में खडे रहे उस समय उसही प्रासाद में रहनेवाली विरहिनी स्त्रीने अपने गवाक्ष में खडे हुवे साधु को देखे और दासी को बोलाने के लिये भेज दी अरणिक साधुने भिक्षा के लिये उस के घर में प्रवेश किया वहां उस स्त्रीने अनेक हाव भाव कटाक्ष से उस साधु को मोहित कर अपना तन मन व धन अर्पन कर दिया अरणिक साधु ऐसे भोगोंमें लुब्ध बन वहां रहने लगे उनकी माता साध्वी को अरणिक मुनि का का पता नहीं लगने से मोह से भ्रमित बन ढुंढने के लिये निकली और अरनक !

नमेनिवारं अत्थि, छविताण न विज्जइ ॥ अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए ॥ ७ ॥ उसिण परियावेण, परिदाहेण तज्जिए ॥ घिंसु वा परियावेण, सायं नो परिदेवए ॥ ८ ॥ शीत का निवारण करने के लिये मुझे घर नहीं है, वस्त्र भी पूरे नहीं है इस से मैं अग्नि का सेवन करूं, ऐसी चिंतवना मात्र भी साधु करे नहीं ॥ ७ ॥ इस पर भद्रबाहु आचार्य के चार शिष्यों का दृष्टांत कहते हैं—राजगृही नगरीमें चार वणिक थे कि जिनों भद्रबाहु आचार्य के पास दीक्षा अंगीकार कर ज्ञानाभ्यास करते व ग्रामानुग्राम विचरते पुनः राजगृही नगरी में आये इन चारों साधुओं में से एक वैभारगिरी पर्वत पर, दूसरा पर्वत के नीचे, तीसरा राजगृही के पंथ में वृक्ष के नीचे, और चौथा राज गृह नगरी के द्वार के पास दिन अस्त होने से रात्रि के चार प्रहर पर्यंत ध्यान करके स्थिर रहे रात्रि में अत्यंत शीत पडने से पर्वत पर का साधु प्रथम प्रहर में, पर्वत के नीचे का साधु दूसरे प्रहर में, राजगृही नगरी के पथ का साधु तीसरे प्रहर में और द्वार के पास का साधु चतुर्थ प्रहर में यों चारों साधु शीत परिषह को समभाव से सहन करते हुए आयुष्य पूर्ण होने से काल कर देवलोक में देवता हुए यह शीत परिषह पर भद्रबाहु आचार्य के चार शिष्यों की तेरवी कथा हुइ ॥ १३ ॥

* *

शीतकाल पीछे उष्ण काल आवे इस से चौथा उष्ण परिषह कहते हैं—ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) अथवा शरद ऋतु (आश्विन कार्तिक) इन में उष्ण भूमि आदि के आताप से और बाह्य पसीना

उवेह न हणे पाणे, भुंजते मससोणियं ॥ ११ ॥ परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खा

मिचि अचेलए ॥ अदुवा सचेलए होक्खं, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ १२ ॥ एगया

प्राणियों मांस व रुधिर खाते होवे तो भी उन प्राणियों को त्रास देवे नहीं वैसे ही उन को अलग भी करे नहीं किंबहुना उन पर मन से भी द्वेष करे नहीं, परंतु उन की उपेक्षा [दया]करे, किसी प्रकार से उन जीवों को अन्तराय करे नहीं॥११॥दंसमशक परिषह पर श्रमणभद्र कुमार की कथा कहते हैं चंपा नगरी के जितशत्रु राजा के श्रमणभद्र कुमारने दीक्षा अंगीकार करके ज्ञानाभ्यास किया अन्यदा वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके रहे वहां वृक्ष पर मधुका छत्ता था इस में से किसी प्रयोग से भरत मुनि के शरीर पर पडा जिस से मधुमक्षिका उस शहद लेने के लिये मुनि को दंश देने लगी मधु मक्षिकाओंने सब शरीर छिद्रमय बना दिया, तो भी वे चले नहीं, अत्यंत उज्वल नरक जैसी वेदना समभाव से सहन की उस समय नरक तिर्यंचादि दुःखोंका विचार कर अपने परिणाम की विशुद्ध धारा पूर्वक समाधि मरण मरकर देवलोक में गये यों श्रमणभद्र साधु समान सब साधुओं को दंश मशक का परिषह सहन करना यह श्रमणभद्र की पनरहवी कथा संपूर्ण हुई ॥१५॥

दंशक मशक की बाधा निवारने के लिये वस्त्र की जरूर होवे इस से छठा वस्त्र परिषह कहते हैं, वस्त्र जीर्ण होजाने से मैं वस्त्र रहित हो जाऊंगा तब मैं क्या करूंगा यों खेदित होवे नहीं वैसे ही किसी से याचना करते वस्त्र प्राप्त होजावे तो हर्षित भी होवे नहीं यों दोनो प्रकार का चिन्तवन साधु करे

सगाम सीसेवा, सूरो अभिहम्मे पर ॥ १० ॥ न सतसे न वारेज्जा, मणसि न पओसए॥

अरनक ' यों पुकारती फिरने लगी एकदा यह साध्वी माता इस तरह पुकारती हुइ उस ही प्रासाद नीचे से जा रही थी सो अरनकने देखी यह माता को देख लज्जित हुआ महेल से नीचे उतरकर साध्वी माताके पांव वंदन किया माता बोली अहो पुत्र ! चिंतामनी समान संयमव्रत का नाश कर तैंने यह अनर्थ किया तब अरनकने उत्तर दिया कि-मातु श्री ! संयम की दुष्कर क्रिया मेरे से नहीं पलती है, परंतु आज्ञा होवे तो जिस ऊष्ण परिषह से मैं भ्रष्ट हुआ हु उस ही ऊष्ण परिषह से मैं मेरे आत्मा का सुधारा करलू माताने कहा-आत्म कल्याण करना ही श्रेष्ठ है ऐसा सुन कर अरनकने सूर्य के ताप से अत्यंत तप्त बनी हुइ पत्थरकी शिला पर अपना शरीर डाल दिया और आहार व शरीर का त्याग कर संथारा किया जैसे अग्नि के ताप से मक्खन पीगलता है वैसे ही उन अरनक साधु का शरीर पिगल गया और आप समाधि भाव में लीन बने कर्म क्षय कर तत्काल स्वर्ग गये यह अरणक मुनि की चौदवी कथा संपूर्ण हुई ॥१४॥

ऊष्ण काल पीछे चतुर्मास आवे और चतुमास में जीवादिक की उत्पत्ति होने से पांचवा दंशमशक का परिषह होने सा कहते हैं जैसे संग्राम के अग्र भाग में रहा हुवा शूरवीर हाथी भाला आदि शस्त्र के बहुत प्रहार होने पर भी शत्रु की घात करता है वैसे ही दंशमशक परिषह से स्पर्शाया हुवा महा मुनि परिषह को जीतता है अर्थात् दंशमशक का परिषह प्राप्त होने पर समभाव से रहता है ॥ १० ॥ दंशमशकादि छद्र

साधु हुआ अग्यारह अंग पढाये और पूर्व की विद्या पढाने के लिये वज्रस्वामी के पास भेजा उस रात्रि को वज्रस्वामी को स्वप्न आया कि किसी दीक्षितने दुध पीके २ छोड दिया प्रात:काल में आर्यरक्षित मुनि मीले और सब वृत्तांत कह सुनाया वार्तालाप होने से उसे योग्य जान पूर्वों का अभ्यास शरू करवाया अभ्यास करते २ नव पूर्व का अभ्यास पूर्ण किया और दशवा पू। पढते गुरुजी से पूछा कि अब और कितना पढना बाकी है ! गुरुजीने उसे थका जान पढाना बंध कर दिया योग्य जानकर आचार्य पद पर स्थापन किये वे वहां से विहार कर दशपुर नगर आये, वहां प्रतिबोध देकर माता को और फल्गु रक्षित दो भाइयों को दीक्षा दी सोमदेव लज्जा से साधु का लिंग नहीं धार सके परंतु आचार्य सथ फीरते रहे लोग आचार्यादि सब साधुओं को वंदना करे परंतु सोमदेव को वंदना करे नहीं सोमदेव के पुछने पर लोग ऐसा ही उत्तर देते थे कि हम साधु को वंदन करते हैं तुम दंड कमंडल धारी हो ऐसा सुनकर सोमदेवने दंड कमंडल छोड दिये परंतु धोती का त्याग किया नहीं आचार्यने उन के आत्मा का उद्धार के लिये श्रावक के बालकों को सीखला कर सोमदेव की धोती रस्ते चलते हुवे छिनवाइ वहां एक गृहस्थने सोमदेव को चोलपट्टा दिया उस पहनकर आचार्य के पास आवे और बालकों की निंदा करने लगे जब कोइ श्रावक बोला कि क्या धोती लादेऊं ? उनोंने कहा कि अब लज्जा तो गइ धोती से क्या काम है अब तो ऐसा ही वस्त्र पहिनूंगा तब से सोमदेव प्रमाणोपेत वस्त्र धारी बने और आचार्यने उन को दीक्षा दी वे चारित्र

अचेलए होइ, सचेले आवि एगया ॥ एयं धम्मं हियं णच्चा, नाणी नो परिदेवए ॥

नहीं ॥ १२ ॥ कदापि जिनकल्पी की आपेक्षा वस्त्र रहित भी होजाऊं और स्थविर कल्पी की अपेक्षा कदापि वस्त्र सहित भी होजाऊं तो भी वस्त्र सहित अथवा रहित यों दोनों प्रकार के धर्म को हितकारी मानकर साधु खेदित होवे नहीं ॥ १३ ॥ इस अचेल परिषह पर आर्यरक्षित कुमार की कथा कहते हैं—दशपुर नगर का सोमदेव पुरोहित का पुत्र आर्य रक्षित परदेश से चवदह विद्या का अभ्यास कर आया उसे राजा आदिने बहुत धूमधाम से नगर में प्रवेश कराया वह अपने पिता के चरणारविंद में पडकर जैनधर्मावलम्बिनी माता के पास गया परंतु माता का मुख कमल आनंदित देखा नहीं, तब उसने माता से कारन पुछा माताने कहा कि कदापि तू चौदह विद्याका निधान बन आया है परंतु यह चौदह विद्या तेरा आत्मकल्याण नहीं करसकती हैं कल्याण मात्र धर्म से ही होता है तब पुत्रने माता से पुछा कि धर्म का अभ्यास मुझे कौन करावे ? माताने कहा कि—तोसली पुत्र आचार्य कि जो तेरे संसार के मामा होते, उन के पास जा वेही धर्मज्ञान पढा सकेंगे यह माताकी आज्ञा प्रमाण कर घर से निकलते ही इक्षु के नव अखंड सांठे ले जाते हुए का शकुन हुआ तब माताने कहा कि हे पुत्र ! तू नव पूर्व का अभ्यास करेगा तब वह आर्यरक्षित तोतलीआचार्य के पास आया, और वंदना नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा तब आचार्य ने कहा कि जो संसार त्यागी होते हैं उन को ही हम ऐसी विद्या का अभ्यास करा सकते हैं यों सुनकर वह आर्यरक्षित विद्याभ्यास करने के लिये

पुत्र की स्थिति सुनकर राजा क्रोधित हो कर साधु के पास आया, परंतु अपने भाई को ही साधु देखकर लज्जित हुआ कि-राम पुत्र की यह क्या अवस्था की? साधुने उत्तर दिया कि-तुम्हारे ग्राम में किसी साधु को नहीं रहने देना यह कितना अनर्थ है? अब तेरा पुत्र दीक्षा लेवे तो अच्छा होवे राजाने उन की आज्ञा प्रमाण की और वे दोनों पुत्र अच्छे हो गये दोनों न डर से दीक्षा ले राजकुमार शुद्ध संयम पालने लगा परंतु पुरोहित पुत्र जाति अभिमान से द्वेष सहित दीक्षा पालता था दोनों आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए महा विदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी के दर्शनार्थ वे दोनों गये और पूछा कि-अहो भगवन्! हम सुलभ बोधि हैं या दुर्लभबोधि हैं? भगवानने राजपुत्र को सुलभ बोधि कहा और पुरोहित पुत्र को दुर्लभ बोधि कहा पुरोहित पुत्रने पुनः प्रश्न किया कि अहो भगवन्! मैं यहां से चवकर कहां जाऊंगा भगवानने उत्तर दिया कि-कौशाम्बी नगरी में मूकसेठ का तू भाई होगा अहो भगवन्! मूकसेठ कौन है? भगवान बोले कि कौशाम्बी नगरी में श्री नामक सेठ अपने वारस में एक पुत्र छोड़कर मर कर वह मेंढसूर हुआ, उसे किसी प्रयोग से उस के पुत्रने मार डाला वह वहां से मरकर सर्प हुआ, वहां भी उस को पुत्रने मारा, और वहां से उस के पुत्र के वहां ही पुत्रपने उत्पन्न हुआ वहां जातिस्मरण ज्ञान से अपना पूर्व भव जाना और विचार हुआ कि-मैं बेटे को बाप कैसे कहूं? पुत्र वधू को माता कैसे कहूं? यों विचार वह मौन रहता था इस से उस का नाम मूक रखा वहां चार ज्ञान के धारक साधु आये और कहा कि—तू पहिले भूंडसूर पीछे सर्प और वहां से पुत्र के पुत्रपने उत्पन्न हुआ है

॥ १२ ॥ गामाणुगाम रीयत, अणगार अकिंचणं ॥ अरई अणुप्पवेसेज्जा, त तितिक्खे परिसह ॥ १४ ॥ अरई पिट्ठओ किच्चा विरए आयरक्खिए ॥ धम्मारामे निरारभे, उवसंते मुणी चरे ॥ १५ ॥ सगो एस मणुस्साण, जाओ लोगम्मि इत्थिओ

पामकर देवलोक में गये जैसे सोमदत्तने अचेल परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को अचेल परिषह सहन करना यह अचेल परिषह पर आर्यरक्षित कुमार की सोलहवी कथा हुई ॥ १६ ॥

वस्त्र नहीं मीलने से चिंता होवे इस से सातवा अरति परिषह कहते हैं—परिग्रह से रहित साधु को ग्रामानुग्राम विचरते हुए अरति होवे तो उस अरति परिषह को सहन करे ॥ १४ ॥ आत्मा की रक्षा करनेवाला विरतिवन्त व उपशांत मुनि अरति को दूर करके आरंभ रहित धर्म रूप बगीचे में विचरे ॥१ ॥ अचल पूरी नगरी के मित्रप्रभु राजा का पुत्र सागर चन्द्र और पुरोहित पुत्र इन दोनोंने राधाचार्य के पास दीक्षा अंगीकार की फिर शास्त्राभ्यास कर के उज्जयनी गये वहां सुना कि यहां का राजपुत्र और पुरोहित पुत्र ग्राम में साधुओं को नहीं रहने देते हैं, इस से लोगों को मना करने पर भी दोनों पुत्र को प्रतिबोध देने गये राजपुत्र साधु को देखकर बोला कि क्या तुम नृत्य करोगे ? साधु ने कहा कि वार्दित्र बजाओगे ? यों सुनकर दोनों पुत्र साधु को मारने आये, परंतु साधु के तप बल से रक्त का वमन करते हुए मूर्च्छित हो पड गये साधु वहां से स्वस्थान आ गये ऐसी अपने

- जस्स एया परिन्नाया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥ १६ ॥ एयमादाय मेहावी, पंक भूयाओ इत्थिओ ॥ नो ताहिं विणिहन्निज्जा, चरेज्जत्तगवेसए ॥१७॥एग एव चर लाढे

को समझाने के लिये देवता उस के सामने सूके घास का भारा लेकर आग में प्रवेश करने लगा तब दुर्लभ बोधि बोला,—रे मूर्ख ! घास का भारा ले कर जाज्वल्यमान आग में क्यों मरने को जाता है ? देवता बोला हां भा ! मैं एक ही बार जलकर मरूंगा परंतु तुम तो संसार रूप प्रज्वलित आग में जाते हो जिस से तुम को अनंत वक्त मरना पडेगा, साधु मौन रहा आगे देवता पथिक का रूप बनाकर कांटे वाली मार्ग में खुले पांव से चलने लगा उसे देख साधु बोले रे मूर्ख ! अच्छा मार्ग छोडकर कांटे में क्यों चलता है ? देवता बोला कि यह कांटे तो निकल जायेंगे परंतु तू संयम मार्ग छोडकर कंटक रूप संसार मार्ग में क्यों जाता है ऐसा सुनकर वह चमक गया और पूछा कि तू कौन है? देवताने कहा कि-मैं मूक श्रावक हूं यों अथ इति सब वृत्तांत सुनाया—तब वह दुर्लभ बोधि मिटकर सुलभबोधि हुआ और शुद्ध मन से संयम ग्रहण कर शुद्ध संयम पालकर देवता हुआ ऐसा सुनकर अन्य साधुओं को अरति परिषह समभाव से सहन करना चाहिये यह अरति परिषह पर सम्बन्धी कथा हुई ॥ १७ ॥

भिक्षा जाने से स्त्री का स्मरण होवे इस से अब आठवा स्त्री परिषह कहते हैं—लोक में मनुष्यों को स्त्रियों का संग कर्म बंध करनेवाला है ऐसा जानकर जो स्त्री को त्याग करते हैं उस का ही साधुपना अच्छा है पंडित पुरुष कीचड समान स्त्रियों को जानकर उन से संयम की घात करे नहीं, परंतु आत्मगुण गवेषक होता हुआ विचरे ॥ १६ १७ ॥ स्त्री परिषह पर स्थूलीभद्र मुनि की कथा कहते हैं—

अब तू समज और जिन प्रणीत धर्म अंगीकार कर उस समय उस मूक ने श्रावक पना धारन किया और धर्म ध्यान करने लगा इ देव तू उस का भाइ होगा अब वह देवता भगवान को नमस्कार कर मूकसेठ के पास आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारी माता को स्वप्न में आम्र वृक्ष बताकर पुत्र पने उत्पन्न होउंगा तुम मुझे धर्मोपदेश करना मूक श्रावकने इस बात का स्वीकार किया अब वह देवता वहां से चवकर वहां मूक श्रावक के भाइपने उत्पन्न हुवा वह उस को धर्म का उपदेश सुनाने तब रोने लगे, साधुजी महाराज के पास भी जावे नहीं, पूर्व जन्मकी बात कह बतावे तो भी समझे नहीं यों कितनेक उपाय करते हुए भी उसे धर्म की रुचि हुई नहीं अब कितनेक दिन पीछे मूक श्रावक मर कर देवता हुवा ज्ञान से अपने भाइ को देखकर समझाने आया परंतु वह समझा नहीं तब उस को जलोदरका रोगी बना दिया और आप वैद्यका स्वांग बना कर आया उसने वैद्य से अपना रोग दूर करने का भत्या बर किया वैद्यने कहा कि तू मेरा नौकर बन तो मैं तेरा रोग दूर करूं उसने यह स्वीकार किया उस का रोग दूर करके अपनी औषधि की थैली बहुत वजनदार बना कर उस के सिर पर देकर चला जिस से वह घबराने लगा साधु को देख देवता बोला जो तू साधु होवे तो तुझे छोड दूं! उस ने मन नहीं होने पर भी दुःखसे छुटने को साधु होना कबूल किया उसे साधु बनाकर देवता स्वस्थान गया वह दुर्लभबोधी संयम छोडकर घर भग गया देवताने फीर जलोदरका रोग उस के शरीरमें डालदिया यों वह तीन वक्त भगगया, और देवताने उसे साधु बनाया इस तरह भी धर्म में स्थिर नहीं रहने से उस

यह पाखंड है गुप्त रीति से तपास करते प्रधान को उस का भेद मालूम हो गया और थेली पानी से गुप्तपने निकस्वा ली फिर राजा और प्रधान दोनों वहां गये ब्राह्मणने स्तुति पूर्ण होने पर पटिया बहुत ही दबाया परंतु थेली बाहिर आई नहीं जिस से बडा शरमिंदा हो गया राजा प्रधान दोनों घर आ गये अब उस ब्राह्मण का अपमान होने से प्रधान को मारने का उपाय करने लगा प्रधान के छोटे पुत्र श्रिये के लग्नोत्सव में राजाजी को नजराणा करने के लिये राजा के आभूषण व शस्त्रादि बनवाते थे इस बात की वररुचि पंडित को मालूम हुई जिस से गांव के बालकों को एक दुहा बनाकर सिखलाया कि-दुहा नंदराय नवी जाने ही जो शकडाल करेश॥ नंदराय मारी करी,श्रीयो राजठवेश ॥१॥ राजाने बालकों के पास से सुनकर प्रधान के घर में गुप्तपने तपास कराई तो मालुम हुआ कि प्रधान के वहां भी छत्र, चामर, व शस्त्र बनवा रहे हैं यह सुनकर राजा कोपातुर हो गया प्रधान राजा के पास आया तब राजाने मुख फिरा लिया प्रधान अपने घर गया और पुत्र से कहा कि राजा मेरे से रुष्ट हो गये हैं इस से सब कुल का नाश करदेंगे इसलिये राजसभा में राजा के सन्मुख तू मुझे खड्ग से मार डाल अब प्रधान पुत्र के साथ राजा को पुन नमन करने गया परंतु राजाने सामने देखा नहीं तब श्रियाने उस को खड्ग से मार डाला राजा हाहा कर कहने लगा कि—यह क्या ? श्रिया बोला कि जिस पर स्वामी कोपित हो गये हैं उस का ऐसा ही हाल करना चाहिये राजा,

पाटली पुर नगर के नंद राजा का शकडाल प्रधान के स्थूलिभद्र और श्रिया नामक दो पुत्र और सेना प्रमुख सात पुत्रियों थी बडे पुत्र को कोश्या नामक वेश्या के यहां विद्याभ्यास करने को बैठाया वह उस के भोगों में लुब्ध बनकर वहां ही रहने लगा सातों पुत्रियों महा विदुषी थी इन में से पहिली एक बार श्रवण करने से, दूसरी दो बार श्रवण करने से, यावत् सातवी सात बार श्रवण करनेसे कोई भी ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लेती थी वहां रुचि नामक परदेशी ब्राह्मण नित्य १०८ नविन श्लोक राजा को सुनाया करता था जिस से राजा सन्तुष्ट हो सदैव १०८ सुवर्णमहोर उस को दिया करता था प्रधानने विचार किया कि इस तरह देने से राजाका भंडार खाली हो जायगा इस से यह बंध करना ऐसा विचार कर राजा से बोला कि यह ब्राह्मण नविन श्लोकों का ढोंग कर आप को प्राचीन श्लोक सुनाता है राजाने कहा कि तुम कैसे मालूम ? प्रधानने कहा कि मेरी पुत्रियों को ये श्लोक कंठाग्र आते हैं सातों पुत्रियोंको राजसभा में लाया, ब्राह्मण जो श्लोक बोला उस पहिली पुत्रीने एक बार सुनकर सब बोल दिया फिर दूसरी यों सातों पुत्रियोंने सब श्लोक सुना दिये तब वह ब्राह्मण खेदित होकर चला गया अब वह ब्राह्मण गंगा नदी की रेती में एक पटिया डालकर उसके किनारेपर खडा रहता और दूसरे किनारे पर गंगा नदी में १०८ सुवर्ण महोरों की थेली रखकर गंगा की स्तुति करता था स्तुति पूर्ण हुए पीछे पांव से पटिया दबाने से दूसरे किनारे पर रही हुई सुवर्ण महोरों की थेली उछलती थी वह हाथ में झेलकर लोगों को कहता था कि

(औ)र चतुर्मास करने की आज्ञा मांगी तब चौथे स्थूलिभद्रने कोश्या वेश्या के यहां चौमासा करने की आज्ञा मांगी गुरुजीने चारों को सुख होवे वैसे करो—यों चौमासा करने की आज्ञा दी चारों इच्छित स्थान गये स्थूलि भद्र को आते हुए देख कर कोश्या खुश होगइ, साधुने चौमासा रहने के लिये स्थान मांगा, तब वेश्याने कहा कि आप का देह और गेह हैं! यों कह कर स्थूलि भद्र के पास आइ, स्थूलि भद्रने कहा मैं साधु हूं मेरे से दूर खडी रह कर बोलना कोशा वेश्याने विचार किया कि यह थोडी देर का वैराग्य है इसे पीछे से वश में करलूंगी यों विचार कर कहने लगी की जैसी आप की इच्छा अब स्थूलि भद्र चित्रशाला में चतुर्मास रहे वह कोशावेश्या सदैव अनेक हाव भाव व कटाक्ष से उन को चलित कर परंतु स्थूलिभद्र चलायमान हाये नहीं और उपदेश देवे यों उपदेश देकर वश्या को श्राविका बनाइ बारह व्रत धारन कराये, राजा आज्ञा कर किसी पुरुष को भेज उस का आगार और अन्य सब पुरुषसे भोगका त्याग किया चोमासा पूर्ण हुए पीछे चारों साधु गुरुजी के पास आये, गुरुजीने तीन साधुओं का दुष्कर करनी करने वाले कहे परन्तु स्थूलिभद्र को महा दुष्कर करनी करने वाले कहे इस से तीनों को ईर्षा हुई और परस्पर कहने लगे कि काष्ट जैसा शरीर बनाकर आये हैं तब दुष्कर कहा और यह स्थूलिभद्र वेश्या की चित्र शाला में मनोरम षडरस के भोजन खाकर पुष्ट शरीर बना आया, उस को महा दुष्कर कहा गुरुजी भी प्रधान पुत्र का पक्ष रखते हैं तब गुरुजीने कहा कि वहां रागवती वेश्या और नित्य षड रस के भोजन सदा विषय स्थान में रहना, और मनोहर शरीर की धारक ये या की संगत ऐसा होने पर, स्थूलिभद्र

सुनकर मूर्छा हुआ, और उस के पिता का पद उस को ही देने लगा तो उसने कहा कि मेरा बडा भाइ स्थुलिभद्र है उस को दो स्थुलिभद्र को कोशा वेश्या के यहां से बोलाया और प्रधान पद का कहा उसने विचार किया कि जैसे पिता का हाल हुवा वैसा ही मेरा हाल होगा यदि मैं इस बात का स्वीकार करु नहीं तो पश्चात्कार से मुझे उस पद पर नियत करेंगे इस से बचने का यही उपाय है कि दीक्षा लेना ऐसा विचार कर साधु का वेष पहिन कर राजा के पास आया राजा बोले कि यह क्या किया। स्थुलिभद्रने उत्तर दिया कि आत्मा तारने का यह मार्ग है राजा बोले अच्छा है परंतु जैसा लिया वैसा ही पार पहुंचाना स्थूलिभद्र संभूति आचार्य के पास दीक्षा लेकर नव पूर्व का ज्ञान पढे कोशा वेश्या स्थूलिभद्र के दीक्षा का समाचार सुनकर उदास हो गई उस से श्रिया से स्थूलिभद्र की दीक्षा का कारन पूछा श्रियाने सब कथन कह सुनाया और वररुचि पंडित को मारने का उपाय किया वेश्याने उस वररुचि पंडित को अपने वश में कर मदिरा पान कराया और श्रियाने उसे राज्यसभा में पकड बोलाया औषधि देकर उस को वमन करवाया जिस से मदिरा निकली सब लोगोंने उस की दुर्गंछा की राजाने उस को भ्रष्टाचारी जानकर ऊष्ण ताम्बे का रस पिलाया वह मरकर दुर्गति में गया, यहां स्थूलिभद्र संभूति आचार्य के पास ज्ञानाभ्यास करते विचर रहे हैं उतने में चतुर्मास का काल नजदीक आया एक शिष्यने कुवे के बीच में रहा हुवा काष्ट पर कायोत्सर्ग से चातुर्मास व्यतीत करने की आज्ञा मांगी दूसरेने सिंह की गुफा में चतुर्मास पूर्ण करने की आज्ञा मांगी, तीसरेने सर्प की सिबिल

पर चतुमास करने की आज्ञा मांगी तब चौथे स्थुलिभद्रनें कोश्या वेश्या के यहा चौमासा करने की आज्ञा मगी गुरुजीने चारो को सुख होवे वैसे करो—यों चौमासा करने की आज्ञा दी चारों इच्छित स्थान गये स्थुलि भद्र को आते हुए देख कर कोश्या खुश होगइ, साधुने चौमासा रहने के लिये स्थान मांगा, तब वैश्याने कहा कि आप का देह और गेह है ! यों कह कर स्थुलि भद्र के पास आइ स्थुलि भद्रने कहा मैं सीधु हूं मेरे से दूर खडी रह कर बोलना कोशा वेश्याने विचार किया कि यह थोडी देर का वैराग्य है इसे पीछे से वश में करलूगी यों विचार कर कहने लगी की जैसी आप की इच्छा अब स्थुलि भद्र चित्रशाला में चतुर्मास रहे यह कोशावेश्या सदैव अनेक हाव भाव व कटाक्ष से उन को चलित कर परंतु स्थुलिभद्र चलायमान होवे नहीं और उपदेश देवे यों उपदेश देकर वेश्या को श्राविका बनाइ बारह व्रत धारन कराय, राजा आज्ञा कर किसी पुरुष को भेज उस का आगार और अन्य सब पुरुषसे भोगका त्याग किया चोमासा पूर्ण हुए पीछे चारों साधु गुरुजी के पास आये, गुरुजीने तीन साधुओं का दुष्कर करनी करने वाले कहे परन्तु स्थूलिभद्र को महा दुष्कर करनी करने वाले कहे इस से तीनों को ईर्षा हुई और परस्पर कहने लगे कि काहे देखा शरीर बनाकर आये हैं तब दुष्कर कहा और यह स्थूलिभद्र वेश्या की चित्र शाला में मनोरम षट्रस के भोजन खाकर पुष्ट शरीर बना आया उस को महा दुष्कर कहा गुरुजी तो प्रधान पुत्र का पक्ष रखते हैं तब गुरुजीने कहा कि वहां रागवती वेश्या और नित्य षट् रस के भोजन सदा विषय स्थान में रहना, और मनोहर शरीर की धारक थी या की संगति ऐसा होने पर, स्थूलिभद्र,

थे इस लिये सब ही महा दुष्कर करणी करनेवाले हैं तब सिंहगुफावासी साधु ने ईर्षा से दूसरा चौमासा आया तब वेश्या के वहां रहने की आज्ञा मांगी गुरु मौन रहे तब शिष्यने आज्ञा विना ही चलदिया अब वह कोशा वेश्या के यहां गया वेश्या उस मुनि को आते हुए देखकर समझ गइ कि यह स्थूलिभद्र की ईर्षा से आये हैं उन को अपनी चित्र शाला में रहने का स्थान दिया साधु उस का वैभव देखकर विषयाभिलाषी बनकर भोग की याचना करने लगा तब उसने कहा कि हम तो धन देनेवाले को स्वीकारती हैं साधुने कहा कि-हमारी पास धन नहीं है तू कहे वहां से ले आऊं. वेश्याने नेपाल देश का राजा रोगी साधु को रत्न कम्बल देता है वह ला दो ऐसा कहा ऐसा सुनकर चतुर्मास में अनेक जीवों की घात करता हुआ नेपाल देश में गया वहां से रत्न कम्बल ली और मार्ग में चोर वगैरह के महा संकट से बचकर वेश्या के यहां आया वेश्याने इसे मल मूत्र की मोरी में डाल दी साधुने कहा कि मैं बहुत परिश्रम से लाया हूं उसे तू खराब मोरी में क्यों डाल देती है? वेश्याने कहा कि-तुम्हारा वैसे ही कार्य है साधु बोले कैसे? वेश्याने कहा कि-रत्न कम्बल से अधिक मूल्यवाला यह संयम तुझे यह प्राप्त हुआ है इस को तैने मल मूत्र से भरा हुवा मेरा शरीर के लिये नष्ट कर दिया तुम को धिक्कार होवो ऐसे कार्य में स्थूलिभद्र जैसे मुनि ही समर्थ हैं तुम्हारे जैसे पामरों क्या कर सकते हैं ऐसा सुनकर साधु लज्जित हो गया और गुरु के पास आकर आलोचना कर पुनः संयम धारन किया जैसे स्थूलिभद्रने स्त्री परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को स्त्री परिषह सहन करना चाहिये यह स्थूलिभद्रजी की महारकी कथा संपूर्ण हुई ॥ २८ ॥

अभिभूय परिसहे ॥ गामे वा नगरे वावि, निगमेवा रायहाणिए ॥ १८ ॥ असमाणो

चरेभिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गह ॥ असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिकेओ परिव्वए ॥१९॥

स्त्री परिषह से बचने के लिये विहार करना चाहिये इस से नवमा चर्या परिषह कहते हैं—निर्दोष आहार से शरीर का निर्वाह करनेवाला, साधु चर्या परिषह जीतकर अकेला राग द्वेष रहित गाम, नगर, निगम व राज्यधानी में विचरे ॥ १८ ॥ वह साधु किसी गृहस्थ की नेश्राय नहीं रखता हुवा घर मनुष्यादिक में ममत्व रूप परिग्रह नहीं करता हुवा और गृहस्थ के साथ संसर्ग नहीं रखता हुवा घर रहित साधु नव कल्पी विहार करता हुवा विचरे ॥ १९ ॥ इस चर्या परिषह पर संगमाचार्य की कथा कहते हैं—श्रावस्ती नगरी में संगमाचार्य वृद्धावस्था के कारण जंघा बल क्षीण होने से स्थिरवास करके रहे एकदा वहां दुष्काल पडने से लोगों का मन संकुचित देखकर अपने शिष्यों को विहार करवाया और आप उस नगर के अलग २ पुरे में विचरने लगे अवसर देखकर गोचरी करते थे और आयंबिल एकाशन अवमोदर्यआदि तप करके बारह वर्ष व्यतीत किये आचार्य की ऐसी उत्कृष्ट क्रिया देखकर नगर रक्षक देव संतुष्ट हुवा एकदा एक दत्त नामक शिष्य वहां आया और गुरु को उस ही स्थान में देखकर द्वेष लाया कि यह तो आनंद में यहां ही बैठे हैं और हम को तो विहार करवाया इस प्रकार विचार करता ग्राम में भिक्षार्थ गया और एक श्रेष्ठि पुत्र की व्यंतर व्याधि दूर कर आहार

सुसाणे सुन्नगारेवा रुक्खमूले व एगओ ॥ अकुक्कुओ निसीएज्जा नय वित्तासए परं ॥ २० ॥ तत्थ से अच्छमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ॥ संकाभिओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अन्नमासणं ॥ २१ ॥ उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं ॥

गाथा आचार्य इस बात को जानकर पाले कि सदोष आहार की आलोचना निंदा कर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होवे तब विज्ञप्त करा कि आपने ऐसे दुष्काल में यहां एक स्थान रहकर कैसे निर्दोष आहार भोगवा होगा ! ऐसे सुनकर नगररक्षक देव उस शिष्य से कहने लगा कि अरे तुम तुम्हारा अपराध आचार्य पर डालते हो तुम तो एक दिन भी निर्मल संयम पालसके नहीं परन्तु आचार्यने जंघाबलक्षीण होते हुए भी विहार किया था और निर्दोष आहार पानी से आजीविका की थी यों सुन देव साधुने गुरु का अपराध खमाया और प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ यों संगमाचार्य की तरह सब साधु को यथा परिषह सहन करना चाहिये संगमाचार्य की उन्नीसवी कथा हुई ॥ १९ ॥ *

अब बैठने की इच्छा होवे जिस से भय दर्शक निषद्या बैठने का परिषह कहते हैं—विचरता हुआ साधु बैठने का प्रयोजन प्राप्त होने पर स्मशान शून्य गृह अथवा वृक्ष मूल में अकेला कुचेष्टा रहित बैठे और वहां बैठा हुआ अन्य किसी जीव को त्रास उत्पन्न करे नहीं ॥ २० ॥ वहां बैठते हुवे जो कोई देव दानव मानव का उपसर्ग आवे उसे सहन करे परंतु उपसर्ग से भयभीत बनकर अपने आसन से उठकर अन्य आसन पर जावे नहीं ॥ २१ ॥ इस निषद्या परिषह पर कुरुदत्त आचार्य की कथा कहते हैं हस्तिनापुर नगर में

मातिवेलं विहण्णेज्जा, पावदिट्ठी विहम्मइ ॥ २२ ॥ पइरिक्क वसयं लद्धुं, कल्लाणं अदुव पावगं ॥ किमेगराय करिस्सति, एवं तत्थ अहियासए ॥ २३ ॥ अक्केसेज्जा

कुरुदत्त व्यवहारियाने दीक्षा धारन कर विहार करते एकदा किसी ग्राम के बाहिर रात्रि के चार प्रहर पर्यंत अभिग्रह सहित कायोत्सग करके रहे उस दिन रात्रि को गांव में धन की चोरी करके चोर उस ही रास्ते से चले गये गांव के लोगोंने पीछे गये और मुनि को पूछने लगे तो कुच्छ भी उत्तर दिया नहीं तब गांव के लोग कुपित बनकर मुनि के मस्तक पर मिट्टि की पाली बांधकर उस में जाज्वल्यमान अग्नि डालदिया उस से मुनि को अत्यंत उज्वल वेदना प्रगट हुई और मुनि शुभ ध्यान सहित आयुष्य पूर्ण कर कर देवलोक में गये यों सब मुनियों को निषद्या परिषह सहन करना चाहिये यह कुरुदत्त आचार्य की बीसवी कथा हुइ ॥ २० ॥

विशेष काल रहने के लिये मकानादि होना चाहिये इस से अग्यारहवा शैय्या परिषह कहते हैं अच्छी अथवा खराब शैय्या-स्थानक प्राप्त होने पर तप में बलवान साधु स्वाध्यायादिक की मर्यादा का उल्लंघन करे नहीं और जो पाप दृष्टी होते हैं वे प्रमादि बन कर उल्लंघन करते हैं ॥ २२ ॥ अन्य के लिये बनाया हुवा शोभनिक अथवा अशोभनिक स्त्रियादि रहित स्थान प्राप्त करके वहां रहे और ऐसा विचार करे कि एक रात्रि यहां निकाल नेकी है तो इतने में मेरा क्या होने का है, यों विचार कर परिषह सहे ॥ २३ ॥

सुसाण सुन्नगारेवा रुक्खमूले व एगओ ॥ अकुक्कुओ निसीएज्जा नय वि त्तासए परं ॥ २० ॥ तत्थ से अच्छमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ॥ संकाभिओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अन्नमासणं ॥ २१ ॥ उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खू थामवं ॥

साता भावार्य इस बात को जानकर पाले कि सदोष आहार की आलोचना निंदा कर प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुए तब शिष्यने कहा कि आपने ऐसे दुष्काल में यहां एक स्थान रहकर कैसे निर्दोष आहार भोगवा होगा ? ऐसे सुनकर नगररक्षक देव उस शिष्य से कहने लगा कि अरे तुम तुम्हारा अपराध आचार्य पर डालते हो तुम तो एक दिन भी निर्मल संयम पालसके नहीं परंतु आचार्यने जंघाबलक्षीण होते हुए भी विहार किया था और निर्दोष आहार पानी से आजीविका की थी यों सुन दत्त साधुने गुरु का अपराध खमाया और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुआ यों संगमाचार्य की तरह सब साधु को चर्या परिषह सहन करना चाहिये संगमाचार्य की उन्नीसवी कथा हुई ॥ १० ॥

चलते हुए थक जावे बैठने की इच्छा होवे जिस से अब दशवा निषद्या बैठने का परिषह कहते हैं—विचरता हुआ साधु बैठन का प्रयोजन प्राप्त होने पर श्मशान शून्य गृह अथवा वृक्ष मूल में अकेला कुचेष्टा रहित बैठे और वहां बैठा हुआ अन्य किसी जीव को त्रास उत्पन्न करे नहीं ॥ २० ॥ वहां बैठा हुवे जो कोई देवदानव मानव का उपसर्ग आवे उस सहन करे परंतु उपसर्ग से भयभीत बनकर अपने आसन से उठकर अन्य आसन पर जावे नहीं ॥ २१ ॥ इस निषद्यापरिषह पर कुरुदत्त आचार्य की कथा कहते हैं हस्तिनापुर नगर में

उस की प्रतिमा को प्रधान पुष्पों से पूजा करता था फिर वहां से निकल कर ग्राम में पुष्पादि का विक्रय कर उसे अपनी आजीविका चलाता था उस ही राजगृही नगरी में छे मित्र पुरुष रहते थे वे राजा तरफ से निर्भय बने हुवे मदोन्मत्त बनकर एकदा उत्सव के लिये उस ही बगीचे में आये वहां उस मालन को देखकर वे विषयाभिलाषी पुरुष परस्पर कहने लगे कि इस मंदिर के कमाडों पीछे अपन छिपकर खडे रहे जब वह माली उस यक्ष को नमस्कार करने को आवे किन्तु तुरत ही उस को बांधकर उस की स्त्री से अपन भोग करेंगे, ऐसा कहकर वे वहां ही छिपगये, वह अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित वहां आया यक्ष की पूजा करके नमस्कार करने लगा, इतने में ही उन छ ही पुरुषोंने उस को मजबुत बांधकर गुडा दिया, और उस की स्त्री साथ व्याभिचार सेवन करने लगे तब माली क्रोधित हो कर बोला कि—मेरी कई पीढियों से यह यक्ष पूजित हो रहा है और मैं भी बाल्यावस्था से इस का पूजारी हूं अगरचेत इस में सत्यता होती तो इस के ही सन्मुख मेरी होती हुइ अपचेष्टा यह कदापि सहता नहीं इस से यह यक्ष नहीं है परंतु काष्ट का पूतला है वह माली ऐसा चिन्तवन कर रहा था, इतने में ही उस यक्षने उस के शरीर में प्रवेश कर तडातड बंधनो तोड कर एक हजार पल्य का मुद्गल उठाकर उस छे ही पुरुष और स्त्री को मार डाली फिर वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में रहा हुवा राजगृही नगरी के बाहिर फिरने लगा, और नित्य छ पुरुष व एक स्त्री यों सात को मारने लगा राजगृही नगरी के लोक बडे त्रास पाये और नगरिक

परे भिक्खू, न तेसिं पडिसजले॥सरिसोहोइ बालाण, तम्हा भिक्खूने सजचे ॥२४॥
सोच्चाण फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा ॥ तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ

इस पर सोमदत्त व सोमदेव की कथा कहते है—कौशाम्बी नगरी में मगदत्त ब्राह्मण के सोमदत्त व सोमदेव ये दोनों पुत्र थे आचार्य के पास दीक्षा लेकर ज्ञानाभ्यासकर सोमप्रभ आचार्य ने दृश्यनाथ उज्जयनी नगरी जाते मार्ग में किसीने ओसामन बहराया उस भोगवते हुए दोनो साधु व्याधिसे पीडित हुए उस ओसामन को विष मीश्रित जानकर एक नदी के किनारे किसी काष्ट के पाटपर अनशन से ध्यानस्त रहे अकस्मात् वृष्टि होने से साधु सहित वह काष्ट नदी में बहकर चला परन्तु साधु चलायमान हुए नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक गये इस ही प्रकार अन्य साधु को भी शैय्या परिषह सहन करना यह इकीसवी कथा हुई ॥ २१ ॥

* * * *

ग्रामानुग्राम में रहते हुए गृहस्थ आक्रोश वचन सुनावे इस से बावीसवा आक्रोश परिषह कहते हैं जो कोई साधु को आक्रोश वचन कहे उस पर वह साधु क्रोध करे नहीं क्यों की क्रोध करने वाला बाल अज्ञानी जैसा होता है इस से साधु को क्रोध करना नहीं ॥२४॥ कठोर दारुण, और इन्द्रियों को कंटक समान भाषा सुनकर के भी साधु मौन धना हुवा उस की उपेक्षा करे अर्थात वैसी भाषा की दरकार करे नहीं और उन बोलने वाले पर द्वेषभी करे नहीं ॥ २५ ॥ इस पर अर्जुन माली की कथा कहते हैं राज गृही नगरी के बाहिर एक बगीचे का अर्जुन माली स्वामी था उस को रूपवती बन्धुवती नामक भार्या थी वे दोनों बगीचे में से पुष्पों चुनकर वहां ही रहा हुआ मुद्गर पानी यक्ष के देवालय में

मणसीकरे ॥ २५ ॥ हओ न सजले भिक्खू, मणंपि न पओसए ॥ तितिक्ख परम

नचा, भिक्खू धम्म विचितए ॥ २६ ॥ समण संजय दंत, हणेज्जकोइ करथइ ॥

नत्थि जीवस्स नासोत्ति, एव चिंतज्ज सजए ॥२७॥ दुक्कर खलु भो निच्च, अणगा-

वहिन वगैरह को मारे हैं इस से उस को भिक्षा के छल से अपने घर में बोला कर लष्टि मुष्टि आदि प्रहार करने लगे उस पर अर्जुन अनगार किंचित्मात्र कोप नहीं करते हुए और कुच्छ भी प्रत्युत्तर नहीं देते हुए समभाव से सहन करने लगे जब वे लोग मारना छोड देते थे तब आप कहते थे कि मैंने तो तुम्हारे स्वजनादिक को जीवित से पृथक् किये हैं परंतु तुम तो मुझे जिंदा छोड रहे हो यह तुम्हारा बडा उपकार है यों समभाव से आक्रोश परिषह सहन करते हुए क्वचित आहार मिलता तो पानी नहीं मिलता और क्वचित् पानी मिलता तो आहार नहीं मिलता यों जो मिले उस में संतोष मानते हुए छ ही महिने में सब कर्मों क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन सहित मोक्ष गये यह बारहवीं कथा संपूर्ण हुई ॥२२॥

कदापि मार भी मारे इस से तेरवा वध परिषह कहते हैं—साधु को कोई मार मारे तो मन से भी उस पर क्रोध अथवा कोप करे नहीं परंतु उस को सहन करने में उत्कृष्ट धर्म है ऐसा जानकर क्षमा धर्म की चिंतवना करे ॥ २६ ॥ कोई पुरुष किसी स्थान सयति व दमितेन्द्रिय श्रमण को मारे तो साधु विचार करे कि जीव का नाश तो कदापि होता ही नहीं है, यह मात्र पुद्गल पिण्ड को मारता है इस से मेरा कुच्छ नुकशान नहीं है ॥ २७ ॥ इस पर कथा कहते हैं—श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु राजा के

राजाने दुंडी पिटाइ कि राजगृही नगरी के बाहिर अर्जुन माली मनुष्यों को मारता है इस लिये किसी को गांव बाहिर जाना नहीं इस तरह उपसर्ग होते ५ मास १३ दिन व्यतीत हुए जिस में ११४१ मनुष्य की घात हुइ लोगों के भाग्योदय से श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे गुणशील उद्यान में विराजमान हुए गांव में लोकों का मालूम हुए परन्तु अर्जुनमाली के डर से कोई भी बाहिर जा सका नहीं उस राजगृही नगरी में सुदर्शन नामक सेठ रहता था वह सब के ना कहने पर भी भगवान के दर्शन के लिये गांव बाहिर गया [वहां अर्जुन माली को मुद्गल उछालते हुए अपनी तरफ आता हुवा देखा कि तुरन्त ही सुदर्शन सेठने नीचे जमीन पूजकर अरिहंत सिद्ध धर्माचार्य को नमस्कार करते हुए आलोचना निन्दना सहित सागारी संथारा किया उतने में अर्जुन माली वहां आ पहूचा और उसे मारने के लिये मुद्गल उठाया परंतु मुद्गल हाथ से छूटा नहीं चारों तरफ फिरकर वह मुद्गल मारने लगा परन्तु हाथ से छूटा नहीं इस से आश्चर्यभूत बनकर सुदर्शन से देखने लगा दोनों की दृष्टि एक होते ही यक्ष उस अर्जुनमाली के शरीर में से निकल गया और अर्जुन मूर्छित होकर नीचे जमीन पर गिरपडा सुदर्शन संथारा पार कर अर्जुन सहित भगवान के पास आया भगवानने धर्मोपदेश दिया वहां अर्जुनने दीक्षा अंगीकार की और भगवान की आज्ञा से जावजीव, बेले बेले २ के तप करता हुआ विचरने लगा प्रथम बेले के पारणे में भिक्षा लेने के लिये राज गृही नगरी में आया उसे देख लोग क्रोधातुर होकर कहने लगे कि इसने हमारे मा-बाप मार

तब आचार्य बोले कि-मेरे सन्मुख इसे मत मार परंतु पूरा दुष्ट पालक प्रधानने उस शिष्य को आचार्य के पास से छीनकर पील डाला वे भी केवली होकर मुक्ति गये इस समय आचार्य शांत रह सके नहीं और नियाना किया कि मेरी करनी का फल होवे तो इस घोर कृत्य का मैं वैर लेवूं अब प्रधानने उन को भी घानी में पील डाले व मरकर भवनपाति में अग्निकुमार जाति के देव हुए अब यहां पर उस स्कंधकाचार्य की रक्त से भरी हुई मुख वस्त्रिका मांस का लोंदा जानकर चील ले उड गई, और उसे राजमहेल में डाल दी. उसे राजा की रानीने देखकर तपास कराई तो अपने भाई साधु को और उन के पांच सो शिष्यों को पालक प्रधान ने मार डाले हैं ऐसा सुनकर विलापात करती हुई राजा को कहने लगी कि पालक प्रधान के भ्रम में फसकर आपने बडा अनर्थ किया है इस का बदला आप को यहां ही मिल जायगा यों कहकर उसने दीक्षा ली अब अग्नि कुमार देवने कुपित बनकर राजा व पालक प्रधान सिवाय सब को जलाकर भस्म कर दिये राजा और प्रधानने पुनः उस देश का बडी कठिनता से आबाद किया, जिस को बारह वर्ष पीछे उस देवताने जला दिया यों बारह वार देश को जलाया और तेरहवी वार राजा प्रधान को भी जला दिये पालक अभव्य जीव अनंत संसारी हुवा जिस प्रकार स्कंधक अनगार के पांचसो शिष्योंने वध परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को सहन करना चाहिये यह तेवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २३ ॥

\+ \+

वध से पीडित साधुको औषधि आदि की याचना करनी पडे इससे चउदहवा याचना परिषह कहते हैं

धारनी रानी से खंधक कुमार और पुरंधरा पुत्री हुए थे, दोनों नीतिशास्त्र व धर्म शास्त्र में प्रवीण थे पुरंधराको दंडकारण्य देश के अधिपतिको दी थी, दंडकारण्यके राजा का पालक प्रधान रानीको लेनेके लिये श्रावस्ती नगरी में आया और राज्यसभा में धर्म चर्चा करता हुआ नास्तिक मत की स्थापना करने लगा खंधक कुमारने उसे प्रत्युत्तर दे कर निरुत्तर किया और जैन मत का महत्व बढाया इस से पालक अपने मन में अमरोष रखता हुआ रानी को ले अपने देश आया पीछे से मुनि सुव्रत भगवान के पास खंधक मुनिने ५०० पुरुषों के साथ दीक्षा ली और आचार्य पद पाये ५०० साधु सहित विचरते हुए दंडकारण्य देश में आये पालक प्रधान को इस बात की खबर होते ही अपना पूर्व का द्वेष से जहां खंधक अनगार अपने शिष्यों के परिवार से रहे थे, उस के पीछे नदी की रेती में विविध प्रकार के शस्त्रों छुपा दिये और राजा से कहने लगा कि-तुम्हारा साला उन के ५०० सुभटों सहित तुम्हारा राज्य लेने के लिये आया है तुम को धर्म के ढोंग में फसाकर मार डालेंगे राजाने पूछा कि-तुम को यह कैसे मालूम हुआ ? उसने राजा को अपने साथ लेकर गुप्तपने नदी में छुपाये हुए शस्त्रों बताये राजा क्रोधातुर हो गया और आज्ञा की जैसी तुम्हारी इच्छा होवे वैसे इन की स्थिति करो तब पालकने पांचसो साधुओं को अपने वश में कर लिये और एक बडा लोहे का घाणा मंडवाकर उस में एक २ साधु को पीलने लगा खंधक आचार्य बडे श्रम से उपदेश करते हुए उन के आत्मा को शांत करने लगे यों ४९९ साधु को पीले और वे अन्तकृत केवली हो मुक्ति गये पीछे एक छोटा साधु रहा गया

तब आचार्य बोले कि-मेरे सन्मुख इसे मत मार परंतु पूरा दुष्ट पालक प्रधानने उस शिष्य को आचार्य के पास से छीनकर पील डाला वे भी केवली होकर मुक्ति गये इस समय आचार्य शांत रह सके नहीं और नियाना किया कि मेरी करनी का फल होवे तो इस घोर कृत्य का मैं वैर लेवूं अब प्रधानने उन को भी घानी में पील डाले व मरकर भवनपति में अग्निकुमार जाति के देव हुए अब यहां पर उस स्कंधाचार्य की रक्त से भरी हुई मुख वस्त्रिका मांस का लोंदा जानकर चील ले उड गई, और उसे राजमहेल में डाल दी. उसे राजा की रानीने देखकर तपास कराई तो अपने भाई साधु को और उन के पांच सो शिष्यों को पालक प्रधान ने मार डाले हैं ऐसा सुनकर विलापात करती हुई राजा को कहने लगी कि पालक प्रधान के भ्रम में फसकर आपने बडा अनर्थ किया है इस का बदला आप को यहां ही मिल जायगा यों कहकर उसने दीक्षा ली अब अग्नि कुमार देवने कुपित बनकर राजा व पालक प्रधान सिवाय सब को जलाकर भस्म कर दिये राजा और प्रधानने पुनः उस देश को बडी कठिनता से आबाद किया, जिस को बारह वर्ष पीछे उस देवताने जला दिया यों बारह बार देश को जलाया और तेरहवी बार राजा प्रधान को भी जला दिये पालक अभव्य जीव अनंत संसारी हुवा जिस प्रकार स्कंधक अनगार के पांचसो शिष्योंने वध परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को सहन करना चाहिये यह तेवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २३ ॥

\+ \+

वध से पीडित साधुको औषधि आदि की याचना करनी पडे इससे चवदहवा याचना परिषह कहते हैं

रस्स भिक्खुणो ॥ सव्वसे जाइय होइ, नत्थि किंचि अजाइय ॥ २८ ॥ गोयरग्ग

पविट्ठस्स,पाणी नो सुप्पसारए ॥ सेओ आगार वासु त्ति,इइ भिक्खू न चिंतए॥२९॥

गुरु कहते हैं कि-अहो शिष्य ! साधु की याचना वृत्ति बडी दुष्कर है गृहस्थ का कुच्छ भी कार्य किये बिना मुफत में याचना करनी पडती है तब बहुत लज्जित होना पडता है परंतु याचना किये बिना कुच्छ भी नहीं मीलता है, जो कुच्छ मीलता है सो याचना करने से ही मीलता है ॥ २८ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु भिक्षा के लिये हाथ बाहिर निकाल सँके नहीं तब ऐसा विचार करे नहीं कि इस से तो गृहवास अच्छा है ॥ २९ ॥ इस पर बलभद्र मुनि की कथा कहते हैं-एकदा नेमीनाथ भगवान से कृष्ण वासुदेवने प्रश्न किया कि मेरा मृत्यु कैसे होगा ? भगवानने कहा कि कौशाम्बी वन में वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर तू सोता होगा जब जराकुमार का बान लगने से तुम्हारा मृत्यु होगा श्री कृष्ण वासुदेवने दूसरा प्रश्न किया कि-द्वारिका नगरी का नाश कैसे होगा ? भगवानने कहा कि मदिरा पान से तुम्हारे कुमार दीपायन ऋषि को त्रास देंगे वह ऋषि कुमार देव बनकर तुम्हारी द्वारिका नगरी जलावेगा परंतु जहां लग आयंबिल जितना तप द्वारिका में होता रहेगा वहां लग देवता कुच्छ भी नहीं कर सकेगा पुनः कृष्ण वासुदेवने प्रश्न किया कि मैं यहां से मरकर कहां जाऊंगा ? भगवानने कहा कि तू यहां से मरकर तीसरी नरक में जावेगा यों सुन कृष्ण उदास हुए

तब भगवानने कहा कि-हे कृष्ण! तू उस नरक से निकल कर शतद्वारा नगरी में अमम नामक बारहवा तीर्थंकर होकर मुक्ति में आवेगा इतना सुनते ही कृष्ण वासुदेव प्रमुदित होगये और सिंहनाद किया फिर भगवान को वंदना नमस्कार करके द्वारिका नगरी में आये और ढंढेरा पिटाया कि-द्वारिका नगरी में जो होवे इस से नेमीनाथ भगवान के पास जिन की दीक्षा लेने की इच्छा होवे उन के कुटुम्बकी पीछे से मैं संभाल करूंगा अपनी आठ पट्टरानियों और अन्य बहुत कुमारादि दीक्षा लेने के लिये निकले और कृष्ण वासुदेव ने सब को बडी धूमधाम से दीक्षा दिलाइ अब द्वारिका के नाश का कारन मदिरा होने से उस की नगरी में रखने की मनाइ करदी और गांव में जो मदिरा थी वह सब डलवा दी वैसे ही गांव में सदैव एक आयंबील करान का प्रबंध कर दिया इधर राजकुमार वन में क्रीडा के लिये गये थे प्यास लगने से किसीने छिपाकर रखा हुवा मदिरा का घडा पानी के भरोसे पीगये इस से उन्मत्त बने हुवे वहां तप करने वाले दीपायन तपस्वी की अपचेष्टा करने लगे उस ने कुपित हो कर श्राप दिया कि मेरे तप का फल होवो तो मैं द्वारिका जलावूं. यों सुन कर कुमारोंने श्री कृष्ण से सब निवेदन किया कृष्ण व बलभद्र ये दोनों भाइ दीपायन ऋषि के पास आकर नमस्कार कर कहने लगे कि राज कुमारों का अपराध की क्षमा करो वगैरह बहुत दीनपना करनेपर दीपायन ऋषिजीने कहा कि तपस्वीका श्राप और स्वर्गों का अपवाद अन्यथा नहीं होता है परंतु अब तुम दोनों को नहीं जलाऊंगा दीपायन ऋषि को बहुत समजाया परतु माना नहीं तब होनहार जानकर अपने स्थान आये

दीपायन वहां से काल कर अग्नि कुमार देवतो हुआ ज्ञान से सब वृत्तान्त जाना परंतु आयंबिल तप के प्रभाव से द्वारका जला सका नहीं, भवितव्य ऐसा ही हुआ कि-जिस को आयंबिल करने का था उस के घर वालेने एक एक के भरोसे से आयंबिल किया नहीं यों संपूर्ण द्वारिका में आयंबिल तप नहीं हुआ देख द्वारका नगर की अग्नि का दाह लगा दिया और किसी उपाय से अग्नि शांत हुई नहीं. उस में जो दीक्षा लेना चाहते थे उस को भगवान नेमीनाथजी के पास पहोंचा दिये कृष्ण व बलभद्र दोनों अपने पिता वसुदेव व माता देवकीजी को रथ में बैठाकर आप दोनों रथ खींचते हुए द्वारिका के द्वार से निकलने लगे, दोनों भाइ बाहिर निकले कि तुरत ही दरवाजा गिरने से उन के मात पिता वहां दबकर काल कर गये द्वारिका जलती देखकर कृष्णजी आर्तध्यान करने लगे वे वहां से पांडव मथुरा जाते मार्ग में कोसंबी वन आया कृष्णजी को प्यास लगने से बलभद्रजी पानी लेने गये कृष्णजी वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर सो गये उतने में वहां जरा कुमार निकले उसने दूर से कृष्णजी के पांव का पद्म को मृग का नयन मानकर उस का मारने के लिये बाण छोडा और वहां आया वह कृष्णजी को देखकर घबराया और पांव में पडकर अपना अपराध खमाया कृष्णजीने अपना कौस्तुभ मणि उस को दिया और कहा कि यह पांडवों को देना और सब वृत्तान्त कहना, अब तू यहां से चला जा नहीं तर बलभद्रजी आवेंगे सो तुझे मार डालेंगे यों सुनकर जरा कुमार भग गया उस को देख कर मन में उन की गति बीगडने की होने से कृष्ण क्रोधातुर ही गये और बोले कि-यह मुझे मारकर

कहां गया है, इसे भी मारूं और दीपायन कि जिसने मेरी द्वारिका नगरी जलाकर भस्म कर दी उसे भी मारूं. यों कोपावेश में उठकर जोर से जमीन पर पांव रखने गये कि तुरत ही वह बान पांव में प्रवेश कर गया और कृष्णजी मृत्यु शरण हो गये फीर बलभद्रजी पानी लेकर आये और कृष्ण को जगाने लगे परतु जगे नहीं तब वह बोलने लगे कि-मुझे पानी लाने में देर हो गई जिस से क्या रूसा गये ? यों अपने शरीर पर उसके शरीर को उठाकर फीरने लगे यों छ महिने बीत गये * फीर देवता समजाने के लिये एक मृतक गो का दूध निकालने बेठा उसे देख बलभद्रजी कहने लगे कि रे मूर्ख ! मृतक गाय भी क्या दूध देती है ? तब देवताने कहा कि-मरा हुआ भी क्या जींदा हो सकता है कि जैसे तुम उठाकर फीर रहे हो बलभद्रजी सुना अनसुना कर आगे चले तब देवता घानी बना कर रेती पीलने लगा. बलभद्रजी बोले रे मूर्ख ! क्या रेती में से तेल निकलता है ? देवताने पूर्वोक्त प्रकार उत्तर दिया यों देवता ने समझा कर कृष्ण के शरीर को चंदन काष्ट से अग्नि संस्कार किया बलभद्रजी नेमनाथ भगवान के पास दीक्षित हो एकल विहारी बने बलभद्रजी का इतना रूप था कि जहां जावे वहां स्त्रियों उन के रूप से मोहित बनकर पीछे फिरने लगे एक वक्त तुंगीया पुरी में बलभद्रजी आये वहां कूवे पर एक स्त्री पानी भर रही थी बलभद्रजी का रूप देखते ही मोहित होगई और पानी भरते २ घड़े के भरोंसे से अपने बालक के गले में फांसा डाल

* उत्तम पुरुषों का शरीर काल पर्यंत वैसा ही बना रहता है

द्वीपायन वहां से काल कर अग्नि कुमार देवता हुआ. ज्ञान से सब वृत्तान्त जाना परंतु आयंबिल तप के प्रभाव से द्वारका भस्म सका नहीं, भवितव्य ऐसा ही हुआ कि-जिस को आयंबिल करने का था उस के घर वालेने एक एक के भरोसे से आयंबिल किया नहीं. यों संपूर्ण द्वारिका में आयंबिल तप नहीं हुवा देख द्वारके शहर की अग्नि का दाह लगा दिया और किसी उपाय से अग्नि शांत हुई नहीं. उस में जो दीक्षा लेना चाहते थे उस को भगवान नेमीनाथजी के पास पहोंचा दिये. कृष्ण व बलभद्र दोनों अपने पिता वसुदेव व माता देवकीजी को रथ में बैठाकर आप दोनों रथ खींचते हुए द्वारिका के द्वार से निकलने लगे. दोनों भाइ बाहिर निकले कि तुरत ही दरवाजा गिरने से उन के मात पिता वहां दबकर काल कर गये द्वारिका जलती देखकर कृष्णजी आर्तध्यान करने लगे वे वहां से पांडव मथुरा जाते मार्ग में कौशांबी वन आया कृष्णजी को प्यास लगने से बलभद्रजी पानी लेने गये कृष्णजी वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर सो गये उस वन में वहां जरा कुमार निकले उसने दूर से कृष्णजी के पांव का पद्म को मृग का नयन मानकर उस को मारने के लिये बाण छोडा और वहां आया वह कृष्णजी को देखकर घबराया और पांव में पडकर अपना अपराध खमाया कृष्णजीने अपना कौस्तुभ मणि उस को दिया और कहा कि यह पांडवों को देना और सब वृत्तान्त कहना, अब तू यहां से चला जा नहीं तर बलभद्रजी आवेंगे तो तुझे मार डालेंगे यों सुनकर जरा कुमार भग गया उस को देख कर अन्त में उन की गति बीगडने की होने से कृष्ण क्रोधातुर हो गये और बोले कि-यह मुझे मारकर

परंतु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ॥ लद्धेपिंडे अलद्धेवा, नाणुतप्पेज्ज पंडिए ॥ ३० ॥ अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया ॥ जो एवं पडिसाचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥ ३१ ॥ नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए ॥ अदीणो

कहते हैं—साधु गृहस्थ के घर में आहार की गवेषणा करे और वहां भोजन तैयार होने पर मीले अथवा नहीं मीलतो भी पंडित साधु द्वेष करे नहीं ॥ ३० ॥ आज मुझे आहार का लाभ नहीं मीला तो क्या हुवा कल मील जायगा इस तरह जो विचार करते हैं उन को अलाभ परिषह नहीं होता है ॥ ३१ ॥ इस पर ढंढण मुनि की कथा कहते है—मगध देश में पूर्वांधि नगर था वहां पारासर नामक कुनबी रहता था वह हल चलाता हुवा सब कृषिकारों का अधिपतिपना करता हुवा विचरता था एकदा व खेत में काम कर रहा था उतने में सब के लिये भोजन आया, तब वह सब को बोलने लगा कि एक चिला तो और खींचलो उस की आज्ञा से उनोंने एक चीला खींचा जिस से पशु मो जीवों को आहार की अंतराय दी अंतराय कर्म बांधकर वह जीव वहां से चवकर कृष्णजी की ढंढणा रानी की कुक्षी से ढंढण कुमार पने उत्पन्न हुवा बाल्यावस्था से तरुणावस्था में आते ही नेमीनाथ भगवानके पास दीक्षा अंगिकार की अंतराय कर्म के उदय से गोचरी करने जावे परंतु आहार मीले नहीं दूसरे कोइ साधु उन के साथ जावे तो उन को भी आहार मीले नहीं तब अपने से अन्य साधुओं को अंतराय होती हुई जानकर

कर कूवे में उतारा बलभद्रजी अपने रूपसे होता हुवा यह अनर्थ देख कर अपने रूप को धिक्कार देते ग्राम में प्रवेश करने का त्याग कर वनमें ही रहने लगे वन की उत्कृष्ट क्रियादेख कर एक मृग को जाति स्मरण ज्ञान हुआ, वह जहां सथवारा जाता होवे, जहां कोइ भोजन पान करता हो वहां मुनिराज को ले जावे और मुनि निर्दोष आहार की याचना कर शरीर को भाडा देवे एकदा एक खाती उस वन में वृक्ष काट रहा था उस की स्त्री उस के लिये आहार ले कर आइ उसे मृगने देख कर मुनि को वहां ले गया यह खाती आधी कटी हुइ डाली छोड कर नीचे उतरा था वह मुनि को देख हुए तुष्ट हुआ और वन्दना नमस्कार कर निर्दोष आहार दिया वहां मृग भी पश्चताप करने लगा कि यदि मैं मनुष्य होता तो इस प्रकार दान देकर जन्म सफल करता ! इतने में आधी कटी हुइ डाली टूट कर मुनि खाती व मृग पर पडने से तीनों ही मृत्यु पाये × वे पांचवे देवलोक में अपने २ पुण्य अनुसार ऋद्धि धारक देवता हुए. बलभद्र मुनि एक भवकर मुक्ति में जावेंगे यों बलभद्र मुनि की तरह याचना परिषह सहन करना यह चौवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २४ ॥

* * *

याचना करते इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से असमाधि होवे इस से पचीसवा अलाभ परिषह

× खातीकी स्त्री और उस का गर्भ भी दान की अनुमोदना करते हुए डाली नीचे दब कर मृत्यु पाये यों पांच जीव कहते हैं

थावए पभं, पुट्ठो तत्थ ओहियासए ॥ ३२ ॥ तेगिच्छ नाभिनंदेज्जा, सचिक्खत्त

गवेसए ॥ एवं खु तस्स सामण्णं, जं नकुज्जा नकारवे ॥ ३३ ॥ अचेलगस्स लूहस्स,

आये बहुत वर्ष संयम पालकर मुक्ति में गये जिस प्रकार ढंढण मुनिने अलाभ परिषह सहन किया ऐसे अन्य साधु को भी सहना चाहिये यह पचीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २५ ॥ ✽ ✽

इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से शरीर में व्याधि होवे इस से सोलवा रोग परिषह कहते हैं रोगादिक दुःख उत्पन्न हुआ जानकर वेदना से पीडित प्रज्ञावान साधु अदीनपना से अन्य को धर्म में थापे और परिषह सहन करे ॥ ३२ ॥ आत्मा की गवेषणा करने वाला साधु रोग परिषह वेदनीय कर्म का उदयका कारन जानकर चिकित्सा की प्रशंसा करे नहीं इस तरह जो चिकित्सा नहीं कराते हैं अन्य से नहीं करवाते हैं और करने वाले को अच्छा नहीं जानते हैं उन का ही साधुपना कहा है ॥ ३३ ॥ इस पर कथा कहते हैं. मथुरा नगरी में जितशत्रु राजाने कालाइशया नाम की वेश्या में मुग्ध बनकर उस को अपने अन्तःपूर में रखी उस को जो पुत्र हुआ उस का नाम भी कालाइशया रखा, एकदा रात्रि को शृगाल का शब्द सुनकर उस की निद्रा खुल गई उसने शृगाल को पकड मगवाया और मार डाला वह शृगाल वहां से काल कर व्यंतर देवता हुआ एकदा उस कालाइश्योंने हरस (मसा) के रोग से पीडित बनकर प्रतिबोध पा दीक्षा ली और औषधिका त्याग कर समभाव से उदित कर्मों क्षय करने के

किसी के साथ जाना छोड़ दिया और भगवान के पास अभिग्रह धारन किया कि मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मीले तो ही में आहार पानी करूंगा छ महिने तक आहार पानी की जोगवाइ बनी नहीं एकदा नेमनाथ भगवान के साथ वह द्वारिका आये और आज्ञा लेकर भिक्षाय गये जब भगवान से श्री कृष्णने प्रश्न किया कि अठारह हजार साधुओं में सब से दुष्कर क्रिया करने वाले और आज ही केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले कौन साधु हैं ! भगवानने कहा ढंढण ऋषि है यों सुन कृष्ण जी प्रसन्न हुए और भगवान को वंदना नमस्कार कर द्वारिका में आते हुए बजार में ढंढण ऋषि को देखकर हस्ती पर से नीचे उतरे तिखुत्तो के पाठ से विधि पूर्वक वंदना की फिर वहां से आगे गये यह एक गाथापतिने देखकर विचारा कि यह कोई बडे महात्मा हैं जिन को श्री कृष्ण ने भी वंदना नमस्कार किया मैं इन को दान दूं यों विचार कर मुनि को गौचरी के लिये विनंति की और मोदक वहोराये मुनि निर्दोष आहार लेकर नेमीनाथ भगवान के पास गये और कहने लगे कि आज मेरी अंतराय टूटी देखाती है यह मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मीला है भगवानने कहा तेरी लब्धि से आहार पानी नहीं मीला है; परंतु कृष्ण वासुदेव की लब्धि से मीला है छ महिने के उपवास होने पर ढंढण मुनिने विचार किया कि ऐसा आहार खाना मुझे नहीं कल्पता है इस परिठाने के लिये निर्वद्य स्थान पर आये और विचारने लगे यदि भगवान नहीं होते तो मेरा अभिग्रह भंग होजाता धन्य है कि भगवानने मेरे मत की रक्षा की इत्यादि शुभ भावना भाते हुए मोदक के चूर के साथ घनघाति कर्मों का चूर भी कर डाला और केवल ज्ञान प्राप्त कर भगवान के पास

॥ ३५ ॥ किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण वरएणवा ॥ धिंसु वा परितावेण, साय नो परिदेवए ॥ ३६ ॥ वेएज्ज निज्जरापेही, आरिय धम्मणुत्तर ॥ जाव सरीरभेओ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥ अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतण ॥ जे ताइ

में ही डाल दिया घास में रहे हुए कंटक वगैरह से शरीर में बहुत कीलामना हुई और कुच्छ दिन बाद उन को छोड दिये इतना कष्ट होने पर भी संयम धर्म से चलित हुए नहीं ऐसे ही अन्य साधु को भी परिषह सहन करना यह सत्तावीसवी कथा हुई ॥ २७ ॥ * *

तृणपर शयन करने से रज मेल लगे इस से अठारवा जल्लमेल का परिषह कहते हैं स्नान नहीं करने से, शरीर के मेल से व स्वेद से जिन के गात्र खेदित हो गये हैं, और ग्रीष्म ऋतु अथवा शरद ऋतु के ताप से जो पीडित हो रहे हैं वैसे बुद्धिमान साधु साता की वांच्छा करे नहीं ॥ ३६ ॥ परंतु अनुत्तर आर्य धर्म को जान कर कर्म क्षय करने की इच्छावाले उक्त परिषह सहन करे और जहां लग शरीर का भेद होवे-मृत्यु आवे वहां लग शरीर पर मैल धारन कर रखे ॥ ३७ ॥ इस पर कथा कहते है— चंपा नगरी के सुनंद शेठने अपने घर आये हुए साधु का मलिन शरीर देख कर दुर्गंछा की और कहा कि जैन धर्म तो अच्छा है परंतु ये लोग स्नान नहीं करते हैं यह अच्छा नहीं है ऐसे विचार में कर्म बांध कर आयुष्य पूर्ण होने से कौशाम्बी नगरी में व्यवहारी का पुत्र हुआ उस का शरीर जन्म से

संजयस्स तवस्सिणो ॥ तणेसु सयमाणस्स हुज्जा गाय विराहणा ॥ ३४ ॥ आय

वस्स निराएण, आउला हवइ वेयणा ॥ एवं नच्चा न सेवांति, ततुज तणतज्जिया

मिये रोग परिषह सहन करते मुद्गल नगर के राजगृह में भिक्षार्थ गये, वहां उन की भगिनीने औषधि मीश्रित आहार वहोराया मुनिने औषधि मीश्रित आहार जान परिठा दिया और वन में संथारा कर ध्यानस्थ रहे, उस समय उक्त शृगाल का जीव व्यंतर देव शृगाल का ही रूप बना कर उन मुनि के शरीर का भक्षण करने लगा, परन्तु मुनि किंचिन्मात्र पश्चात्तापमान हुए नहीं, और समभाव से आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गये ऐसे ही सब मुनियों को रोग परिषह सहन करना यह छव्वीसवी कथा हुइ २६

रागी को नरम बिछोना चाहिये जिस से सत्तरहवा तृण स्पर्श परिषह कहते हैं वृषि पाले, वस्त्र रहित अथवा अल्प वस्त्रधारी तपस्वी साधु को तृण के बिछोने पर शयन करते हुवे गात्र विराधना होवे ॥ १४ ॥ बहुत ताप पडने से महा वेदना होवे ऐसा जानकर तृण स्पर्श परिषह से स्पर्शाया हुवा मर्यादा से अधिक वस्त्र, का सेवन करे नहीं ॥ १५ ॥ इस पर कथा कहते हैं—श्रावस्ती नगरी के जितशत्रु राजा के पुत्र सुकोमल शरीर वाले भद्र कुमारने दीक्षा धारन की और परिषह सहने के लिये अनार्य देश में गये, साधु को अज्ञान लोग पुछने लगे कि तू कौन है ? उन की भाषा नहीं समझने से साधु मौन रहे तब साधु को हेरु जानकर पकड लिया और घास की रस्सीयों से मजबूत बांध कर घास

॥ ३५ ॥ किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण सरएणवा ॥ घिंसु वा परितावेण, साय नो परिदेवए ॥ ३६ ॥ वेएज्ज निज्जरापेही, आरिय धम्मणुत्तर ॥ जाव सरीरभेओ त्ति, जल्ल काएण धारए ॥३७॥ अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतण ॥ जे ताइ

में ही डाल दिया घास में रहे हुए कन्क वगैरह से शरीर में बहुत कीलामना हुई और कुच्छ दिन बाद तन को छोड दिये इतना कष्ट होने पर भी संयम धम से चलित हुए नहीं ऐसे ही अन्य साधु को भी परिषह सहन करना यह सत्तावीसवी कथा हुइ ॥ २७ ॥ * *

तृणपर शयन करने से रज मेल लगे इस से अठारवा जल्लमेल का परिषह कहते हैं स्नान नहीं करने से, शरीर के मेल से व स्वेद से जिन के गात्र खेदित हो गये हैं, और ग्रीष्म ऋतु अथवा शरद ऋतु के ताप से जो पीडित हो रहे हैं वैसे बुद्धिमान साधु साता की वाञ्छा करे नहीं ॥ ३६ ॥ परंतु अनुत्तर आर्य धर्म को जान कर कर्म क्षय करने की इच्छावाले उक्त परिषह सहन करे और जहां लग शरीर का भेद होवे-मृत्यु आवे वहां लग शरीर पर मैल धारन कर रखे ॥ ३७ ॥ इस पर कथा कहते हैं— चंपा नगरी के सुर्नद शेठने अपने घर आये हुए साधु का मलिन शरीर देख कर दुर्गंछा की और कहा कि जैन धर्म तो अच्छा है परंतु ये लोग स्नान नहीं करते हैं यह अच्छा नहीं है ऐसे विचार में कर्म बांध कर आयुष्य पूर्ण होने से कौशाम्बी नगरी में व्यवहारी का पुत्र हुआ उस का शरीर जन्म से

पडिसेवेति न तेसिं पीहए गुणी ॥३८॥ अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अन्नएसी अलोलुए ॥
रसेसु नाणुगिज्झेज्जा नाणुतप्पेज्ज पण्णव ॥ ३९ ॥ से नूणं मए पुव्वं, कम्माणाण

ही मशा दुर्गंधवाला हुआ उसे कोई पास आने देवे नहीं अब वह अपवाद से घबरा कर आत्मघात करने के लिये वन में गया वहां रहे साधुने उसे धर्मोपदेश देकर साधु बनाया और ज्ञान पढकर क्रिया करने लगा शरीर की दुर्गंधि से लोगों को घबराते देख कर आप वहां वन में ही निवास करने लगा एकदा केवली भगवान मिले पूर्व भव का वृत्तान्त सुनाया और उसे अवधार कर अभिग्रह किया कि जब मेरे दुगछा से उपार्जन किये हुए कर्म क्षय होंगे तब ही मैं कायोत्सर्ग से निवृत्त होऊंगा तप और ध्यान से कर्म क्षय हुए तब किसी देवतान उन के शरीर की दुर्गंध हरण की और सुगंधमय शरीर बना दिया तो भी उसने कायोत्सग पारा नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक गया यों सब को जल्लमैल का परिषह सहन करना यह अठारीसवी कथा सुचंद की हुई ॥ १८ ॥ ✻ ✻

जनेन्द्रवाले साधु का सत्कार सन्मान नहीं होता है इस से उन्नीसवा सत्कार पुरस्कार का परिषह कहते हैं स्तुति करना साधु आवे तो खडे होना अथवा राजा वगैरह आहारादि से निमंत्रण करे, इस प्रकार साधु का सत्कार करे तो उन को मुनि इच्छे नहीं अर्थात इस का अभिमान करे नहीं ॥ ३८ ॥ पतली कषायवाले अल्प इच्छावाले अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करनेवाले और अलोलुपी प्रज्ञावान साधु रसादिक की आमंत्रणा करे तो उस में लुब्ध होवे नहीं, वैसे ही नहीं देवे तो उन पर तपे नहीं कोप करे नहीं॥३९॥

इस पर कथा कहते हैं–मथुरा नगरी के जयसिंह राजा का मिथ्यामद में छका हुआ इन्द्रदत्त पुरोहितने अपने गोख में बैठे हुवे किसी महा तपस्वी साधु मार्ग में जा रहे थे उन के मस्तक पर पांव लगाया ऐसा एक श्रावकने देख लिया धर्मानुराग से उस पुरोहित के पांवका छेदन करानेका अपना मनोभाव आचार्यको दर्शाया आचार्य बोले कि–हम साधुओं को मान अपमान सदा एकसा है श्रावकने कहा कि–जैन धर्म का अपवाद मिटाने के लिये कुच्छ करना चाहिये तब आचार्य बोले कि–मात्र परोपकार के लिये कहता हूं कि–पुरोहित ने जो मकान बनाया है वहां राजा देखने आवेगा उस समय तू राजा को मकान में प्रवेश करते हुए पीछे खींच लेना क्यों कि वह मकान गिर जायगा श्रावकने वैसा ही किया राजाने पूछा कि–तुम को यह किसने कहा ? श्रावकने कहा हमारे धर्माचार्यने कहा राजा और श्रावक आचार्य का महा उपकार मानने लगे श्रावक को प्रधान पद दिया और आचार्य को गुरु बनाये फिर श्रावकने राजा से कहा कि–इस पुरोहितने अपना पांव आचार्य के शिर पर लगाया था राजाने रुष्ट हो कर उन का पांव का छेदन करने की आज्ञा दी आचार्यने इस को अभय वचन दिलवाया उस पुरोहितने आचार्य को परमोपकारी जानकर उन को नमन किया इस प्रकार अन्य साधुओं को भी सत्कार पुरस्कार परिषह सहन करना चाहिये यह गुनतीसवी आचार्य की कथा हुई ॥ २९ ॥ ❁

ज्ञानी का सत्कार सन्मान होवे इस से ज्ञान परिषह कहते हैं–ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ज्ञान प्राप्त हुआ होवे तो उस का मद करे नहीं–परंतु विचार करे कि मैंने पूर्व भव में ज्ञान की वृद्धि

फलाकडा ॥ जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो कण्हुई कण्हुइ ॥४०॥ अह पच्छा उइज्जंति

कम्माऽणाण फलाकडा॥ एवं मस्सासि अप्पाणं नच्चा कम्मविवागयं ॥ ४१ ॥ निरट्ठ

की ज्ञानी की प्रशंसा विनय वैयावृत्यादि ज्ञान प्राप्त होने के शुभ कर्तव्य किये हैं जिससे इस मनुष्य जन्म में ज्ञान प्राप्ति के सन्मुख हुआ हूं इसलिये ही मुझे ज्ञानार्थी जीवों प्रश्नादि पूछने आते हैं और उन को मैं समाधान कर सकता हूं अब जो मैं ज्ञान दान करते घबराऊंगा ज्ञान का अभिमान करूंगा तो आगामिक काल में मुझे मेरे ही कर्तव्य के फल से अज्ञानता प्राप्त होगा इस प्रकार ज्ञान द्वारा कर्मों के शुभाशुभ फल का विचार कर अपना आत्मा को स्वस्थ करके ज्ञान का गर्व करे नहीं ॥ ४०—४१ ॥ इस पर कथा कहते हैं—कालकाचार्य अपने ५०० शिष्यों को प्रमादी अविनीत बने जानकर उन को खबर नहीं होवे वैसे उन को छोडकर सुवर्णभूमि में अपना प्रशिष्य सागरचंद्र था उस के पास आये उसने आचार्य को पहिचाने नहीं परंतु वृद्ध साधु मानकर उन की भक्ति करने लगा एकदा व्याख्यान समाप्त हुए पीछे वह साधु आचार्य से पूछने लगे कि अहो वृद्ध मुने' मेरा व्याख्यान कैसा है ? तुम वृद्ध हो बहुत साधुओं का व्याख्यान तुमने सुना होगा आचार्य उस के व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे अब गुरुने छोडे हुए ५०० साधुओंने जाना कि-आचार्य अपन को छोड गये तथा श्रावक अपमान करने लगे तब उनोंने गुरु की गवेषणा करने के लिये सुवर्ण भूमि में आकर सागर चंद्र से गुरु महाराज का समाचार पूछा सागरचंद्रने कहा कि—मुझे मालुम नहीं है

गमि विरओ, मेहुणाओ सुसवुडो ॥ जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावगं ॥ ४२ ॥ तवोवहाणमादाय, पडिमं पडिवज्जओ ॥ एवं पि विहरओ मे, छउमं न

उपाश्रय में आये सो एकांत में गुरु जी को ज्ञान ध्यान करते देखकर हृष्ट तुष्ट हुए और आचार्य को वदना नमस्कार कर अपराध खमाया सागरचंद्र यह देख आश्चर्य पाया कि धन्य है गुरुजी को ऐसे ज्ञानी होने पर मगट नहीं हुए और मेरा तुच्छ व्याख्यान की भी प्रशंसा की यों जैसे आचार्यने ज्ञान परिषह सहन किया वैसे ही सब को सहन करना यह तीसरी कालकाचार्य कथा हुई ॥ ३० ॥ * *

ज्ञान का प्रतिपक्षी अज्ञान होने से इक्कीसवा अज्ञान का परिषह कहते हैं-धर्म-वस्तु का स्वभाव मोक्ष तथा नरक का हेतु और जीवादिक पदार्थ मैं प्रत्यक्ष नहीं जानता हूं इस से मैं इन्द्रियों का संवर कर के भोगादिसे निरर्थक निवर्ता यों साधु विचार करे नहीं परन्तु तप उपधान व साधु की ११ प्रतिमा अंगीकार कर विचरता हुवा विचार कर कि मेरा छद्मस्थपना ज्ञानावरणीय कर्म का उदय से नहीं निवर्ता है और मुझे केवलज्ञान नहीं हुआ है ॥४३॥ इस पर दो भाइ की कथा कहते है गंगापुर नगर के निवासी दो भाईने दीक्षा ग्रहण की एक भाइ विनय भक्ति से ज्ञान गुण संपन्न बना और दूसरा प्रमादी होने से ज्ञानादि गुण प्राप्त कर सका नहीं अब जो ज्ञान गुण संपन्न था वह आचार्य पद पर नियत हुआ और उस की पास बहुत

फलाकडा ॥ जेणाह मभिआणामि, पुट्ठो कण्हइ कण्हुइ ॥४०॥ अह पच्छा उइज्जंत कम्माऽणाणं फलाकडा ॥ एव मस्सासि अप्पाण नच्चा कम्मविवागय ॥४१॥ निरट्ठ

की ज्ञानी की प्रशंसा विनय वैयावृत्यादि ज्ञान प्राप्त होने के शुभ कर्तव्य किये हैं जिस से इस मनुष्य जन्म में ज्ञान प्राप्ति के सन्मुख हुआ हूं इसलिये ही मुझे ज्ञानार्थी जीवों प्रश्नादि पूछने आते हैं और उन का मैं समाधान कर सकता हूं अब जो मैं ज्ञान दान करते घबराऊंगा ज्ञान का अभिमान करूंगा तो आगामिक काल में मुझे मेरे ही कर्तव्य के फल से अज्ञानता प्राप्त होगा इस प्रकार ज्ञान द्वारा कर्मों के शुभाशुभ फल का विचार कर अपना आत्मा को स्वस्थ करके ज्ञान का गर्व करे नहीं ॥ ४०-४१ ॥ इस पर कथा कहते हैं—कालकाचार्य अपने ५०० शिष्यों को प्रमादी अविनीत पने जानकर उन को खबर नहीं होवे वैसे उन को छोडकर सुवर्णभूमि में अपना प्रशिष्य सागरचंद्र था उस के पास आये उसने आचार्य को पहिचाने नहीं परंतु वृद्ध साधु जानकर उन की भक्ति करने लगा एकदा व्याख्यान समाप्त हुए पीछे वह साधु आचार्य से पूछने लगे कि कहो वृद्ध मुने ' मेरा व्याख्यान कैसा है ? तुम वृद्ध हो बहुत साधुओं का व्याख्यान तुमने सुना होगा आचार्य उस के व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे अब गुरुने छोडे हुए ५०० साधुओंने जाना कि आचार्य अपन को छोड गये तथा श्रावक अपमान करने लगे तब उनोंने गुरु की शोधना करने के लिये सुवर्ण भूमि में आकर सागर चंद्र से गुरु महाराजा का समाचार पूछा सागरचंद्रने कहा कि—मुझे मालुम नहीं है

एव माहसु, इइ भिक्खू न चिंतए ॥ ४५ ॥ एए परिसह सव्वे, कासव ...

हुए हैं वर्तमान काल में भी हैं अथवा भविष्य काल में भी होंगे; यह सब मिथ्या कहते हैं; ऐसा साधु विचार करे नहीं॥ ४५॥इस पर अपाढाचार्य की कथा कहते हैं एकदा अपाढाचार्य बहुत शिष्यों को शास्त्रका अभ्यास कराते संशय हुआ कि शास्त्र में कहा है कि-अनंत तीर्थंकर हुए और अनंत होवेंगे तथा नरक देवलोकादि गति हैं परंतु मैंने न तो तीर्थंकर दखे और न किसी देव को देखे किसी शिष्य का आयुष्य पूर्ण होने आया तब संथारा किया तब अपाढाचार्य बोले कि यहां से कालकर तुम देवता होवेंगे तब आकर मुझे मीलना उन का आयुष्य पूर्ण हुए पीछे आचार्यने बहुत राह देखी परंतु वह आया नहीं, ऐसे ही दो तीन साधुओं को संथारा करवा कर उन से देवलोक में गये पीछे मीलने का वचन लिया परंतु कोई आया नहीं योगानुयोग से किसी छोटे शिष्य का मृत्यु नजदीक आया जान उसे भी संथारा करवाया, देवलोक में गये पाछे आकर मीलने का कहा परतु वह भी आया नहीं तब आचार्य को निश्चय हुआ कि नरक स्वर्ग वगैरह कुछ भी नहीं है यह सब वार्तो मिथ्या है अब संयम का कष्ट व्यर्थ क्यों उठाना; ऐसा विचार कर अपने घर जाने क लिये द्रव्य लिंगी बनकर निकले उस समय लघु शिष्य देवता का आसन चलायमान हुआ और अवधि ज्ञान से गुरु को अपने घर जाते हुए देखे, रास्ते में देवने नाटकका आरंभ किया वह ऐसा रम्य बनाया कि-छमाहिने पर्यंत देखते हुए भी आचार्यने समजा क एक मुहूर्त मात्र देखा है-यों विचार कर आगे चले अब गुरु की दया देखने के लिये देवताने छ छोटे बालक सब वस्त्र आभूषणों

निव्वहए ॥ ४३ ॥ नात्थनूण परलोए, इड्डी वावि तवस्सिणो॥ अदुवा वञ्चिओ मित्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥ ४४ ॥अभू जिणा अत्थि जिणा,अदुवावि भविस्सई ॥मुस ते

निर्वाह करते थे इस से इन कार्यों में उन को निद्रा लेने का व खाने का भी पूरा समय नहीं मीलने लगा इस से उन के मन मे विचार हुआ कि-मेरा भाइ अज्ञानी रहा सो वह सुखी है; मैं ज्ञाता साधु हुआ तब से ही दुःखी हूं, प्रथम विनयादि भक्ति कर ज्ञान प्राप्त करने मे परिश्रम करना पडता था और अब ये दुःखो को सहन कर रहा हूं इस विचार से उस ने ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया और काल के अवसर मे काल कर देवता हुआ वहां स चवकर आहीर कुल में जन्म लिया गुरु बोध होने से ज्ञानाभ्यास करने लगा परंतु अभ्यास होवे नहीं तब पश्चाताप करने लगा गुरु बोध किया कि आयंबिलादि तप कर गुरु के कहने से आयंबिलादि तप किया जिस से कृष्ण बुद्धि की तीव्रता हुई और छजीवनिकाय अध्ययन का पाठ किया उस ही में अपन आत्मा को रमाता हुवा समाधि भाव रखता हुआ कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में गया इस प्रकार ज्ञान का अभिमान करने से अज्ञानी होता है ऐसा जान साधु ओंको अज्ञान परिषह होने प समभाव स सहन करना यह इक्कीस वी कथा सपूर्ण हुइ॥२१॥

अज्ञानता स समकित में संशय होवे इस से बावीसवा दर्शन परिषह कहते हैं निश्चय ही परलोक नहीं है वैसे ही तपस्वी को इहलोक में जो ऋद्धि मीलती है वह भी नहीं है, केशलोचनादि कष्ट सहन कर के मेरा आत्मा को मैंने भोग से व्यर्थ वंचित किया ऐसा साधु चिंतवे नहीं ॥४४॥जिन—केवली भुत काल में

इति परीसहज्झयणं बीयं सम्मत्तं ॥ २ ॥ * * * * *

देखे और अपने ६ बालक के आभूषण परिधान लिये तब उन छ ही के मा बाप रूदन करने लगे और आचार्य की निंदा व तिरस्कार करने लगे आचार्य भयभीत बने हुए किसी का शरण नहीं देखते चितवने लगे कि—अरिहंत सरणं पवज्जामि, जाव धम्मसरणं पवज्जामि इस प्रकार आचार्य भ्रम को में आये हुए जानकर देवता उस ही शिष्य का रूप बनाकर निसीही २ शब्द कहता आया उस के शब्द से आचार्य उसे देखते हैं तो न तो कोई श्रावक श्राविका है और न कोई दूसरा है मात्र अपना छोटा शिष्य खडा है ऐसा देख कर आचार्य आनंदित होकर पूछने लगे कि तू तो मर गया था सो कहां से आया? तब उसने तत्काल अपना देव का रूप बना लिया और अपनी ऋद्धि का वर्णन करने लगा कि—जैसे आपन छ महिने तक नाटक देखते हुए मात्र एक मुहूर्त ही समझा था वैसे ही देवता भी देवलोक के सुख व भोग में लुब्ध बने हुए व्यतीत काल से अज्ञात रहते हैं इस का निश्चय करने के लिये आनागने सूर्य को दक्षिणायन से उत्तरायन में देखा फिर सम्यक्त्व में निश्चल बनकर आलोचना प्रतिक्रमण कर संयम अंगीकार किया यों सब साधु को दर्शन परिषह सहन करना चाहिये यह पचीसवी कथा संपूर्ण हुई॥ २५॥

उक्त बाईस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं—जिस किसी साधु को उक्त परिषह आ पडे तो उस से अपने संयम की घात करे नहीं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं॥यह परिषह नामक दूसरा अध्ययन संपूर्ण हुआ॥ २ ॥ *

से सुशोभित का वैक्रेय किया व आचार्य को नमस्कार करने के लिये आये उन बालकोंको देखकर आचार्य पूछने लगे कि-तुम कौन हो ! और तुम्हारा नाम क्या है ? बालकोंने उत्तर दिया कि हम श्रावक के पुत्र हैं और हमारा नाम १ पृथ्वीकाय २ अपकाय, ३ तेउकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, और ६ त्रसकाय यों छ के छ नाम हैं आचार्यने विचार किया मैंने आज पर्यंत षट्काया की रक्षा की परंतु इस में कुच्छ सार नहीं है और गृहस्थ को तो द्रव्य की आवश्यक्ता रहती है इसलिये इन छ ही के पास बहुत धन है इन को मारकर द्रव्य वस्त्र वगैरह छीन लूं, जिस से मैं सुख पूर्वक भोग भोगवूंगा यों विचार कर छेही को मारडाले और उन के वस्त्र आभरण वगैरह छीन कर अपने पात्र में भर लिये शिष्य देवताने विचार किया कि-आचार्य में दया तो नहीं रही परन्तु अब लज्जा है कि नहीं? जो लज्जा होगा तो मैं पीछा इन को धर्म में स्थिर कर सकूंगा ऐसा विचार कर उस ने एक आर्या का रूप बनाया वह उत्तम वस्त्राभूषणों से सज्ज बनी हुइ आचार्य को नमस्कार करने लगी आचार्य बोले कि-क्यों धर्म का लजाती है ! साध्वी बोली अपने अवगुन तो नहीं देखते हैं और दूसरे के झूठे बताते हो, मुझे झोली दिखा फीर मैं बता दूं इतना सुनते ही आचार्य आश्चर्य चकित हो गये और लज्जित बनकर आगे चले. अब शिष्य देवताने देखा कि लज्जा तो है इस से आगे एक गाम वैक्रिय किया उस में के बहुत श्रावक श्राविका सब आचार्य की विनंति करनेको आये और गांवमें लेगये फीर गोचरी को विनंतीकी परंतु आचार्य अपनी

होगा और दुःखी बनाने ...

अपन का चक्रवर्ती के राज्य में नित्य प्रत्येक घर में एक दिन भोजन करने का और एक महोर दक्षिणा मिलने का मांगना चाहिये ब्राह्मणने चक्रवर्ती से वैसाही मांगा तब चक्रवर्तीने निर्मांगी जान वैसा दिया पहिले दिन चक्रवर्ती के यहां सूर्यपाक नामक रसमय भोजन बना कर उन दोनों को जिमाये और एक महोर दक्षिणा भी दे कर विदा किया दूसरे दिन दूसरे घर भोजन किया परंतु चक्रवर्ती के भोजन जैसा स्वाद देखा नहीं तब वह ब्राह्मण झूरने लगा कि छे ही खंड राज के सब घरों में भोजन करना पूरा हो कर पीछा चक्रवर्ती के यहां कब भोजन का वारा आवे और सूर्यपाक भोजन करूं! जिस प्रकार उसे पीछा सूर्यपाक नामक रसमय भोजन मीलना दुर्लभ होगया वैसे ही इस जीव को मनुष्य जन्म की सामग्री मिलना बहोत कठिन है ॥ १ ॥ दूसरा पासे का दृष्टांत-पाटली पुर नगर में एक ब्राह्मण के घर दांत सहित पुत्र का जन्म हुआ, उस का नाम चाणक्य दिया निमत्तिये को पूछने से कहा कि यह राजा होगा ब्राह्मणने विचार किया कि जो राजा होता है उस की गति अच्छी नहीं होती है ऐसा जान उस के दांत घीसे और निमित्तिये से पूछा तब कहा कि यह राज्याधिकारी होगा जब चाणक्य योग्य अवस्था को प्राप्त हुआ तब ज्योतिषी वगैरह विद्या में प्रवीण बना उस वक्त पाटली पुर का नंद राजा राज्यारूढ होने के लिये सज्ज हुआ, परंतु किसी कार्य प्रसंग से राज्यसिंहासनपर बैठ सका नहीं तब चाणक्य उस सिंहासनपर जा बैठा ऐसा देख राजा क्रोधातुर होगये परंतु ब्राह्मण को अवध्य जान कर उसे देश निकाल कर दिया वह रुष्ट होकर पाटली पुरका राजा बनने का उपाय

॥ चुतुरगा नामक तृतीय मध्ययनम् ॥

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणिहजंतुणो ॥ माणुसत्त सुई सद्धा संजमामि वीरिया॥१॥

दूसरे अध्ययन में परिषह का कथन किया धर्म साधन के लिये परिषह सहन करते हैं और धर्म की साधना चार अग की प्राप्ति से होती है सो तीसरे अध्ययन में कहते हैं-इस जीव को १ मनुष्य जन्म, २ शास्त्र श्रवण ३ शुद्ध धर्म में श्रद्धा और ४ धर्म में पराक्रम करना; ये चार अग कि जो मुक्ति साधन कराने वाले हैं इनकी प्राप्ति होना बहुत दुर्लभ है ॥१॥ इन पर दश दृष्टांत कहते हैं—गाथा—चुल्लगे पासग धन्ने जुये रयणेय सुमिण चक्के कुम्म जुगे परमाणुं दसदिट्ठंता॥१॥ पहिले चुल्लक का भोजन दृष्टांत—ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बालावस्था में देशाटन करते हुए एकदा एक अटवि में मार्ग भूल जाने से एक ब्राह्मणने मार्ग बताया उस का उपकार मानकर उस से कहा कि जब मुझे कंपिलपुर का राज्य प्राप्त होजावे तब तू मिलना कालान्तर से ब्रह्मदत्त वहां का राजा होगया ऐसा सुन कर ब्राह्मण राजा के पास आया चक्रवर्तीने दुःख में सहायता की है ऐसा जान कर उस का बहुत आदर सत्कार किया और कहा कि तेरी जो इच्छा होवे सो मांग ब्राह्मणने कहा कि मैं मेरी स्त्री से पूछकर मांगूंगा अब वहां से वह ब्राह्मण अपनी स्त्री से आकर पूछने लगा, तब स्त्रीने ऐसा विचार किया कि यह राजा बन जावेगा तो मुझे छोड देगा, इसलिये उस से कहा कि अपने ब्राह्मण को राज्य पाने की क्या जरूरत है राज्य में फसने से [illegible] क्रिया का भी नाश

होगा और दुःखी बनोंगे इस से अपन को ऐसा मांगना चाहिये कि जिस से अपनी आजीविका सुखपूर्वक चलसके अपन का चक्रवर्ती के राज्य में नित्य प्रत्येक घर में एक दिन भोजन करने का और एक महोर दक्षिणा मिलने का मांगना चाहिये ब्राह्मणने चक्रवर्ती से वैसाही मांगा तब चक्रवर्तीने निर्मोगी मान वैसा किया पहिले दिन चक्रवर्ती के यहां सूर्यपाक नामक रसमय भोजन बना कर उन दोनों को जिमाये और एक महोर दक्षिणा की दे कर विदा किया दूसरे दिन दूसरे घर भोजन किया परंतु चक्रवर्ती के भोजन जैसा स्वाद देखा नहीं तब वह ब्राह्मण झूरने लगा कि छे ही खंड राज के सब घरों में भोजन करना पूरा हो कर पीछा चक्रवर्ती के यहां कब भोजन का वारा आवे और सूर्यपाक भोजन करूं ! जिस प्रकार उसे पीछा सूर्यपाक नामक रसमय भोजन मीलना दुर्लभ होगया वैसे ही इस जीव को मनुष्य जन्म की सामग्री मिलना बडी कठिन है ॥ १ ॥ दूसरा पासे का दृष्टांत-पाटली पुर नगर में एक ब्राह्मण के घर दांत सहित पुत्र का जन्म हुआ, उस का नाम चाणक्य दिया निमित्तिये को पूछनें से कहा कि यह राजा होगा ब्राह्मणने विचार किया कि जो राजा होता है उस की गति अच्छी नहीं होती है ऐसा जान उस के दांत घीसे और निमित्तिये से पूछा तब कहा कि यह राज्याधिकारी होगा जब चाणक्य योग्य अवस्था को प्राप्त हुआ तब ज्योतिषी वगैरह विद्या में प्रवीण बना उस वक्त पाटली पुर का नंद राजा राज्यारूढ होने के लिये सज्ज हुआ, परंतु किसी कार्य प्रसंग से राज्यसिंहासनपर बैठ सका नहीं तब चाणक्य उस सिंहासनपर जा बैठा ऐसा देख राजा क्रोधातुर होगये परंतु ब्राह्मण को अवध्यजान कर उसे देश निकाल कर दिया वह रुष्ट होकर पाटली पुर का राजा बनने का उपाय

दूसरे एक गांव में आया वहां एक समर्भा स्त्री को चंद्रमा पीने का दोहद उत्पन्न हुआ उसे चाणक्यने दुध में चंद्रमा का प्रतिबिम्ब देखा कर घोलकर पिलाया यों उस का दोहद पुरा कर दिया और चाणक्यने विचार किया कि-यह लरका राजा होगा पुत्र का जन्म हुआ और वह बडा हुआ तब चाणक्य फीरता हुआ वहां आया उस लडके को बालकों के साथ क्रीडा करता देखा तो आप राजा बना है और अन्य को अपने सेवक बनाये है इस से उस लडके को पहिचान लिया कि यह लरका वही है कि-जिस की माताने गर्भ होने पर चंद्रमा घोलकर पीने का विचार किया था उसने उस लडके को अरमा कर अपने साथ लिया पढाकर सब कला में निपुण बनाया उस लडके के पुण्य से बहुत द्रव्य भी मिल गया द्रव्य के योग से सेना बनाई किसी छोटे राज्य का अधिकारी बन राज्य वृद्धि करने लगा यों करते २ बहुत राजाओं को साथ लेकर पाटली पुर आया और नंद राजा का पराजय कर उस लडके को गादी पर बैठाया यह चंद्रगुप्त राजा के नाम से प्रसिद्ध हुवा उस का अधिकारी चाणक्य बना एकदा उस को देवताने पराजय पासे दिये इस मे कोई भी चाणक्य को जीत सके नहीं चाणक्य द्यूत खेलने लगा और एक दिनार का सुवर्ण थाल रखकर बोलने लगा कि-जीतने से एक दीनार लेवूं और हारने से सब थाली देवूं कई एक द्यूत खेलने आये परंतु कोइ जीत सके नहीं एकदा एक कठिआरा का मन एसी दिनार की थाली देखकर ललचाया और मोमी बेचते २ बहुत दिनों में एक महोर बनाई और उस से चाणक्य के साथ खेलने लगा वह महोर हार गया पुनः मोमी बेचने लगा और एक महोर प्राप्त की

का कथन तो क्षण २ में पर्याय पलटने आश्री है और उनोंने द्रव्य आश्री ग्रहण किया, व विचरत हुए राजगृही नगरी आये वहां खेवरक्ष दानीने इन का अपमान किया साधु बोले कि-श्रावक होकर साधुका अपमान कैसे करते हो? तब वह बोला कि-क्षणिकवाद से तुम्हारा साधु पना भी क्षणिक है यों समजाये परंतु वे समजे नहीं यह चौथा निन्हव हुआ ॥ ४ ॥ कथा ॥ ४४ ॥ श्री वीर निर्वाण से २२८ वर्ष पीछे उल्लुका नदी के किनारे पर गंगाचार्य रहते थे और दूसरे किनारे पर उन का शिष्य धनगुप्त रहता था यह किसी कारन से नदी उतर कर गुरु के पास जाते पाँव को पानी ठंडा लगा और उपर मस्तक को सूर्य का ऊष्ण ताप लगा तब विचार हुआ कि भगवान जो कहते हैं कि-एक समय में दो उपयोग होवे नहीं सो मिथ्या है; प्रत्यक्ष मुझे दो उपयोग प्रवत रहे हैं आगे एक समय में दो कार्य होवे वैसी प्ररूपना करने लगा गुरु ने बहुत समजाया और समय की सूक्ष्मता बताइ परंतु माना नहीं एकदा मिनाग्रानुसार यक्षने इन को ऐसी प्ररूपना करते देख कर मुद्गल उठाकर बहुत डराये तो भी अपना कदाग्रह छोडा नहीं यह पांचवा निन्हव हुआ ॥५॥कथा॥४५॥ श्रीवीर निर्वाण से ५४४ वर्ष पीछे अतरणक नगर में श्री बलनृप की सभा में एक पंडित पेट को लोहे का पट्टा बांध कर आया पूछने से बोला कि विद्या से मेरा पेट फटता है इस से कोइ मुझे पराजित कर मेरा पेट हलका करने वाले को ढूंढता हूं आप के यहां पुष्पक उद्यान में श्री गुप्ताचार्य विज्ञानी सुने हैं उन से संवाद करने आया हूं तब [illegible] आदि चतुर्विध संघने मीलकर आचार्य से विनंति की आचार्यने अपना रोहगुप्त

नामक शिष्यको सभा चतुर जानकर विवाद करने के लिये राजसभा में भेजा उस पंडित से किसी प्रकार से जय नहीं होता देखा तब रोहगुप्त साधुने एक सूत का डोरा खूब बटकर उस के सन्मुख रख उस से पूछा कि— यह जीव है या अजीव है ? तू जीव कहता है तो सूत का डोरा है और अजीव कहता है तो क्यों हीलता है ? इस में वह पंडित निरुत्तर होगया तब रोहगुप्तने नो जीवा नो अजीवा इस तीसरी राशी की स्थापना से उस पर जय कर अपने गुरु के पास आया गुरु के सन्मुख सब वृत्तांत कहा गुरुने कहा भगवानने जीव अजीव यों दो राशि कही हैं, तैने जिनाज्ञा की विराधना की इस से तू राज्य सभा में जाकर मिथ्यादुष्कृत दे रोहगुप्तने गुरु के वचन की उत्थापना कर गुरु के साथ छ महिने तक विवाद किया वहां द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छे वस्तु की स्थापना की गुरु होले कुत्रिकापन की दुकान से तीनों वस्तु मंगला वहां उस न जाकर जीव वस्तु मांगी तो दी अजीव वस्तु मांगी तो दी और जब नो जीव नो अजीव वस्तु मांगी तब उस की निर्भत्सना कर निकाल दिया इतना होने पर भी अपना दुराग्रह का त्याग किया नहीं यह छट्ठा निन्हव हुआ ॥ ६ ॥ कथा ॥ ७ ॥ श्री वीर निर्वाण से ५८४ वर्ष पीछे दशारणभद्र पुर के इक्षाग्र उद्यान में श्री आर्य रक्षित सूरी वृद्धावस्था के कारन स्थिरवास रहे थे उन को १ गोष्टामाहिल २ फल्गुरक्षित, और ३ दुर्बलिका पुष्प, इन नाम के तीन बडे विद्वान शिष्य थे एकदा मथुरा नगरी में अक्रिया वादीने बहुत पाखंड मचाया, तब श्री संघने दशारन पुर आकर आचार्य को विनंती की आचार्यने वादी

विजय गोष्ठामहिल को चौमासा करनें के लिये मथुरा भेजे, वहां उनाने उस का पराजय किया इधर आचार्य अपना आयुष्य नजदीक जानकर श्री संघ को बोलाकर बोले कि-दुर्बलिक रक्षित निष्पाव घट समान है फल्गुरक्षित तैल घट समान है और गोष्ठा महिल घृतघट समान है इतना कह आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए श्री संघने दुर्बलिक पुष्प को आचार्य पदपर नियत किये चतुर्मास पूर्ण हुए पीछे गोष्ठा महिल आये, दुर्बलिक पुष्प के आचार्य पद मीला जान आप दूसरे उपाश्रय में रहे आचार्य को मालुम होते उन को विनय पूर्वक अपने उपाश्रय में लेगये तो भी उस का अमरोप मिटा नहीं एकदा शिष्यों सूत्राभ्यास करते २ ऐसा सूत्र आया कि जीव को कर्म बंध स्पष्ट व निकाचित यों दो प्रकार का है उस पर विचार हुआ कि निकाचित बंध छूटे नहीं और जीव मोक्ष आवे नहीं इस में शिष्यों में परस्पर विरोध कराने के लिये गोष्ठा महिल बोला कि-यह कथन मिथ्या है जीव को जो कर्म स्पर्श कर रहे हैं वे जैसे सर्प को कांचली अथवा शरीर को वस्त्र रहता है वैसे है जैसे नाग की कांचली उतरने से नाग मुक्त होता है, वैसे ही जीव के कर्म दूर होने से जीव मुक्ति में जाता है शिष्यों को ऐसा कथन रुचा नहीं इस से आचार्य से पुछने पर कहा कि जो अभव्य है उन के निकाचित कर्म बंध है उन की मुक्ति नहीं होती है; जीव को कर्म लोहपिण्ड अग्निवत् है वे जीव के देश से मिल कर रहे हैं जैसे लोहपिण्ड अग्नि दूर होती है वैसे ही कर्म भी दूर होते हैं गोष्ठामहिलने इस बात का स्वीकार किया नहीं दूसरी बात प्रत्याख्यान आश्री निकली तब गोष्ठा महिल बोला कि-काल की मर्यादा

॥९॥ सुईंच लद्धुं सद्धंच वीरियं पुण दुल्लहं॥ बहवे रोयमाणावि,नो य णं पडिवज्जई

॥ १० ॥ माणुसत्तंमि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दहे ॥ तवस्सी वीरियं लद्धुं,

से कोइ प्रत्याख्यान नहीं होवे हैं क्यों कि प्रत्याख्यान पूरे होवे ही उस वस्तु को भोगने की इच्छा होवी है आचार्य बोले कि-जो अवधि न होवे तो साधु मरकर देवलोक में गये पीछे स्त्रियादि का सेवन करे तो व्रत भंग का दोष लगे परंतु यह बात गोष्टमहिलने मानी नहीं श्री संघने गोष्टमहिल को समझाने के लिये तेला कर शासन देव की आराधना की शासन देव द्वारा श्री श्रीमंदर स्वामी से इस बात का खुलासा पुछाया शासन देवने पीछा आकर कहा कि आचार्य जो कहते हैं वह सत्य है इतना करने पर भी गोष्ट महिल्ने माना नहीं तब श्री संघने उसे निन्हव जानकर संघ से बाहिर किया यह सातवा निन्हव हुवा ॥७॥इस प्रकार संयम मार्ग प्राप्त होने परभी धर्मसे भ्रष्ट होते हैं ये सातों निन्हव उववाइ सूत्रमें कहे हैं कथा ४७॥ कदाचित् मनुष्य जन्म,शास्त्र श्रवण और धर्ममें श्रद्धा ये तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं परंतु धर्म मार्ग में बल वीर्य का फोडना दुर्लभ है ऐसे जीव बहुत हैं कि जो धर्म का सत्य स्वरूप समझते हुए भी उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर, सद्धर्म श्रवण कर, उस में श्रद्धा रख, और धर्म कार्य करने का वीर्य भी प्राप्त कर आश्रव का निरूंधन करने-

समुद्दे निद्भुण रय ॥ ११ ॥ साही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ॥ निव्वाण परम जाइ, घयसित्ति व्व पावए ॥१२॥ विगिंच कम्मुणोहेउ, जस सचिणु खतिए पाढव सरीर हिच्चा, उड्ढं पक्कमइ दिस ॥ १३ ॥ विसालसेहिं सीलेहिं जक्खा उत्तर उत्तरा ॥ महासुक्का व दिप्पता, मन्नता अपुणच्चव ॥ १४ ॥ अप्पिया देवका-मार्णं, कामरूव विउव्विणो ॥ उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति पुव्वा वाससया बहु ॥ १५ ॥ तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ॥ उविंति माणुस जोणिं से दसगे

वाले तपस्वी कर्म रज का दूर करते हैं ॥ ११ ॥ स्वभाव से सरल जीव को कषाय रहित निर्मलपना प्राप्त होता है और कषायादि रहित जीव धर्म में स्थिर रहता है फीर जैसे घृत से सिंचन कराई हुई अग्नि ऊंची जाती निर्मल दीखती है वैसे ही वह जीव निर्वाण को प्राप्त होता निर्मल दीखता है ॥१२॥ मिथ्यात्व, अव्रत अशुभ योग, कषाय और प्रमाद इन पांचों कर्म के हेतुओं का त्याग कर क्षमादि दश धर्म से संयम धर्म का जो जीव स्पर्श करते हैं वे पृथ्वी काया के कच्चे भाजन समान उदारिक शरीर का त्याग कर ऊर्ध्व दिशा देवलोक में गमन करते हैं ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के व्रतादिक से शुद्ध क्रियाओं से उत्तरोत्तर देवता होते हैं वे चंद्रमा समान देदीप्यमान होते हैं और ऐसा मानते हैं कि हम यहां से कदापि चवेंगे नहीं ॥१४॥ देवताओं के काम भोगों में आसक्त, इच्छानुसार वैक्रेय करनेवाले ऐसे ऊर्ध्व देवलोक में अर्थात् बारह देवलोक नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में सैंकडों पूर्व तक रहते हैं ॥१५॥ वे देवता

॥९॥ सुईंच लद्धुं सद्धंच वीरियं पुण दुल्लहं ॥ बहवे रोयमाणावि,नो य णं पडिवज्जई ॥ १० ॥ माणुसत्तंमि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ॥ तवस्सी वीरियं लद्धुं,

से कोइ प्रत्याख्यान नहीं होवे हैं क्यों कि प्रत्याख्यान पूर्ण होवे ही उस वस्तु को भोगने की इच्छा होती है आचार्य बोले कि जो काल अवधि न होवे तो साधु मर कर देवलोक में गये पीछे स्त्रियादि का सेवन करे तो व्रत भंग का दोष लगे परंतु यह बात गोष्टमहिलने मानी नहीं श्री संघने गोष्टमहिल को समझाने के लिये तेला कर शासन देव की आराधना की शासन देव द्वारा श्री श्रीमंदर स्वामी से इस बात का खुलासा पुछवाया शासन देवने पीछा आकर कहा कि आचार्य जो कहते हैं वह सत्य है इतना करने पर भी गोष्ट महिलने माना नहीं तब श्री संघने उसे निन्हव जानकर संघ से बाहिर किया यह सातवा निन्हव हुवा ॥७॥ इस प्रकार संयम मार्ग प्राप्त होने परभी धर्मसे भ्रष्ट होते हैं ये सातों निन्हव उववाइ सूत्रमें कहे हैं कथा ४७॥ कदाचित् मनुष्य जन्म,शास्त्र श्रवण और धर्ममें श्रद्धा ये तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं परंतु धर्म मार्ग में बल वीर्य का फोरना दुर्लभ है ऐसे जीव बहुत हैं कि जो धर्म का सत्य स्वरूप समझते हुए भी उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर, सद्धर्म श्रवण कर, उस में श्रद्धा रख, और धर्म कार्य करने का वीर्य भी प्राप्त कर आश्रव का निरुंधन करने-

॥ असस्कृत जीवित नामक चतुर्थ मध्ययनम् ॥

असस्वय जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण ॥ एव वियाणाहि जणे पमत्ते कण्णुविहिंसा अजया गिहिंति ॥ १ ॥ जेपावकम्मेहि घण मणूसा, समाययति

तीसरे अध्ययन में चार अंग की प्राप्ति दुर्लभ कही चार अग प्राप्त होने पर भी आयुष्य का भरोसा नहीं है, ऐसा जान प्रमाद नहीं करना सो चौथे अध्ययन में कहते हैं टुग हुवा आयुष्य किसी भी प्रकार सधाता नहीं है अर्थात् आयुष्य कदापि बढसकता नहीं है और वृद्धावस्था प्राप्त होने इन्द्रियों जब क्षीण होजाती है तब इस जीव का कुटुम्ब वगैरह कोइ भी शरण देने वाले नहीं होते हैं इस लिये जहां लग आयुष्य टुटे नहीं और वृद्धावस्था नहीं आइ है वहां लग तू प्रमाद मत कर और ऐसा जान कि इन्द्रियों को अपने वश में नहीं करने वाला प्रमादी हिंसक मनुष्य किस का शरण अंगीकार करेगा ? अर्थात् उस को धर्म सिवाय और कोइ भी शरण भूत नहीं हो सकता है ॥ १ ॥ इस पर अट्टणमल की कथा कहते हैं उज्जयनी नगरी के जितशत्रु राजा के समय में वहां अट्टणमल नामका एक प्रसिद्धमल रहता था वह मल्लयुद्ध में ऐसा था कि इस का कोइ पराजय नहीं कर सकता था एकदा वह मल्ल सिंहागिरी राजा की राज्यधानी में गया और राजा के सन्मुख वहां के सब मल्लों का पराजय कर अपने देश में आया यों दो तीन बार वहां जाकर विजय करने से सिंहगिरि राजाने विचार किया कि-अट्टण मल्ल प्रतिवर्ष यहां आकर विजय करता है, इस से उस का ही विजय करे ऐसा मल्ल बनाना यों

अभिजायए ॥ १६ ॥ खित्त वत्थु हिरण्णच, पसवो दासपोरूस ॥ चत्तारि काम खधाण तत्थ से उववज्जइ ॥ १७ ॥ मित्तव नायव होइ, उच्चगोएय वण्णवं ॥ अप्पायंके महापन्ने अभिजाए जसो बले ॥१८॥ भोच्चा मणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउय ॥ पुव्विं विसुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥ १९ ॥ चउरंग-दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया ॥ तवसा धूतकम्मंसे सिद्धे हवइ सासए ॥ २० ॥ त्तिबेमि ॥ इति चतुरंगी नामक तइय अज्झयण सम्मत्त ॥ ३ ॥ * * *

वहां यथोचित स्थान में सुख पूर्वक रहकर आयुष्य का क्षय होने से वहां से चवकर मनुष्य योनि में उत्पन्न होवे हैं और वहां दश वस्तु प्राप्त करते हैं ॥१६॥ इन दश बोलका नाम कहते हैं १ खुल्ली भूमिका क्षेत्र, २ ढका भूमि गृहादि, ३ सुवर्णादि धन और ४ पशु आदि दास दासी प्रमुख ये चार काम का स्कंध जहां होता है वहां वह उत्पन्न होता है उक्त चार बोलका एक ही बोल लिया है॥१७॥-२ उनके बहुत मित्र होवे, ३ बड़ी ज्ञाति होवे ४ ऊंचा गोत्र होवे ५ शरीरका वर्ण अच्छा होवे, ६ रोग रहित शरीर होवे, ७ बुद्धिवाला होवे ८ विनयवान होवे ९ यशवान होवे, और १० बलवान होवे इन दश बोल को वह प्राप्त करे ॥ १८ ॥ अपने आयुष्य पर्यंत मनुष्य संबंधी अनुपम भोग भोगवकर विशुद्ध सद्धर्म में पहिले कहे निष्कलंक बोध बीज रूप सम्यक्त्व की प्राप्ति करनेवाले मनुष्य जन्मादि चार अंग को दुर्लभ मानकर संयम को अंगीकार करते हैं वे तप से कर्म मैल को दूर करके शाश्वत सिद्ध होते हैं ॥ २० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं यह तीसरा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥३॥

अमइ गहाय ॥ पहायते पासपयाट्टिए नरे, वेराणुबद्धा नरय उवेंति ॥ २ ॥ तणे जहा सधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ॥ एवं पया पेच्च इह च लोए, कडाण

अंत में कुटुम्ब मुझे दुःख देंगे ऐसा विचार कर कोइ महात्मा के पास दीक्षा लेकर देवलोक गया यह महणमल की ४८ वी कथा हुई ॥ ४८ ॥

*   *

जो मनुष्य धन को अमृत समान मान कर पाप कर्म से एकत्रित करते हैं वे पुत्र कलत्रादिक के मोह वश में बंधाए हुवे धन को छोड कर षट्काया से जीवों के वैर से बंधाए हुए नरक में उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥ किसी गाम में एक चोरने अपने घर में एक कुवा बनाया था जो धन लावे वह सब उस में डालता था उसने स्त्री के साथ लग्न किया, वह गर्भवती हुइ तब चोरने विचार किया कि इस को जो पुत्र होगा वह मुझे मार कर मेरा धन ले लेगा इस लिये उस स्त्री को उस कूवे में मार डाली और दूसरी स्त्री से लग्न किया वह भी गर्भवती हुइ और पूर्वोक्त विचार से उसे भी मार डाली फिर एक रूपवती स्त्री से लग्न किया और उस को भी गर्भ रहा परंतु उस पर मोह होने से उस को मार सका नहीं सवा नव मास में उसने पुत्र प्रसवा जो नव वर्ष का हुवा तब चोरने विचार किया कि मेरे धन का मालिक यह स्त्री व पुत्र हो जायेंगे इस से इन को मार डालूं यों विचार कर स्त्री का मार कर कूवे में डाल दी यह देख कर उस का लडका भय भीत होगया और बाहिर आकर रोने लगा रोने का कारन गाम पुरुषोंने पूछने पर

विचार करके एक बड़ा बलवान मच्छी मार देखा और उसे मल्लयुद्ध में प्रवीण बनाया। जब अट्टणमल्ल वहां आया तब उस मच्छीमार से मल्लयुद्ध किया, जिस में वह हार गया और अपमान पाकर अपने देश चला गया अब उसने अपना अपमान करने वाले का वैर लेने का इरादा किया इस से क्षेत्र दूसरा खेती करने वाला युवान मनुष्य हृष्ट पुष्ट देखा उस के बल की परीक्षा करके उस को अपनी मल्ल विद्या में प्रवीण बनाया और सिंहगिरि राजा की सभा में आकर उस मच्छी मार मल्ल से युद्ध कराया वहां दो दिन के युद्ध में दोनों में से कोइ हारा नहीं वैसे ही जीता भी नहीं मच्छी मार अपने गर्व में अपना दर्द किसी को कहे नहीं और वह कृषिकार मल्ल अपनी सब हकीकत उस अट्टण मल्ल स कहे, जिस से वह औषधि आदि प्रयोग से अच्छा बना दवे तीसरे दिन में मच्छीमार मल्ल का पराभव कर दिया और राजा से बहुत द्रव्य लिया वह द्रव्य उस कृषिकार मल्ल को दिया अब वह मल्ल वैर का बदला लेने से आनंदित होता हुआ अपने घर आया तब उस के पुत्रोंने कहा कि-वृद्धवस्था से तुम निर्बल होगये हैं, अब तुम को कोई द्रव्य देंगे नहीं तो बैठे २ क्या खावेंगे ऐसा कहकर उस के कुटुम्बने उस को छोडदिया वह निराश्रित बन् कोशाम्बी नगरी आया वहां किसी जोगी के पाससे उसन रसायन खाइ इस से वह पुनः बलवान बनकर राज सभा में युद्ध करने गया और उस की जीत हुइ वह दान लेकर घर आया अब इस ने विचार किया कि-सब कुटुम्ब धन के अर्थी है मैने एक बार धन से विनय किया अब दूसरी बार वृद्धावस्था के कारन से औषधि भी गुण करेगी नहीं

कम्म ॥ कम्मस्स ते तस्स उवेयकाले, न बंधवा बधवय उवेंति ॥ ४ ॥ वित्तेण ताणं न लभे पमत्तो इमम्मि लोए अदुवा परत्था ॥ दीवप्पणट्ठेव अणत मोहे नेयाउय

ससार में ऊंच नीच कुल में रहा हुआ जो मनुष्य स्वजनादि के लिये कि-जिस में बहुत का विभाग होवे वैसा साधारण कर्म करता है उस मनुष्य को जवकर्मो वे उदय में आते हैं तब उस के स्वजनादि बंधु बंधुपना नहीं रखते हैं अर्थात कोई भी उसे दुःख से मुक्त नहीं कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इस पर हलवाइ का दृष्टांत कहते हैं—किसी राजा के यहां उन के जामाता आये इस से उसने हलवाइ को बोलाकर घृत मैदा वगैरह देकर घेवर बनाने का कहा उसने प्रथम चार घेवर तयार कर छिपा दिये और समीक्षा अनुसार उस की स्त्रीने अपने पुत्र को भेजा, जिस के साथ वे चार घेवर अपने घर पहुंचा दिये अच्छे ताजे घेवर देख कर उस स्त्री का मन चलाय मान हुआ और एक आप खुद खाई, दूसरा पुत्र को दिया और तीसरा पुत्री को दिया चौथा घेवर अपने पति के लिये रखा था; इतने में उसका जमाइ आया उस का वह रखा हुआ घेवर खिला दिया अब सब काम से निवर्त कर वह हलवाइ अपने घर आया और भोजन करने बैठा तो उसकी स्त्रीने मामूली भोजन परूस दिया पूछने से सब वृत्तांत कह सुनाया तब अपने मन में ही गरगुराता चुप हो गया इधर घेवर कम देख राजा को इस हलवाइ पर शंका हुई, और सीपाइयों से हलवाइ को पकड मंगवाया उस को

कम्माण न मुक्ख आत्थि ॥ ३ ॥ ससार मावन्न परस्स अट्ठा, साहारण ज च करेइ

लडके ने सब हाल कह सुनाया इस पर राज पुरुषोंने उस चोर को पकड कर शूली पर चढा दिया और सब धन ले लिया परंतु वह धन उस को शरण देनेवाला हुवा नहीं यह चोरकी कथा हुई॥४८॥

जैसे पाप कर्म करनेवाला चोर अपने चोरी के कर्म सहित संधि (खात) मुख में पकडाया हुवा पीडित होता है, वैसे ही जीव इस लोक व परलोक में पापकारी कर्मों से पीडित होते हैं; उन को उन बंधे हुए कर्मों से विना भोगवे कदापि मोक्ष नहीं होता है॥१॥ चोर की कथा-एक सुतार चोर करीगरी में बडा चतुर था जहां कहीं चोरी करने जाता था वहां खात देते वडा नकसीदार खात देता था एकदा किसी धनवान के यहां लकडी के पटियेवाली दीवाल में खात देने लगा तब उस में तीक्ष्ण पांखडियोंवाला कमल फूल कोरा उस में पांव रखकर वह जैसे अंदर प्रवेश करने लगा कि—घर के मालकने उस के पांव पकड लिये और बाहिर से चोरोंने मस्तक पकडा अंदर व बाहिर खींचाताण होते २ लकडी की कोरी हुई कमल की पांखडीयों उस के शरीर में खूंच गई और वह बडा पश्चाताप करने लगा कि मेरे ही किये हुए कर्म का यह फल मुझे मिला है आखीर में घर धनी उस को नहीं छोडता देख तब साथवाले चोर उसका शिर काटकर भग गये ऐसे ही जो जीव कर्मोपार्जनमें अपनी चातुरता बताते हैं वे अपने कर्म से उस चोर जैसे इस लोक व परलोक में दुःखी होते हैं क्यों की कर्मों के फल भोगवे विना कदापि छुटका नहीं है यह पचास की कथा हुई ॥ ५० ॥ * *

घोरा मुहुत्ता अबल सरीरं, भारंड पक्खीव चर ऽप्पमत्ता ॥ ६ ॥ चर पयाइ परिसकमाणो, जंकिंचि पास इह मन्नमाणो ॥ लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा

राजा के सन्मुख ले गये राजा कोपातुर हो कर बोला कि राजा की आज्ञा का भंग करने वाला राजा के प्राण का नाश करने वाला गिना जाता है इस लिये इसे शूली पर दो प्रधान यह सुनकर घबराया और अपने घर का सब द्रव्य देकर ही पुत्रभिक्षा मांगी परंतु राजाने उसे छोडा नहीं यों धन दोनों लोक के दुःख से नहीं बचा सकता है वित्तेण ताण, इस पद पर यह कथा पूरी हुइ ॥२॥

द्रव्य निद्रा से सोते हुए परंतु भाव निद्रा से जगते हुए शीघ्रप्रज्ञी पण्डित किसी पर विश्वास करे नहीं क्योंकी काल बडा भयकर है और शरीर निर्बल है इस से जैसे अढाइद्वीप बाहिर रहने वाला भारंड पक्षी अप्रमादी होता हुवा विचरता है वैसे ही साधु विचरे ॥ ६ ॥—दृष्टांत भरत क्षेत्र के शंख पुर नगर के सुंदर राजा की सुंदरी रानी से उत्पन्न हुवा अगड़दत्त कुमार यौवनावस्था से उन्मत्त बना हुवा स्वेच्छा से नगर में फिर व्यभिचार करने लगा उस के त्रास से त्रासित हो कर नगर निवासियोंने राजा से विनंति की, कि-राजपुत्र को समझाओ, अथवा तो हमको रहन के लिये अलग स्थान दो राजाने रुष्ट हो कर कुमार को देश निकाल कर दिया अगड़दत्त फिरता हुवा बानारसी नगरी में पाठशाला के बाहिर बैठा उस के शिक्षक के पुछने पर अगड़दत्त कुमारने अपना सब वृत्तांत सुना दिया शिक्षकने

दहु मदहु मेव ॥ ५ ॥ सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पडिए आसुपन्ने मारने पर उसने सत्य हकीकत कह सुनाइ और कहा कि चार घेवर मैंने चुराये थे परंतु एक भी नहीं खाया है राजाने उस के कुटुम्ब को पकड मगवाया तब उस की स्त्रीने कहा कि–मैंने ऐसा माना था कि राजा साहबने लडके घेवर को खाने दिये होंगे, हम को क्या मालूम कि–यह हमारी इज्जत गमाने के लिये चोरियों करता फिरता है इत्यादि शब्दों में निर्भर्त्सना की घेवर खाने में तो सब खा गये परंतु प्रसंग पर सब बदल गये उस चोरी का फल हलवाइ को ही भोगना पडा यह कथा ॥ ८१ ॥

प्रमादि जीव ऐसा माने कि जब कर्म का उदय होगा तब धन देकर इस से मेरी रक्षा करलूंगा परंतु हे प्रमादि जीव ! इस लोक अथवा परलोक में जीव को धन से शरण नहीं मील सकता है जैसे किसीने रसकूपीका लेन के लिये दीपक लेकर गुफा में प्रवेश किया वहां दीपक बुझ जाने से मार्ग देखा नहीं और इधर उधर परिभ्रमण करने लगा वहां बिल में रहा हुवा किसी प्रचंड विषधर सर्प ने उसे दंश देकर मार डाला वैसे ही समकित रूप दीपक से मुक्ति मार्ग देखा हैं परंतु अनंत मोहनीय कर्म के उदय से देखा हुवा मार्ग भी बिना देखा जैसा होवे वह काल रूप सर्प के दंश से मृत्यु पाकर संसार रूप गुफा में परिभ्रमण करे ॥८॥ यहां कथा कहते हैं वसंतपुर नगर में भद्रसेन राजा ने पडह बजवाया कि आज कौमुदी महोत्सव है इस लिये गांव में किसी पुरुष मात्र को रहना नहीं प्रधान पुत्र वेश्या व्यसनी होने से उस के घर रहा गया मात्र मालूम होते राज पुरुषों ने उसे पकडा और

किया इस लिये इस गुफा का पटिया दूर कर अंदर आना वहां बहुत धन और मेरी कन्या है उसे तू ग्रहण करना वह अगडदत्त चोर को मारकर गुफा में गया और कन्या को चोर का वृत्तांत सुनाय कन्याने उसे अपने पिता का मारनेवाला जाना इस से वह कपट पूर्वक नम्रता से बोली कि आप इस पलंग पर आराम करो मैं आती हूं अगडदत्त विचार पूर्वक समजकर दूर खडा रहा कन्याने ऊपर जाकर एक बडी शिला पलंग पर डाली जिस से उस का चूरा हो गया अगडदत्त यह देख कोपातुर हो गया और उस कन्या का चोटा पकडकर सातवे दिन राजा के पास लाया वह कन्या अगडदत्त के हाथ में के छूटते ही आकाश में उड गई, यह देख सब लोग आश्चर्यचकित हो गये अगडदत्तने राजाको मरा हुआ चोर और गुफा में रहा धन बतलाया राजाने जिस का धन था उस को दे कर बाकी का भण्डार में रखा अगडदत्त को आधा राज्य दिया और कन्या से पाणिग्रहण करवाया अगडदत्त की कीर्ति विस्तृत हुई और उस के मातपिता उसका वृत्तांत सुनकर प्रधान भेजकर कुमार को अपने राज्यमें बोलाया और उस राजाने अगडदत्त को राज्य देकर संयम लिया अगडदत्त की रानी को एकदा सर्पने डंस दिया इस से वह मूर्च्छित हुई अगडदत्त मोह में अंध बना हुआ उस के साथ चिता में जलने लगा किसी विद्याधरनें उस का विष दूर किया और राजा रानी सुख पूर्वक रहने लगे एकदा पराजित चोर के भाइबंध अगडदत्त को मारने आये और महेल में छिपकर रहे रानी उस चोर का रूप देख कर मुग्ध हो गई और कहने लगी कि तुम मुझे अंगीकार करो तो मैं राजा को मार डालूं चोरोंने रानी के वच-

कहा कि तेरे पिता को मैंने पढाया है उस ने दिये हुवे द्रव्य से मैं सुख पूर्वक उपजीविका करता हूं तू भी मेरे यहां रहे और कलाभ्यास कर वह कुमार यहां रहकर कलाभ्यास करने लगा अन्यदा राजा का हस्ती मदोन्मत्त बनकर नुकशान करने लगा कोई भी उसे वश में कर सका नहीं, तब अगडदत्त कुमार वृक्ष पर चढकर हाथी की पीठ पर कूद पडा और मुष्टि प्रहार से उस का मद उतार दिया यहां के राजाने खुशी हो कर अगडदत्त को प्रधानपना दिया अन्यदा वहां गांव में चोरी होने लगी लोगों बहुत त्रास पाये इस से राजा के आगे अरज की राजाने डुंडी पिटवाइ कि- जो कोई चोर पकडे उसे आधा राज्य और मेरी कन्या देऊं. अगडदत्तने सात दिन में चोर को पकडने का कहा छ दिन चोर की तपास करते हुए चोर पकडाया नहीं तब दुःखित हो कर छठे दिन की रात्रि में वह फिरता था उसने योगी के रूप में चोर को देखा और उसे नमस्कार किया, योगी के पूछने पर कहा कि मैं निर्धनता से बहुत दुःखी हूं उसने कहा चलो धन देता हूं यों कहकर वे दोनों एक श्रीमान के घर आये और मंत्रप्रयोग से घर के सब मनुष्यों को निद्रस्थ कर धन के गठडे बांध कर एक गुफा में आये दोनों सो गये योगी रूप चोर को निद्रा आगइ जान अगडदत्त उस का सूर्य हस्त हाथ में ले कर और अपने सोनके स्थान अन्य काष्ट रख उस पर,वस्त्र ढक दिया, और आप दूर खडा रहा उस चोरने उठते ही उस लक्कड पर प्रहार किया यहां लक्कड देख वह चमक गया इतने में सूर्य

धारी॥ पुव्वाइ वासाइ चर ऽप्पमत्तो तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं॥ ८ ॥ सपुत्व गया और उस की बहिन उस मजुर को कूव में डालने के छल से हाथ पाँव धोने बैठी पाँव धोते उसने राजा के चिन्ह देख कर उस पर मोहित होगइ और कहा कि यदि आप मेरे भाइ को जीवित रखो तो मैं आप की साथ लग्न करूं और सब माल बतादूं राजाने उस का वचन स्वीकार किया तब उस ने कहा कि मेरा भाइ कल दिन को गाँव में भिक्षा मांगने आवेगा उसे तुम पकडना राजाने वैसे कर के चोर पकड लिया और कहा कि तेरी बहिन का मेरी साथ लग्न कर तो मेरे भंडार का तुझे स्वामी बनाऊं चोरने उस की बहिनाका लग्न राजासे कर दिया और राजाने अपने भंडार का स्वामी उस चोरको किया अब राजाने उसे समझाकर जिन का धन चोरी से लिया था उन को पीछा दिलवा दिया राजाने देखा कि अब इस के पास धन नहीं है, तब उस को मार डाला जैसे चोर के पास से धन मीलना बंध हो गया कि उस को मार डाला, वैसे ही इस शरीर रूप चोर को जीव रूप राजा संभाल कर रखते हैं जब उस के पास से तप संयम रूप माल निकलना बंध होवे तब साधु उस का त्याग करते हैं अर्थात् संथारा करते हैं यह मंडित चोर का कथा चौपनवी हुइ. ॥५४॥ *

जैसे मालिक अश्व शिक्षक से शिक्षित बना हुआ अपनी इच्छा का निरुंधन कर अपने स्वार की इच्छानुसार चलता है वह राजा के स्वारी योग्य होता है और अनेक प्रकार के दु:ख से मुक्त होता है वैसे ही अनेक पूर्व व वर्ष पर्यंत अपने छंदे को रोक अप्रमत्त पन विचरता हुवा मुनि शीघ्रमेव मोक्ष प्राप्त कर सकता है.

परिसाय मल्लावघसी ॥ ७ ॥छेवनिरोहण उवेइ मोक्ख, आसे जहा सिक्खिप वम्म

सुनकर विचार किया कि जिस के लिये राजा मरता की उस की ही यह नहीं हुई तो अपनी क्या होगी? ऐसे संसार को धिक्कार हो यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा धारन कर वनमें ध्यानस्थ रहा राजा कपट निद्रा में रानी की बात सुन रहा था वह आश्चर्य पाया उस की मोह निद्रा उडगइ और जाग्रत हुआ धिक्कार है मेरे जैसे मोहांध को और इन चारों को धन्य है यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की और निर्मल संयम पाल कर्म क्षय कर मोक्ष में गया यह भेषमयी कथा हुई ॥ ८१ ॥ * *

पाप से शंकित होता हुआ व संयम की विराधना नहीं करता हुआ मूलगुन उत्तरगुन में प्रवर्ते और संसार को पाश समान मानता हुआ जहांलग शरीर से तप क्षप का लाभ होवे वहां लग शरीर का पोषण कर संयम जीवितव्य की प्रति पालना करे, जब शरीर से कुच्छ भी लाभ नहीं मीलता देखे कि अवसर जानकर संथारा कर के शरीर तथा पाप कर्म रूप रजमेल दूर करे ॥ ७ ॥ बेणातट पाटण में मूलदेव राजा राज्य करता था उस गाम में एक मंडित चोर का उपद्रव बहुत था वह दिन को गाम में भिक्षा के छल से लोगों के घर देख जाता था, और रात्रि को चोरी करता था इस चोर से सब प्रजा त्रास पाने लगी, परन्तु चोर हाथ आया नहीं तब मूलदेव नोकर का वेष पहिन कर चोर को ढूंढने निकला एकदा मंडित चोर के हाथ यह मूलदेव मजूर आगया और उसे पकड कर उस के शिर पर गठडी रखकर अपनी गुफा के पास लेगया वहां उसे बाहिर रखकर वह अंदर

चोर आवेंगे जब निकाल डालूंगी एकदा ऐसा ही हुवा कि उस के घर में चोर आये उस समय यह आभूषण निकाल कर छुपा सकी नहीं, जिस से वे आभुषण चोर जबरी से निकाल ले गये अहो भव्य जीवों ! जैसे उस स्त्री के आभूषण चोर आने पर निकल सके नहीं और सब चोर लेगये, वैसे ही मृत्यु आये पीछे धर्म होगा नहीं इसलिये प्रथम ही करलेना चाहिये! यह ब्राह्मणकी कथा हुई ॥८८॥

अथ उत्तरार्ध दो पद पर कथा कहते हैं—किसी गांव का एक वणिक अपनी स्त्री को सब नौकर, चाकर, पशु वगैरह से भरा घर समझाकर परदेश गया वह स्त्री पीछे प्रमादी बन गइ और किसीकी संभाल रखी नहीं इस से नोकर, चाकर भी प्रमादी बन गये और पूरा वेतन भी नहीं मिलने से वे भग गये और पशुओं को पुरा खाने का नहीं मिलने से कितनेक मर गये वैसे ही व्यापार में भी नुकसान हुआ तब उस वणिकने अपने घर आकर स्त्री की प्रमाद दशा से होता हुआ नुकसान देखा, इस से उसने तुरत ही दूसरी स्त्री से लग्न किया और उस को घर का सब कार्य समझाकर परदेश जाते वैसे ही कहता गया कि पहिली स्त्री जैसे तू प्रमादी मत होना, अगरचेत् पहिली स्त्री जैसी होगी तो तेरा त्यागकर दूसरी स्त्री साथ लग्न करूंगा इस कथन को ध्यानमें रख लीने नोकर चाकरकी अच्छी तरह संभाल की और जानवरों का भी अच्छी तरह भरण पोषण किया इस से उस को अच्छा लाभ हुआ जब वह वणिक पीछा आया तब सब नोकर सेठानीकी प्रशंसा करने लगे,जिस से वह शेठप्रसन्न होकर धन घर सबकी मालकी उस स्त्री को दी ऐसे ही अहो भव्य जीवों' प्रमादका त्यागकर कायारूप नोकरकी संभालकर

मेव न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाण ॥ विसीयइ सिढिले आउयमि, कालोवणीए सरीरस्सभेये ॥ ९ ॥ खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ॥ समिच्च लोग समया महेसी, अप्पाणरक्खी चर अप्पमत्तो ॥ १० ॥ मुहु

॥ ८ ॥ जो मनुष्य धर्म करने के अवसर में प्रमादी बनकर विचार करे कि फिर में धर्म करूंगा ऐसी उपमाशाश्वत वादी लोग कहते हैं जब आयुष्य शिथिल हो जाता है मृत्यु नजीक आती है और आयुष्य का भेद होता है तब वह लेदित होता है कि-मैंने प्रथम धर्माचरण किया नहीं अब मैं धर्म नहीं करसकता हूं अब मेरा क्या हाल होगा ! ॥९॥ प्राणी मरण समय पर तत्काल त्याग रूप धर्म नहीं कर सकता है इस से प्रथम ही काम भोगों का त्याग कर, लोक का स्वरूप सम्यक् प्रकार से देख कर दुर्गति में पडते आत्मा की रक्षा करने वाले महर्षी अप्रमादि पने विचर ॥ १० ॥ इस गाथा के पूर्वार्ध दो पद पर एक ब्राह्मण की कथा कहते हैं किसी गांव में एक ब्राह्मण काशी से पढकर आया गांव के लोगोंने खुश हो कर उस को बहुत द्रव्य दिया इस से उस ने अपनी स्त्री के लिये आभूषण बनाये वह स्त्री दिन रात आभूषण पहिन रखे,उस गांव में चारों का भय हर होने से ब्राह्मणने उस की स्त्री से आभूषण निकालनेका कहा परंतु उसने माना नहीं उस स्त्रीका शरीर प्रतिदिन स्थूल होता गया और सब आभूषण बहुत सज्जड होगये उस समय भी ब्राह्मणने उस को समझाइ परंतु माना नहीं और कहा कि

तुच्छा परप्पवाई, ते पिज्ज दोसाणुगया परज्झा ॥ एते अहम्मेति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेओ ॥ १३ ॥ तिबेमि ॥ इति असखय णाम चउत्थ ज्झयण सम्मत्त ॥ ४ ॥ * * * * * *

होवे नहीं वहां लग अर्थात जाव जीव पर्यंत ज्ञानादि गुण में रमण करते हुए विचरे ॥ १३ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों सुधर्मा स्वामीने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा है ॥ यह चौथा असखय अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ४ ॥ * * * * *

मुहुं मोहगुणे जयत अणेगरूवा समण चरत ॥ फासा फुसती असमंजसंच, न तेसि भिक्खू मणसा पउस्से ॥ ११ ॥ मदाय फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मण। न कुज्जा॥रक्खिज्ज कोहं विणएज्ज माण, मायं न सेवेज्ज पहेज्ज लोहं॥१२॥ जे संखया

यम साधन सम्य प्रकार करते रहोगे तो गुरु प्रसन्न होकर ज्ञान रूपी भंडार देंगे यह वणिक की कथा हुई॥८६॥

वारंवार अनेक प्रकार के मोह गुन को जीतने वाले और ग्रामानुग्राम विचरने वाले श्रमण को असमंजस (खराब) स्पर्श स्पर्शे तो भी उनपर साधु द्वेष करे नहीं ॥ ११ ॥ शब्दादि व स्त्रियों का स्पर्श मंद बुद्धिवाले पुरुषों का विषय उत्पन्न करनेवाले होते हैं, ऐसे स्पर्श पर साधु कदापि मन करे नहीं और क्रोध मान माया व लोभ का त्याग करे ॥ १२ ॥ कितनेक संस्कार रहित असंबंध वाक्य बोलनेवाले तुच्छ बुद्धि के धारक, सदैव परमवाद में अर्थात् पर के दोष प्रगट करनेमें आसक्त राग द्वेष रूप शत्रुओं से पराभव पाये हुए व परवश पडे हैं इस लिये असमार्थी मनुष्यों के असंस्कारी वचनों पर तथा कुमवाद रूप अधर्म को छोड कर जहां लग अपने शरीर का भंग

१ कितनेक संखया शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा बोलने वाले के पक्ष में और कितनेक संस्कृत भाषा से अज्ञात नहीं बोलने वाले के पक्ष में कहते हैं परन्तु मैंने गुरुगम से उक्त अर्थ की धारना की है वैसा ही यहां किया है

दिट्ठे पर लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई ॥ ५ ॥ हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया ॥ को जाणइ परलोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो ॥ ६ ॥ जणेण सद्धिं होक्खामि, इइ वाले पगब्भई ॥ काम भोगाणु राएण, केसं संपडिवज्जइ ॥ ७ ॥ तओ से दंडं समारभई, तसेसु थावरेसु य ॥ अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसइ॥८॥ हिंसे वाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे ॥ भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मन्नइ

बने हुए जो कोई मृगादि पास में भयंकर नरकादि स्थानक कहा है वैसी कूट कपट वाली-मृषा भाषा बोलता है यह ऐसा करता है कि-दूसरा लोक मैने नहीं देखा है यह आनंद प्रत्यक्ष दिख रहा है ॥ ५ ॥ इन कामभोगों को छोड कर धर्म करो जिस से आगे सुख मिलेगा तो कहते हैं कि—ये काम भोग प्रत्यक्ष अपने हाथ में आये हुए हैं उन को मैं भोगता हूं क्यों कि दूसरे जन्म में कामभोग मिलेगा या नहीं यह संशय है और ऐसा कौन जानता है कि परलोक है या नहीं ॥ ६ ॥ और भी अज्ञानी जीव धृष्टपना धारन कर कहते हैं कि क्या हम एकही पापाचरण करने वाले हैं इतने जीवों की जैसी गति होगी वैसी ही हमारी भी होगी यों कामभोग में रक्त बने हुए इस लोक व परलोक यों दोनों लोक के क्लेश-दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् वह त्रस व स्थावर जीवों में दंड का समारंभ करता तथा सार्थक व निरर्थक जीवों के समुह की हिंसा करता है. ॥ ८ ॥ हिंसा करने वाला अज्ञानी मृषा बोलता है, मायावी बनता है, चुगलीखोर व धृष्ट होता है, और मदिरा मांस भोगता तथा अपनको अच्छा मानता है ॥ ९ ॥ जैसे अजाखिया घरी में उत्पन्न होता है मही ही खाता है और वह सूर्य के ताप में

॥ अकाम सकाम मरणं नामक पंचम अध्ययन ॥

अण्णवसि महोहसि, एगे तिण्णे दुरुत्तर ॥ तत्थ एगे महापण्णे, इमं पण्ह मुदाहरे ॥ १ ॥ संतिमे य दुवेठाणा, अक्खाया मारणंतिया ॥ अकाममरण चेव, सकाम मरण तहा ॥ २ ॥ बालाणंतु अकाम तु, मरण असइं भवे ॥ पंडियाण सकामतु उक्कोसेण सइंभवे ॥ ३ ॥ तत्थिम पढम ठाण, महावीरेण देसिय ॥ कामगिद्धे जहा बाले, भिसकूराइ कुव्वइ ॥ ४ ॥ जे गिद्धे काम भोगेसु एगे कूडाय गच्छइ ॥ नमे

आयुष्य की वृद्धि न होवे ऐसा चौथे अध्ययन में कहा, इसलिये मृत्यु का सुधारा करना यह पांचवे अध्ययन में कहते हैं—महा अशोध रूप दुस्तर संसार समुद्र तीरने का उपाय श्री तीर्थंकर भगवानने देवादिक की महा परिषद में विराजमान हो कर कहा है उसे श्रवण कर व उन अनुसार प्रवृत्ति करके एक २ महा पुरुष इस संसार रूप समुद्र को तीरे हैं वही उपाय यहां कहते हैं ॥ १ ॥ संसार में जीवों का मृत्यु दो प्रकार का कहा है तद्यथा—१ अकाम मरण व २ सकाम मरण ॥ २ ॥ इस में से अकाम मरण अज्ञानी जीवों को अनेक बार होता है और सकाम मरण पंडित पुरुषों को उत्कृष्ट एक बार होता है ॥ ३ ॥ श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने इस प्रकार कहा है—कि जो अज्ञानी काम भोग में गृद्ध होता हुवा रौद्र कर्म करता है उस को अकाम मरण होता है ॥ ४ ॥ पांचों इन्द्रियों के कामभोग में गृद्ध

धम्मं, अहम्म पडिवज्जिया ॥ बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ॥ १५ ॥
तओ स मरणंतमि, बाल संतसई भया ॥ अकाममरण मरइ, धुत्ते व कलिणा जिए
॥ १६ ॥ एयं अकाममरण, बालाण तु पवेइय ॥ एतो सकाममरणं, पडियाण
सुणेहमे ॥ १७ ॥ मरण पि सपुण्णाण, जहा मेय मणुस्सुय ॥ विप्पसन्नमणाघाय,
सजयाण वुसीमओ ॥ १८ ॥ न इम सव्वेसु भिक्खूसु, न इमं सव्वेसगारिसु ॥

छोडकर धर्म अंगीकार करने वाले अज्ञानी जीव मृत्यु के मुख में पडे हुए शोक करते हैं, जैसे वह गाडीवाला गाडी का अक्ष (धूरा) टूटने से शोक करता है ॥ १५ ॥ जैसे जुआरी एक दाव में अपना सर्वस्व हार कर पश्चाताप करता है वैसे ही अज्ञानी अकाम मृत्यु से मरता हुआ भ... त्रास पाता है कि ... मेरी क्या गति होगी ? ॥ १६ ॥ अकाम मरण मरने से अज्ञानी जीवों का जो होता है सो तो कहा अब आगे पंडित पुरुषों को सकाम मरण कैसे होता है सो कहते हैं उसे तुम दत्त चित्त से श्रवण करो ॥ १७ ॥ पुण्यवान प्राणी को ऐसा सकाम मरण होता ... जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहता हूं यह मरण ... का मसक्ष करनेवाला जीवों की घात नहीं करानेवाला है अर्थात ... से बचानेवाला होता है ऐसा मरण सयति साधु पुरुषों को कहा है ॥ १८ ॥ यह पंडित मरण ... नहीं होता है ... भी नहीं होता है ... सम्यक्त्वादि विचित्र प्रकार के ... उन को और कठिन विशुद्ध

॥ ९ ॥ कायसा वायसा मत्तो, वित्ते गिद्धे इत्थिसु ॥ दुहओ मल संचिणइ, सिसुणागो व्व मट्टियं ॥ १० ॥ तओ पुट्ठो आयंकेण, गिलाणो परितप्पई ॥ पभीओ परलोगस्स, कम्मुणाप्पेहि अप्पणो ॥ ११ ॥ सुया मे नरए ठाणा, असीलाण य जा गई ॥ बालाण कूरकम्माण, पगाढा जत्थ वेयणा ॥ १२ ॥ तत्थोववाइय ठाणं, जहा मेऽतमणुस्सुय आहाकम्मेहिं गच्छतो, सो पच्छा परितप्पई ॥ १३ ॥ जहा सागडिओ जाणं सम हिच्चा महापह ॥ विसम मग्गमोइण्णो अक्खे भग्गमि सोयइ ॥ १४ ॥ एवं धम्म विउ

वपने स तरफ २ कर मरजाता है, वसे ही अज्ञानी जीव मन वचन व काया से धन व स्त्रियों में गृद्ध मदोन्मत्त बना हुवा बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों प्रकार की कर्म रूप रज एकत्रित करता है ॥ १० ॥ तत्पश्चात् वह कामभोग की सामग्री क्षय होने से रोग से पीडित बना हुवा अपने कृतकर्मों का स्मरण करता हुवा और परलोक के दुःख से डरता हुवा वह दुःखी पुरुष खेदित होता है ॥ ११ ॥ अब यहां श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि मैंने भगवान श्री महावीर स्वामी से सुना है कि जो अज्ञानी जीव उक्त प्रकार के क्रूर कर्म का आचरन करते हैं वे नरक में जाते हैं, वहां उन जीवों को अत्यंत वेदना होती है ॥ १२ ॥ नरक में उत्पन्न होने का स्थानक जैसे मैंने सुना है वैसा कहता हूं कि-वहां पर वे जीवों यथा संचित कर्म से जाता हुवा पीछे से परिताप पाता है ॥ १३ ॥ जैसे गाडी चलाने वाला अपनी गाडी को सम्यक् (अच्छा) मार्ग छोडकर विषम मार्ग से जाता है उस की गाडीका धुरा टूटने से वह पश्चाताप करता है ॥ १४ ॥ ए से ही धर्म को

एगराय नहावए ॥ २३ ॥ एव सिक्खा समावन्ने, गिहिवासे वि सुव्वए ॥ छविप-
व्वाओ मुच्चई, गच्छे जक्खस्स लोगय ॥ २४ ॥ अहजे सवुडे भिक्खू, दोण्हं

का धर्म कहते हैं—गृहस्थ सामायिक * के अंग को श्रद्धा पूर्वक काया से स्पर्शे अर्थात् श्रद्धा पूर्वक शुद्ध सामायिक पाले कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष यों दोनों पक्ष में पौषध करे इस में एक रात्रि की भी हानि करे नहीं ॥२३॥ इस प्रकार की शिक्षा संपन्न जो गृहस्थ होते हैं उन को गृहस्थ होते हुए भी विशुद्ध मनी कहना वे इस हड्डी धर्मवाला उदारिक शरीर का त्याग कर उत्तम जाति के देवलोक में देवता होवे हैं

---

* सामायिक तीन प्रकार की है—१ सम्यक्त्व सामायिक, २ सूत्र सामायिक ३ और देश वृत्ति सामायिक इन तीनों के २४ अंग हैं—प्रथम सम्यक्त्व के आठ अंग—१ जिन वचन में शंका करे नहीं २ अन्य मत की वांच्छा करे नहीं, ३ करनी के फल में संदेह करे नहीं, ४ मिथ्या आडंबर की प्रसंसा करे नहीं ५, धर्मात्माओं के गुणानुवाद करे, ६ चलित धर्मी का स्थिर करे, ७ स्वधर्मियों को हितकर्ता होवे और ८ जैन धर्म की उन्नति करे दूसरी सूत्र सामायिक के आठ अंग १ काले काल शास्त्राभ्यास करे २ विनय पूर्वक ज्ञान ग्रहण करे ३ ज्ञान का व ज्ञान देनेवाले का बहु मान करे, ४ ज्ञान का उपधान तप करे, ५ ज्ञान दाता का उपकार भूले ६-७ सूत्र, अर्थ व उभय को छिपावे नहीं वैसे ही विपरीत नहीं और ८ पाठ तथा अर्थ विपरीत करे नहीं ३ तीसरी देश विरति सामायिक के आठ अंग १ स्थुल प्राणाति २ पाव स्थुल मृषावाद, ३ स्थुल अदत्तादान, ४ निवर्तना ४ स्वदारा संतोष होना,५ इच्छा प्रमाण ६ दिशा प्रमाण ७ भोग उपभोग प्रमाण और८ अनर्था दंड विरमण इन आठों का आचरन करे यह सामायिक के २४ अंग कहे

नाणा सीला अगारत्था विसम सीलाय भिक्खूणो ॥ १९ ॥ सति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ॥ गारत्थेहिं य सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा ॥ २० ॥ चीराजिण नगिणिण जडी संघाडि मुंडिण ॥ एयाणि वि न तायति, दुस्सील परियागय ॥२१॥ पिंडोलएव्व दुस्सीले, नरगाओ न मुच्चई ॥ भिक्खाए वा गिहत्थेवा, सुव्वए कम्मई दिवं ॥ २२ ॥ अगारि सामाइयंगाणि, सड्ढीकाएण फासए ॥ पोसह दुहओ पक्खं,

क्रिया करनेवाले साधु को यह पंडित मरण होता है ॥ १९ ॥ कितनेक द्रव्य लिंगी भ्रष्टाचारी नि स्व तथा कुशील साधुओं से सम्यक्त्व मत नियम पालने वाले गृहस्थ भी अच्छे हैं और गृहस्थियों से शुद्ध संयम पालन वाले साधु तो सदैव अच्छे हैं ॥२०॥ अब अन्य तीर्थीको का स्वरूप कहते हैं—कितने भगवां वस्त्र के धारक, मृग चर्म रखनवाले, वस्त्र खंड को जोडकर कंथा बनाकर रखनवाले, मस्तक मुंडाने वाले इत्यादि अनेक प्रकार के अन्य लिंग के धारक जो दुराचारी हैं, जिनाज्ञा विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले हैं, वेष मात्र से मार्ग का साधन मानकर बैठे हैं वे इस संसार में किसी जीव का दुःख से मुक्त नहीं कर सकते हैं ॥ २१ ॥ जो कोई साधु भिक्षा से आजीविका करनेवाले हैं परंतु अनाचार व पापकर्म का त्याग करनेवाले नहीं है, ऐसे दुराचारी नरक से मुक्त नहीं हो सकते हैं परंतु भिक्षा से आजीविका करनेवाले साधु होवे अथवा सदाचार पालनेवाला गृहस्थ होवे सो वह स्वर्ग में जाता है ॥ २२ ॥ अब गृहस्थ

सति मरणते सील्वतो बहुस्सुया ॥ २९ ॥ तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ॥ विप्पसीएज्ज मेहावी, तहाभएण अप्पणा ॥ ३० ॥ तओ काले अभिप्पेए सड्ढीतालिसमंतिए ॥ विणएज्ज लोमहरिसं भेयं देहस्स कंखए ॥ ३१ ॥ अहकालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं ॥ सकाम मरणं मरइ, तिण्ह

श्रमण दोनों प्रकारके मरणका स्वरूप श्रवणकर जो साधु अंगीकार करते हैं वे शीलवंत बहुश्रुत-पंडित मरणांतमें त्रास पश्चाताप नहीं पाते हैं अर्थात् समाधि मरण मरते हुवे नहीं घबराते हैं ॥२९॥ अहो पंडितों! उक्त प्रकार अकाम मरण व सकाम मरण दोनों का कथन कहा अब इस अपनी बुद्धि से तोल कर बाल मरण का दुःख का हेतु जान कर उस का त्याग कर और पंडित मरण के लिये दया धर्म का आचरन करो, क्षमा आदि दश यतिधर्म का धारक बनो मिथ्यात्वादि आश्रव का निरूंधन कर तथाभूत अपना आत्मा को बनाओ ॥ ३० ॥ जब मरण समय नजीक आवे तब मन के भोगों को हीन नहीं करता हुवा शूरवीर पना धारन करो, जिन वचन में पूर्ण श्रद्धा रखकर परिषह होने पर भी मन को स्थिर रखो, शरीर के रोम मात्र में खेद नहीं करता हुवा व्याकूलता रहित शरीर के विनाश की अशरीरी होने की इच्छा करो ॥३१॥ जब समय मृत्युकाल पास आवे तब तीन प्रकार में सकाम मरण मुनि करे जिन के नाम कहते हैं भक्त प्रत्याख्यान सो तीन अथवा चार आहार का जावजीव त्याग २ करे इंगित मरण सो भूमि मर्यादा बांधकर

अभयर सिया ॥ सव्व दुक्ख पहीणट्ठा, देवे वावि महिड्डिए ॥२५॥ उत्तराई विमोहाई, जुइमंताणुपुव्वसो ॥ समाइण्णाइ जक्खेहिं, आवासाइ जसंसिणो ॥ २६ ॥ दीहा उया इड्डिमंता, समिद्धा कामरूविणो ॥ अहुणोववन्न संकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥ २७ ॥ ताणि ठाणाणि गच्छंति सिक्खित्ता संजमं तवं ॥ भिक्खाए वा गिहित्थे वा, जेसंति परिनिव्वुडा ॥ २८ ॥ तेसिं सोच्चा सपुज्जाण, संजयाण वुसीमओ ॥ न संत

॥ २४ ॥ अब साधु का धर्म कहते हैं—जो पांच प्रकार आश्रव का रुधन करनेवाला भिक्षुक है उन की गति दो प्रकार की है वे सब कर्म का क्षय कर मुक्त होवे अथवा तो कर्म बाकी रह जाने से महर्द्धिक देव होवे ॥ २५ ॥ वे देवता किस प्रकार के हैं सो कहते हैं—सौधर्म देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान पर्यंत एकेक से अधिक पश्चात्तवाले तेज कांति के धारक देवता जो देवलोक में संकीर्ण हैं इन में सर्वोत्तम पांच अनुत्तर विमानवासी जो देव हैं उन का मिथ्यात्व मोहनीय नष्ट होने से अपने २ विमान में सदैव सुखानुभव करनेवाले हैं वैसे ही महा कीर्ति के धारक हैं ॥२६॥ वे देवता दीर्घ आयुष्यवाले महा ऋद्धिवाले समृद्धि-वंत, इच्छित रूप करनेवाले जब देखो तब जाने तुरत ही उत्पन्न हुए हैं ऐसे और सूर्य से भी अधिक कांतिवाले हैं।२७। जो साधु अथवा गृहस्थ कषायों के उपशम से शीतलीभूत बने हुए हैं वे संयम व तप अंगीकार करके आयु का अन्त होने से उक्त प्रकार के देव स्थान में जाते हैं ॥२८॥ पूज्यनीय संयति आचार्य के पास से पूर्वोक्त प्रकारसे

※ क्षुल्लक निर्ग्रंथ नामकं षष्ठमध्ययनम् ※

जावंति ऽ विज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख संभवा ॥ लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारंमि

पांचवे अध्ययन में अकाम सकाम मरण का कहा विद्यावालों को सकाम मरण और अविद्या
वाले को अकाम मरण होता है इस लिये छठे अध्ययन में विद्यावन्त अविद्यावन्त का अधिकार कहते हैं
इस जगत में जितने बाल-अज्ञानी जीव तत्त्व के अज्ञान और कुविद्यावंत ऐसे जो मूर्ख हैं वे सब दुःख भोगने के
अधिकारी होते हैं अनंत संसार में वारंवार परिभ्रमण करते हुए अनेक वार छेदन भेदन आदि पीडा सहन
करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥ यहां कुविद्या पर कथा कहते हैं-किसी गाँव के ब्राह्मण के तीन पुत्र काशी
में अभ्यास करने के लिये गये इनों में से एकने व्याकरण एकने न्याय और एकने वैद्यक का
अभ्यास किया विद्याभ्यास करके तीनों ब्राह्मण अपने देश आ रहे थे बीच में किसीने इन को
पंडित जानकर रसोइ जीमाने का कहा और सब भोजन सामग्री ला दी अब इस में एक रसोइ बनाने
बैठा, दूसरा घृत लेने गया और तीसरा शाक भाजी लेने गया रसोइ बनाने वाले ने चूलेपर खीचडी
खदबदती सुनकर विचार किया ऐसा प्रयोग व्याकरण में नहीं दीखता है इस से वह उस को बोलने
लगा कि ऐसा अशुद्ध प्रयोग क्यों करती है! खीचडी में तो वैसा ही उभार निकलने लगा तब
उस ने विचारा कि कूद के मुह में धूल डालना चाहिये यों विचार कर उसने मुट्ठी भर कर धूल

मसयरं मुणी ॥ ३२ ॥ त्तिबेमि ॥ इति अकाम सकाम मरणिज्ज णामं पंचम अज्झयण सम्मत्त ॥५॥ * * * * * *

उस के बाहिर गमनागमन का तथा चारों आहार का त्याग करे और ३ पादोपगमन सो आहार और शरीर दोनों का त्याग कर छेदित वृक्ष की डाली समान हलन चलन नहीं करता हुवा आयुष्य पूर्ण करे इन तीनों प्रकार के मृत्यु में यथा शक्ति कोइ भी एक मृत्यु मरकर आयुष्य पूर्ण करे ॥ ३२ ॥ यों मैं कहता हूं, ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान के पास से श्रवण किया है वैसा ही तुझे कहता हूं यह अकामसकाम मरण नामक पांचवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ५ ॥

अणंतए ॥ १ ॥ समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाईं पहे बहु ॥ अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ॥ २ ॥ माया पिया न्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ॥ नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ३ ॥ एयमट्ठं सपेहाए, पासे समिय दंसणे ॥

चोरिया उठा दी ऐसा देखकर वे तीनों ब्राह्मण आश्चर्य चकित हो गये और उस वृद्ध ब्राह्मण को घर कर कहने लगे कि हम को ऐसी विद्या सिखलाओ, वृद्ध ब्राह्मणने इन को अयोग्य जानकर ना कही परंतु माने नहीं तब वह विद्या सिखाकर चला गया अब वे तीनों वहां से आगे जा रहे थे तब उन के मनमें संदेह हुआ कि-उस ने अपन को सच्ची विद्या सीखाइ है या झूठी इस की परीक्षा करनी चाहिये ऐसा विचार कर रहे थे उतने में क्षुधा से मूर्छित बना हुआ सिंह का कलेवर देखा, उनोंने वहां जाकर मंत्र के प्रयोग से उस को कंकर मंत्रकर मारा वह सावधान होते ही क्षुधा से पीडित होने से उन तीनों ब्राह्मणों को मार डाले! इस लिये विना बुद्धि विद्या निरुपयोगी है यह कथा ५१ वी हुइ ॥ ५१ ॥ और जो ज्ञानी पंडित होते हैं वे इस जगत में पुत्र कलत्रादि संबंध को पास रूप व एकेन्द्रियादि जाति में परिभ्रमण करानेवाला देखते हुए अपना आत्मा के सुख के गवेषी बनकर सब जीवों के साथ मैत्रीभाव करते हैं परन्तु किसी से वैर भाव नहीं करते हैं ॥ २ ॥ पंडित पुरुष जानते हैं कि-माता, पिता, पुत्रवधू, भाइ भार्या पुत्र, पुत्रियों वगैरह जब मुझे कर्म आकर घेरेंगे तब उस से मेरा रक्षण करनेवाले कोइ नहीं होंगे ॥ ३ ॥ उक्त अर्थ को सम्यक् दृष्टी जीव अपनी बुद्धि से विचारें और मिथ्यात्व तथा स्नेह रूप पाश का

सीपडी में राख थी, जिस से सदसद होना बन्ध हो गया ऐसा देख कर वह खुश हो गया कि जैसे को तैसा ही होना योग्य है अब जो दूसरा घृत लान बाजार में गया था वह घृत लेकर पीछे आते न्याय लगाने लगा कि घृत के आधार से पात्र होगा अथवा पात्र के आधार से घृत होगा ? इस का प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय करने के लिये पात्र का उलटा कर दिया जिस से सब घृत नीचे गिर गया अब जो तीसरा शाक भाजी लेने गया था उसने सब शाक भाजी के गुण दोष देखसे इन्हे मात्र निम्बही निरोगी मालूम हुआ, वह निम्ब के पत्ते लेकर आया यजमानने देखलिया कि पंडित पढे हैं परंतु गुने नहीं हैं अब तीन यहां से बिना जीमे ही निकल कर अपने गाँव आये यहां अपनी पंडिताइ बताने के लिये संस्कृत भाषा में ही बोलने लगे उन के मात पिताने उन को अपनी देश भाषा में बोलने के लिये बहुत समझाया परंतु उनोंने माना नहीं एकदा ऐसा ही हुवा कि-रात को उन के यहां चोरों आकर उन की गाय लेजाने लगे, तब वे संस्कृत का अभिमान करने वाले पंडित संस्कृत भाषा में ही लोगों को पुकारने लगे, लोगोंने समझा किन्ध विद्याभ्यास करते ऐसे ही पुकारते हैं, इस से कोइ भी आया नहीं और चोरों गायों लेगये प्रातः काल होने से लोगों को सब हाल मालुम हुआ और उन की मूर्खता पर उपहास्य करने लगे जिस अपमान से वे यहां,से निकल अन्य ग्राम जाते मार्ग में कोई वृद्ध ब्राह्मण मिला और उनकी पंडिताइ का अभिमान उतारने के लिये उन से पूछा कि तुम पंडित हो तो इस मृत चिडिया को जीवित कर दो वे तीनों वैसा कर सके नहीं तब वृद्ध ब्राह्मणने एक कंकर उस पर मंत्र कर मूर्छित पडी हुई

मुजेज्ज भोयण ॥८॥ इह मेगे उ मन्नंति अप्पच्चक्खाय पावगं ॥ आयरियं विदित्ताणं, सव्व दुक्खाण मुच्चइ ॥ ९ ॥ भणंता अकरेंताय, बन्धमोक्खपइण्णिणो ॥ वाया वीरियमेत्तेण, समासासेंति अप्पयं॥१०॥न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं॥ विसन्ना पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो॥११॥जे केई सरीरे सत्ता वण्णेरूवे य सव्वसो

अपनी इच्छा से देवे उसे ग्रहण कर भोगवे ॥ ८ ॥ इस संसार में कितनेक आविद्य वान् पुरुष हैं वे कहते हैं कि हिंसादि पापकर्म के प्रत्याख्यान करने की कोई जरूर नहीं है जो अपने पूर्वज करते आये हैं वेही कुलाचरन करते रहेंगे इस से अपन सब दुःख से मुक्त हो सकेंगे ॥९॥ और भी कितनेक अक्रियावादि ऐसा भी कहते हैं कि मात्र ज्ञान में रमणता करने से ही मुक्ति की प्राप्ति होजाती है क्रिया करने की कुछ आवश्यका नहीं है ये ज्ञानी हो कर वचन मात्र आडम्बर से बंध मोक्ष के ज्ञानी की प्राप्ति अच्छी तरह करते हैं और वैसे ज्ञान से अपने आत्मा को संतुष्ट करते हैं परंतु क्रिया कुछ भी नहीं करते हैं ॥ १० ॥ ऐसे वचन के आडम्बरी पुरुष संस्कृत प्राकृतादि अनेक प्रकारकी भाषा के भी ज्ञाता होते हैं परन्तु उन कुविद्या वाले को यह विचित्र प्रकार की भाषा शरणभूत नहीं होती है वे अपन को पंडित मानने वाले अज्ञानी पाप कर्म से खेद पाते दुःखी दुःख पाते हैं ॥ ११ ॥ जो अज्ञानियों अपने मन वचन व काया के

छिंद गेहिं सिणेहच, नकखे पुव्वसथवं ॥ ४ ॥ गवासं मणिकुंडलं, पसवो दास पोरुस ॥ सव्वमेय चइत्ताणं कामरूवी भविस्ससि ॥ ५ ॥ थावरं जंगमं चेव, धण धन्न उवक्खर ॥ पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाओ मोयणे ॥ ६ ॥ अज्झत्थ सव्वओ सव्व, दिस्सपाणे पियायए ॥ न हणे पाणिणा पाण ॥ भयवेराओ उवरए ॥ ७ ॥ आदाण नरय दिस्स, नायएज्ज तणामवि ॥ दोगुच्छी अप्पणो पा०, दिन्न

छेदन कर विचरे फिर पहिले जिन के साथ संबंध था उन संबंधियों को मन से वांछे नहीं ॥ ४ ॥ अहो आयुष्मन्! गवादि पशु मणि कुंडलादि भूषण धन, हाथी घोड़े नौकर चाकर इत्यादि का त्याग कर संयम अंगीकार करेगा तो मनोवांच्छित वैक्रेय रूप करनेवाला देव होगा ॥ ५ ॥ दुःख से पचते हुए जीव को घर वगैरह स्थावर परिग्रह और मनुष्य वगैरह जंगम धन, धान्य आदि घर वखेरा दुःखसे छोडाने समर्थ नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ पृथ्वादि सब दिशा में रहे हुने प्राणी एकांत सुखाभिलापी हैं ऐसी मन की अध्यात्मवृत्ति ज्ञान प्रज्ञा से देखकर मत्याख्यान प्रज्ञा कर उन के प्राणों की घात करे नहीं इस प्रकार भय से और वैर स अपनी आत्मा को उवारे निवारे ॥ ७ ॥ किसी का बिना दिया कुछ भी पदार्थ ग्रहण करना—अथात् चोरी करना नरक गमन का हेतु है ऐसा जानकर तृणमात्र कोई भी वस्तु बिना याचे ग्रहण करे नहीं सदैव पापकर्म की दुर्गंछा करता हुवा शरीर पोषण के लिये आहार पानी भी गृहस्थ

॥ १६ ॥ एसणा समिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ॥ अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिण्ड वाय गवेसए ॥ १७ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तरनाण दंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए ॥ १८ ॥ त्तिबेमि ॥

इति खुड्डाग नियंठिज्ज छट्ठज्झयणं सम्मत्त ॥ ६ ॥ * * *

एषणा समिति में लज्जावान साधु ग्राम नगरादिक में विचरता हुआ गृहस्थों के घर में अप्रमत्त पने आहारादिक की गवेषणा करे ॥ १७ ॥ अनुत्तर ज्ञान वाले, अनुत्तर दर्शन वाले अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धरक अरिहंत श्री ज्ञात पुत्र महावीर स्वामीने ऐसा उपदेश कहा है वैसा मैं कहता हूं ॥ १८ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं. यह छठा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ६ ॥ * * * * *

मणसा काय वक्केण, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥ १२ ॥ आवन्ना दीहमद्धाण, संसारम्मि अणंतए ॥ तम्हा सव्वदिसं पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए ॥ १३ ॥ बहिया उड्ढ मादाय, नावकंखे कयाइवि ॥ पुव्वकम्म खयट्ठाए, इमंदेहं समुद्धरे ॥१४॥ विविच्च कम्मुणो हेउं कालकंखी परिव्वए ॥ मायं पिंडस्स पाणस्स कडं लद्धूण भक्खए ॥ १५ ॥ सन्निहिं च न कुव्विज्जा लेवमायाए संजए ॥ पक्खीपत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए

योगों से अपने शरीर के वर्ण सौंदर्य में आसक्त बन शरीर की पोषणा में मग्न रहते हैं वे सब महा दुःख के भोगने वाले हैं ऐसा जानना ॥ १२ ॥ उक्त प्रकार से अज्ञानी जीवों अनादि अनंत संसार के दीर्घ मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं उन को देख कर ज्ञानी जीव संयम धर्म में सदैव प्रवर्ते ॥ १३ ॥ चार गति से उत्तम मोक्ष गति को अपने मन में रखकर कदापि विषय कषाय की वांच्छा करे नहीं और पीछे का कर्म क्षय करने के लिये निर्दोष आहार से अपना शरीर को रखे ॥ १४ ॥ आहार पानी गृहस्थ ने अपने लिये बनाया हो उस ग्रहण कर आप भोगवे और कर्म के हेतु का त्याग कर क्रिया काल को वांच्छता हुवा संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥ १५ ॥ जितना आहार पानी स्वतः का तथा अपने अन्य स्वधर्मियों को चाहिये उतना ही ग्रहण करे परंतु पात्र में लेप मात्र आहारादिक रात्रि का रखे नहीं और जैसे पक्षी अपनी पांखों लेकर आकाश में गमन करता है, वैसे ही साधु भी अपने धर्मोपकरण ग्रहण कर किसी प्रकार के प्रतिबंध रहित ग्रामानुग्राम विचरे ॥१६॥

याले अहम्मिट्ठे ईहई नरयाउय ॥ ४ ॥ हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए ॥

अन्नदत्तहरे तेणे, माई क नु हरसढे ॥५॥ इत्थी विसयगिद्धे य, महारंभ परिग्गह ॥

देती है तो भी तुझे घास फूस खीलाता है और यह बकरा कुच्छ भी नहीं देता है तो भी उस को माल मसाले खीलाते हैं इस से मुझे बड़ा आश्चर्य होता है गायने कहा कि बच्चा! अपन को घास फूस ही अच्छा है अपन को प्राण नाशक माल की जरूर नहीं है पुत्रने कहा कि यह कैसे ? गायने कहा की तू थोडे दिन में इस का फल देखेगा, एकदा उस के घर मिजमान आये तब घर का मालिक अपनी तरवार से उस बकरे को मारने चला ऐसा देखकर वह गाय का बच्चा डरकर चिल्लाने लगा तब गायने कहा कि तू क्यों डरता है जो 'खावेगा गटका वह सहेगा झटका'' इतने में तो उस बकरे की गरदन काट डाली ऐसा देख वह गाय का बच्चा मानने लगा कि अपन को ऐसा घास फूस ही अच्छा है यह दृष्टांत कहा अब इस का भावार्थ सूत्र से कहते हैं —जैसे वह बकरा मिजमानों के लिये करवाया हुवा था, वैसे ही अज्ञानी अधर्म का आचरण करने वाला नरक गति योग्य आरंभन करने से नरक का आयुष्य बन्धता है अर्थात् वह नरक में जाता है ॥ १ ॥ अब अज्ञानी के लक्षण कहते हैं—१ हिंसा करने वाला, २ मृषा बोलने वाला, ३ मार्ग में जाते को लूटने वाला, ४ अदत्त चोरी करने वाला, ५ माया कपट करने वाला ६ किसे लूंट ऐसा विचार करनेवाला, ७ धूर्त ठगारा ८ स्त्री के विषय में गृद्ध ९ छ ही कायाका महा आरंभ करने

॥ एलयं नामक सप्तम मध्ययनम् ॥

जहा एसं समुद्दिस्स कोइ पोसज्ज एलय ॥ ओदणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥ १ ॥ तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेदे महोदरे ॥ पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥ २ ॥ जाव न एइ आएसे, ताव जीवइ सो दुही ॥ अह पत्तमि आएसे, सीसं छेत्तूण भुज्जइ ॥ ३ ॥ जहा से खलु उरब्भे, आएसाए समीहिए ॥ एवं

छठे अध्ययन में भविद्या का कथन किया यह रसगृद्धि मनों को होता है इसलिये सातवे अध्ययन में रस गृद्धता का कथन करते हैं—जैसे कोइ हिंसक मनुष्य मिजमान के लिये बकरे को पाले, उस को चांवल जव वगैरह खीलाकर अपने आंगन में उस की पालना करे ॥ १ ॥ इस तरह वह बकरा चांवल वगैरह खाकर मांसादिक से पुष्ट बनता है उसका उदर भी बडा होता है और वह बकरा भी बडा हो जाता है तब वह हिंसक मनुष्य किसी मिजमान की प्रतीक्षा करता है ॥ २ ॥ वह दुःखी बकराका जीवितव्य वहां तक ही है कि जहां तक मिजमान नहीं आवे जब मिजमान आ जाते हैं तब उस के शिर का छेदन कर उस को खाया जाता है ॥ ३ ॥ इस पर कथित कथा कहते हैं उस बकरे के पोषक के घर में एक गाय का बछा उस बकरे का सुख देख कर उस की मा से कहने लगा कि—तू अमृत समान दूध

जहा कागिणिए हेउं सहस्सं हारई नरो ॥ अपत्थ अंबगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ॥ ॥ ११ ॥ एव माणुसगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥ सहस्सगुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया ॥ १२ ॥ अणेगवासा नउया जा सा पन्नवओ ठिइ ॥ जाणि जीयंति

॥ १० ॥ दूसरा कागणी का दृष्टांत कहते हैं—जिस प्रकार किसी मूर्ख वणिकने एक कागनी के लिये हजार महोरों गमाई इस पर दृष्टांत कहते हैं—कोई वणिक परदेश में महा परिश्रम से एक हजार महोरों कमाकर पीछा अपने घर आता था उसने सब महोरों एक नवली में डालकर कमर से बांध ली और एक रूपे की ८० कागणि अपनी पास रखी; नित्य एक २ कागणीका अपने भोजन के लिये खर्चा करता था रास्ते में महा अटवी आवेगी ऐसा जानकर उसने एक कागणी का सौदा लेकर उस को दो कागणी दहीं और सौदा लेकर वहां से निकल चला आगे जाते कागणियों गिनते एक कागणी कम आई तब उसने समजा की उस वणिक ने मुझे ठग लिया, इस से उस के पास जाकर कागणी ले आऊं उस के साथवाले ने उसे बहुत समजाया परंतु समजा नहीं और पीछा गया जंगल मे सोना महोरों गाडकर वह गांव में आया उस वणीयेने झगडा करने से कागनी पाछी दहीं यहां नवली गाडते कोई ने देखी उनोंने उस खड्डे में से निकालकर उस जगे में से महोरों विखेर दी वह वणीया वहां आया और नोली नहीं मिलने से बहुत रोने लगा. वहां से घर आया उस के सगोंने भी उस का तिरस्कार किया. यह कागणी

मुंजमाणे सुरं मंसं, परिबूढे परंदमे ॥ ६ ॥ अयकक्कर भोईय, तुंदिल्ले चिय लोहिए ॥ आउयं नरए कंखे, जहा एसं व एलए ॥ ७ ॥ आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामाणि भुंजिया ॥ दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥ ८ ॥ तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुप्पन्नपरायणे ॥ अएव्व आगयाएसे मरणंतम्मि सोयइ ॥ ९ ॥ तओ आउपरिक्खीणे, चुया देहा विहिंसगा ॥ आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं ॥ १० ॥

वाला, १० परिग्रह की बहा इच्छा वाला ११ मांस खानेवाला १२ मदिरा पान करनेवाला और १३ पर को दमन करनेवाला ऐसा पापिष्ठ मद्य मांस का सेवन करता हुवा हृष्ट पुष्ट होता है ॥ ६ ॥ करड २ शब्द करे वैसा बकरे का मांस खानेवाला अज्ञानी रुधिर मांस से पुष्ट बनकर जैसे वह बकरा मिजमानों का इच्छित होता है वैसे ही वह नरक का आयुष्य की इच्छा करता है ॥ ७ ॥ आसन, शयन यान, धन, और काम भोगों को भोगव कर बडा दुःख से उपार्जन किया हुवा धन का त्याग कर और बहुत प्रकार का कर्म रजमेल एकत्रित कर विद्यमान काम भोगों में तत्पर व कर्मों से भारी बना हुवा जीव उस बोकर जैसे मरणांत में शोक-पश्चात्ताप करता है ॥ ८-९ ॥ पश्चात् आयुष्य पूर्ण होने से वह हिंसा करने वाला वहां से चवकर परवश पना से अंधकार मय नरक में जाता है यह प्रथम बकरे का दृष्टांत हुवा

एगोरथ लहए लाभ एगोमूलेण आगओ ॥ १४ ॥ एगो मूल पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ॥ ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह ॥ १५ ॥ माणुसत्तं भवे मूल लाभो देवगई भवे ॥ मूलच्छेएण जीवाणं, नरगतिरिक्खत्तण धुव ॥ १६ ॥ दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया ॥ देवत्त माणुसत्त च, ज जिए लोल्या सढे

वृद्धि की दूसरेने मूल का पूंजी कायम रखी और तीसरेने घूतादि कुकर्म में सब रकम गमा दी जब पिताने पूछा तब पहिलेने मूल पूंजी और नफा दिया, दूसरेने मूल पूंजी दी और तीसरने कुछ भी नहीं दिया इस पर से शेठजीने पहिले को सब घर कुटुम्ब का स्वामी बनाया दूसरे को भंडारी बनाया और तीसरे को निकाल दिया यह व्यवहारिक उपमा कही अब इसे धर्म पर उतारते हैं ॥ १४ १५ ॥ जो जीव पुण्य रूपी पिता के पास से मनुष्य गति प्राप्त करके धर्म करणी तप वगैरह कम करके मनुष्य से उपरान्त देवगति प्राप्त करते हैं वे पूंजी में वृद्धि करनेवाले हैं ऐसा जानना जो मनुष्य हुवे पीछे दया नम्रता रखने से पुन वहां से मरकर मनुष्य उत्पन्न होता है वह मूल पूंजी रखनेवाला है वैसा जानना और जो मोह शास्त्र में पडकर नरक तिर्यंचादि गति के अधिकारी होते हैं वे मूल पूंजी को गमानेवाले हैं वैसा जानना ॥ १६ ॥ मूल पूंजी गमानेवाले अज्ञानी मांस मदिरा आदि भोग की लोलुपता व धूर्तता से मनुष्य व देव गति को हार कर जहां अपार दु ख व भय है वैसी नरक तिर्यंच की दो प्रकार की गति में जाते हैं ॥ १७ ॥

दुम्मेहा, ऊणवाससयाउए ॥ १३ ॥ जहा य तिन्नि वाणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ॥

गुमान रानेका दृष्टांत हुवा अब उत्तरार्धके गो पदस भाविका दृष्टांत करते हैं जैसे अपथ्य भात्र को भोगवकर राजा अपना राज्य गुमाकर बैठा इसका दृष्टांत कहते हैं—जैसे किसी राजा को अतिशय आम खाने स अम्बरोग हुवा उस के लिये बहुत उपाय किये परंतु मीटा नहीं एक वृद्ध वैद्यने कहा कि—यदि तुम आम खाना छोड दो तो तुम्हारा रोग मीटजावे राजाने कथन कबूल किया तब वैद्यने औषधोपचारसे रोग मिटा दिया अब दूसरे वर्ष में जब आम की ऋतु आई तब वह क्रीडा करने जंगल में गया वहां मधान करना करने पर भी आम के वृक्ष नीचे बैठा और आम भी खा लिया इस से पुनः वह अम्बरोग प्रगट हुवा कि जो अनेक उपायों से भी मीटा नहीं और राजा भी मर गया यह राजा का दृष्टांत हुवा जैसे किसी वणिकने एक कांगणि के लिये हजार महोरों गमाई २ और अपथ्य आम खाने से राजाने अपना राज्य गमाया वैसे ही मनुष्य के आयुष्य से और कामभोगों से देवता का आयुष्य और कामभोग हजारों गुन अधिक हैं अनेक वर्षवाला नयुत की देवताओं की स्थिति है ऐसी स्थिति के सुख को सो वर्ष में भी कम आयुष्यवाले दुर्बुद्धि मनुष्य तुच्छ सुख के लिये हार जाता है॥ ११-१३॥ अब तीन वणिक का दृष्टांत कहते हैं—किसी वाणकने अपने तीन पुत्रों को थोडी २ रकम देकर अलग कर दिये और कहा कि इस द्रव्यके मैं जब मांगू तब देना इन तीनोंमें से एक पुत्रने उससे व्यापार करके अच्छी

1 चोरासी लक्ष पूर्व को चोरासी लक्ष गुना करने से नयुतांग होवे और ८४ लाख नयुतांग का एक नयुत होवे.

एगोत्थ लहए लाभ, एगोमूलेण आगओ ॥ १४ ॥ एगो मूल पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ॥ ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥ १५ ॥ माणुसत्तं भवे मूलं लाभो देवगई भवे ॥ मूलच्छेएण जीवाण, नरगतिरिक्खत्तण धुवं ॥ १६ ॥ दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया ॥ देवत्त माणुसत्त च, जं जिए लोलया सढे

वृद्धि की दूसरेने मूल को पूंजी कायम रखी और तीसरेने जूतादि ककर्म में सब रकम गमा दी जब पिताने पूछा तब, पहिलेने मूल पूंजी और नफा दिया, दूसरेने मूल पूंजी दी और तीसरने कुछ भी नहीं दिया इस पर से सेठजीने पहिले को सब घर कुटुम्ब का स्वामी बनाया दूसरे को भंडारी बनाया और तीसरे को निकाल दिया यह व्यवहारिक उपमा कही अब इसे धर्म पर उतारते हैं ॥ १४ १५ ॥ जो जीव पुण्य रूपी पिता के पास से मनुष्य गति प्राप्त करके धर्म करणी तप वगैरह कर्म करके मनुष्य से उपरांत देवगति प्राप्त करते हैं वे पूंजी में वृद्धि करनेवाले हैं ऐसा जानना जो मनुष्य हुवे पीछे दया नम्रता रखने से पुन वहां से मरकर मनुष्य उत्पन्न होता है वह मूल पूंजी रखनेवाला है वैसा जानना और जो मोह शाय में पडकर नरक तिर्यंचादि गति के अधिकारी होते हैं वे मूल पूंजी को गमानेवाले हैं वैसा मानना ॥ १६ ॥ मूल पूंजी गमानेवाले अज्ञानी मांस मदिरा आदि भोग की लोलुपता व धूर्तता से मनुष्य व देव गति को हार कर जहां अपार दुःख व वध है वैसी नरक तिर्यंच की दो प्रकार की गति में जाते हैं ॥ १७ ॥

॥ १७ ॥ तओ जिए सइ होई, दुविह दोग्गई गए ॥ दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुचीरादवि ॥ १८ ॥ एव जिय सपेहाए, तुलिया बाल च पडिय ॥ मूलियं ते पवेसंति, माणुसिं जोणिमितिजे ॥ १९ ॥ वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया ॥ उवेंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥ २० ॥ जेसितु विउला सिक्खा, मूलियं ते

रे प्रज्ञानी कि जो मनुष्य व देव गति को हार कर नरक तिर्यंच यों दो प्रकार की गति को प्राप्त हुए हैं उन को आगमिक काल में उन गति में से निकलना बडा दुर्लभ है अर्थात् वहां भ्रमण किया करते हैं ॥ १८ ॥ अहो भव्यो! उक्त दृष्टांत को ज्ञान दृष्टि से अपने मन में स्थापना बाल और पंडित की अवस्था का विचार करना और ... नहीं होवे तो मूल की पूंजी गमाना नहीं ... कि मनुष्य जन्म से निकल कर पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति होवे ऐसी करनी का अवश्य ही करना ॥ १९ ॥ मनुष्य जन्म किस प्रकार प्राप्त करते हैं सो कहते हैं गुरु की तथा सद्गुरु की विविध प्रकार की हित शिक्षा विनीतपना भद्रिकपना दुर्व्यसन का त्याग लौकिक विरुद्ध आचरन नहीं करना सत्यवादी होना यथाशक्ति ... रखना इत्यादिक को जो धारन करते हैं वे मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं मतलब कि देशव्रती तथा सम्यक्त्वी बने सिवाय उक्त प्रकार की अन्य करनी मनुष्य जन्म देनेवाली ... ही है ॥ २० ॥ और जो बीस पांच अनुव्रत तथा पांच महाव्रतादि उत्तरोत्तर प्रधान जिनेश्वर भगवानकी

अइच्छिया ॥ सीलवंता सवीसला, अदीणा जंति देवयं ॥ २१ ॥ एवमदीणवं भिक्खु आगारिं च वियाणिया ॥ कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो न संविदे ॥ २२ ॥ जहा कुसग्गे उदग, समुद्देण समं मिणे ॥ एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥ २३ ॥ कुसग्गमेत्ता इमे कामा सन्निरुद्धम्मि आउए ॥ कस्स हेउं पुराकाउं, जोगक्खेमं न संविदे ॥ २४ ॥ इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई ॥ सुच्चा नेयाउयं

शिक्षा है उस का सम्यक् प्रकार से पालन करे जो परिसह उत्पन्न होने पर कदापि दीनता धारन करे नहीं, वह ऊपर का क्षम रूप देव गति में जाता है ॥ २१ ॥ इस तरह दीनपना रहित साधु तथा देश विरति गृहस्थ को देवपना मिलता है ऐसा जानते हुए भी विषय व कषाय में लुब्ध होकर विवेकी मनुष्य कभी देवपना गमावेंगे ? अर्थात् विवेकी पुरुष कदापि गमावेंगे नहीं ॥ २२ ॥ जैसे कुशाग्र पर रहा हुवा पानी का बिंदु समुद्र के पानी से असंख्यातवा भाग हीन है वैसे ही देवताओं के कामभोग के आगे मनुष्य के कामभोग असंख्यातगुने हीन है ॥ २३ ॥ कुशाग्र पर रहा हुवा पानी के बिंदु समान ये मनुष्य के कामभोग हैं वो भी अतिशय अल्प आयुष्य होने पर भी विषय कषाय में लुब्ध बनकर किस कारन से अज्ञानी मनुष्य योग[1] और क्षेम नहीं जानते हैं ! ! ॥ २४ ॥ इस संसार में जो जीव न्याय

[1] अप्राप्त धर्म की इच्छा सो योग और प्राप्त धर्म का रक्षण सो क्षेम

॥ १७ ॥ तआ जिए सइ होई, दुविहं दोग्गई गए ॥ दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुचिरादवि ॥ १८ ॥ एव जियं सपेहाए, तुलिया बाल च पंडिय ॥ मूलियं ते पवेसंति, माणुसिं जोणिमिंति जे ॥ १९ ॥ वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया ॥ उवेंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥ २० ॥ जेसिंतु विउला सिक्खा, मूलियं ते

हो भगवानी कि जो मनुष्य व देव गति को हार कर नरक तिर्यंच यों दो प्रकार की गति को प्राप्त हुए हैं उन को आगमिक काल में इन गति में से निकलना बड़ा दुर्लभ है अर्थात् वहां भ्रमण किया करते हैं ॥ १८ ॥ अहो भव्यो! उक्त दृष्टांत को ज्ञान दृष्टि से अपने मन में सोचना बाल और पंडित की अवस्था का विचार करना और विशेष नहीं होवे तो मूल की पूंजी समान नहीं गमावे, मनुष्य जन्म से निकल कर पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति होवे ऐसी करनी वो अवश्य ही करे ॥ १९ ॥ मनुष्य जन्म किस प्रकार प्राप्त करते हैं सो कहते हैं पृथ्वी तथा सद्गुरु की विविध प्रकार की हित शिक्षा विनीतपना भद्रिकपना दुर्व्यसन का त्याग लौकिक विरुद्ध आचरन नहीं करना सत्यवादी होना प्रमाणिकपना रखना इत्यादिक को जो धारन करते हैं वे मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं मतलब कि देशव्रती तथा सर्वव्रती बने सिवाय उक्त प्रकार की अन्य करनी मनुष्य जन्म देनेवाली होती है ॥ २० ॥ और जो जीव पांच अनुव्रत तथा पांच महाव्रतादि उत्तरोत्तर प्रधान जिनेश्वर भगवानकी

सव्वधम्माणुवत्तिणो, चिच्चा अहम्म धम्मिट्ठे देवेसु उववज्जई ॥ २९ ॥ तुलियाण बालभावं, अबालं चेव पंडिए ॥ चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ॥ ३० ॥ त्तिबेमि ॥ इति एलय अज्झायणं सम्मत्तं ॥ ७ ॥

उस धर्म को अपना प्राण प्रिय बना कर देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ अहो मुनियों ! इस प्रकार अज्ञानता तथा पंडित पना को न्याय बुद्धि से तोलकर अज्ञानता का त्याग कर पंडित पने को अंगीकार कर सुखी बनो ! ॥ ३० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि ऐसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही कहता हूं यह सातवा एलक नामक अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

मग्ग, जं भुज्जो परिभस्सई ॥ २५ ॥ इह काम नियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ॥ पूइदेहनिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥ इड्ढी जुई जसोवण्णो, आउ सुहं मणुत्तरं ॥ भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु तत्थ से उववज्जइ ॥ २७ ॥ बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिणो ॥ चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे नरएसु उववज्जई ॥ २८ ॥ धीरस्स पस्स धीरत्तं,

मार्ग अपण करके कामभोग से नहीं निवर्ता है वह धर्म से भ्रष्ट होता है और वह अपने आत्मा का अर्थ स्वर्ग व मोक्ष के सुखों का विनाश करता है ॥ २५ ॥ और इस संसार में जो कामभोग से निवर्ता है वह अपने आत्मा का विनाश नहीं करता है और यह रुधिर मांस से भरा हुवा उदारिक शरीर छोड कर देवता होता है ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥ देवता किस प्रकार का होता है सो कहते हैं परिवार की ऋद्धि शरीर की कांति लोक में कीर्ति, शुभ शरीर का वर्ण दीर्घ आयुष्य और अनुत्तर सुख, ये छ बोल देवता में जहां होवे वहां वह उत्पन्न होता है और वहां से मनुष्य में भी आवे तो मनुष्य गति में भी उक्त छे बोल होवे वहां उत्पन्न होवे ॥ २७ ॥ उपसंहार—अहो भव्यो ! अज्ञानी का अज्ञानता को देखो ! कि सदग में मोक्ष दाता धर्म का त्याग कर अधर्म को अंगीकार कर और अधर्म को मित्र मानकर नरक गति में उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ वैसे ही धीर पुरुष की धीरता देखो कि—अनादि काल की संगति वाला अधर्म का त्याग कर, सर्वज्ञ प्रणीत क्षमादि दशविध यतिधर्म को अंगीकार कर और

सव्वधम्माणुवत्तिणो, चिच्चा अहम्मं धम्मिट्ठे देवेसु उववज्जई ॥ २९ ॥ तुलियाण बालभावं, अबालं चेव पंडिए ॥ चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ॥ ३० ॥ त्तिबेमि ॥ इति एलय अज्झायणं सम्मत्तं ॥ ७ ॥

उस धर्म को अपना प्राण प्रिय बना कर देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ अहो मुनियों ! इस प्रकार अज्ञानता तथा पंडित पना को न्याय बुद्धि से तोलकर अज्ञानता का त्याग कर पंडित पने को अंगीकार कर सुखी बनो ! ॥ ३० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही कहता हूं यह सातवा एलक नामक अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ७ ॥

मग्ग, जं मुज्जो परिभस्सई ॥ २५ ॥ इह काम नियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ॥
पूइदेहनिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥ २६ ॥ इड्ढी जुई जसोवण्णो, आउ सुह मणुत्तरं ॥
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु तत्थ से उववज्जइ ॥ २७ ॥ बालस्स पस्स बालत्त, अहम्म
पडिवज्जिणो ॥ चिच्चा धम्म अहम्मिट्ठे नरएसु उववज्जई ॥ २८ ॥ धीरस्स पस्स धीरत्त,

मार्ग श्रवण करके कामभोग से नहीं निवर्ता है वह धर्म से भ्रष्ट होता है और वह अपने आत्मा का अर्थ स्वर्ग व मोक्ष के सुखों का विनाश करता है ॥ २५ ॥ और इस संसार में जो कामभोग से निवर्ता है वह अपने आत्मा का विनाश नहीं करता है और वह रुधिर मांस से भरा हुवा उदारिक शरीर छोड कर देवता होता है ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥ देवता किस प्रकार का होता है सो कहते हैं परिवार की ऋद्धि शरीर की कांति लोक में कीर्ति, शुभ शरीर का वर्ण दीर्घ आयुष्य और अनुत्तर सुख, ये ७ बोल देवता में जहां होवे वहां वह उत्पन्न होता है और वहां से मनुष्य में भी आवे तो मनुष्य गति में जहां उक्त छे बोल होवे वहां उत्पन्न होवे ॥ २७ ॥ उपसंहार—अहो भव्यो ! अज्ञानी का अज्ञानता को देखो ! कि सहज में प्राप्त होता धर्म का त्याग कर अधर्म को अंगीकार कर और अधर्म को प्रिय मानकर नरक गति में उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ वैसे ही धीर पुरुष की धीरता देखो कि—अनादि काल की संगति वाला अधर्म का त्याग कर, सर्वज्ञ प्रणीत क्षमादि दशविध यतिधर्म को अंगीकार कर और

ने पढाना स्वीकार किया और भोजन के लिये वहां पर धनदत्त नामक किसी गृहस्थ के वहा प्रबंध कर दिया वहां दासी उस को भोजन वगैरह कराते दोनों मोह मुग्ध बनकर भोग भोगवने लग ऐसा करते दासी सगर्भा हुई और कपिल से कहने लगी कि बालक होगा तो उस के पालन पोषण में द्रव्य व्यय करना पडेगा इस से द्रव्य का प्रबंध करना चाहिये और कहा कि यहां के राजा को प्रथम जो आशीर्वाद देता है उस को राजा दो मासा सुवर्ण सदैव देता है कपिल यह सुन संतुष्ट होगया रात्रि में पूरी निद्रा भी आई नहीं और आधि रात्रि में अपने घर से निकल पडा मार्ग में इस को चोर जानकर कोतवालने पकड लिया और राजा के सन्मुख उपस्थित किया राजाने उसे देखकर पहिचाना कि-वास्तवमें यह चोर नहीं है उस से पूछा कि तू कैसे पकडा गया ? कपिलने अपना वृत्तांत सुना दिया और कहा-कि मैं अवश्य ही धर्मभ्रष्ट होने से शिक्षा पात्र हूं राजाने इस से संतुष्ट होकर कहा कि-तेरी इच्छा होवे सो मांग तू मांगेगा सो देता हूं कपिलने कहा कि मैं विचार कर मंगूगा इस से वह अशोक वाडी में बैठकर विचार करने लगा कि दो मासे सुवर्ण में क्या होगा ? चार मासे सुवर्ण मांगू फिर विचार हुवा कि चार मासे सवर्ण से तो पुत्र का जन्म खरच भी पूरा नहीं होगा इस से आठ मासे सुवर्ण मांगूं यों विचार करते२ सब राज्य मांगने की इच्छा हुई फिर ज्ञान मय बुद्धि होने से विचार हुआ कि इस तृष्णा को धिक्कार होवो रे कपिल'तू जाति से भ्रष्ट हुवा, और इतनी विटम्बना पाया तो भी तेरी बुद्धि ठिकाने आई नहीं फिर भी इस संसार जाल में फसने का उपाय कर रहा है इस से इस विषय तृष्णा को भी धिक्कार

॥ काविलियं अष्टम मध्ययनम् ॥

सातवे अध्ययन में रसनेन्द्रिय पर विजय करने का कहा रसना का जय करनेवाला तृष्णा का भी जय करता है इस लिये आठवे अध्ययनमें तृष्णाका क्षय करनेका कहते हैं इस अध्ययनका सम्बन्ध मिलाते कथा कहते हैं—कोशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा का काश्यप नामक पुरोहित रहता था उस को यशा नामक भार्या और कपिल नामक पुत्र था पुत्र के बचपनमें पिता का मृत्यु हो गया तब राजाने उस पुरोहित के स्थान दूसरे पुरोहित को रखा एकदा वह दूसरा पुरोहित अश्व गज छत्र चामर सहित पुराने पुरोहित के घर के सामने से चला जा रहा था उसे देखकर पुराने पुरोहित की यशा भार्या रोने लगी तब उस का कपिल पुत्र कहने लगा कि हे माता! क्यों रोती है? वह बोली हे पुत्र! तू नादान होने से तेरे पिता की संपत्ति इस पुरोहित को मिलने से मुझे रुदन हुवा तेरा पिता जीता था तब वह भी ऐसी धूमधाम से निकलता था कपिलने माता से कहा कि ऐसी ऋद्धि मुझ कैसे मिल सके? माताने कहा कि जब तु विद्याभ्यास करके अच्छा विद्वान होगा तो तुझे ऐसी ऋद्धि प्राप्त हो जावेगी उसने कहा कि मैं विद्याभ्यास करूंगा माताने कहा कि यहां पर कोई भी इस पुरोहित के डर से तुझ विद्याभ्यास करावेगा नहीं इस लिये तू यहां से श्रावस्ती नगरी जा वहां तेरे पिता का मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मण तुझे पढावेगा माता की ऐसी आज्ञा सुनकर वह कपिल श्रावस्ती नगरी में इन्द्रदत्त ब्राह्मण के पास गया, इन्द्रदत्त

दोग्गइ न गच्छेज्जा ॥ १ ॥ विजहित्तु पुव्वसंजोगं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा ॥ असिणेह सिणेहकरेहिं दोसपओसेहि मुच्चए भिक्खू ॥ २ ॥ तो नाण दंसण समग्गो, हियनिस्सेसाए सव्व जीवाण ॥ तेसिं वि मोक्खणट्ठाए भासइ मुणिवरो विगय मोहो ॥ ३ ॥ सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ॥ सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो नलिप्पइ ताई ॥ ४ ॥ भोगामिस दोसविसन्ने, हियनिस्सेय सबुद्धिवोच्चत्थे ॥

में जा सके नहीं ॥ १ ॥ तब कपिल केवली उन चारों को इस प्रकार उपदेश देते हैं—कि अहो चोरों ! पूर्व संयोग सो मात पितादि तथा पूर्व का अनादि संयोग-विषय कषायादि का त्याग कर साधु बनो और किसी में किंचिन्मात्र भी स्नेह मत करो इस तरह स्नेह नहीं करने वाला साधु इस लोक व परलोक संबंधि दुःख से मुक्त होता है ॥ २ ॥ इस प्रकार उत्तर देकर ज्ञान दर्शन सहित व मोह रहित कपिल केवली सब जीवों के हित निस्तार के लिये और उन को मिथ्यात्वादिक से मुक्त करने के लिये इस प्रकार उपदेश करने लगे ॥ ३ ॥ बाह्य और आभ्यंतर यों सब प्रकार के अर्थात् परिग्रह को क्लेश का कारण जानकर छोड देना और सब कामभोगों को दुष्ट फल देने वाले जानकर उस में लिप्त होना नहीं ॥ ४ ॥ मोहरूप कीचड में खुंता हुवा, आत्मा का हित व मोक्ष मार्ग से विपरीत

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए । किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं

ऐसो यों विचारते २ ही जाति स्मरण ज्ञान हुवा जिस से पूर्व जन्म से साधुपना पाला जान पुनः साधु होने की इच्छा हुई तब शासन देवने साधु लिंग दे दिया वह साधु लिंग पहिन कर मस्तक पर के बालोंका लोचकर राजा के पास आया राजाने आश्चर्यचकित हो कर कहा कि-क्या सोचा ? साधुने कहा कि-सोचकर सोचा तत्पश्चात् "जहा लाहो तहा लोहो" अर्थात् ज्यों लाभ है त्यों लोभ है इत्यादि धर्मोपदेश दिया राजा प्रतिबोध पाकर श्रावक बना कपिल अनगारोंने वहां से विहार किया और छ महिने पीछे केवल ज्ञान प्राप्त हुवा वहां से राजगृही नगरी आते बीच में अठारह योजन की अटवि को उल्लंघते बलभद्र प्रमुख पांच सो चोरों मिले वे साधु को देखकर कहने लगे कि अहो साधु क्या तुम को नृत्य करना आता है केवली उन को प्रतिबोध देने के लिये बोले कि तुम वाजिंत्र बजाते जा मैं नृत्य करू केवलीने उन को इस आठवे अध्ययन में कथित गाथा सुनाई बजाने का तान ही भंगन से वे गायन में ही मुग्ध हो वैरागी बने और वे पांचसो ही कपिल केवली के शिष्य बनकर देश में विचरने लगे देश में विचरते हुए बहुत उपकार किया और केवली व पांचसो चोर मोक्ष में गये यह कपिल केवली की कथा हुई ॥ * *

वैरागी बने हुए बलभद्रादि चोरोंने प्रश्न किया कि पर्याय की अपेक्षा अध्रुव द्रव्यादिक पदार्थ की अपेक्षा अशाश्वत और दुःख से परिपूर्ण एसे संसार में एसी कौनसी करनी करनी कि जिस से हम दुर्गति

थलाओ ॥ ९ ॥ जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहिं चेव ॥ नो तेसि मारंमे दंडं मणसा वयसा कायसा चेव ॥ १० ॥ सुद्धेसणाओ नच्चाण, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण ॥ जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥ ११ ॥ पंताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराण कुम्मासं ॥ अदु बक्कस पुलागं वा जवणट्ठाए निसेवए मथु ॥ १२ ॥ जे लक्खण च सुमिण, अंगविज्ज च जे पउंजति ॥

करता है वह पांच समितिवंत और छः काया का रक्षक कहाता है और जैसे ऊंचे स्थल से ढलकता हुवा पानी उतर जाता है वैसे ही उस के पाप कर्म दूर होजाते हैं ॥९॥ इस जगत में नामकर्म के उदय से त्रस व स्थावर जीव रहे हैं उन का मन, वचन व काया से समारंभ करे नहीं करावे नहीं अनुमोदे भी नहीं ॥१०॥ एषणा शुद्धि जानकर उस में अपने आत्मा को स्थापे याचना करके आहार के ग्रास की गवेषणा करे, परंतु भिक्षा के लिये निकला साधु रस में गृद्ध होवे नहीं ॥ ११ ॥ शरीर का निर्वाह के लिये आहार की जरूर पड़ती है इस लिये मसाले तथा घृतादि रहित निरस आहार, शीतल ठंढा आहार जूना पुराना धान्य का आहार, मूंग उड़द चने आदि के उबाले हुए बाकुले और बोरका कूटा इत्यादि जो मिले उसे भोगवकर शांत भाव से रहे ॥ १२ ॥ स्त्री पुरुष के लक्षण, स्वप्न शास्त्र, अंग स्फुरण वगैरह अष्टांग

बाले य मंदिए मूढे वज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥ ५ ॥ दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ॥ अहसंति सुव्वया साहू, जेतरंति अतरं वणिया वा ॥ ६ ॥ समणा मु एगे वदमाणा, पाणवहं मिया अयाणंता ॥ मंदा निरयं गच्छंति, बाले पावियाहिं दीट्ठीहिं ॥ ७ ॥ न हु पाणवहं अणुजाणे मुच्चेज्ज कयाइ सव्व दुक्खाणं ॥ एवायरिएहिं अक्खायं जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो ॥ ८ ॥ पाणे य नाइवएज्जा, से समीए त्ति वुच्चई ताई ॥ तओ से पावयं कम्मं, निज्जाइ उदगं व

बुद्धि वाला, धर्म में प्रमादी, मूढ अज्ञानी जैसे मक्खिका श्लेष्म में लीपटाती है वैसे विषय कषाय में लिपटाते हैं ॥ ५ ॥ यह शब्दादि तथा स्त्री आदि संबंधी जो कामभोग हैं उनको छोडना कायर पुरुषों के लिये बडा दुष्कर है परंतु जो धीरवीर पुरुष होते हैं वे ही छोडते हैं दृष्टांत—जिस प्रकार व्यापारी नावा से समुद्र तीरते हैं वैसे ही सुव्रति साधु भी दुस्तर संसार समुद्र तीर जाते हैं, ॥ ६ ॥ कितनेक अन्य दर्शनी हम साधु हैं ऐसा बोलते हुए प्राणिवध करते हैं वे मृग समान अज्ञानी मंदबुद्धि वाले पुरुष पक्त प्रकार की पाप दृष्टि से नरक में जाते हैं ॥ ७ ॥ प्राणवधादिक पांच आश्रव की जो अनुमोदना करता है वह सब दुःखों से कदापि मुक्त नहीं हो सकता है ऐसा श्रावक धर्म व साधु का धर्म श्री तीर्थंकर भगवान ने कहा है ॥ ८ ॥ जो प्राणीवधादिक पांचों आश्रव की अनुमोदना नहीं

सीसु गिज्झेज्जा, गण्डवच्छासु णेगचित्तासु ॥ जाओ पुरिस पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं ॥ १८ ॥ नारीसु नोव गिज्झेज्जा इत्थी विप्पजहे अणगारे ॥ धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठविज्ज भिक्खू अप्पाण ॥ १९ ॥ इइ एस धम्मे अक्खाए कविलेण च विसुद्ध पन्नेण ॥ तरिहिंति जेउ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोग ॥ २० ॥ त्तिबेमि ॥ इति कविलीय अज्झयण सम्मत्तं अट्ठमं ॥ ८ ॥ * * * * *

में फोडे समान दो स्तन है वैसी और जिस का चित्त अनेक पदार्थ में रहा है वैसी राक्षसणी समान स्त्रियों में साधु गृद्ध होवे नहीं क्यों की स्त्रियों पुरुषों को लोभाकर जैसे दास से काम लिया जाता है वैसे ही उस पुरुष से काम कराती है ॥ १८ ॥ अणगार-साधु स्त्रियों में गृद्ध होवे नहीं परंतु स्त्री का त्याग कर और ब्रह्मचर्यादिक साधु का उत्तम धर्म जानकर अपना आत्मा को धर्म में स्थापे ॥ १९ ॥ विशुद्ध प्रज्ञावान कपिल केवलीने ऐसा धर्म कहा है इस से जो कोई धर्म करेगा वही इस संसार रूप समुद्र से तीरेगा और दोनों लोक में आराधिक व सुखी होगा ऐसा मैं कहता हूं ॥२०॥ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते यह है आठवा कपिल केवली का अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नहुते समणा वुच्चंति एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥ १३ ॥ इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहि जोएहिं ॥ ते काम भोग रसगिद्धा उववज्जति आसुरेकाए ॥ १४ ॥ तत्तोविय उव्वट्टिता, संसारं बहु अणुपरियडति ॥ बहु कम्मलेव लित्ताण बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥ १५ ॥ कसिणपि जो इमं लोय, पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स ॥ तेणावि से न संतुसे, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥ १६ ॥ जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ॥ दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं ॥ १७ ॥ नो रक्ख-

निमित्त तथा गुनतीस पाप सूत्र जो हैं उन की प्ररूपणा जो साधु करते हैं वे साधु नहीं है ऐसा श्री तीर्थंकर भगवानने कहा है ॥ १३ ॥ ऐसे साधु इस मनुष्य जन्म में तप संयमादिक से अपना आत्मा को वश नहीं करने से और समाधि योग से भ्रष्ट होने से काम भोग में गृद्ध बने हुए असुर कुमार की गति में उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥ वे वहां से निकल कर बहुत संसार में परिभ्रमण करते हैं बहुत कर्मों के लेप से लिप्त बने हुए उन साधु को सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥ १५ ॥ किसी लोभी पुरुष को जो कोई इस लोक का धनादिक से संपूर्ण भरकर देवे तो भी वह लोभी पुरुष इस से संतुष्ट नहीं होता है. अर्थात् लोभ का अन्त कदापि नहीं आता है ॥१६॥ ज्यों ज्यों लाभ मीलता है त्यों २ लोभ बढता ही जाता है लाभ से लोभ की वृद्धि होती है मैं संसार अवस्था में दो मासा सुवर्ण लेने के लिये गया था परंतु करोडों सोनेये होने का विचार करते हुवे मेरी तृप्ति हुई नहीं ॥ १७ ॥ जिस के वक्षस्थल

था उस में वह सती जा कर पडी सती मदनरेखा का सौंदर्य देखकर विद्याधर उस पर मोहित हुआ और अपने घर पर उसे रखने क लिये विमान पीछा फिराया सतीने विमान पीछा फिराते हुए देखकर प्रश्न किया आप कहां जाते हैं और अब पीछे क्यों फिर गये विद्याधर ने कहा कि मेरे पिता साधु के दर्शनार्थ मैं जा रहा था, परंतु तेरे जैसी सुंदरी का लाभ होने से तुझे घर पर छोड कर फिर मैं आऊंगा इस विचार से मैंने विमान फिराया है, सतीने कहा कि आप ऐसा मत करो आप वहां चलेंगे तो आप की कृपासे मुझे भी दर्शन हो जायंग, विद्याधरने उसका कथन स्वीकार किया और इच्छित स्थान पर विमान लाया वहां परिषद में मणिचूड मुनिराज विराजमान थे उन के पास आकर दोनों नमस्कार कर सन्मुख बैठे मुनिने मनःपर्यव ज्ञान से सब वृत्तांत जाना और शील की महिमा का उपदेश देकर मणिप्रभ विद्याधर को परस्त्री सेवन का प्रत्याख्यान कराया. इस समय मदन रेखाने उस मुनि को अपने पुत्र का वृत्तांत पूछा, तब मुनिने कहा मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा वन में क्रीडा करने आया था वह तेरे पुत्र को ले गया है उसने अपनी रानी पुष्पचूला को देकर पुत्रवत् मानकर वहां जन्म महोत्सव किया है सतीने पुनः प्रश्न किया कि ऐसा संयोग कैसे बना ? अर्थात् उन का पूर्व जन्म में क्या संबंध था ! मुनिने कहा कि इस जम्बूद्वीप के महा विदेह क्षेत्र के पुष्कलाविजय के मणितोरन नगर के अमितयश चक्रवर्ती का पुष्पावती रानी के दो पुत्र पुष्पसिंह व रत्नसिंह थे, उन को राज्य देकर चक्रवर्तीने संयम अंगीकार किया पीछे से दोनों भाइने ८४ लाख पूर्वतक राज्य का सुख

॥ नमिप्रवर्ज्या नामकं नवम मध्ययनम् ॥

आठवे अध्ययन में तृष्णा का त्याग कहा जा तृष्णा का त्याग करते हैं वे इन्द्रादिक को पूज्यनीय होते है इस लिये नवमे अध्ययन में नमीराजर्षि का कथन करते हैं जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आवंती देश में सुदर्शन नगर में मणिरथ राजा राज्य करता था वह अपने छोटे भाई युगबाहु की स्त्री मदनरेखा का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया और अपनी दासी द्वारा भोग के पदार्थ भेजकर अपनी इच्छा दर्शाई मदनरेखाने दासी के पास से ऐसा सुनकर उस की निर्भर्त्सना कर उसे निकाल दी एकदा युगबाहु अपनी स्त्री सहित बन में क्रीडा करने गया था वहां रात को मणिरथ राजा अचित्य जाकर उस पर खड्ग प्रहार कर पीछा भगा, तो मार्ग में उस को सर्प दंश होने से वह मृत्यु पाकर नरक में गया युगबाहु मृत्यु प्रहार हुआ देखकर मदनरेखा सती अपने पति पास आई और उन का आयुष्य पास आया जान कर उस को अठारह पाप स्थानके चारों आहार के प्रत्याख्यान कराये और अंतिम श्वासोश्वास तक नवकार मंत्र का शरण सुनाया वह युगबाहु धर्म की श्रद्धा करता हुआ काल के अवसर में काल कर देवलोक में गया इस समय वह मदनरेखा सती सगर्भा थी वह अपना शील का रक्षण के लिये जंगल में चली गई कि वहां उस को पुत्र का प्रसव हुआ उस के हाथ में अपने पति की मुद्रिका डालकर और अपने चीर की झोली में उसे रखकर नवकार मंत्र का शरणा दे कर किसी वृक्ष के नीचे लटका दिया और वह अपने शरीर की शुद्धि करने के लिये तलाव में स्नान करने गई वहां कोई हाथी आया और अपनी सूंढ में सती को पकडकर ऊंची उछाली, वहां मणिप्रभ विद्याधर का विमान जा रहा

तत्पश्चात सब भौमिए विना मनाये ही आकर राजा के दास बनगये इस से उस पुत्र का गुण निष्पन्न नाम नमी दिया वह सब कला में प्रवीण हुए पीछे यौवनावस्थामें आते ही एक हजार राजकन्या के साथ पाणि-ग्रहण कराया कुमार को राज्य योग मानकर राज्य देकर पद्मरथ राजाने दीक्षा ग्रहण की एकदा नमी राजा का सुभद्र जाति का श्वेत हस्ती मदान्ध होकर भगा उसे चंद्रयश राजा के सुभटों पकड कर लेगये नमी राजान यह जानकर दूत भेजा चंद्रयशने कहलाया कि नमीराय को राज्य नीति मालूम नहीं है वास्तव में जो वस्तु जिन के हाथ में आवे उस की ही होती है दूतने पीछा वैसा ही कहा इस पर से नमीराय अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया उस का सामना चंद्रयशने भी किया यह समाचार मदनरेखा आर्या जी ने सुना और उपकार का कारन मानकर गुरुणी जी की आज्ञा लेकर नमीराजाके पास आई नमी राजाने साध्वीको देख नमस्कार किया और आने का प्रयोजन पूछा तब साध्वी जीने कहा कि तेरे ज्येष्ठ भ्राताके साथ युद्ध करना उचित नहीं है नमीराजजी से पूछनेपर साध्वीजी ने सब वृत्तांत कह सुनाया इस पर नमीराय भाइ को नमस्कार करने के लिये जाने लगा तब साध्वीजी उसे रोककर चंद्रयश राजा के पास आई राजाने अपनी माता साध्वी को नमस्कार कर पुछा कि आप का गर्भ कहां है ! साध्वीजीने नमीराय को बताया यह सुनकर वह आश्चर्य चकित हुआ और परस्पर दोनों भाइ मील गये चंद्रयश अपने छोटे भाइ को राज्य देकर दीक्षा लेकर मोक्ष गये नमीराय दोनों देश का अधिपति हुआ एकदा नमीराय के शरीर में दाहज्वर का रोग हुआ शरीर पर बावना चंदन कालेव

मोगवकर संयम लिया, शुद्ध संयम पाला और आयुष्य पूर्ण कर बारहवे देवलोक में देवता हुए वहां से चवकर धात की खण्ड में हरिषेन वासुदेव की समुद्रदत्तारानी के पुत्रपन हुए वहां सागरदेव व सागरदत्त नाम दिया वहां दोनोंने अग्यारहवे हद सुव्रत तीर्थंकर के पास दीक्षा ली दीक्षा लेने के तीसरे दिन ही विद्युत पात उनपर होने से वे काल कर सातवे महाशुक्र देवलोक में देवता हुए वहां से चवकर एक मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा हुआ और दूसरा यह तेरा पुत्र हुआ इस के राज्य में इस के गये पीछे सब शत्रु नमन से तेरे पुत्र का नाम नमिराय देवेगें अहो सति! पूर्व जन्म का बंधुप्रेम होने से तेरे पुत्र को पद्मरथ राजा ले गया है इस तरह यह कथन चल रहा था इतने में महा दीव्य रूपवाला देव अंतरीक्ष से वहां आया उसने प्रथम सती को नमस्कार किया फिर मुनि को नमस्कार किया ऐसा देख मणिप्रभ हसने लगा तब मुनिराज बोले कि यह देव इस बाइ का पूर्व जन्म का पति है इसने उस की मृत्यु के अवसर में धर्म की सहायता दी और इस से यह पांचवे देवलोक में देवता हुआ है इसे ज्ञान से यहां देखकर यह यहां आया है और यह उपकार करनेवाली होने से इसे प्रथम नमस्कार किया है अब वह देवता मदनरेखा सती को अपने विमान में बैठाकर ले चला, और कहने लगा कि मणिरथ तो सर्प दंश से मरगया है तेरे बडे पुत्र चंद्रयश को सुदर्शन नगर का राज्य मिला है अब तू कहे सो करूं सतीने कहा कि-मुझे सुव्रता आर्या जी के पास दीक्षा दीलावो देवता वैसा ही कर स्वर्ग में गया, उधर सतीने जो कुमार को झोली में रखकर लटकाया था वहां पद्मरथ राजा वन में क्रीडा करने आया था वह उसे देखकर अपने महेल में ले गया

बलमोरोहं च परियणं सव्वं ॥ चिच्चा अभिनिक्खतो, एग त महिट्ठिओ भयवं ॥४॥
कोलाहल समूय, आसी महिलाए पव्वयतम्मि ॥ तइया रायरिसिम्मि, नमिम्मि
अभिनिक्खमणम्मि ॥ ५ ॥ अब्भुट्ठिय रायरिसिं, पव्वज्जाठाण मुत्तम ॥ सक्को माहण
रूवेणं, इम वयण मब्बवी ॥ ६ ॥ किण्णु भो ! अज्ज महिलाए, कोलाहलग सकुला
॥ सुव्वंति दारूणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ? ॥ ७ ॥ एयमट्ठ निसमित्ता, हेउ कारण

स्वयं बुद्ध बने ॥३॥ बहुत जनपद सहित मिथिला नगरीका राज्य अश्व, हाथी, रथ सुभटों की चतुरंगिनी सेना व स्त्री पुत्रादि सब परिवार का त्याग कर नमीराय भगवानने अपने घर से निकलकर द्रव्य से एकांत वन में और भाव से राग द्वेष रहित अपना आत्मा को धर्म में स्थापन किया॥४॥ नमीराजर्षीने दीक्षा अंगीकार की इस से मिथिला नगरी व राजा के राज्य महेल कोलाहल भूत हो गये अर्थात् रानियों व नगर के लोगों के रूदन से शोर मच गया ॥ ५ ॥ नमीराजर्षी संयम के अत्युत्तम स्थान में सावधान हुए हैं ऐसा समाचार प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्रने जानकर ब्राह्मण का रूप बनाकर नमीराजर्षी के पास आये और इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ अहो नमीराजर्षि ! आज मिथिला नगरी में इतना कोलाहल क्यों हो रहा है और प्रासादों में हृदय का भेदन करे वैसा दारुण शब्द क्यों सुनने में आता है ? ॥ ७ ॥

चइऊण देव लोगाओ, उववन्नो माणुसम्मि लोगंमि ॥ उवसंतो मोहणिज्जो, सरई पोराणयं जाय ॥ १ ॥ जाइ सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ॥ पुत्तं ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमइ नमीराया ॥ २ ॥ सो देवलोग सरिसे, अंतेउर वरगओ वरे भोए ॥ भुंजित्तु नमीराया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ॥ ३ ॥ महिलं सपुरं जणवयं

करने के लिये रानियों चंदन पीसने लगी उन के हाथ के कंकण के परस्पर संघर्षण होने का शब्द होने से नमिरायजी को दुःख होने लगा इस से सब रानियोंने मात्र एक२ कंकण हाथ में मंगलार्थ रखा इस से शब्द होना बंध होगया नमि रायजी को इसपर से विचार हुवा कि कि सब जब कंकण साथ थे तब शोर मचरहाथा, अब अकेला कंकण रहने से शोर मीटगया इस प्रकार मैं भी जहांलग इन सब में फसा हुवा हूं वहां तक ही दुःखी हूं सबको छोड अकेला हो जाऊं तो सुखी होऊं, ऐसे विचार में निन्द्रा आगइ स्वप्न में सातवा देवलोक देखकर जाग्रत हुए अब आगे का कथन सूत्र द्वारा कहते हैं—नमीरामजी को दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम होने से जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई जिस से अपना पूर्व जन्म देखा कि मैं सातवे महा शुक्र देवलोक से चवकर यहां मनुष्य लोकमें आया हूं ॥ १ ॥ जातिस्मरण ज्ञान स गुरु के उपदेश विना स्वयं ही वैराग्य प्राप्त कर और अपने पुत्र को राज्यगादी पर बैठाकर घर से निकले अर्थात् दीक्षा अंगीकार की ॥ २ ॥ नमीराजा अपने अन्तःपुर की एक हजार रानियों सहित देवलोक जैसे सुख भोगते हुए विचरते थे उन का त्याग कर के ही स्वय

ही रमाणमि चेइयंमि मणोरमे ॥दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदति भो खगा॥१०॥ एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊ कारण चोइआ ॥ तओ नमिरायरिसिं देविंदो इणमब्बवी ॥ ११ ॥ १ ॥ एस अग्गी य वाऊय एय डज्झइ मंदिर ॥ भयवं अंतेउरंतेणं, कीस ण

पंगेरह शरण रहित पीडित पने हुए, आक्रंद करते हैं जैसे वे पक्षी अपने स्वार्थ के लिये आक्रंद करते हैं परंतु वृक्ष के लिये आक्रंद नहीं करते हैं ऐसे ही ये लोक अपने स्वार्थ के लिये आक्रंद करते हैं न कि मेरी प्रव्रज्या के लिये इस से तुम्हारा हेतु अयोग्य है ऐसा करके उस का हेत्वाभास बनाया वृक्ष के दृष्टांत से अपना स्वार्थ के लिये जीव आक्रंद करते हैं इस से तुम्हारा कीर पक्ष का उदाहरण भी अयोग्य है अपने स्वार्थ के लिये जो आक्रंद करते होवे उस का धर्मी पुरुषों को आचरण नहीं करना इस से तुम्हारा उपनय भी अयोग्य है मेरी प्रव्रज्या के लिये शब्दादि नहीं करते हैं इस से मेरी प्रव्रज्या ग्रहण करना योग्य है, इस से तुम्हारा पक्ष की समाप्ति भी अयोग्य है इस से मेरी दीक्षा कल्याण का कारण है ऐसा पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारण मानना॥१०॥प्रश्नोत्तर नमीराजर्षि के हेतु व भय को सुनकर हेतु व कारण से प्रेराया हुवा इन्द्र इस प्रकार बोलने लगा ॥ ११ ॥ अहो भगवन् ! यह वायु व अग्नि तुम्हारे मंदिर व अंतःपुर का जला रहे हैं, उस को तुम क्यों नहीं देखते हो ? (इस को बचाना यह तुम्हारा धर्म है यह पक्ष, अपना होने से यह हेतु, जैसे ग्रामादिक यह उदाहरण ज्ञानादिक जैसे

घोइओ ॥ तओनमी रायरिसी, देवेंद इणमब्बवी ॥ ८ ॥ मह्विलाए चेइए वच्चे, सीयच्छाए मणोरमे ॥ पत्तपुप्फफलोवए, बहूणं बहुगुणे सया ॥ ९ ॥ वायुण

ऐसा पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारन सहित वचन सुनकर (अब यहां पांच प्रकार हेतु भिन्न २ कहते हैं—तुम्हारी प्रवर्ज्या का लेन सो अयोग्य है यह पक्ष क्योंकि आक्रंदादि शब्द होते हैं यह हेतु एक जैसे जीव को प्रहार करने आक्रंदादि दारुण शब्द होते हैं वैसे ही तुम्हारी प्रवर्ज्या से दारुण शब्द होते हैं यह उदाहरण और जिस से आक्रंदादि दारुण शब्द होवे उसे धर्मार्थी पुरुषों को ग्रहण नहीं करना, यह उपनय, और तुम्हारी प्रवज्या जीव वध रूप होने से ग्रहण करना उचित नहीं सो पक्ष समाप्ति ऐसे पांच वचन का हेतु और आक्रंदादि दारुण शब्द से अनेक जीवों को दुःख होवे इस में तुम्हारी प्रवर्ज्या कल्याण करनेवाली नहीं है यह एक कारण,) नमीराजर्षि देवेन्द्र से ऐसा बोले॥८॥ मिथिला नगरी के उद्यान में पत्र पुष्प व शीतल छायावाला, पक्षी मनुष्य अनेक जीवों का गुणकर्ता और अनेक गुणों से रमणीक ऐसा एक वृक्ष था अब अहो विप्र ! वह वृक्ष वायु से एकदा टूट पड़ा जिस से उस पर बैठनेवाले पक्षी

१ अपनी वस्तु की स्थापना और दूसरे की वस्तु की उत्थापना सो पक्ष, २ जिस वस्तु से अपना पक्ष सिद्ध करे सो हेतु, वस्तु सिद्ध करने के लिये जो दृष्टांत देवे सो उदाहरण, जिस से हेतु व उदाहरण दोनों सिद्ध होवे सो उपनय जिस हेतु व उदाहरण को उपनय से अपनी वस्तु सिद्ध करके स्थापना और अन्य वस्तु निकालना सो पक्ष समाप्ति.

॥ १६ ॥ एयमट्ठ निसामित्ता,, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥ १७ ॥,२ ॥ पागार कारइत्ताण, गोपुरट्टा लगाणिय ॥ उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छासि खत्तिया ॥ १८ ॥ एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊ कारण

वाले मुनि को सदैव सुख है (यहां पर मेरा कुच्छ नहीं है सो नमीराय का पक्ष अकेला होना सो हेतु जैसे सिद्ध यह उदाहरण, जो एकाकी होते है उन को कुच्छ नहीं होता है सो उपनय, इस से ज्ञानादि सिवाय हमारा कुछ नहीं है सो पक्ष समाप्ति इस से हमारी प्रवज्यो कल्याण कारी है यह कारन ऐसा कहकर इन्द्र के हेतुकी व कारणकी उत्थापना की यह पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारन जानना) ॥१६॥प्रश्नोत्तर ऐसा नमीराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेरणा हुआ इन्द्र नमीराजर्षि को पुनः इस प्रकार प्रश्न करने लगा ॥ १७ ॥ अहो क्षत्रिया मिथिला नगरी के चारों ओर कोट शोभित स्थान द्वारों उन के रूपन कपाटों मजबूत अर्गल, कोट के मध्य में बुरज, कोट के चारों ओर ऊंडी खदान और कोट के बुरजों पर शतघ्नी (तोप) इत्यादि तैयार करवाकर फीर दीक्षा लेना (यहां कोट वगैरह तैयार करवाना सो पक्ष, तुम क्षत्रिय हो सो हेतु राज्य की रक्षा के लिये सो उदाहरन जो जो क्षत्रिय होते हैं सो दया के लिये कोट वगैरह बनवाते हैं यह उपनय वैसे ही तुम को कोट वगरह बनवाना से पक्ष समाप्ति कोट वगैरह बनाये विना क्षत्रियपना होवे नहीं यह कारन जानना) ॥ १८ ॥

गाथविकलइ ? ॥ १२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेउ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी, देवेन्दं इणमब्बवी । १३ ॥ सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचण ॥ महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचण ॥१४॥ चत्तपुत्तकलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ॥ पियं न विज्जइ किंचि, अप्पियं पि न विज्जई ॥ १५ ॥ बहुं खु मुणिणो भद्दं अणगारस्स भिक्खुणो॥सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एग त मणुपस्सओ

जो वस्तु अपनी है उस की रक्षा करना यह उपनय और इस से मदिरादिक अपनी वस्तु की अवश्य रक्षा करना सो पक्षसमाप्ति इस मदिरादिक का रक्षण नहीं करनेवाला अपनी वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता है इस से विवेकी अपनी वस्तु का रक्षण करे यह कारण यह पांच वचन रूप हेतु और एक वचन का कारण मानना) ॥१२॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेराये हुए नमीराजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ १३ ॥ मैं तो सुख पूर्वक रहता हूं और सुख पूर्वक ही जीता हूं जिस से मंदिरादिक में मेरा कुच्छ भी संबंध नहीं है यह मिथिला नगरी जल रही है इस से मेरा कुछ भी नहीं जलता है जिस साधुने पुत्र कलत्रादि का त्याग किया है और सब व्यापार से जो निवर्ता है उस साधु को कोइ वस्तु प्रिय नहीं है वैसे ही अप्रिय भी नहीं है ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से आरंभ परिग्रह रहित एकत्व अकेलपना देखनेवाले, घर रहित व भिक्षा से आजीविका करने

॥ २२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ २३ ॥ ३ ॥ पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाण गिहाणि य ॥ वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ २४ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी ॥ २५ ॥ संसयं खलु ,

॥२२॥ प्रश्नोत्तर ३॥ ऐसा सुनकर हेतु व कारन से प्रेराया हुआ शक्रेन्द्र नमीराजर्षी से इस प्रकार पुन प्रश्न करने लगा ॥ २३॥ अहो क्षत्रिय ! राज्य योग्य शिखर बंध प्रासाद, बहुत मजले वाले गवाक्षादि युक्त सामन्य घर वस ही चांदनी सहित चोबारे घर और तलाव में महेन्द्र घर बनवाकर फिर जाना यहां पर प्रासादिक बनवाना यह पक्ष, क्रीडा राभिक होने से यह हेतु ब्रह्मदत्त का उदाहरण, जो जो क्रीडा रसिक होवे हैं वे प्रासादक कराते हैं यह उपनय, वैसे ही तुम को ऐसे प्रासादिक बनाना चाहिये यह पक्ष समाप्ति और प्रासादि बनाये बिना क्रीडा में आनंद होव नहीं यह कारन यों पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन जानना ॥ २४ ॥ शक्रेन्द्र का ऐसा अर्थ सुनकर नमीराजर्षी देवेन्द्र से इस प्रकार बोलने लगे ॥ २५ ॥ जो मार्ग में घर बनाता है उस के मन में संशय रहता है कि मुझे आगे घर मीलेगा या नहीं परंतु मेरे मन में संशय नहीं है क्यों कि जहां मैं जाने की इच्छा करता हूं वहां मेरा सिद्धि रूप शाश्वत घर बनाता हूं यहां सिद्धि रूप शाश्वत घर बनाना सो यह

योइओ ॥ तओ नमीरायरिसी देवेन्दं इणमब्बवी ॥ १९ ॥ सद्धं नगरं किच्चा, तव संवर मग्गलं ॥ खंती निउण पागारं, तिगुत्त दुप्पधसय ॥ २० ॥ धणुं परक्कमं किच्चा, जीवंच इरियं सया ॥ धिइं च केयणं किच्चा सच्चेण पलिमंथए ॥ २१ ॥ तव नाराय जुत्तेण, भित्तूण कम्म कंचुयं ॥ मुणी विगय संगामो, भवाओ, परिमुच्चए

शक्रेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेराये हुए नमीराजर्षी शक्रेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे ॥ १९ ॥ मैंने श्रद्धा रूपी नगर का क्षमा रूप कोट, तप रूप द्वार, संवर रूप कपाट व वचन निरुंधन रूप खाई, मन योग निरुंधन रूप अर्गल काया योग निरुंधन रूप शतघ्नी बनाये हैं इस से मेरा कोट नगर का कोई पराभव नहीं कर सकता है ॥ २० ॥ वैसे ही संयम मार्ग में पराक्रम करने रूप धनुष्य ईर्यादि पांच समिति रूप धनुष्य की पीनच धर्म रूप धनुष्य की मूठ और सत्य रूप धनुष्य का बंधन है ॥ २१ ॥ लौकिक संग्राम रहित साधु पूर्वोक्त प्रकार का धनुष्य पाकर तप रूप बाण बान से कर्म रूप वैरी के समूह को विदारते संसार से मुक्त होवे (यहां जो आप कोट करा सो यह क्षत्रियपना होने से है भरतादिक का दृष्टांत भरत राजाने कोट बनाया यह उपनय इस से हमने भी कोट वगैरह बनाये हैं सो पक्ष की समाप्ति कोट वगैरह बिना बनाये क्षत्रियपना होवे नहीं, इस से कोट वगैरह बनाकर हम क्षत्रिय बने हैं तुमने जो पूर्वोक्त प्रकार के कोट वगैरह बनाने का कहा उस से मोक्ष नहीं इस से कोट वगैरह बनवाना यह तुम्हारा हेतु सदोष है)

पज्जुवइ॥अकारिणोऽत्थ बज्झन्ति, मुच्चइ कारओ जणो ॥ ३० ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ ३१ ॥ ५ ॥ जे केइ पत्थिवा तुब्भं, नानमंति नराहिवा ॥ वसे ते ठावइत्ताण, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ ३२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी

दंड मिलता है और अपराधी चोरी कर्म करनेवाला दंड से मुक्त रहते हैं [यहां पर हम ऐसा अज्ञा का कार्य क्षेम नहीं कर सकते हैं यह पक्ष अनुचित होने से हेतु, चोर के उदाहरण से अपराधी मुक्त हो जाता है और निरपराधी को दंड मिलता है यह उपनय और नगर क्षेम होवे नहीं सो निगमन नगर क्षेम किये बिना ही है अपराधपना नहीं होता है यह कारण यों हेतु व कारण जानना॥३०॥प्रश्नोत्तर का ऐसा नमीराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित नमीराजऋषि देवेन्द्र पुन कहने लगा॥३१॥अहो नराधिप' जो कोई राजा तेरी आज्ञा में नहीं है अथवा तो तुझे नहीं नमते हैं उन को वश में करके पीछे जाना [यहां शत्रुओं को नमाना सो पक्ष, नराधिप होने से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण जो नराधिप होवे वह शत्रुओं को नमावे यह उपनय इस से तुम को भी वैरी को नमाना चाहिये यह निगमन वैरी को नमये सिवाय नराधिपतिपना होवे नहीं यह कारण यों हेतु व कारन जानना ॥ ३२ ॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर

सो कुणइ आ मग्गो कुणई घर ॥ जत्थेवगंतु मिच्छेज्जा तत्थ कुव्वेज्ज सासय ॥२६॥ एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥ २७ ॥ ४ ॥ आमोसे लोमहारेय, गंठिभेएय तक्कर ॥ नगरस्स खेम काऊण, तओ गच्छासि खत्तिया ॥ २८ ॥ एयमट्ठ निसमित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी देविंद इणमब्बवी ॥ २९ ॥असइ तु मणुस्सेहिं, मिच्छा दंडो

कीडा के रसिकपना से यह हेतु भरतादिक का दृष्टांत कीडा के रसिक शाश्वत घर बनाते हैं सो उपनय, मार्ग में भी वैसे ही करता हुं सो निगमन शाश्वत घर बनाये बिना कीडा का रसिकपना होवे नहीं सो कारन ॥ २६ ॥ प्रश्नोत्तर ॥ ४॥ नमीराजर्षी का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेरा हुआ देवेन्द्र नमीराजर्षी को इस प्रकार कहने लगा ॥ २७ ॥ हे क्षत्रिय ! मार्ग में लूटने वाले प्राण हरण करने वाले गठरी छेद कर ले जाने वाले इत्यादि प्रकार के चोरों के उपद्रव से नगर की रक्षा किये पीछे जाना यहां चोरों को निकाल कर नगर की रक्षा करना यह पक्ष धर्मराज्य होने से हेतु, भरतादिक का दृष्टांत चोरों को निकाले बिना धर्मपना होवे नहीं यह उपनय इस से तुम को नगर की रक्षा करना निगमन व नगर को क्षेम किये बिना धर्म राज्य होवे नहीं यह कारन ऐसे पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन जानना ॥२८॥ ऐसा वचन सुनकर हेतु कारन से प्रेराए हुए नमीराजर्षी इस प्रकार बोलने लगे ॥२९॥ अहंकार व अज्ञानता से मनुष्यों वारंवार मिथ्या दंड करते हैं। उन में निरपराधियों

पजुम्मइ॥अकारिणोऽत्थ बज्झन्ति, मुच्चइ कारओ जणो ॥ ३० ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ ३१ ॥ ५ ॥ जे कोइ पत्थिवा तुज्झं, नानमंति नराहिवा ॥ वसे ते ठावइत्ताण, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ ३२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी

दंड मिलता है और अपराधी चोरी कर्म करनेवाला दंड से मुक्त रहते हैं [यहां पर हम ऐसा अज्ञा का कार्य क्षेम नहीं कर सकते हैं यह पक्ष अनुचित होने से हेतु, चोर के उदाहरण में अपराधी मुक्त हो जाता है और निरपराधी को दंड मिलता है यह उपनय और नगर क्षेम होवे नहीं सो निगमन नगर क्षेम किये बिना ही है पमराजपना नहीं होता है यह कारण यों हेतु व कारण जानना॥३०॥प्रश्नोत्तर का ऐसा नमीराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित नमीराजऋषि देवेन्द्र पुनः कहने लगा॥३१॥अहो नराधिप'जो कोई राजा तेरी आज्ञा में नहीं है अथवा तो मुझे नहीं नमते हैं उन को वश में करके पीछे जाना [यहां शत्रुओं को नमाना सो पक्ष, नराधिप होने से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण जो नराधिप होवे वह शत्रुओं को नमाये यह उपनय इस से तुम को भी वैरी को नमाना चाहिये यह निगमन वैरी को नमये सिवाय नराधिपतिपना होवे नहीं यह कारण यों हेतु व कारन जानना ॥ ३२ ॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर

देविंदे इणमब्बवी ॥ ३३ ॥ जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे ॥ एगो जिणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ ॥ ३४ ॥ अप्पाण मेव जुज्झाहि, किंते जुज्झेण बज्झओ ॥ अप्पाण मेव मप्पाण, जइत्ता सुहमेहए ॥ ३५ ॥ पचिंदियाणि कोह, माण मायं तहेव लोहंच ॥ दुज्जय चेव अप्पाण, सव्व अप्पेजिए जिय ॥३६॥

हेतु व कारन सहित नमीराजर्षी इस प्रकार कहने लगे ॥ ३३ ॥ हजार को हजार गुना करने से दश लक्ष होवे ऐसे दश लक्ष दुर्जय सुभटों को वासुदेव प्रमुख जीतते हैं परतु अपना आत्मा को जो तप संयम से जीतता है वह उन से उत्कृष्ट जितेता है ॥ ३४ ॥ इस से अपने आत्मा के साथ युद्ध करने वाले का अन्य बाहिर के युद्ध से क्या प्रयोजन है ! ज्ञान आत्मा व चारित्र आत्मा से अज्ञान व कषाय आत्मा को जो जीतता है वह मोक्ष का सुख प्राप्त करता है ॥ ३५ पांच इन्द्रियों क्रोध, मान माया, लोभ और दुराचारी आत्मा को जीतना दुष्कर है ऐसा आत्मा का जिसने जय किया है इसने सब का जय किया है. यहां अंतरंग क्रोधादि शत्रुओं को नमाये हैं यह पक्ष, नराधिपपना से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण, जो नराधिप होवे सो वैरी को नमावे यह उपनय वैसे ही हम को भी नमाना यह पक्ष समाप्ति पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन जानना यहां नमीराजर्षिने कहे हुवे हेतु व कारन की

एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसि, देविंदो इणमब्बवी ॥ ३७ ॥ ९ ॥ जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समण माहणे ॥ दच्चा भोच्चा य जिट्ठाय, तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ ३८ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ तओ नमीरायरिसी देविन्दं इणमब्बवी ॥ ३९ ॥ जो सहस्सं सहस्साणं मासे

न्द्र ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ पूर्वोक्त प्रकार नमीराजर्षि का अर्थ सुनकर हेतु व कारन से प्रेराया हुवा देवेन्द्र इस प्रकार कहने लगा ॥ ३७ ॥ अब सम्यक्त्व की परीक्षा करते हैं–अश्वमेध आदि महा यज्ञ करके, ब्राह्मणादि श्रमण ब्राह्मण को जिमाकर सुवर्ण भूमि गो इत्यादिक का दान देकर के, शब्दादि पांचों इन्द्रियों के भोग भोगकर, ज्यष्टपना अर्थात् यज्ञ से करने योग्य कार्य करके फीर अहो क्षत्रिय ! तू जा यहां यज्ञादिक धर्म करना यह पक्ष, प्राणियों की प्रीतिपना से यह हेतु प्राणियों को जीमने से सब जीवों को सुख होवे यह उदाहरन जो जो यज्ञादि धर्म करते है वे सुखी होते है यह उपनय इस से आपको भी वैसा करना यह पक्ष समाप्ति यह नहीं करते स तथा प्राणानादिक को नहीं जिमाने से प्राणीको प्रीतिपना होवे नहीं यह कारन यों हेतु व कारन जानना ॥ ३८ ॥ देवेन्द्र का उक्त अर्थ श्रवण कर हेतु व कारन से प्रेराए हुए नमीराजर्षी देवेन्द्र का इस प्रकार कहने लगे ॥ ३९ ॥ जो कोइ एक २ मास में दश २ लाख गायों का दान करे इस से कुछ भी दान किये विना चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जिस को

मासे गर्व दए तरसवि सजमो संओ अदिंतस्स थि किंचण ॥४०॥ एयमट्ठ निसा- मित्ता हेऊ कारण चाइओ ॥ तओ नमिं रायरिसिं दविंदो इणमव्ववी ॥ ४१ ॥७॥ घोरासम चइत्ताण, अन्नत्थेसि आसम ॥ इहेव पोसहरओ ॥ भवाहि मणुयाहिवा

सब भावय विरमण रूप चारित्र भावे वह श्रेष्ठ है यहां पर संयम अंगीकार करना यह पक्ष, प्राणियों का अप्रतीत नहीं होने से यह हेतु, अहिंसा के उदाहरन से प्राणियों को अप्रतीत होवे वैसा यथार्थी करे नहीं यह उपनय अंधेरी में भी करूं नहीं यह पक्ष समाप्ति निर्विघ कार्य किये विना प्राणीको प्रतीतपना होवे नहीं यह कारन ऐसा पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन से नमीराजर्षीने अपने पक्षकी स्थापना की यहां शक्रेन्द्र में निश्चलता की परीक्षा की ॥ ४० ॥ पूर्वोक्त प्रकार के वचन सुनकर देवेन्द्र नमीराज को इस प्रकार कहने लगे ॥ ४१ ॥ अप महा नराधिप। गृहस्थाश्रम का निर्वाह करना अति भयंकर है. क्यों कि १ ब्रह्मचर्याश्रम २ गृहस्थाश्रम ३ वानप्रस्थाश्रम और ४ सन्यस्ताश्रम इन चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम सबको आधारभूत है. इससे अपना परका यों दोनों का साधन करने के लिये गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है शूरवीर पुरुषों ही इनका पालन कर सकते हैं ता आप जैसे शूरवीर हो करके भी इसका पालन नहीं कर सकते हो और सड़ से गृहस्थाश्रम त्याग कर भिक्षा वृत्ति अंगीकार करते हो. अहो मनुष्याधिप ! गृहस्थाश्रम में ही रहो और सामायिक व पौषधोपवासादि मनुष्य की क्रिया करते रहो यही आप को

केसा पंडुरया हवन्ति ॥ से फासबले य हायई, समय गोयम मा पमायए ॥ २९ ॥
परिजूरइ ते सरीरय केसा पंडुरया हवन्ति ॥ से सव्वबले य हायई, समय गोयम
मा पमायए ॥२६॥ अरई गंड विसूइया आयंका विविहा फुसन्ति ते॥ विहडइ विद्ध
सइ ते सरीरय समय गोयम मा पमायए ॥ २७ ॥ वोच्छिन्द सिणेह मप्पणो, कुमुय
सारइय व पाणिय ॥ से सव्वसिणेह वज्जिए, समय गोयम मा पमायए ॥ २८ ॥
चिच्चाण धणंच भारियं पव्वइओ हि सि अणगारिय ॥ मा वंत पुणो वि आविए,

कर्ण का बल भी क्षीण होता जाता है वैसे ही चक्षु घ्राण जिव्हा, स्पर्श और सब इन्द्रियों का बल क्षीण होता है, इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २१ २६ ॥ अरति चिन्ता कषायादि गड गुम्बड विशुचिका आर विविध प्रकार के रोग तेरे शरीर को स्पर्श कर रहे हैं उस से ही तेरे शरीर बल का विध्वंस होता है इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २७ ॥ जैसे कमल शरद ऋतु के पानी को छोडकर भलिप्त रहता है वैसे ही राग द्वेष रूप आत्मा का त्याग कर सब स्नेह को त्यजता हुआ अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २८ ॥ धन स्त्रियादि का त्याग कर घर रहित अनगार बन भिक्षावृत्ति से आजीविका करनेवाले बनकर पुन पीछा उस स्नेह जाल के बंधनमें

समय गोयम मा पमायए ॥ २९ ॥ अवउज्झिय मित्तबंधव विउल चेव धणोह सचय ॥ मा त विइय गवेसए समय गोयम मा पमायए ॥ ३०॥ न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए ॥ संपइ नेयाउए पहे, समय गोयम मा पमायए ॥ ३१ ॥ अवसोहिय कटगापह, ओइण्णोसि पह महालय ॥गच्छसि मग्ग विसोहियं समय गोयम मापमायए ॥३२॥ अबले जह भारवाहए मा मग्गे विसमे वगाहिया॥

नहीं पडे, इस प्रकार रहने में अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २ ॥ मित्र बंधव व विपुल धन संचय कि जिस का त्याग किया है उस धनादिक की पुनः वांच्छा नहीं करने में अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥३०॥ सांप्रत काल में जिन (तीर्थंकर) नहीं दिखते हैं परंतु बहुत जीवोंको मुक्ति देनेवाला जिनेन्द्र का मार्ग दिखता है*ऐसा न्यायकारी मार्ग की प्राप्ति होने पर अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३१ ॥ कंटक पंथ रूप कुमार्ग का त्याग कर महा पंथ रूप मुक्ति मार्ग को अंगीकार किया है, अब चारित्र का पालन करता हुवा मोक्ष मार्ग में जावेगा इस से अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद नहीं करना ॥ ३२ ॥ जैसे कोई निर्बल भारवाहक परदेश में बहुत द्रव्य कमाकर भरन घर भरता था भार का वजन बहुत होने से तथा चोरों डर से विषम मार्ग में चलने लगा परंतु वैसे

* यह कथन पांचवे आरे को उद्देश कर कहा गया है अर्थात् पांचवे आरे में तीर्थ कर का दर्शन नहीं है

पच्छा पच्छाणुतावए, समय गोयम मा पमायए ॥ ३३ ॥ तिण्णो हु सि अण्णव

मई किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ॥ अभितुरपारं गमित्तए, समय गोयम मा पमायए

॥ ३४ ॥ अकलेवरसेणि मूसिया, सिद्धिं गोयम लोय गच्छसि ॥ खेम च सिवं

अणुत्तर, समये गोयम मा पमायए ॥ ३५ ॥ बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामगए नगरेव

सजए ॥ सतिमग्ग च बूहए, समय गोयम मा पमायए ॥ ३६ ॥ बुद्धस्स निसम्म

मार्ग में भार उठा सका नहीं और वहां ही डालकर अपने घर आकर पश्चाताप करने लगा वैसे ही संयम रूप भार को डालकर तुझे पश्चाताप करना नहीं पड़े इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३३ ॥ तू संसार रूप महा समुद्र तीर कर उस के किनारे पर आकर खड़ा है अब मुक्ति प्राप्त करने में क्यों विलम्ब करता है ? इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३४ ॥ अहो गौतम ! संयम स्थान में क्षपक श्रेणी रूप सीढी पर चढकर भय प्रकार के उपद्रव रहित क्षेम कल्याणकारी प्रधान सिद्ध गति को तू प्राप्त करेगा इस लिये समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३५ ॥ ग्राम अथवा नगर में विचरते हुए तत्त्वज्ञ व शीतलीभूत साधु शांति (दया) मार्ग का उपदेश करते हैं इस लिये अहो गौतम ! इस में तू समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३६ ॥ इस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान

भासिय सुकहिय मट्ठपओव सोहियं ॥ रागदोसं च छिंदिया, सिद्धिगइंगए गोयमे ॥ ३७ ॥ त्तिबेमि॥ इति दुमपत्तय दसम मज्झयणं सम्मत्त ॥१०॥

का अच्छी तरह से सुशोभित पद व अर्थ श्रवण करके और राग द्वेष का छेदन करके श्री गौतम स्वामी मुक्ति में गये ॥ ३७ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री धर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने तीर्थंकर भगवान से श्रवण किया है वैसे ही तुझे कहता हूं यह वृक्ष के पत्र का दृष्टान्त का दशवा अध्ययन हुवा ॥ १० ॥

॥ बहुश्रुत नामकं एकादश मध्ययनम् ॥

सजोग त्रिप्पमुकस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ॥ आयार पाउकरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥ १ ॥ जे यावि होइ निविज्जे थद्धे लुद्धे आणिग्गहे ॥ अभिक्खण उल्लवई, अविणीए अबहुस्सुए ॥ २ ॥ अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई ॥ थम्भा कोहा पमाएण, रोगेण आलसेण य ॥ ३ ॥ अह अट्ठहिं, ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥ अहस्सिरे सयादन्ते, न य मम्म मुदाहरे ॥ ४ ॥ नासीले न विसीले,

दसवे अध्ययन में प्रमाद त्याग का कहा जो प्रमाद का त्याग करेगा वह बहुसूत्री होगा इस से इग्यारहवे अध्ययन में बहुसूत्री का कथन करते हैं बाह्य व आभ्यन्तर यों दो प्रकार के संयोगों से रहित व निर्ग्रंथ भिक्षा करने वाले अनगार का आचार में अनुक्रम से कहूंगा सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो ॥ १ ॥ जो पुरुष १ विद्या रहित होवे, काम भोगादि का निवारक होवे, २ अभिमानी होवे ३ रसना को लोलुप होवे, ४ जिसने इन्द्रियों का निग्रह नहीं किया है वैसा होवे और ५ वारंवार असंबद्ध भाषा बोलने वाला होवे, वह अविनीत व अबहुसूत्री कहता है॥ २ ॥ १ मान २ क्रोध, ३ प्रमाद ४ रोग और ५ आलस्य, इन पांच स्थानक सेवनेवाले को आसेवना व ग्रहणा ऐसी दो प्रकार की शिक्षा की प्राप्ति होवे नहीं ॥ ३ ॥ आठ स्थानक सेवनेवाले आसेवना व ग्रहण यों दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं जिन के नाम—१ बहुत हसने

नसिया अइ लोलुए ॥ अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ॥ ५ ॥ अह चउद्दसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए ॥ अविणीए वुच्चइ सो उ, निव्वाणं च न गच्छइ ॥ ६ ॥ अभिक्खणं कोही भवइ, पबन्धं च पकुव्वइ ॥ मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जइ ॥ ७ ॥ अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पई ॥ सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावयं ॥ ८ ॥ पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अनिग्गहे ॥

चाला न होवे २ इन्द्रियों का दमन करने वाला होवे ३ किसी का मर्म प्रकाशता न होवे, ४ देश व्रत प्रत्याख्यानादि का भंग करने वाला न होवे, ५ सर्वव्रत महाव्रत का भंग करने वाला न होवे ६ रसना का लालुपी न होवे ७ क्रोधी होवे नहीं और ८ सत्य वचन बोलने वाला होवे ॥ ५-६ ॥ संयम में प्रवर्तता हुवा भी निम्नोक्त चवदह कारन से अविनीत कहाता है और वह मोक्ष में नहीं जाता है इन के नाम कहते हैं—१ वारंवार क्रोध करे २ बहुत काल तक क्रोध रखे, ३ मित्रों साथ कृतघ्नता करे ४ श्रुत ज्ञान प्राप्त करने में अभिमान करे, ५ अपना किया हुवा दोष दूसरे पर डाले ६ हित किया हुवेवाले मित्र पर भी क्रोध करे, ७ अपने मित्र के सन्मुख मधुर वचन बोले और पीछे उस की बुराइ करे, ८ असंबंध वचन बोले, ९ प्रत्येक के साथ द्रोह करे, १० अभिमानी होवे, ११ लो लुपी होवे १२ अजितेन्द्रिय होवे, १३ साधुओं के आहारादि का संविभाग करे नहीं और १४ सब को

असविभागी अवियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥ ९ ॥ अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुवि-
णीए त्ति वुच्चइ ॥ नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥ १० ॥ अप्पं चाहि
क्खिवइ, पबन्धंचन कुव्वई ॥ मेत्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं न मज्जई ॥ ११ ॥
नय पाव परिक्खेवी, नय मित्तेसु कुप्पइ ॥ अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई
॥ १२ ॥ कलह डमरवज्जिए, बुद्धे अभिजाइगे ॥ हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति

भप्रीतकारी होवे इन चवदह दुर्गुण वाला अविनीत मोक्ष की प्राप्ति नहीं करसकता है ॥ ९० ॥
भा साधु निम्नोक्त पन्नरह स्थानक में प्रवर्तता होवे वह सुविनीत कहाता है—१ गुरु से नीचे आसन
बैठे, २ गमनागमन का बैठने का व भाषा का चपल होवे नहीं, ३ माया कपट रहित होवे, ४ इन्द्रजालादि
कुतूहल करे नहीं ५ तिरस्कार युक्त वचन बोले नहीं, ६ क्रोध की वृद्धि करे नहीं ७ कृतघ्नी होवे
नहीं अर्थात् अन्यकृत उपकार मानने वाला होवे ८ श्रुत ज्ञान प्राप्त कर बहुसूत्री होने का
अभिमान करे नहीं, ९ अपना अपराध दूसरे पर डाले नहीं १० मित्र पर क्रोध करे नहीं, ११
मित्रने ज्यादा अपराध किया होवे तो भी उस की निंदा करे नहीं १२ क्लेशकारी वचन बोले नहीं तथा
मिथ्या आडंबर करे नहीं १३ बुद्धिमान होवे १४ लज्जावान होवे और १५ गुरु के समीप सदैव
मर्यादा सहित व इन्द्रियों का संवर कर रहे इन पन्नरह सद्गुण संपन्न जो होवे उसे सुविनीत कहना

मुषइ ॥ १३ ॥ वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं॥ पियंकरे पियवाई से सिक्खं लद्धु मरिहइ ॥ १४ ॥ जहा संखम्मि पयं, निहियं दुहओ वि विरायइ ॥ एवं बहुस्सुए भिक्खू धम्मो कित्ती तहासुयं ॥ १५ ॥ जहा से कंबोयाण, आइण्णे

॥ १० ११ ॥ जो गुरु के समीप सदैव रहता है, मन वचन व काया के योगों को गुरु की आज्ञा में प्रवर्ताता है आयंबिलादि तप कि जो सूत्रपठन की आदि अंत में उपधान होता है सो करता है और प्रियकारी वचन बोलने से सबको प्रियकारी होता है वह शास्त्र ग्रहण और आसेवना यों दोनों प्रकार की शिक्षा को प्राप्त कर सकता है अर्थात् बहुत सूत्रों का ज्ञाता होता है फिर वह जगत में किस प्रकार शोभा पाता है उस की सोलह उपमा आगे कहते हैं ॥ १४ ॥ जैसे दुग्ध अपने स्वभाव से तो निर्मल है परंतु शंख के आश्रय रूप गुण से अधिक सुशोभित होता है और उस में रहा हुवा दुग्ध कदापि नहीं बिगडता है, वैसे ही धर्म कीर्ति व आगम ये तीन पदार्थ अपने स्वभाव से उत्तम सुशोभित हैं परंतु बहु श्रुत साधु में रहने से आश्रय गुण से अधिक शोभा देते हैं उन का कदा विनाश नहीं होता है यह पहिली उपमा कही॥ १५॥ जिस प्रकार कम्बोज देश कि उत्तम जाति वाले मातपिता के संयोगसे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ शिक्षक से शिक्षा पाये हुए, विनयादि गुण वाले किसी प्रकार के भयंकर शब्द व भयण करने पर त्रास नहीं पाते [illegible]

कंथए सिया ॥ आसे जवेण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए ॥ १६ ॥ जहा इण्ण समारूढे, सूरेदढ परक्कमे ॥ उभओ नदिघोसेण, एव हवइ बहुस्सुए ॥ १७ ॥ जहा करेणु परिकिण्णे, कुजरे सट्ठिहायणे ॥ बलवते अप्पडिहए, एव हवइ बहुस्सुए

स्वामी को वश में करने वाले होते हैं वैसे ही विनय विवेकादि गुण संपन्न पाषण्डियों के पाखंड से क्षुब्ध नहीं होने वाले वाक् प्रहार से पीछे नहीं हटने वाले और सद्राग व सब सम्यक् आचार से सुशोभित भव्य जनों का बहुसूत्री वल्लभ लगते हैं ॥७॥१६॥जैसे महा पराक्रमी सुभट आकीर्णादि उत्तम जाति के अश्व पर आरूढ हुवा दोनों तरफ वादित्र के घोष से सुशोभित नंदी जनों के आशीर्वाद से बधाया हुवा किसी भी शत्रु से पराभव पाते नहीं वैसे ही बहुसूत्री साधु भी श्रुत ज्ञान रूप अश्व पर आरूढ बने हुए स्वाध्याय रूप वादित्र के नाद सहित चारों तीर्थ के आशीर्वाद से बधाये हुवे और परवादी रूप शत्रु से पराभव नहीं पाए हुए शोभते हैं ॥ ९ ॥ १७ ॥ जैसे साठ वर्ष की प्रौढ अवस्था को प्राप्त हुवा महा बलवान व हथणियों के परिवार से परवरा हुआ हाथी किसी वैरी हाथी से पराभव नहीं पाते; वैसे ही बहु सूत्री रूप हाथी ज्ञानाभ्यास की प्रौढता को प्राप्त हुवे वाक् चातुरी रूप बल से किसी से पराभूत होवे नहीं और चार बुद्धि रूप हथणियों के परिवार से परवरे हुए शोभते हैं ॥ ८ ॥ १८ ॥

॥ १८ ॥ जहा से तिक्खसिंगे, जायखंधे विरायइ ॥ वसहे जूहाहिवई हवइ बहुस्सुए ॥ १९ ॥ जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए ॥ सीहेमियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २० ॥ जहा से वासुदेवे सम्ब चक्क गदाधरे ॥ अप्पडि

जैसे तीक्ष्ण शृंग और पुष्ट स्कन्धवाला वृषभ (बैल) गायों के व्रज में अपना अधिपतिपना करके शोभता है वैसे बहुसूत्री रूप वृषभ निश्चय व्यवहार रूप दोनों शृंग कर तथा स्वसमय पर समय के ज्ञान रूप शृंग कर, आचारांगादि सूत्र के ज्ञान रूप पुष्ट स्कन्ध कर संयम रूप भार के निर्वाहक चतुर्विध संघ के मुख में शोभते हैं ॥ ८ ॥ १९ ॥ जैसे सिंह तीक्ष्ण दाढों और पराक्रम के गर्जारव शब्द कर किसी से भी पराभव नहीं पाया हुवा मृगादि पशुओं का अधिपतिपना करता शोभता है तैसे ही बहुसूत्री रूप सिंह नैगमादि सात नय रूप तीक्ष्ण दाढों कर, देशना के गर्जारव कर क्षमादि गुणों से किसी से भी पराभव नहीं पाते हुवे परवादी रूप पशुओं के परिवार से परिवरे शोभते हैं ॥ ९ ॥ २० ॥ जैसे शंख चक्र गदा खड्ग रथ कौस्तुभ मणि धनुष्य बाण इन सात रत्नों के धारक अप्रतिहत वैरीयों से पराभव नहीं पाने ऐसे बलके धारक वासुदेव शोभते हैं तैसे ही बहुसूत्री रूप ज्ञान-शंख का निर्घोष करते दर्शन चक्र से मिथ्या मतका निकंदन करते चारित्र गदा से पाप वैरी को हनते शील रूप महारथ पर स्वार हुवे, द्वादशांगी वाणी रूप कौस्तुभ मणि का प्रकाश करते धैर्य रूप धनुष्य में तप रूप बाण साधकर पाखंडियों रूप पर सेना को

हयमले जोहे एव हवइ बहुस्सुए ॥७॥२१॥ जहा से चाउरते चक्कवट्टी महड्ढिओ,
चोद्दस रयणाहिवई एव हवइ बहुस्सुए ॥८॥२२॥ जहा से सहस्सक्खे, वज्ज पाणी
पुरंदरे ॥ सक्के देवाहिवई, एव हवइ बहुस्सुए ॥९॥२३॥ जहा से तिमिर विद्धसे,

भगाते हुवे बाद में किसी से भी पराभव नहीं पाते हुवे शोभते हैं ॥ ७ ॥ २१ ॥ जैसे तीनों दिशा में लवण समुद्र उत्तर में भरत क्षेत्र की हद के अन्त तक राज के कर्ता, सात एकेन्द्रिय सात पचेन्द्रिय रत्न नवनिधि चतुरंगिनी सेना आदि महा ऋद्धि के धारक चक्रवर्ती महाराजा शोभते हैं तैसे ही बहुसूत्री २५ चक्रवर्ती चारों गति का अन्त कर चादा पूर्व रूपी चादे रत्न युक्त नव तत्त्व के ज्ञान रूपी नव निधान युक्त अठावीस प्रकार की महाऋद्धि युक्त, ज्ञान दर्शन चारित्र तप रूप चतुरंगिनी सेना युक्त शोभते हैं ॥ ८ ॥ २२ ॥ जैसे एक हजार आँखों * का धारक, वज्र नामक महा आयुध का धारक दैत्यों का विदारने वाला प्रथम देवलोक का आधिपति पना करते इन्द्र शोभते हैं, तैसे ही बहुसूत्री साधु श्रुतज्ञान रूप हजार चक्षु कर तपप्रधान रूप वज्र के धारक कर्म दैत्यों के विदारक चारों तीर्थ के पूज्य सम्प्रदाय का अधिपतिपना करते शोभते हैं ॥ ९ ॥ २३ ॥ जैसे अन्धकार का नाश

* पांच सो सामानिक देव सदैव पास सभा में बैठने से उन को हजार आँखों इन्द्र की रक्षा रूप होने से १००० आँखों इन्द्र की ही गिनी है.

उन्हिट्ठ ते दिवायरे ॥ जलंते इव तेएण, एव हवइ बहुस्सुए ॥ १० ॥ २४ ॥ जहा से उडुवइ चंदे नक्खत्त परिवारिए ॥ पडिपुण्णे पुण्णमासीए एव हवइ बहुस्सुए ॥ ११ ॥ ॥ २५ ॥ जहा से सामाइयाण, कोट्ठागारे सुरक्खिए ॥ नाणाधन्न पडिपुण्णे एव

करने वाला सूर्य हजार किरणों कर प्रकाशित ज्यों ज्यों आकाश में ऊंचा चढे त्यों त्यों विशेष प्रकाश मान पनता अत्यन्त मानो दीपता स्वयं व तेज प्रताप कर शोभता है तैसे ही बहुसूत्रीजी रूप सूर्य विविध प्रकार के शास्त्र रूप किरणों कर ग्रामादि रूप आकाश में विचरते हुवे मिथ्यात्व अन्धकार का नाश करते हुवे संयम के तप के प्रभाव रूप तेज का पढाते हुवे स्वय की शुभ लेश्या रूप तेज कर शोभते हैं ॥ १० ॥ २४ ॥ जैसे नक्षत्रादि के परिवार से परिवरा उडुपति चन्द्रमा शरद पूर्णिमा की रात्रि को सोले ही कला सम्पूर्ण कर शोभता है तैसे ही बहुसूत्री जी रूप चन्द्रमा शिष्यादि के परिवार कर मूल गुण उत्तर गुण की विशुद्धता कर जैन शासन रूप पूर्णमासी को सोलह उपमा रूप सोलह कला कर शोभते हैं ॥ ११ ॥ २५ ॥ जैसे कोष्ठागार (अनाज का कोठा) सघन द्वारों कर उपद्रवी मच्छ मूषकादि के प्रवेश रहित चौबीस प्रकार के धान्य से भरा हुवा बहुत लोगों को आधार भूत शोभता है तैसे ही बहुसूत्र रूपी कोष्ठागार निश्चय व्यवहार रूप दृढ कमाडों से सहित अंगोपांगादि

हवइ बहुस्सुए ॥ २६ ॥ जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा ॥ आणाढियस्स
देवस्स, एव हवइ बहुस्सुए ॥२७॥ जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरगमा ॥ सीया
नीलवंत पवहा, एव हवइ बहुस्सुए ॥२८॥ जहा से नगाण पवरे, सुमहं मदरे गिरी ॥

चौवीस प्रकार के धान्य से भरे हुवे प्रमाद रूप चूहे के उपद्रव रहित चारों तीर्थ के आधारभूत शोभते हैं ॥ १२ ॥ २६ ॥ जैसे सर्व वृक्षों में प्रधान जम्बू वृक्ष (अपर नाम-सुदर्शन वृक्ष) अनेक अन्य वृक्षों के परिवार कर जम्बूद्वीप के मालक अनाढी देवता के निवासस्थान रूप शोभता है तैसे ही बहुसूत्री रूप जम्बू वृक्ष सब जनों को प्रिय कारक दर्शनवाले अनेक साधुओं के परिवार से परिवरे धर्म के मालक तीर्थंकर के ज्ञान के निवासस्थान रूप शुभ ज्ञान रूप अमृत फल के दाता शोभते हैं ॥ १३ ॥ २७ ॥ जैसे नीलवंत पर्वत से निकली हुई निर्मल पानी की भरी हुई चौदलाख नदीयों के परिवार से परवरी सब नदीयों में बडी सीता नदी समुद्र में आकर मिली हुइ शोभती है वैसे ही बहुसूत्रीजी रूप सीता नदी उत्तमकुल रूप नीलवंत पर्वत से निकले हुवे श्रुतज्ञान रूप निर्मल पानी कर भरे हुवे चारों तीर्थ के परिवार से परिवरे हुवे मुक्ति रूप समुद्र में आकर मिलते हुवे शोभते हैं ॥ १४ २८ ॥ जैसे सर्व पर्वतों में बडा पर्वत शल्यनिवारण संजीवनी वर्ण संहारिणी, विषहरनी, शस्त्र निवारनी, भूतदमन, नागदमन आदि अनेक प्रकार की औषधीयों कर मेरु पर्वत महाप्रकाशमान रत्नमय शोभता है वैसे ही बहुसूत्री रूपी मेरु पर्वत सर्व साधु में ऊंच गुन के धारक लब्धी रूप

नाणोसहिनग्नलिए एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २९ ॥ जहा से सयमूरमणे, उपही अक्खओ। द॰ ॥ नाणारयण पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥३०॥ (काव्य)समुद्द गंभीर समा दुरासया अचक्किया केणइ दुप्पहंसया ॥ सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्म गइमुत्तमं गया ॥३१॥ (गाथा) तम्हा सुय महिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ॥ जेण

औषधी कर संयुक्त पर्वतों रूपी मास्कर भर्वा त जैन शासन रूप पृथ्वी के मध्य में रहे शोभते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ जैसे सब समुद्रों में बड़ा आध रज्जु प्रमाणे विस्तार वाला अनेक रत्नों कर स्वयंभूरमण समुद्र शोभता है वैसे ही बहु सूत्री भी सब साधु में ज्ञान रूप अक्षय पानी कर अतिशय रूप रत्नों कर शोभते हैं ॥ ११॥३० ॥ यों १६ शुभोपमा युक्त अनेक हेतु दृष्टांत नयादी कर रहस्य के जान सिद्धान्त के ज्ञान कर पूर्ण भरे हुवे, समुद्र समान गंभीर, किसी भी परवादी से कदापि पराभव नहीं पावें ऐसे, परिषहादि सम्यक् प्रकार से सहने वाले छ ही काय जीवों के रक्षक ऐसे बहु सूत्री साधु श्रुत ज्ञान स कर्मों का क्षय कर गये काल में मोक्ष गये वर्तमान में जाते हैं और अनागत में जावेंगे ॥ ३१ ॥ इसलिये मुमुक्षु जीवों सूत्र ज्ञान में अपनी आत्मा को स्थापन करे, सूत्र पढ कर उस से अपना आत्म को मोक्ष प्राप्ति का उत्तम अर्थ सिद्ध हो उस की गवेषना करे, जिस से अपना आत्मा को तथा

ध्याण परंमेव, सिद्धिं सपाउणेज्जासि ॥ ३२ ॥ त्तियेमि ॥ इति बहुस्सुय एकादस मज्झयण सम्मत्त ॥११॥ * * * * * *

अन्य भवकों के आत्मा को मोक्ष गति प्राप्त कराने, यों सुधर्मा स्वामीजीने जंबू स्वामी से कहा ॥ इति बहुत सूत्री के गुन कथन रूप इग्यारहवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ११ ॥

॥ हरिएसवल नामकं द्वादश मध्ययनम् ॥

अग्यारहवे अध्ययन में बहुसूत्री के गुण कहे बहुसूत्री होते हैं वे देवों के पूज्यनीय होते हैं इस से बारहवे अध्ययन में इस का कथन करते हैं ॥ गाथा ॥ न कुलं मत्थि पहाणं, हरिएस बलस्स किं कुलं आसी ॥ आईपिओ तवेणं सुराविवं पज्जुवासंति ॥ १ ॥ अगत में कुल का कुच्छ भी विशेपत्व नहीं है परतु धर्म का ही है क्यों कि हरकेशी मुनि चांडाल कुल के होने पर भी तपस्वी होने से देवताने भी उन की सेवा की है ॥ कथा ॥ मथुरा नगरी के शंख राजा संयम अंगीकार कर तले २ का उग्र तप करते हुवे विचर रहे थे एकदा गजपुर नगर में अष्टम तप के पारने के लिये गौचरी करने निकले तब वहां के पुरोहितने मिथ्या द्वेष से मुनि को परिषह देने के लिये विधावल से चलने की भूमि अत्यंत उष्ण कर दी परंतु मुनि के तप तेज से कुच्छ भी पराभव हुवा नहीं ऐसा देखकर पुरोहितने जैन धर्मका प्रभाव माना और दीक्षा अंगीकार की परंतु अपने कुल व रूप का अभिमान करते हुवे नीच कुल व कुरूप का बंध किया. उस की आलोचना निंदा किये बिना काल कर सौधर्म देवलोक में देवता हुवा वहां से चवकर गंगा नदी के किनारे स्मशान का रक्षक कोष्टक नामक स्मशान का चांडाल की गोरी नामक स्त्री की कुक्षि में वसंत आम्र का स्वप्न देकर पुत्रपने उत्पन्न हुवा सवा नव मास में पुत्र का जन्म हुवा उस का हरे रंगवाला मलिन शरीर देखकर हरिकेशी व हरिवसबल ऐसे दो नाम किये थे। एक का कुच्छ

देखकर बहुत लोग दुर्गछा करने लगे जिस से अपरोप में आकर मदेश जाते मार्ग में बहुत से लोगों को सर्प की घात करते हुए और दुमाई को कुच्छ भी नहीं करते हुए देखे तब उसने पूछा कि इस सर्प को क्यों मारते हो और दुमोइ को क्यों नहीं मारते हो ? लोगोंने कहा कि यह सर्प विषमय है और इस दुमोई को विष नहीं है यह सुन यह विचार करने लगा कि जहां किसी प्रकार का विष है वहां सुख नहीं है यों विचार करते २ जाति स्मरण ज्ञान हुवा और पूर्व भव में संयम का आराधन किया जाना वैसे ही यहां पर भी स्वत' की बुद्धि से संयम अंगीकार किया जिन शासन के अधिष्ट देवने इस को वहां साधु लिंग दिया मास२ खमन की तपश्चर्या करते हुवे विचरने लगा एकदा बानारसी नगरी में तिंदुक वृक्ष के नीचे मास खमन के तप सहित संयम व तप से आत्माका भावते हुए यह मुनि विचर रहे थे उन के तप के प्रभाव से तिंदुक यक्ष मुनि का सेवक बना एकदा मास खमन के पारनेके दिन हरकेशी मुनि उस यक्ष के देवल में ध्यानस्थ खडे थे वहां कोशल राजा की पुत्री भद्रा अपनी सखियों सहित खेलने आई थी वहां उन साधु को कुरूप देखते ही वह राजपुत्री दुर्गछा करती हुइ वक्र मुख करके मुनि पर थूकने लगी कि तुरत ही तिंदुक यक्ष क्रोधातुर हो कर उस का मुख वक्र करादिया तब वह राजपुत्री रुदन करने लगी यह सुनकर राजा प्रधान वगैरह वहां आये और सब वृत्तांत सुना इस पर व सब साधु जी से पुत्री के अपराध की क्षमा मांगने लगे उस समय तिंदुक यक्ष मुनिके शरीर में

सोवागकुल संभूओ गुणुत्तरधरा मुणी ॥ हरिएसबलो नाम आसि भिक्खू जिइंदिओ ॥ १ ॥ इरिएसणभासाए उच्चारसमिईसु य ॥ जओ आयाण निक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ॥ २ ॥ मणगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो जिइंदिओ ॥ भिक्खट्ठा

प्रवेश कर कहने लगा कि तुम्हारी पुत्री मुझे देना तो अच्छी होवे सदन निरुपाय से ऐसा स्वीकार किया और यक्ष मुनि के शरीर में निकल गया इधर राजपुत्री मुनि के पास आई तब मुनि बोले कि हम निर्ग्रंथ हैं स्त्री स्पर्श करना हमारा धर्म नहीं है राजा वगैरह ने भी उन मुनिको उस स्त्री का स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया परन्तु मुनि वमनवत् स्त्री का त्यागकर और उस दिन आहार का भी त्याग कर वहां से अन्य स्थान जाकर ध्यानस्थ रहे इधर राजा वगैरह विचार करने लगे कि इस कन्याका अब क्या करना? तब पुरोहित कहने लगा कि ऋषिपत्नी ब्रह्म पत्नी हो सकती है इस से राजाने यह कन्या पुरोहित को दी उस का पाणिग्रहण करने के लिये पुरोहितने यज्ञ करवाया अब इस के आगे का कथन सूत्रकार कहते हैं—चांडाल कुल में उत्पन्न हुवा ऐसा हरकेशी बल नामक निर्ग्रंथ भिक्षा करने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला व ज्ञानादिक उत्तम गुण धारन करने वाला साधु हुवा ॥ १ ॥ ईर्या समिति भाषा समिति एषणा समिति आदान निक्षेपना, समिति और उच्चारादि परि-स्थापनीय समिति इन पांच समिति से यत्नावंत संयति हरकेशी मुनिने समाधि मार्ग में अपने आत्मा को स्थापन किया ॥ २ ॥ वैसे ही मन गुप्ति, वचन गुप्ति व काया गुप्ति इन तीनों गुप्ति सहित

बंभइज्जम्मि, जक्खवाडमुवट्ठिओ ॥ ३ ॥ तं पासिऊण एज्जंत, तवेण परिसोसियं ॥
पंतोवहि उवगरणं, उवहसंति अणारिया ॥ ४ ॥ जाइमय पडिथद्धा, हिंसगा
अजिइंदिया ॥ अबंभचारिणोबाला, इमं वयणमब्बवी ॥ ५ ॥ (काव्य) कयरे
आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराल फोक्कनासे ॥ ओमचेलए पंसु पिसायभूए,
संकरदूसं परिहरिय कंठे ॥ ६ ॥ कयरतुमं इत्थ अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमा-
गओसि ॥ ओमचेलगा पंसु पिसायभूया, गच्छक्खलाहि किमिहट्ठिओसि ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय मुनि ग्रामानुग्राम फिरते भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते उस यज्ञ पाडा में पहुंचे ॥ ३ ॥ तप से जिन का शरीर शुष्क हो गया है वैसे, और प्रांत (असार) उपकरणादि प्रमुख उपाधि वाले हरकेशी मुनि को आते हुए देखकर वे ब्राह्मणादि अनार्य उन को उपहास्य करने लगे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण जाति के अभिमान करने वाले हिंसा करने वाले, अजितेन्द्रिय और अब्रह्मचारी ऐसे अज्ञानी मुनि को निम्नोक्त प्रकार बोलने लगे ॥५॥ अरे! अत्यंत कुरूप वाला काले वर्ण वाला, विकराल रूप वाला चपटनासिका वाला असार वस्त्र वाला, रजसे भरा हुआ पिशाच समान और उकरडे पर डालने जैसा वस्त्र कंठमें रखने वाला? ॥ ६ ॥ अरे! ऐसा अदर्शनीय तू कौन है? और किस आशा से तू यहां आया है? अरे असार वस्त्रधारी, रज से मलिन बने हुए वस्त्रवाला व पिशाचभूत रूपवाला! तू हमारी दृष्टि से दूर हो!

जक्खोतहिं तिंदुगरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स ॥ पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइ मुदाहरित्था ॥ ८ ॥ समणोअहं संजओ बंभयारी, विरओ धणपयण परिग्गहाओ ॥ परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले अन्नस्स अट्ठा इहमागओमि ॥ ९ ॥ वियारिज्जइ खज्जइ भुज्जई य अन्नपभूयं भवयाणमेयं ॥ जाणाहि मे जायण जीविणोति सेसावसेसं लभओ तवस्सी ॥ १० ॥ उवक्खडं भोयण माहणाणं,

तू यहां पर क्यों खडा रहा है ? ॥ ७ ॥ (यों सुन मुनि फिरने लगे तब) हरकेशी मुनि की भक्ति वश से साथ रहनेवाला तिंदुक वृक्ष निवासी यक्ष ब्राह्मणों के कठ वचन श्रवण कर हरकेशी मुनि के शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार कहने लगा ॥ ८ ॥ मैं श्रमण (साधु) हूं स्वयमेव आत्मा को दुष्ट व्यापार से वश करने से मैं संयती हूं स्त्री संसर्गादिक के त्याग से ब्रह्मचारी हूं धन, पचन, पाचन व परिग्रह से मैं निवर्ता हूं और भिक्षा काल होने से दूसरे के लिये बना हुवा ऐसा आहार के लिये मैं यहां पर आया हूं ॥ ९ ॥ यह प्रत्यक्ष तुम्हारे यहां बहुत पक्वान्नादि बने हुए हैं जिस से तुम स्वयं खाते हो और अन्य को भी देते हो ऐसा देख कर मैं यहां आया हूं यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी उपजीविका याचना करने से ही होती है इस से जो कुच्छ शेष रहजाय उस का लाभ तुमारी तरफ से तपस्वी का होना चाहिये ? ॥ ११ ॥ तब ब्राह्मण कहने लगे—इस यज्ञ पाडे में जो भोजन पकाके

अत्तट्ठियं सिद्धमिहेग पक्खं ॥ न ऊवयं एरिसमन्नपाणं, दाहामि तुज्झं किमिहं ठिओसि ॥ ११ ॥ थलेसु बीयाइ ववंति कासगा, तहेव निन्नेसुय आससाए ॥ एयाए सद्धाए दलाहिमज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ॥ १२ ॥ खेत्ताणि अम्हं विदिया-णिलोए, जहिंपकिण्णा विरुहंति पुण्णा ॥ जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १३ ॥ कोहोय माणोय वहोय जेसिं, मोसं अदत्तंच परिग्गहं च ॥

के संस्कार वाला पक्वान्न भोजन वगैरह तैयार हुवा है वह मात्र ब्राह्मणों के लिये ही है दूसरे को देने के लिये नहीं है इसलिये इस में से हम तुझे कुच्छ भी नहीं देंगे तू व्यर्थ क्यों खडा है ? ॥ ११ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि कहने लगे—अहो विप्रों ! जैसे कृषिकार पुष्ट फल की प्राप्ति होगी इस इच्छा से ऊंची भूमि में और नीची भूमि में यों दोनों प्रकार की भूमि में बीज बोता है, वैसे ही श्रद्धा से ऊंच नीच का भेद नहीं रखते हुए मुझे पुण्य रूप क्षेत्र जानकर दो अर्थात् दान करो ॥ १२ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि इस लोक में जिस खेत रूप याचक को देने से जन्मांतर में जो पुण्य फल होता है उन क्षेत्रों को हम अच्छी तरह जानते हैं जो ब्राह्मण जाति व विद्या से सहित होते हैं वे ही क्षेत्र शोभित व प्रतीतकारी हैं अर्थात् ब्राह्मण सिवाय अन्य पुण्य क्षेत्र नहीं है ॥ १३ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि कहने लगे अहो विप्रो ! जो क्रोध, मान सहित हैं, जो हिंसा करने वाले हैं, मृषा

खेमाहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥ १४ ॥ तुब्भेत्थ भो! भारधरा गिराणं, अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए ॥ उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १५ ॥ अज्झावयाणं पडिकूल भासी, पभाससे किं तु सगासि अम्हं ॥ अवि एतं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा ॥ १६ ॥ समितिहि मज्झं सुसमाहियस्स गुत्तीहिगुत्तस्स जितिंदियस्स ॥ जइ मे न दाहित्थ

बोलने वाले, चोरी करने वाले मैथुन सेवन करने वाले परिग्रह रखने वाले हैं वे ब्राह्मण जाति व विद्या रहित हैं और वैसे सब पापकारी हैं अर्थात वैसे ब्राह्मणों को देना सो अतीव पाप क्षेत्र है ॥१४॥ और भी अहो विप्रो ! इस लोक में तुम वेद सम्बंधी वाणी के भारवाहन करने वाले हो, क्यों की तुम वेद का अध्ययन करते हुए भी परमार्थ नहीं जानते हो परंतु ऊंच नीच व मध्य कुल में जो मुनि भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हैं वे ही शोभनिक पुण्य क्षेत्र हैं ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मण बोले—रे निर्ग्रन्थ ! तू हमारे सन्मुख हमारे से उपाध्याय का अवर्णवाद बोलता है और हमारे पास ही याचना करता है इस से हमारा यह अन्न पान सड जायगा तो भी उकरडी पर डाल देंगे परंतु तुझे कदापि देंगे नहीं ॥ १६ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि बोले मैं पांच समिति युक्त व तीन गुप्ति से गुप्त हूं पांचों इन्द्रियों जीतने वाला हूं इस तरह सर्व प्रकार

अहेसणिज्जं, किमित्थ जन्नाण लाहइत्थलाह ॥ १७ ॥ के इत्थ खत्ता उवजोइयावा,
अज्झावयावा सहखंडिएहिं ॥ एयंतु दंडेण फलेण हंता, कंठम्मि घेतूण खलेज्जजो णं
॥ १८ ॥ अज्झावयाणं वयणसुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहु कुमारा ॥ दंडेहिं वित्तेहिं
कसेहिं चेव समागया तं इसि तालयंति ॥ १९ ॥ रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया
भद्दत्ति नामेण अणिंदयंगी ॥ तं पासिया संजयहम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ

से सत्कार वंत ऐसा जो मैं हूं मुझे को तुम एषणिक आहार पानी नहीं दोगे तो तुम को यज्ञ का क्या लाभ हो सकेगा ? ॥१७॥ ऐसा उन का वचन सुनकर ब्राह्मण कोपातुर होगये और इस प्रकार कहने लगे-अरे यहां कोई क्षत्रिय अग्नि के पास रहने वाले अथवा विद्यार्थी सहित उपाध्याय क्या है ? यदि होवे तो इस साधु को दंडे से, विल्वादिक के फल से मारकर अथवा इस का गला पकडकर यज्ञ पाडे से बाहिर निकाल दो ॥ १८ ॥ इस प्रकार अध्यापक के वचन सुनकर उद्दत बने हुए ब्राह्मणादिक के कुमारों कि जो यहां अभ्यास कर रहे थे व एकत्रित हो कर दंड छडी चाबुक वगैरह लेकर मुनि को मारने दौडे ॥ १९ ॥ उस समय मनोहर अंगवाली कोशलीक राजा की भद्रा नाम की पुत्री उस संयती को मारने आये कुमारों को देखकर उन के क्रोध को शांत करने के लिये इस प्रकार कहने लगी ॥ २० ॥

॥ २० ॥ देवाभिओगेण निओइएण दिन्ना सु रन्ना मणसा न झाया ॥ नरिंद देविंद भिवंदिएण, जेणामिवंता इसिणा स एसो ॥ २१ ॥ एसोऽसो उग्गतवो महप्पा, जितिंदिओ सजओ बंभयारी॥जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं पिउणा सय कासलिएण रन्ना ॥ २२ ॥ महाजसो एसो महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ मा एय हीलेह अहीलणिज्जं, सा सव्वे तेएण भेनिद्दहेज्जा ॥२३॥ एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइ ॥ इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खाकुमारे विणिवारयंति

महा कुमारों ! यह ऋषि वे ही है कि जिन का देवता की प्रेरणा से मेरे पिताने मुझे इन को अर्पन की थी परंतु इ ोंने मेरी मन से भी वांच्छा की नहीं और वमन किये हुवे आहार समान मेरा त्याग किया नर नरेन्द्र व देवेन्द्र के पूज्यनीय यही ऋषीश्वर है ॥ २१ ॥ यह उग्र तप करनेवाले, जितेन्द्रिय, संयमी व घोर ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले महात्मा हैं इन को खुद मेरे पिता कोशलीक राजाने मुझे दी परंतु मेरी इच्छा मात्र की नहीं ॥ २२ ॥ और भी यह ऋषि महा यशस्वी अत्यंत शक्तिवाले घोर व्रताचरण करने वाले और घोर पराक्रम करनेवाले हैं इन की हीलना मत करो यह साधु निन्दा करने योग्य नहीं है रखे यह अपन तप तेज से तुम सब को जलाकर भस्म कर देवे ॥ २३ ॥ उस सोमदेव पुरोहित की भद्रा भार्या उक्त उत्तम वचन श्रवण करके मुनि की सेवा में रहा हुवा तिंदुक यक्ष उन वचन को सुने कुमारों को

॥ २४ ॥

रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥ २५ ॥ (गाथा) गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह ॥ जायतेय पाएहि हणह, जे भिक्खू अवमण्णह ॥ २६ ॥ (काव्य) आसिविसो उग्गतवो महेसि, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ अगणिव

निवारने लगा ॥ २४ ॥ तब वह यक्ष घोर भयंकर रूप धारन करके उस यज्ञ पाडे के ऊपर आकाश में खडे रहकर उन बालकों को ताडना की जिस से वे बालकों भूमि पर लम्बे पड गये उन के मूख में से रुधिर निकलने लगा अपनी हितशिक्षा का स्वीकार नहीं करने से दुःख पावे इसे कुमारों को देखकर वह भद्रा राज पुत्री इस प्रकार कहने लगी ॥ २५ ॥ तुम कि जो साधु का अपमान करते हो यह नख से पर्वत खोदने जैसा करते हो दांत से लोहमय चने खाने के जैसा करते हो, और पाँव से अग्नि बुझाने के जैसा करते हो अर्थात् नखों से पर्वत खोदने से पर्वत का कुच्छ भी नुकसान नहीं होता है परंतू नख ही टूट जाते हैं दांतों से लोह के चने चावने से दांत ही टूटते है और पाँव से अग्नि बुझाने से पाँव ही जलते है ॥२६॥ यह वैसे ही ऋषि का अपमान करने से ऋषि का कुछ भी नुकसान नहीं है परतु तुम्हारा ही है यह ऋषीश्वर उग्रतप करने वाले, घोर व्रत व घोर पराक्रम करने वाले असीविष सर्प समान कोपित हुए भाग से भस्मीभूत करने समर्थ है ऐसे ऋषीश्वर को जो कोई भोजन काल में दुःख देते है वे जैसे पतंगिये

॥ २० ॥ देवाभिओगेण निओइएण दिन्ना सु रन्ना मणसा न झाया ॥ नरिंद देविंद भिवदिएण, जेणामिवंता इसिणा स एसो ॥ २१ ॥ एसोऽसो उग्गतवो महप्पा, जितिंदिओ संजओ बंभयारी॥जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं पिउणा सयं कासलिएण रन्ना ॥ २२ ॥ महाजसो एसो महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भेनिद्दहेज्जा ॥२३॥ एयाइं तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं ॥ इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खाकुमारे विणिवारयंति

महा कुमारों ' यह ऋषि वे ही है कि जिन को देवता की प्रेरणा से मेरे पिताने मुझे इन को अर्पन की दी परंतु इ न्होंने मेरी मन से भी वांच्छा की नहीं. और वमन किये हुवे आहार समान मेरा त्याग किया रह नरेन्द्र व देवेन्द्र क पूज्यनीय यही ऋषीश्वर हैं ॥ २१ ॥ यह उग्र तप करनेवाले, जितेन्द्रिय, संयमी व घोर ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले महात्मा हैं इन को खुद मेरे पिता कोशलीक राजाने मुझे दी परंतु मेरी इच्छा मात्र की नहीं ॥ २२ ॥ और भी यह ऋषि महा यशस्वी अत्यंत शक्तिवाले घोर व्रताचरण करनेवाले और घोर पराक्रम करनेवाले हैं इन की हीलना मत करो यह साधु निन्दा करने योग्य नहीं है रखे यह अपने तप तेज से तुम सब को जलाकर भस्म कर देवे ॥ २३ ॥ उस सोमदेव पुरोहित की भार्या इस उत्तम वचन श्रवण करके मुनि की सेवा में रहा हुवा [illegible]

खमाह भंते ! ॥ महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥ ३१ ॥ पुव्विं च इण्हिं अणागय च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ॥ जक्खहु वेया वडिय करेंति, तम्हा हु एएहि हया कुमारा ॥ ३२ ॥ अत्थ च धम्मं च वियाण-माणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ॥ तुब्भ तु पाए सरण उवेमो, समागया सव्व जणेण अम्हे ॥ ३३ ॥ (गाथा) अच्चमु ते महाभाग, न ते किंचि न अच्चिमो ॥

क्यों कि ऋषियों बालकोंने आप की जो हीलना निंदा की है उन के अपराध की आप क्षमा करे मसन्न चित्तवाले व महा भाग्यवंत होते हैं, मुनीश्वर को कदापि क्रोध होवे ही नहीं ॥ ३१ ॥ इस समय मुनि के शरीर में वह यक्ष नहीं होने से शुद्धि में आये हुए हरकेशी मुनि ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर कहने लगे कि अहो विप्रों ! मुझे अतीत, वर्तमान व अनागत काल में किसी पर द्वेष नहीं है (तब ब्राह्मणों कहने लगे कि अहो महानुभाव ! इन कुमारों की ऐसी खराब अवस्था किसने की ? तब मुनि बोले) अहो महानुभाव ! मेरी वैय्यावृत्य करनेवाला यक्षने इन कुमारों को मारकर काष्ट जैसे कर दिये हैं ॥ ३२ ॥ तब ब्राह्मण बोले अहो सूत्र अर्थ व क्षांति आदि धर्म के ज्ञाता व भूर्ति प्रज्ञावान महामुने ! आपने कोप नहीं किया तो भी हम आप के चरणों का शरण अंगीकार करते हैं ॥ ३३ ॥ अहो महानुभाव ! हम आप के सब अंगोपांग पूजते हैं आप के चरणरजादिक वगैरह कुछ भी अपूज्यनीय नहीं है

पक्खर पयगसणा जे भिक्खुए भत्तकाले वहेह ॥ २७ ॥ सीसेण एय सरणं उवेह समागया सव्वजणेण तुम्हे ॥ जइ इच्छह जीविय वा धणवा, लोग पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥ २८ ॥ अवहेडियं पिट्ठिसउत्तमगे पसारिया बाहुअकम्मचेट्ठे॥ निज्झेरियच्छे रुहिर वमते उड्ढमुहे निग्गए जीहनेत्त ॥ २९ ॥ ते पासिया खडिय कट्ठभूए विमणो विसण्णो अह माहणो सो ॥ इसिं पसाएइ सभारियाओ, हील च निंद च खमेह भंते ! ॥ ३० ॥ बालेहि मूढेहि अयाणएहिं, ज हीलिया तस्स

अग्नि में पतंगिये भस्म होते हैं वैसे ही उन के तप तेज से भस्म होजाते हैं ॥ २७ ॥ यदि जीवितव्य की इच्छा करते हो तो तुम सब मिलकर इन ऋषीश्वर के पांव में जाकर पड़ो नहींतर कूपित बने हुवे वे सब लोक को जला देंगे ॥ २८ ॥ उस समय यज्ञ करते हुवे ब्राह्मणों भी बाहिर आवे और देखते हैं तो उन पर हुवे बालकों के मस्तक मरड़ाय हुवे पीठ तक गये हैं दोनों बाहु पसारकर मुख में से रक्त का वमन करते हुए फटी हुई आंखों, मुख से बाहिर निकली हुई जिव्हा सहित हलन चलनादि जीवितव्य की चेष्टा रहित पड़े हैं ॥२९॥ वहां पड़े हुए कुमारों को काष्टभूत देखकर दुःखित मनवाले ब्राह्मण भतीही खेदित हो कर और भग भार्या सहित ऋषि को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे कि अहो भगवन् ! हमने जो आप की हीलना निन्दा की है यह हमारे अपराध की आप क्षमा करो ॥ ३० ॥ अहो भगवन् ! मूढ अज्ञानी

समाह भंते ! ॥ महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥ २१ ॥ पुव्विं च इण्हिं अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ॥ जक्खहु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एएहि हया कुमारा ॥ २२ ॥ अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुम्मे न वि कुप्पह भूइपन्ना ॥ तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ॥ २३ ॥ (गाथा) अच्चेमु ते महाभाग, न ते किंचि न अच्चिमो ॥

बालकोंने आप की जो हीलना निंदा की है उस के अपराध की आप क्षमा करें क्यों कि ऋषियों प्रसन्न चित्तवाले व महा प्रसादवंत होते हैं, मुनीश्वर को कदापि क्रोध होवे ही नहीं ॥ २१ ॥ इस समय मुनि के शरीर में वह यक्ष नहीं होने से शुद्धि में आये हुए हरकेशी मुनि ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर कहने लगे कि अहो विप्रों ! मुझे अतीत, वर्तमान व अनागत काल में किसी पर द्वेष नहीं है (तब ब्राह्मणों कहने लगे कि अहो महानुभाव ! इन कुमारों की ऐसी खराब अवस्था किसने की ! तब मुनि बोले) अहो महानुभाव ! मेरी वैय्यावृत्य करनेवाला यक्षने इन कुमारों को मारकर काष्ट जैसे कर दिये हैं ॥ २२ ॥ तब ब्राह्मण बोले अहो शुभ अर्थ व शांति आदि धर्म के ज्ञाता व श्रेष्ठ प्रज्ञावान महामुने ! आपने कोप नहीं किया तो भी हम आप के चरणों का शरण अंगीकार करते हैं ॥ २३ ॥ अहो महानुभाव ! हम आप के सब अंगोपांग पूजते हैं आप के चरणरजादिक वगैरह कुच्छ भी अपूजनीय नहीं है

भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणा वंजण संजुय ॥ २४ ॥ (काव्य) इमं च मे अस्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा ॥ बाढंति पडिच्छइ भत्तपाणं मासस्सओ पारणए महप्पा ॥ २५ ॥ तहियं गंधोदय पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहाराय वुट्ठा ॥ पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥ २६ ॥ सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो न दीसई जाइविसेस कोई ॥ सोवागपुत्तं हरिएस साहुं जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥ २७ ॥ किं माहणा जोइसमारभंता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गह ॥

विविध प्रकार के शाक सहित ये चांवल पके हुए हैं इन्हें ग्रहण कर आप भोगवें ॥ २४ ॥ हमारे पर अनुग्रह कर के हमारे यहां हुवे अन्नादि जो हुए हैं उसे आप ग्रहण करो इस प्रकार उन ब्राह्मणों का अत्याग्रह देख कर महात्मा हरकेशी मुनिने उन के यहां से मास खमन के पारने के लिये शुद्ध निर्दोष आहार पानी आदि ग्रहण किये ॥ २५ ॥ उस समय देवताने उस यज्ञ पाडा में सुगंधी जल, सुगंधी पुष्प व सुवर्ण द्रव्य की वृष्टि की और आकाश में देवदुंदभी-वादित्र बजाकर अहो दान महादान की उद्घोषणा की ॥ २६ ॥ ऐसा देखकर ब्राह्मणों कहने लगे कि-यह तप का महिमा प्रत्यक्ष में दिख रहा है परंतु किसी जाति की विशेषता नहीं देखाती है! यह हरकेशी मुनि चांडाल कुल में उत्पन्न हुए हैं परंतु उन की कैसी ऋद्धि व महिमा है!! ॥ २७ ॥ इस समय ब्राह्मणों

जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न त सुदिट्ठ कुसला वयति ॥ ३८ ॥ कुस च जूवं तणकट्ठमग्गि, साय च पाय उदग फुसंता ॥ पाणाइ भूयाइ विहेडयता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं ॥ ३९ ॥ कहं च रे भिक्खु वय जयामो, पावाइ कम्माइ पुणोल्लुयामो ॥ अक्खाहि नो सजय जक्खपूइया कह सुजट्ठ कुसला वयंति ॥ ४० ॥ छज्जीवकाए असमारभता, मोस अदत्त च असेयमाणा ॥ परिग्गह इत्थिओ माणमायं, एव

को प्रतिबोध देने के लिये मुनि उपदेश करने लगे अहो ब्राह्मणों! अग्नि का आरंभ क्यों करते हो? पानी से बाह्य शुद्धि की गवेषणा क्यों करते हो? बाहिर की विशुद्धि की जो गवेषणा करते हैं उन को कुशल पुरुषोंने [तीर्थंकरोंने] अच्छा नहीं कहा है ॥ ३८ ॥ दर्भ, यज्ञ स्तंभ, तृण, काष्ट व अग्नि इन को स्पर्श करते हो और संध्याकाल व प्रातःकाल यों दोनों समय पानी को स्पर्श करते हो अर्थात् स्नान करते हो इस तरह करने में प्राण व भूत की हिंसा करते हुए अहो मंद पुरुषों तुम पुन पाप क्यों करते हो?॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मण कहने लगे कि-अहो भिक्षु! हम किस तरह चलें औं कैसी क्रिया कर कि जिस से हमारे पाप कर्म दूर होवे! अहो यक्ष के पूज्यनिक मुनि! कुशल पुरुषों (तिर्थंकरों) ने अच्छा क्या कहा है सो कहो ॥ ४० ॥ तब हरकेशी मुनि कहने लगे कि-षट्जीवनिकाय का आरंभ करे नहीं, मृषा वाद बोले नहीं, चोरी करे नहीं, परिग्रह रखे नहीं वैसे ही स्त्री सेवन भी करे नहीं मान माया को जान परिज्ञा

परिन्नाय चरंति दंता ॥ ४१ ॥ सुसम्वुडो पंचहि संवरेहिं इह जीविय अणव कंखमाणो ॥ वोसट्ठकाओ सुचइत्तदेहो, महाजयं जयति जन्नसिट्ठं ॥ ४२ ॥ केते जोई के य ते जोइ ठाणं का ते सुया किं च ते कारिसंग ॥ एहा य ते कयरा संति भिक्खू कयरेण होमेण हुणासि जोई ॥ ४३ ॥ तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ॥ कम्मेहा संजम जोगसंती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥ ४४ ॥

से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर दमितेन्द्रिय साधु विचरे ॥ ४१ ॥ पांच संवर से पांच आश्रव का रुंधन करने वाले असंयम रूप जीवितव्य नहीं वांछने वाले ममता नहीं करने से काया का जिनों ने त्याग किया है, शरीर की शुश्रूषा नहीं करने से शरीर को त्यागन वाले व महा कर्म रूप शत्रु को जीतने वाले ऐसे साधु जो हैं वेही उत्तम यज्ञ करते हैं ॥ ४२ ॥ तब विप्र कहने लगे कि-अहो मुनि ! तुमारे यज्ञ में कौनसी अग्नि है, ! अग्नि का स्थानक कौनसा है ! अग्नि में घृत का हवन करने का चाटुआ कौनसा है ? ईंधन कौनसा है ! अग्नि को संधूकने का संधुकर्ण कौनसा है ! शांति पाठ रूप मंत्र कौनसा है ! और आहुति कौनसी है ! ॥ ४३ ॥ तब साधु बोले हमारे यज्ञ में तपरूप अग्नि है जीवरूप अग्नि स्थान है मन वचन काया के शुभ योगों की प्रवृत्ति रूप चाटू है, शरीर रूप कारिस (गोर) है आठ कर्म रूप ईंधन है, और संयम व्यापार रूप शांति पाठ है यतीश्वर योंने इस प्रकार

के ते हरए के यते सतितिरथे कहिं सिणाओ व रय जहासि? ॥ आइक्ख नासजय जक्ख पूइया, इच्छामो नाउ भवओ सगाओ ॥ ४५ ॥ धम्मे हरए बम्भे संतितिरथे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ॥ जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइ भूओ पजहामि दोसं ॥ ४६ ॥ एयं सिणाणं कुसलेहिं दिट्ठं, महा सिणाण इसिण पसत्थ ॥ जहिं सिणाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तम ठाणं पत्ता॥ ४७ ॥ इति हरिएसिज्ज नाम दुवालस मज्झयण सम्मत्त ॥ १२ ॥

* * *

के धर्म की प्रशंसा की है, इस से हम भी इस का सेवन करते हैं ॥ ४४ ॥ फिर ब्राह्मण बोले—अहो यक्ष के पूज्यनीय संयत ! तुमारे स्नान करन का द्रह स्थान कौनसा है, ? संसार से तीरन का पुण्य क्षेत्र तीर्थ कौनसा है ! और किस प्रकार स्नान करके अपना मेल दूर करते हो ? हम इतना अर्थ आप के पास से जानना चाहते हैं सो कृपा करके कहो ॥ ४५ ॥ तब मुनि कहने लगे अहो विप्रों ! अहिंसा धर्म रूप द्रह है ब्रह्मचर्य रूप पुन्यक्षेत्र तीर्थ है मिथ्यात्वादि मेल रहित शुक्लादि लेश्या है, ऐसे धर्म रूप द्रह में स्नान करने से आत्मा रूप मेल से कलंक रहित शुद्ध होवे इस तरह मैं शीतलीभूत बना हुआ सब कर्म रूप दोष का त्याग करता हूं ॥ ४६ ॥ ऐसा स्नान तत्त्वज्ञानीने कहा है, एसा उत्तम स्नान की ऋषीश्वरोंने प्रशंसा की है, ऐसे स्थान में स्नान करने से निर्मल विशुद्ध बनकर जीवों उत्तम मोक्ष स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४७॥ ऐसा मैं कहता हुं यों श्री सुधर्मास्वामीने अपने शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहा कि जिस प्रकार मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह हरिकेशीबल नामक बारहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥१२॥

इस के बाद उस ने बावना चंदन के तेल का एक बिंदु संभूति मुनि के चरण में पड़ा इस से शीतलता होने से चक्षु खोलकर उस के सामने देखा उस का रूप देख मोहित होकर नियाना किया कि मेरे इस तप का फल होवे तो मुझे ऐसा ही स्त्री रत्न मीले वहां से दोनों आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देवता हुए वहां आयुष्य का क्षय होने से एक चित्त का जीव पुरिमताल नगर में किसी इभ्य के यहां पुत्र पने उत्पन्न हुआ, और संभूति का जीव कंपिल पुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चलणी रानी की कुक्षि में चौदह स्वप्न देकर पुत्र पने उत्पन्न हुआ इस का नाम ब्रह्मदत्त दिया ब्रह्मभूत राजा को असाध्य रोग होने से अपने चारों मित्रों को राज्य दिया और कहा कि जब यह ब्रह्मदत्त वय योग्य होवे तो उसे राज्य देना चारों मित्र में से प्रथम दीर्घ राजा राज्य की रक्षा करने रहा वह चुल्लनी रानी से लुब्ध बना ब्रह्मदत्तने यह जाना और एकदा काक व हंसनी का जोडा देखकर दीर्घ राजा सन्मुख बोला कि रे काक! तूने बहुत अयोग्य कार्य किया है, इस से तुझे देहांत दंड दूंगा दीर्घ राजा यह समज गया और चुल्लनी रानी से आकर बोला कि तेरा पुत्र अपन को कदाचित् दुःखदायी होगा इस लिये मैं तो मेरे स्थान जाता हूं चुल्लनी मोह मुग्ध बनकर बोली कि मैं ब्रह्मदत्त को मारडालुंगी आप चिंता मत करो, फिर रानीने एक लक्षागृह बनाया और ब्रह्मदत्त का लग्न करवाकर वहां ही सुलाकर उसे जलाने का निश्चय किया यह बात प्रधान द्वारा उसने जानी और गांव के बाहिर किसी स्थान से एक सुरंग खोदवाकर लाख के महेल में निकाली और प्रधानने अपना पुत्र वरधनु को ब्रह्मदत्त के पास रखा

ब्रह्मदत्त के मोहल में सोने जाने पर चुल्लनी रानीने महेल को अग्नि लगा दिया ... जाग्रत कर बोला कि सावधान होवो ! महेल चारों तरफ जल रहा है अब क्या करना ? प्रधान पुत्रने कहा कि आप यहां पर लात प्रहार करो कि जहां सुरंग है यहां से अपन सुरक्षित निकल सकेंगे कुमारने वैसे ही किया और सुरंग में न होते हुए दूर निकल गये दीर्घ राजा को इस बात की मालुम होने से उस को मारने के लिये कितने ही प्रयत्न किये परन्तु कुछ उपाय चला नहीं देशाटन में ब्रह्म दत्तने अनेक राजपुत्रियों के साथ पाणिग्रहण किया और बहुत राजा की सेना सहित कांपिलपुर आया दीर्घ राजा को मारकर अपना राज्य लिया पीछे से चक्रादि चौदह रत्न की प्राप्ति हुई छे खण्ड राज्य का साधन किया एकदा नाटक देखते देवलोक में देखा हुवा नाटक का स्मरण हुवा यों विचारते वहां जातिस्मरण ज्ञान हुवा अपने पूर्व के पांच भव देखे परंतु पांच भव तक साथ रहनेवाले को इस समय देखा नहीं अब इन की तलास करने के लिये आधा पद बनाया "गोप दासौ मृगौहंसो मातंगामरौ यथा" ऐसा पद बोलकर बोला कि इस को जो कोई पूरा करेगा उस को आधा राज्य देऊंगा बहुत लोगोंने श्लोक याद किया प्रत्येक स्थान बोलने लगे उस समय चित्त मुनि अवधिज्ञान से अपने भाइ को जानकर उन से मिलने के लिये, उग्र विहार करते हुवे कापिलपुर नगर के बाहिर उद्यान में आकर बिराजमान हुवे थे वहां चरस का चलाने वाला वैसे यही आधाश्लोक बोलता हुवा चरस चलाता था सो उस मुनिने सुना और शेष पद पूर्ण करदिया उत्तराध एषां नष्टयोजातिरन्यान्य माति मुक्तयोः

जाइ पराइआ खलु कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ॥ चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउम गुम्माओ ॥ १ ॥ कंपिल्ले संभूओ चित्तो पुणजाओ पुरिमतालम्मि ॥ सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥ २ ॥ कंपिल्लम्मिय नयरे समा

॥ १ ॥ ऐसा उत्तरार्ध पद सुनकर वह पुरुष उद्यान पाला चक्रवर्ती के पास गया और पद सुनाया चक्रवर्ती पद सुन आश्चर्य चकित हुआ कि क्या मेरा भाइ ऐसा उपकार हुआ है यों वह मूर्च्छित हो कर पृथ्वीपर गिरगया तब लोगों उसे पकड कर मारने लगे, वह बोला कि गॉव के बाहिर कोइ साधु है उसने मुझे यह कहा है ऐसा सुन चक्रवर्ती सावधान हुए और चतुरंगिनी सेना सहित साधुजी के दर्शन के लिये निकले, वहां जाकर कहने लगे कि मेरा पूरा श्लोक करने वाले को आधा राज्य देऊंगा ऐसा मेरा नियम है इस तरह आप ने यह श्लोक पूर्ण किया है इस से आप मेरा आधा राज्य लेवो ऐसा सुन मुनि व राजा को परस्पर जो संवाद हुआ है वह आगे इस अध्ययन में सूत्र द्वारा कहते हैं पूर्व भव में मुनि से पराभव पाये हुए हस्तिनापुर नगर के बाहिर संभूति मुनिने नियाना किया वहां से आयुष्य पूर्ण कर प्रथम देवलोक में नलिनीगुल्म विमान में उत्पन्न हुआ और वहां से चवकर संभूति का जीव कंपिलपुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चुलनी रानी की कुक्षि में ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीपने उत्पन्न हुवा और चित्त का जीव पुरिमताल नगर में इभ्यश्रेष्ठ के वहां पुत्रपने उत्पन्न हुवा वह स्थविरों के पास से धर्म श्रवण कर दीक्षित हुवा ॥ १ ॥ २ ॥ कंपिल पुर नगर के उद्यान में चित्त व स-

गया, दोवि चित्तसंभूया ॥ सुहदुक्ख फल विवाग कहति ते इक्कमिक्कस्स ॥ ३ ॥
चक्कवट्टि महिड्ढिओ, बंभदत्तो महायसो ॥ भायरं बहुमाणेण, इमं वयण मब्बवी
॥ ४ ॥ आसिमो भायरा दोवि अन्नमन्न वसाणुगा ॥ अन्नमन्न मणुरत्ता, अन्नमन्न
हितेसिणो ॥ ५ ॥ दासा दसण्णे आसी मिय कालिंजरे नगे ॥ हंसा मयगतीरे,
सोवागा कासि भूमिए ॥ ६ ॥ देवाय देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया ॥
इमा नो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥ ७ ॥ कम्मा नियाण पयडा, तुमे

संभूत ये दोनों भाइ परस्पर मिले और सुख दुःख के जो फल भोगवे उस का परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥ ३ ॥ महा ऋद्धि का धारक बारहवा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अपने भाइ से बहुत मान पूर्वक इस प्रकार बोलने लगा ॥ ४ ॥ अहो भ्रात! पीछे के भव में अपन दोनों भाइ थे अपन दोनों साथ रहते थे, परस्पर दोनों में प्रीति बहुत थी और एक दूसरे का हित इच्छनेवाले थे ॥ ५ ॥ पहिले भव में दशारण देश में अपन दास थे, दूसरे भव में कालिंजर पर्वत में मृग हुए, तीसरे भव में मृतगंगा किनारे पर अपन दोनों हंस हुए और चौथे भव में काशी नगर में चांडाल हुए ॥ ६ ॥ पांचवे भव में देवलोक में महा ऋद्धि के धारक अपन दोनों देव हुए और इस छठे भव में अपन अलग २ हुए ॥ ७ ॥ तब चित्त मुनि कहने लगे—हे राजन्! सनत्कुमार नामक चौथा चक्रवर्ती की सुनंदा स्त्री रत्न को देखकर भोग

राग रिं रमिया।।तसि कम्मविवागेण।। विप्पओग मुवागया।।८।।सव्वसोयप्पगडा कम्मा मए पुराकडा।। त अज्ज परिभुंजामो किं तु चित्ते वि से तहा ।।९।। (काव्य) सव्वं सुचिण्ण सफलं नराण, कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो ।। अत्थेहि कम्मेहि य उत्तमेहिं, आया मम पुण्ण फलोववेए ।।१०।। जाणाहि संभूय महाणुभाग, महिड्ढिय पुण्ण फलोववेयं ।। चित्तंपि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुइ तस्स वियप्पभूया ।।११।। महत्थरूवा वयणप्पभूया,

भोगत्न के विचार स अपने निदान रूप कर्म किया इस से अपन दोनों अलग २ उत्पन्न हुवे हैं और वियोगी बने हैं ।। ८ ।। तब ब्रह्मदत्त बोले कि अहो मुने ! मैंने गत जन्म में संयमाचरन कर मा । वस्त्र सहित सत्यवंत बनकर पवित्र तपादि कर्तव्य किये हैं और इस का फल यह प्रत्यक्ष मुझे मिल रहा है परंतु मेरे साथ मेरे भाई ! तुमने क्रिया की तो उस का फल कहां गया ? अर्थात् गत जन्म में भिक्षुक थे और इस भव में भी भिक्षुक हो ।। ९ ।। तब चित्र मुनि कहने लगे—हे ब्रह्मदत्त ! मनुष्य जो २ पुण्य करते हैं उन का फल उन के अवश्य उदय में आते हैं क्यों कि किये हुए कर्म को भोगवे बिना मोक्ष नहीं है द्रव्य से तथा शब्दादि काम भोग से मेरा आत्मा भी पुण्य फलवाला है पर तू अवश्य जान ।। १० ।। हे संभूति ! (पूर्व जन्म के नाम से) जिस प्रकार तू तेरा आत्मा को महात्म्यपना महर्द्धिक-पना व पुन्यफल युक्त जानता है वैसे ही हे राजन ! चित्र मुनि को भ जान

गाहाणुगीया नरसघमज्झे ॥ ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इह ज्जयंते समणो मि जाओ ॥ १२ ॥ उच्चोयए महु कक्कय बंभे, पवेइया आवसहायरम्मा॥ इम गिह चित्त धणप्पभूय पसाहि पचाल ग ।वियेय ॥ १३ ॥ नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाईं परिवारयंतो ॥ भुजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू, मम रोयइ पव्वज्जा दुक्ख ॥ १४ ॥ त पुव्व नेहेण कयाणुराग नराहिव कामगुणेसु गिद्ध ॥ धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इम वयण मुदाहारित्था ॥ १५ ॥ (गाथा)

चति कांति वगैरह बहुत था ॥११॥ अहा राजन्! एक दा हमारे यहां कोई साधु पधारे उन के दर्शन के लिये गये मनुष्य के समुदाय में वचन थोडा व अर्थ बहुत ऐसी गाथा उन साधुने कही ऐसी गाथा में साधु ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुन सहित जिन वचन में उपयम धारन होय गृहस्था वेसा मैं भी सुनकर वैरागी हो संयति बना ॥ १२ ॥ अब ब्रह्मदत्त बोला–अहो मित्र! उच्च उदय, मधु कर्क और ब्रह्म इन पांच नाम के अत्यन्त रमणीय देवता के भवन जैसे घर मेरे हैं उन में रहकर बहुत द्रव्य का उपभोग करो, बत्तीस प्रकार के नाटक सहित छ राग तीस रागनी मनपचास बादित्र व स्त्रियों के वृंद से परिवरे हुवे आप पांचाल देश का राज्य करो, यही बात मुझे पसंद है और यह साधुपना तो मुझे दुःखदायी दिखता है ॥ १३ – १४ ॥ पूर्व भव के स्नेह से राग करने वाले व काम भोग में मूर्च्छित ऐसे नराधिप ब्रह्मदत्त को उस का हित

राग विविसिया॥तासि फल विवागेण॥ विप्पओग मुवागया॥८॥सच्चसोयप्पगडा कम्मा मए पुराकडा॥ ते अज्ज परिभुजामो किं तु चित्ते वि से तहा॥९॥ (काव्य) सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो॥ अत्थेहि कम्मेहि य उत्तमेहिं, आया मम पुण्ण फलोववेए ॥१०॥ जाणाहि संभूय महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्ण फलोववेयं ॥ चित्तंपि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुई तस्स वियप्पभूया ॥११॥ महत्थरूवा वयणप्पभूया,

भोगने के विचार से तुमने निदान रूप कर्म किया इस से अपन दोनों अलग २ उत्पन्न हुए हैं और वियोगी बने हैं ॥ ८ ॥ तब ब्रह्मदत्त बोले कि अहो मुन ! मैंने गत जन्म में संयमाचरन कर मन सहित सत्यवंत बनकर पवित्र तपादि कर्तव्य किए हैं और इस का फल यह प्रत्यक्ष मुझे मिल रहा है परंतु मेरे साथ मेरे भ्रात ! तुमने क्रिया की तो उस का फल कहां गया ? अर्थात् गत जन्म में भिक्षुक थे और वर्तमान में भी भिक्षुक हो ॥ ९ ॥ तब चित्र मुनि कहने लगे—हे ब्रह्मदत्त ! मनुष्य जो २ पुण्य करते हैं उन का फल उन के अवश्य उदय में आते हैं क्यों कि किये हुए कर्म को भोगवे बिना मोक्ष नहीं है. द्रव्य से तथा धर्मादि काम भाव से मेरा आत्मा भी पुण्य फलवाला है यह तू अवश्य जान ॥ १० ॥ हे संभूति ! (पूर्व जन्म के नाम से) जिस प्रकार तू तेरा आत्मा को महात्म्यपना महर्द्धिक-पना व पुण्यफल युक्त मानता है वैसे ही हे राजन् ! ...

सो दाणिंसि राय महाणुभागो, महिड्डिओ पुण्णफलोववेओ ॥ चइत्तु भोगाइ असा सयाइ आदाणहेउ अभिणिक्खमाहि ॥ २० ॥ इह जीविए राय असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो ॥ से सोयइ मच्चुमुहोवणीए धम्मं अकाऊण परम्मिलोए ॥ २१ ॥ जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चूनरं नेइ हु अंतकाले ॥ न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा भवंति ॥ २२ ॥ न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ॥ एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥ २३ ॥ चेच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं

राजन्! अधुना तू महा महात्म्यवाला, महा ऋद्धिवाला व पुण्यफल सहित है इस से इन अशाश्वत कामभोगों का त्याग कर मोक्ष के हेतु से तू निकल अर्थात् चारित्र अंगीकार कर ॥ २० ॥ हे राजन्! मनुष्य का जीवितव्य अशाश्वत है, इस में धर्म अथवा पुण्य नहीं करनेवाला मृत्यु मुख में पडा हुवा अथवा दूसरे लोक में गया हुवा पश्चात्ताप करेगा ॥ २१ ॥ जैसे सिंह मृग को पकडकर मार डालता है वैसे ही काल मनुष्य को अंत काल में ले जाता है अर्थात् मारता है उस मरण समय पर उस के माता पिता, भ्राता वगैरह कोई भी उस को बचा नहीं सकते हैं ॥ २२ ॥ ज्ञाति, मित्र वर्ग पुत्र व बंधव वगैरह कोई भी दुःख का विभाग नहीं कर सकते हैं परंतु दुःख का अनुभव करनेवाला जीव अकेला ही है और कर्म करनेवाले के साथ ही कर्म जाते हैं ॥ २३ ॥ मनुष्यादि द्विपद, गवादि चतुष्पद, खुली भूमि

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबणा ॥ सव्वे आभरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा ॥ १६ ॥ (कव्या) बालाभिरामेसु दुहावहेसु न तं सुहं कामगुणेसु राय ॥ विरत्त कामाण तवोहणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥ १७ ॥ नरिंद जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ॥ जहिं वयं सव्व जणस्स वेसा, वसीय सोवाग निवेसणेसु ॥ १८ ॥ तीसेय जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवाग निवेसणेसु ॥ सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इह तु कम्माइं पुरे कडाइं ॥ १९ ॥

देखकर धर्म में आसक्त चित्त मुनि इस प्रकार बोलने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सब गीत गान विलाप समान है और सब नृत्य विटम्बना समान है सब आभरण भारभुत हैं और सब काम भोग दुःख के दाता हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! काम भोग से विरक्त बने हुवे तप रूप धाले व शील गुन में रक्त साधु को जो सुख मिलता है वह सुख अज्ञानियों को अभिराम परंतु दुःख देनेवाले ऐसे काम भोग में नहीं मिलता है ॥ १७ ॥ अहो नरेन्द्र ! मनुष्य जाति में सब से नीच जाति चांडाल की है वहां अपन दोनों उत्पन्न हुए थे और वहां सब लोक को निन्दनीक व अप्रतीतकारी बने हुवे अपन रहते थे ॥ १८ ॥ पाप करने वाले ऐसे चांडाल के घर में रह हुए सब लोगों को निन्दनीय हुए थे अब इस भव में जो उत्तम जाति व ऋद्धि पाये हैं वह पूर्व भव में शुभ कर्म किया उस का (संयम का) ही फल है ॥ १९ ॥ हे

काम भोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥ २८ ॥ तस्स मे अपडिकंतस्स, इमएयारिस फल ॥ जाणमाणो वि ज धम्म, कामभोगेस मुच्छिओ ॥ २९ ॥ [काव्य] नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुथलं नाभिसमेइ तीरं ॥ एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्ग मणुव्वयामो ॥ ३० ॥ अच्चेइ कालो तूरंति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ॥ उविच्च भोगा पुरिसं चयंति दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥ ३१ ॥ जइ तंसि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं ॥

नरपति को देखकर मैंने कामभोग में गृद्ध बनकर नियाणा किया-असत्य किया ॥ २८ ॥ इस की आलोचना प्रति मण मैंने नहीं किया जिस का यह फल मैं भोग रहा हूं और धर्म को जानता हुवा भी काम भोग में मूर्छित हो रहा हूं ॥२९॥ जैसे हाथी पानी व कीचड युक्त तलाव में खूता हुवा किनारा देख सकता है परंतु वहां पर नहीं पहुंच सकता है वैसे ही मैं कामभोग में लुब्ध बना हुवा संयम योग का प्राप्त नहीं कर सकता हूं ॥ ३० ॥ तब चित्त मुनि कहने लगे अहो राजन्! रात्रि दिन रूप काल शीघ्र ही चला जाता है और पुरुषों को भोग नित्य नहीं है वे जैसे फल रहित वृक्ष का पक्षी त्याग करते हैं वैसे ही भोग भी पुरुषों को त्याग करते हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन्! यदि तू भोग का त्याग करने में असमर्थ हो तो जीवदयादि आर्य कर्म का आचरण कर गृहवास रूप धर्म में रहकर

धण धन्नं च सव्वं ॥ सकम्मबीओ अवसो पयाइ परं भवं सुन्दर पावगं वा ॥ २४ ॥
तं एक्कं तुच्छ सरीरगंसे,चिईगयं दहिय उ पावगेण ॥ भज्जा य पुत्तावि य नायओय,
दायारमन्नं अणुसंकमंति ॥२५॥ उवणिज्जई जीवियमप्पमायं वण्णं जरा हरइ नररस
राय ॥ पंचालराया वयणं सुणाहि माकासि कम्माइं महालयाइं ॥ २६ ॥ अहंपि
जाणामि जहेह साहू, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ॥ भोगा इमे संगकरा हवंति, जे
दुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं ॥ २७ ॥ हत्थिणपुरम्मि चित्ता, दट्ठूण नरवइं महिड्ढियं ॥

लेजाकर वहां मुनि सा पर्याय फल, व धान्य धन कपडा धर्म जि इन सब परम पुत्र माणी अपने
या बुरे कर्म अनुसार अच्छी व बुरी गति में जाता है ॥ २४ ॥ जब जीव रहित शरीर को अग्नि की चिता में
रखकर भस्म करते हैं तब भार्या पुत्र ज्ञाति वगैरह दूसरे दीनों के पीछे जाते हैं अर्थात् एक को छोडकर
दूसरे का सेवन करते हैं ॥ २५ ॥ अहो राजन् ! जो आयुष्य निरंतर क्षय होता है वैसे अवीचि मरण
करते वैसे मरण से जीव सदैव मरते हैं और वर्णादिक को वृद्धावस्था हरन करती है अहो पांचाल
देश के अधिपति ! ऐसे वचन सुनकर महा आरंभ और रौद्र कृत्य का आचरन तू मत कर ॥ २६ ॥
तब ब्रह्मदत्त राजा कहने लगा कि अहो चित्र साधु ! आप मुझे जो उपदेश करते हो वह अच्छी तरह
मैं मानता हूं य भोग मुझे अति बंध करने वाले व अंतराय दुःख नाश है परंतु मेरे जैसे अज्ञानी को
यह काम भोग छोडना अति दुष्कर है ॥२७॥ अहो चित्र ! हस्तिनापूर नगर में महर्द्धिक

चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्ग चारित्त तवो महेसी ॥ अणुत्तरं संजमं पालइत्ता अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ ॥ ३५ ॥ त्तिवेमि ॥ इति चित्तसंभूइज्ज णामतेरसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ १३ ॥ * * * * *

विचारा कि ब्रह्म उस ने हम को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा किया है इस से इन के वैर का बदला अवश्य लेना ऐसा विचार से उस का वैर लेने के लिय तपास कर रहा था एकदा वह जंगल में गया था वहां उस ब्राह्मणने किसी भिक्षु को कंकर मार वृक्ष के अनेक पत्र का छेद करते देखा उस से उस के पास जाकर ब्राह्मणने कहा की जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बाहिर निकले तब तू इस तरह कंकर मार कर उन की दोनों आंखों तोड डाल उस ने यह स्वीकार किया और वैसे ही ब्रह्मदत्त की आंखों भी फोड डाली इस से राजपुरुषोंने उस भिक्षु को पकडा और मार मारा तब उसने सब ब्राह्मन की बात कह दी इस पर से राजा को बहुत क्रोध हुवा और ब्राह्मणों का संहार करने की आज्ञा दी वैसे ही सदैव पांचसो ब्राह्मणों की आंख अपने पांव नीचे कुचर डालने का निश्चय किया प्रधान समय सूचक था इस से वह आंखों के स्थान गूंदा ला देता था और उन को वह सदैव कूचल डालता था ऐसे अशुभ अध्यवसाय सहित वह काल के अवसर में कालकर सातवी नरक में अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्पन्न हुवा और चित्त मुनि काम भोग से विरक्त बन कर उत्तम चारित्र व तप अंगीकार कर महर्षि बनकर व प्रधान संयम पालकर अनुत्तर सिद्ध गति में गये, ॥ ३५ ॥ यह मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं, इति चित्त व संभूति नामका तेरवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १३ ॥

घम्मीठिओ मव्व पयाणुकम्पी तो होसि देवो इओ विउव्वी ॥ ३२ ॥ न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धि, गिद्धासि आरभ परिग्गहसु मोह कओ एत्तिउ विप्पलावो गच्छा मिराय आमतिआसि ॥ ३३ ॥ पचाल राया वि य बमदत्तो साधुस्स तस्स वयण अकाउ ॥ अणुत्तरे भुजिय काम भोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥ ३४ ॥

भा सा जीवों की दया करने वाला होगा तो भी यहां से चवकर परलोक में देवता होगा ॥ ३२ ॥ जब राजा को प्रतिबोध लगा नहीं तब मुनि कहने लगे कि हे राजन ! भोग का त्याग करने की तेरी बुद्धि नहीं है और आरंभ परिग्रह में गृद्ध बना हुवा है इस से मैंने मेरी साथ यह जो प्रलाप किया वह मिथ्या किया अब अहो राजन् ! मैं यहां से चलाजाता हूं ॥ ३३ ॥ पांचाल देश का अधिपति ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चित्रमुनि के वचन का अनादर कर और अनुत्तर काम भोग भोगवकर सातवी नरक के अनुत्तर अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थितिपने उत्पन्न हुवा ॥ ३४ ॥ ब्रह्मदत्त राजाने परदेश में भ्रमण करते किसी ब्राह्मण को राज्य मीलने पर भोजन मांगने का कहा था जब ब्रह्मदत्त का राज्य मीला तब वह ब्राह्मण वहां आया और उन के राज्य में प्रति दिन एक घर जीमने का मांगा राजाने पहिले दिन उस ब्राह्मण के अत्याग्रह से अपने वहां अपने खाने का क्षीरादि व भोजन उस ब्राह्मण को व उन के कुटुम्ब को जीमाया परंतु उन का वे पाचन नहीं करसके नहीं और मदान्ध हो पाये तीन चार दिन पीछे शुद्धि में आये तब ब्राह्मणने

चिंता मत करो, तुम को दो पुत्र होंगे परंतु बाल्यावस्था से ही संयम अंगीकार करेंगे, तुम उन को
प्रथम से ही साधु की संगति करवाकर ज्ञानाभ्यास करवाना यों कह कर दोनों देव स्वस्थान गये
कालांतर से उन को पुत्र हुए, तब भृगु पुरोहितने विचार किया कि इन को साधु का दर्शन मात्र नहीं
होने देना चाहिये, जिस से उन को साधुपने का विचार ही आ सकेगा नहीं ऐसा विचार कर एकांत में
घोर पल्ली में आकर रहे और पुत्रों को समजाया कि जो पुरुष मुखपर वस्त्र का खन्ड बंधते है हाथ में
भपरी रखते हैं, नीचे देखकर चलते हैं ऐसे जो होवे है वे घातक होते हैं वे बालकों को पकड कर
ले जाते हैं और मार डालते है ऐसा समजाने से वे बालक अज्ञानतासे साधु से दूरही रहने लगे
एकदा वे दोनों बालक वन में खेलने गये थे उस वक्त कोइ साधु मार्ग भूलने से उस चोर पल्ली में आगये
पुरोहितने उन को आहार पानी दिया और कहा कि हमारे पुत्र साधु के द्वेषी हैं वे आप को देखकर
परिषह देंगे इसलिये आप यहां रहना नहीं,परंतु आगे पधार कर आहार पानी करना साधुने ऐसा सुन
आगे विहार किया इधर दोनों भाइ वन में से खेलकर घरकी तरफ आरहे थे, वे साधु को देखकर भयभीत
होके वृक्षपर चढगये वे साधु भी उस वृक्ष तल आये और चारों ओर देखा कि यहां कोइ नहीं है इससे उस ही वृक्ष
नीचे आहार पानी करने बैठे यत्नाचारादिक की प्रतिलेखना की यह सब कुमारोंने गौन दृष्टि रखकर देखा परंतु
उन के पास न तो शस्त्र दृष्टिगत हुए और न मांसादि देखा मात्र आहार देखते हैं वो अपने घर की ही
रसोइ मालूम हुइ यह देख उन का भय दूर हो गया और ऐसा रूप अपन को पूर्व परिचित है ऐसा

॥ इक्षुकार नामकं चतुर्दश मध्ययनम् ॥

तेरहवे अध्ययन में नियाना करने का फल कहा पउदहवे अध्ययन में नियाना नहीं करनेवाले का फल कहते हैं गत मध्ययन में चार गोपालकने मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की थी जिस में से दो साधुने धर्म की दुगछा की इस से चित्त व सभूति हुए, जिन का कथन तो कहा अब जो दो गोपाल शुद्ध चारित्र पाल रहे थे वे वहां से काल कर देवलोक में गये और देवलोक से चवकर क्षितिप्रतिष्ठ नगर में किसी इभ श्रेष्ठि के वहां दोनों पुत्रपने उत्पन्न हुए वहां पर दूसरे चार व्यवहारी के साथ मित्रता हुई और छे ही जनोंने साथ दीक्षा ली उन छे में से चारने माया कपट रहित संयम पाला और दोने माया कपटका सेवन किया थे छ ही काल के अवसर में काल कर सौधर्म देवलोक में नलिनी गुल्म विमान में देवतापने उत्पन्न हुए और दोने माया कपट का सेवन किया है। स वे ही उस ही देवलोक में देवीपने उत्पन्न हुए गोपालक के दो जीव को छोडकर बाकी के चार जीव वहां से चवकर इक्षुकार नगर में एक इक्षुकार राजा हुआ, दूसरा कमलावती रानीपने हुआ तीसरा भृगुपुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की स्त्री पने हुआ भृगु पुरोहित को पुत्र नहीं होने से अहर्निश चिंता में रहते थे अब इधर देवलोक में रहे हुवे दो देवता का आयुष्य छ मास शेष रह गया तब अवधि ज्ञान से अपने उत्पत्ति स्थान देखा वे दोनों वहां से निकल कर भृगु पुरोहित के पास आकर कहने लगे कि तुम

चिंता मत करो, तुम को दो पुत्र होंगे परंतु बाल्यावस्था से ही संयम अंगीकार करेंगे तुम उन को
बाल्यावस्था से ही साधु की संगति करवाकर ज्ञानाभ्यास करवाना यों कह कर दोनों देव स्वस्थान गये
कालांतर से उन को पुत्र हुए तब भृगु पुरोहितने विचार किया कि-इन को साधु का दर्शन मात्र नहीं
होने देना चाहिये, जिस से उन को साधुपने का विचार ही आ सकेगा नहीं ऐसा विचार कर एकांत में
चोर पल्ली में जाकर रहे और पुत्रों को समजाया कि-जो पुरुष मुखपर वस्त्र का खण्ड बंधते है हाथ में
झपरी रखते हैं, नीचे देखकर चलते हैं ऐसे जो होते है वे घातक होते हैं वे बालकों को पकड कर
लेजाते हैं और मार डालते है ऐसा समजाने से वे बालक अज्ञानतासे साधु से दूरही रहने लगे
एकदा वे दोनों बालक वन में खेलने गये थे उसवक्त कोइ साधु मार्ग भूलने से उस चोर पल्ली में आगये
पुरोहितने उन को आहार पानी दिया और कहा कि हमारे पुत्र साधु के द्वेषी हैं वे आप को देखकर
परिषह देंगे इसलिये आप यहां रहना नहीं,परंतु आगे पधार कर आहार पानी करना साधुने ऐसा सुन
आगे विहार किया इधर दोनों बालक वन में से खेलकर घरकी तरफ आरहे थे, वे साधु को देखकर भयभीत
होके वृक्षपर चढगये वे साधु भी उस वृक्ष तले आये और चारों और देखा कि यहां कोइ नहीं है इससे उस ही वृक्ष
नीचे आहार पानी करने बैठे वहां उन्हों ने धार्मिक की भूमि लक्षना की यह सब कुमारोंने नीचे दृष्टि रखकर देखा परंतु
उन के पास न तो शस्त्र दृष्टिगत हुए और न मांसादि देखा और आहार देखते हैं तो अपने घर की ही
रसोइ मालूम हुई यह देख उन का भय दूर हो गया और ऐसा रूप अपन को पूर्व परिचित है ऐसा

देवा भविचाण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी ॥ पुरे पुराणे उसुयार नामे, खाएसमिद्धे सुरलोगरम्मे ॥ १ ॥ सकम्म सेसेण पुराकएण कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया ॥ निव्विण संसार भया जहाय जिणिंदमग्गं सरणं पवन्ना ॥ २ ॥ पुमत्तमागम्मकुमार दोवि पुरोहिओ तस्स जसाय पत्ती ॥ विसालकिर्त्तीय तहे सुयारो, रायत्थ

विचार करने लगे विचार करतेर जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुवा और अपना पूर्व भव देख कर वैरागी बनकर नीचे उतरे मुनिराज को नमस्कार कर अपना सब वृत्तांत सुनाया और कहा कि-आप इक्षुकार नगर में ठहरना हम मात पिता की आज्ञा लेकर यहां आवेंगे और दीक्षा लेंगे मुनिने कहा जैसे तुम को सुख होवे वैसा करो दोनों कुमारों यहां से घर आये और मातपिता से संवाद किया उक्त चार और राजा व रानी यों छे ही ने संयम लिया इस का कथन आगे सूत्र द्वारा करते हैं— पीछे के भव में देवता बनकर नलिनीगुल्म विमानवासी कितनेक देवता वहां से चवकर बहुत पुराना व ऋद्धिवंत देवलोक समान रमणीय व दर्शनीय ऐसा इक्षुकार नगर में उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ पूर्व भव में किए हुए धर्म कर्म भोगवने शेष रह जाने से उत्तम कुल में उत्पन्न हुए और संसार के भय से उद्विग्न बने हुए भोगों का छोडकर तीर्थंकर भाषित मार्ग का शरण अंगीकार किया ॥ २ ॥ दो ब्राह्मण के पुत्र, एक पुरोहित, और उस की यशा भार्या ये चार ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए और विस्तीर्ण कीर्ति

देवी कमलावई य ॥ ३ ॥ जाइजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभि निविट्ठ चित्ता ॥ संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥ ४ ॥ पिय पुत्तगा दोन्निव माहणस्स, सकम्म सीलस्स पुरोहियस्स ॥ सरित्तु पोराणिय तत्थ जाई तहा, सुचिण्ण तव संजम च ॥ ५ ॥ ते कामभोगेसु असज्जमाणा माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा ॥ मोक्खाभिकखी अभिजायसड्ढा, ताय उवागम्म इमं उदाहु ॥ ६ ॥

वाले इषुकार राजा व कमलावती रानी ये दोनों क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए यों छ जीव इषुकार नगरी में पूर्व पुण्योदय से उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ प्रथम दो पुत्र को कैसे वैराग्य हुवा सो कहते हैं जन्म जरा व मृत्यु के भय से अभिभूत बने हुए व मोक्ष में जिनने चित्त स्थापन किया है वैसे दोनों कुमार साधू को देखकर संसार चक्र से अपने आत्मा को मुक्त करने के लिये काम भोगों से विरक्त हुए ॥ ४ ॥ अपने यज्ञ सर्यणादिक षट् कर्म में सावधान भृगु पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्र को जातिस्मरण ज्ञान होने से पूर्व भव में निदान रहित जो तप संजय का आचरण किया था उस का स्मरण हुआ ॥ ५ ॥ वे मनुष्य व देवलोक के कामभोगों में अनासक्त बने हुए, मोक्ष की अभिलाषावाले व तत्त्व की श्रद्धा करने वाले ऐसे दोनों पुत्र पिता के पास आकर,

असासयम्मि इमं विहारं, बहुअंतरायं न य दीहमाउं ॥ तम्हा गिहंसि न रइं लहामो, आमंतयामो चरिस्समुमोणं ॥ ७ ॥ अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं तवस्स वाघाय करं वयासी ॥ इमं वयं वेयविओ वयंति जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥ अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे पुत्ते परिट्ठप्पगिहंसि जाया॥भोच्चाणभोए सहइत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥ सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं, मोहाणिला

इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ अहो तात ! यह मनुष्य जन्म अशाश्वत है और इस में भी रोगादिक अनेक प्रकार की अंतराय आती है और आयुष्य भी लम्बा नहीं है इस से हम को घर में रहते किसी प्रकार का आनन्द नहीं मिलता है अहो तात ! हम आप को कहते हैं कि-अब हम चारित्र अंगीकार करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा पुत्रों का वचन सुनकर उन भाव मुनियों के तप में व्याघात होवे वैसा वचन पुरोहित बोलने लगा जिस को पुत्र नहीं है उस को स्वर्ग की गति नहीं है * ऐसा अपने वेद में कहा है, ॥ ८ ॥ अहो पुत्रों ! वेद का अभ्यास कर ब्राह्मणों को जीमा कर, घर में ज्येष्ठ पुत्र को छोड कर और स्त्रियों के साथ भोगव भोग कर फिर तुम अटवी में रहने वाले प्रशस्त मुनि बनो ॥ ९ ॥ यह पुरोहित

* अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्मात्पुत्र मुखंदृष्ट्वा पश्चाद्धर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थात् अपुत्रीय को स्वर्ग नहीं मील सकता है इसलिये ...

पज्जलणा हिएण ॥ सतत्तभाव परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहु च ॥ १० ॥
पुरोहियं तं कमसो ऽ णुणंत, निमतयतं च सुए धणेणं ॥ जहक्कम कामगुणेहि चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥ ११ ॥ वेया अहीया न भवति ताण, भुत्ता दिया निंति
तमतमेणं ॥ जायाय पुत्ता न हवंति ताण, को णाम ते अणुमन्नेज्जएय ॥ १२ ॥
खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, अनिगामसोक्खा, पगामदुक्खा ॥ ससारमोक्खस्स

आत्मा के रागादिक गुणरूप ईंधन वाली व मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोक रूप अग्नि से सर्वथा प्रकार से तप्त बना हुवा व मोहनीय कर्म के वश हो विलाप करता हुआ उक्त प्रकार से अति दीन वचन बोला ॥ १० ॥ अपने दोनों पुत्र को धनादिक से काम भोगों की आमंत्रणा करते हुवे पुरोहित को वे दोनों कुमार इस प्रकार विचार कर बोलने लगे ॥ ११ ॥ अहो तात! वेदों के अभ्यास करने से जीवों को शरण नहीं होता है ब्राह्मणों को जीमाने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है वैसे ही पुत्रादिक की प्राप्ति होने से भी त्राण शरण नहीं होता है अर्थात् यह इसलोक व परलोक यों दोनों लोक से मुक्त नहीं कर सकते हैं इस से अहो तात! हम इस का कैसे स्वीकार करे? ॥ १२ ॥ अहो तात! ये काम भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले व बहुत काल दु:ख देनेवाले हैं इस से इन में सुख तो अल्प है और दु:ख बहुत है और भी जीव को मुक्ति में नहीं जाने देने से ये काम भोग अनर्थ की खदान है और प्राप्त काम

असासयदट्ठ इमं विहारं बहुअंतरायं न दीहमाऊ ॥ तम्हा गिहंसि न रइं लभामो, आमंतयामो चरिस्समुमोणं ॥ ७ ॥ अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघाय कर वयासी ॥ इमं वय वेयविआ वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥ अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्पगिहंसि जाया॥भोच्चाणभोए सहइत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥ सोयग्गिणा आयगुणिंधणेण, मोहाणिला

इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ अहो तात ! यह मनुष्य जन्म अशाश्वत है और इस में भी रोगादिक अनेक प्रकार की अंतराय आती है और आयुष्य भी लम्बा नहीं है इस से हम को घर में रहते किसी प्रकार का आनंद नहीं मिलता है अहो तात ! हम आप को कहते हैं कि-अब हम चारित्र अंगीकार करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा पुत्रों का वचन सुनकर उन भाव मुनियों के तप में व्याघात होवे वैसा वचन पुरोहित बोलने लगा जिस को पुत्र नहीं है उस को स्वर्ग की गति नहीं है * ऐसा अपने वेद में कहा है, ॥ ८ ॥ अहो पुत्रों ! वेद का अभ्यास कर ब्राह्मणों को जीमा कर, घर में ज्येष्ठ पुत्र को छोड कर और स्त्रियों के साथ भोगव भोग कर फिर तुम अटवी में रहने वाले प्रशस्त मुनि बनो ॥ ९ ॥ यह पुरोहित

* अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच ॥ तस्मात्पुत्र मुखं दृष्ट्वा पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थात् अपुत्रीय

पज्जलणा हिएण ॥ सतत्तभाव पारतप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहु च ॥ १० ॥ पुरोहिय तं कमसो ऽणुणंतं, निमतयतं च सुए धणेणं ॥ जहक्कम कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥ ११ ॥ वेया अहीया न भवंति ताण, भु॒त्ता दिया निंति तमतमेण ॥ जायाय पुत्ता न हवंति ताण, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एय ॥ १२ ॥ खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, अनिगामसोक्खा, पगामदुक्खा ॥ ससारमोक्खस्स

आत्मा के रागादिक गुणरूप ईंधन वाली व मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोक रूप अग्नि से सर्वथा प्रकार से तप्त बना हुवा व मोहनीय कर्म के वश हो विलाप करता हुआ उक्त प्रकार से अति दीन वचन बोला ॥ १० ॥ अपने दोनों पुत्र को धनादिक से काम भोगों की आमंत्रणा करते हुवे पुरोहित को वे दोनों कुमार इस प्रकार विचार कर बोलने लगे ॥ ११ ॥ अहो तात ! वेदों के अभ्यास करने से जीवों को शरण नहीं होता है ब्राह्मणों को जीमाने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है वैसे ही पुत्रादिक की प्राप्ति होने से भी त्राण शरण नहीं होता है अर्थात् यह इसलोक व परलोक यों दोनों लोक से मुक्त नहीं कर सकते हैं इस से अहो तात ! हम इस का कैसे स्वीकार करे ? ॥ १२ ॥ अहो तात ! ये काम भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले व बहुत काल दु:ख देनेवाले हैं इस से इन में सुख तो अल्प है और दु:ख बहुत है और भी जीव को मुक्ति में नहीं जाने देने से ये काम भोग अनर्थ की खदान है और प्राप्त काम

विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु कामभोगा ॥ १३ ॥ परिव्वयते अनियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ॥ अन्नप्पमत्ते,धणमेसमाणे पप्पेत्तिमच्चुं पुरिसे जरं च॥१४॥ इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ॥ त एवमेव लालप्पमाणं, हराहरंति त्ति कहं पमाए ॥ १५ ॥ धणं पभूयं सहइत्थियाहिं, सयणा तहा कामगु-णा पगामा । तवं कए तप्पइ जस्स लोगो तं सव्व साहीण मिहेव तुब्भं ॥ १६ ॥ धणेण किं धम्मधुराहिगारे सयणेणवा कामगु

भोगों से नहीं निवर्तनेवाला अहोरात्रि परिताप सहन करता धनार्त हुवा इधर उधर भटकता ही रहता है स्वजनादिक में आसक्त बना हुवा व धन की गवेषणा करने वाला पुरुष मृत्यु व जरा को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ अहो पिताजी ! इस जगत में तृष्णा से पीडित हुए जीवों यही लालपाल करते हैं कि—यह सुवर्णादि मेरे हैं परंतु रत्नादि नहीं है यह गृह वगैरह मैंने कराये हैं परंतु महेल वगैरह नहीं कराये हैं ऐसे करनेवाले का आयुष्य रात्रि दिन रूप चोर हरण करके उसे परलोक में ले जाता है तो ऐसा जानकर क्या धर्म में प्रमाद करना उचित है ! अर्थात प्रमाद नहीं करना ॥ १५ ॥ तब भृगु पुरोहित कहने लगा अहो पुत्र ! लोक जिस की प्राप्ति के लिये तप करते हैं वह सब तुम को यहां पर ही मील गया है जैसे कि तुम को बहुत धन है स्त्रियों भी हैं बांधव प्रमुख स्वजन भी हैं और यथेच्छ कामभोगों भी है ॥ १६ ॥ तब पुत्र बोलने लगे कि अहो तात ! जैसे बैल के स्कंध पर धूरा रखने से वह भार का वहन कर सकता है वैसे ही धर्म रूप भार वहन करने में धन, स्वजन अथवा काम भोग

गेहंसिचेव ॥ समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिं विहारा अभिगम्मभिक्खं ॥ १७ ॥ जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घय तेल्लमहा तिलेसु॥ एमेव ताया सरीरंसि सत्ता, समुच्छई नासइ नावचिट्ठ ॥ १८ ॥ नोइंदिय गेज्झ अमुत्तभावा अमुत्तभावावि य होइ निच्चो ॥ अज्झत्थहेउं नियय्स्स बंधो संसारहेउंच वयंतिबंध ॥ १९ ॥ जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावपुरा कम्ममकासिमोहा ॥ आरुब्भमाणा परिरक्खयंता,

से क्या होता है ? इस से समस्तिबंध विहारी बनकर भीक्षा से आजीविका करने वाले हम श्रमण बनेंगे ॥ १७ ॥ अब पिता परलोक की नास्ति रूप कथन करने लगा अहो पुत्र ! जैसे अरणी में अविद्यमान अग्नि उत्पन्न होती है जैसे दुग्ध में अविद्यमान घृत उत्पन्न होता है और जैसे तिल में अविद्यमान तेल उत्पन्न होता है वैसे ही स्त्री पुरुष के संयोग से पांच भूत मील कर अविद्यमान जीव उत्पन्न होता है और इस शरीर का नाश होने से जीव का भी नाश हो जाता है ॥ १८ ॥ तब पुत्र इस का उत्तर देने लगे—जीव आत्मा अरूपी होने से इन्द्रियों का ग्राह्य नहीं है वह अमूर्त व शाश्वत है यह आत्मा मिथ्यात्वादि हेतु से बंधाता है वो उन कर्मों के फल को भोगने के लिये चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है ॥ १९ ॥ जिस प्रकार हम इतने दिन धर्म के अनजान होने से तुम्हारे बंधन में बंधा रहे थे, तुमने हम को रोक रखे थे और अब तक हम जो पाप कर्म कर रहे थे उन पाप

तं नेवभुज्जोविसमायरामो ॥ २० ॥ (गाथा) अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए ॥ अमोहाहिं पडंतीहिं गिहंसि न रइंल्मे ॥ २१ ॥ केण अब्भाहओ लोगो केण वा परिवारिओ ॥ का वा अमोहावुत्ता जायाचिंतावरो हुमे ॥ २२ ॥ मच्चुणाऽब्भहआ लोगो, जराए परिवारिओ ॥ अमोहा रयणी वुत्ता एवं ताय विजाणह ॥ २३ ॥ जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तई ॥ अहम्मकुणमाणस्स, अफला जंति राईओ ॥ २४ ॥ जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ॥ धम्म

कों का अब हम आचरण नहीं करेंगे ॥२०॥ यह मनुष्य लोक पीडित हो रहा है यह लोक चारों ओर घराया हुवा है और इस में अमोघधारा वाली शस्त्र की वृष्टि हो रही है, ऐसे लोक में रहने से हमें आनंद नहीं मीलता है ॥ २१ ॥ अब पिता कहने लगा कि अहो पुत्र ! किस से लोक पीडित हो रहा है, किस से लोक घेराया हुवा है कौनसे शस्त्र की धारा अमोघ पडरही है ? अहो पुत्र ! मैं चिंतातुर हूं, इस लिये मुझे कहो ॥ २२ ॥ तब पुत्र कहने लगे कि मृत्यु से लोक पीडित हो रहा है और जरा [वृद्धावस्था] से घराया हुवा है, रात्रि दिन रूप तीक्ष्ण शस्त्र की अमोघ धारा पडरही है अहो तात ! ऐसे तुम जानो ॥ २३ ॥ जो रात्रि दिन जाते हैं वे पीछे नहीं आते हैं उस से अधर्म करने वाले के रात्रि दिन निष्फल जाते हैं ॥ २४ ॥ जो जो रात्रि दिन जाते हैं वे पीछे नहीं आते हैं इस से धर्म करने वाले

च कुणमाणस्स, सफलाजाति राइओ ॥ २५ ॥ एगओ संवसित्ताण, दुहओ सम्मच सजुया ॥ पच्छा जाया गमिस्सामो भिक्खमाणा कुले कुले ॥ २६ ॥ जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स अत्थि पलायण ॥ जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ॥२७॥ (काव्य) अज्जेव धम्म पडिवज्जयामो जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो अणागय नेव य अत्थिकिंची, सद्धाखम णे विणइत्तु राग ॥ २८ ॥ पहीणपुत्तस्स हु

के रात्रि दिन सफल जाते हैं ॥ २५ ॥ तब पिता कहने लगा कि–अधुना तुम हम सब सम्यक्त्व सहित देशवृत्ति पना अंगीकार कर गृहवास में रहें और वृद्धावस्था प्राप्त होने पर संयम अंगीकार करके भरोक कुल में भिक्षा की याचना करते हुए विचरेंगे ॥ २६ ॥ तब पुत्र कहने लगे अहो तात ! जिस को मृत्यु के साथ मित्राचारी है, जो मृत्यु आनेपर भग सकता होवे और जो जानता होवे कि मैं मरूंगा ही नहीं वही भविष्य काल में मैं धर्म करूंगा ऐसा करसके ॥ २७ ॥ इस लिये अहो पिताजी ! हमारी मृत्यु से न तो प्रीति है, न भगने की शक्ति है और न हम अमर हैं जो विषय सुख पहिले नहीं पाया होवे तो उन से प्रेम करे, परंतु विषय सुख हम को पहिले अनंती वार भोग चुके हैं इस से हमारा कुच्छ भी कल्याण हुआ नहीं इस से इन को छोडकर जिस धर्म को अंगीकार करने से पुनर्भव होवे नहीं वैसा धर्म हम आज ही अंगीकार करेंगे ॥ २८ ॥ पुत्रों को इस प्रकार विरक्त बने हुए जानकर वैरागी

नत्थि थारो वासिट्ठि भिक्खायरियाइ कालो ॥ सहाहि रूक्खो लहइ समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेवखाणुं ॥ २९ ॥ पखा विहुणो जहेव पक्खी भिच्चविहीणोव्व रणे नरिंदो ॥ विवन्नसारो वणिओव्व पोए, पहीण पुत्तो मि तया अहंपि ॥ ३० ॥ सुसंभिया कामगुणा इमेते सपिण्डिया अग्गरस प्पभूया ॥ भुंजामु ता कामगुणे पगामं पच्छागमिस्सामु पहाणमग्गं ॥ ३१ ॥ भुत्तारसा भोइ जहाइ णे वओ, नजीवियट्ठा पजहामि भोए, ॥

बना हुवा पुरोहित अपनी स्त्री से कहने लगा—हे वाशिष्टे ! (वशिष्ठ गोत्र धारन करने वाली) मुझे अब ग्रहण कर भिक्षा वृत्ति करने का समय वर्तता है, क्योंकि शाखा प्रतिशाखा से वृक्ष सुशोभित दीखता है और शाखा न होनेसे ठूंठ दीखता है, वैसे ही पुत्र रहित मुझे गृह वास मे रहना उचित नहीं है ॥ २९ ॥ जैसे पांख बिना पक्षी सुशोभित नहीं दीखता है संग्राम के अग्र में रहा हुवा राजा सेवक बिना चिन्ताग्रस्त बना हुवा नहीं शोभता है और द्रव्य बिना का व्यापारी जहाजों मे नहीं शोभता है वैसे ही मैं भी पुत्र बिना गृहवास में रहा चिन्ताग्रस्त होने से नहीं शोभता हूं ॥ ३० ॥ तब पुरोहित की स्त्री कहने लगी—(पुत्र जाते होवे तो जाने दो परंतु) हमने यह कामभोग भोगवने योग्य शयनासन वस्त्र भूषणादि का संग्रह कर रख मगा रखे हैं वैसे ही विविध प्रकार के पकवान्न रसवती पाक, आदि का संग्रह किया है इस को अपन अच्छी तरह भोगव कर फिर अब भुक्त भोगी बनेंगे और वृद्धावस्था प्राप्त होगी तब अपन दोनों दीक्षा रूप प्रधान मार्ग अंगीकार करेंगे ॥ ३१ ॥ तब पुरोहित

लाभं अलाभं च सुह च दुक्खं,संचिक्खमाणो चारस्सामिमाण ॥२९॥ ना ५ ५''
सोयरियाण समरे, जुण्णो व हसो पडिसोगाचमी ॥ भुजाहि भोगाइ मए समाण,
दुक्ख सुभिक्खायरिया विहारो ॥ ३३ ॥ जहा य भोई तणुय भुयगो निम्मोयणिं
हिच पलेइ मुत्तो, एमेव जाया पयहातिभोए, तेह कह नाणुगमिस्समेक्को ॥ ३४ ॥
छिंदित्तु जाल अबल वरोहिया मच्छा जहा कामगुण पहाय ॥ धोरेय सीला तवसा

बोला—अहो भद्रे ' जिस वय में भोग भोगते हैं वह अवस्था अब चली जाती है मैं असंयम रूप जीवितव्य के लिए इन भोगों का त्याग नहीं करता हूं परंतु संयम पालने के लिये इन भोगों का त्याग कर लाभ अलाभ, सुख अथवा दुःख जो होवे उन में समान भाव रखता हुवा सपमाचरण करूंगा ॥३२॥ तब यशा भार्या बोली जैसे वृद्ध हंस प्रतिश्रोत [नदी के पूर सन्मुख] में चलता हुवा बड़ा दुःखी हो कर बड़ा पश्चाताप करता है वैसे ही तुम दीक्षा लेकर शोक करोगे कि मैंने दीक्षा वृथा अंगीकार की इस से तुम मेरे साथ भोग भोगवो क्यों की अप्रतिबंध विहार रूप भिक्षा चर्या का व्रत अति कठिन है ॥ ३३ ॥ तब पुरोहित कहने लगा—जैसे सर्प अपने शरीर पर की कांचली का त्याग कर चला जाता है वैसे ही अपने दोनों पुत्र सब भोगों का त्याग कर जाते हैं तो मैं अकेला उन के अनुगामी क्यों नहीं होऊं ॥ ३४ ॥ जैसे रोहित जाति वाला मत्स्य अपनी तीक्ष्ण पूछ से जीर्ण

उदारा, धीरा हु भिक्खायरिय चरति ॥ ३५ ॥ नहेव कुचा समइक्कमता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झ ते हं कहं नाणुगमिस्स मेका ॥ ३६ ॥ पुरोहियं तंससुयं सदारं, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुम्ब सारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और योगी वैनके समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दक्षता नहीं कर सकूंगा ! अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३५ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागीनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षीयों व हंस पक्षियों जालको छोडकर आकाश में विचरते है और बहुत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझ अकेली को घर में रहकर क्या करना है! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥ ३६ ॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

पुरिसो राय, नसो होइ पसंसिओ ॥ माहणेण परिच्चत्त, धण आदाउ मिच्छसि ॥ ३८ ॥ सव्व जगं जइ तुहं सव्व चावि धण भवे ॥ सव्व पि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय त तव ॥ ३९ ॥ मारिहसि राय जया तयावा मणोरमे कामगुणे पहाय ॥ एक्को हु धम्मो नर देवताण, नविज्जई अन्नमि हेह किंचि ॥ ४० ॥ (काव्य) नाह रमे पक्खिणि पजरेवा, सताण छिन्ना चरिस्सामि मोण ॥ अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा परिग्ग

घमन किया हुआ आहार ग्रहण करे यह प्रशंसनीय होवे नहीं ऐसे ही आप ब्राह्मण के त्यागे हुवे धन की इच्छा करते हैं सो आप को गचित नहीं है ॥ ३८ ॥ कदाचित जगत का सब द्रव्य तुम को मील जाय तो भी धनादिक से तुमारी तृष्णा पूर्ण होसकती नहीं है ऐसे ही हे राजन् ! उक्त धनादि तुम को दुःख से बचाने समर्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ अहो राजन् ! इन मनोहर काम भोगों का त्याग कर किसी समय भी तुम मर जावोगे इस समय अहो नरदेव ! धर्म सिवाय अन्य कुच्छ भी तुम को शरण भूत नहीं होगा ॥ ४० ॥ (तब राजा बोला कि जब तुझे इतना ज्ञान है तो इस राज्य में क्यों बैठी है, तब रानी बोली) हे राजन् ! मेरे पींजरे में पूराइ हुई पक्षिनी आनद नहीं मानती है, वैसे ही मैं भी तेरे राज्य में रही हुई आनद नहीं मानती हूं अब मैं आरंभ परिग्रह का त्याग कर सरल कृत्य करने वाली, विषय कषाय रूप मांस रहित, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती हुइ स्नेह रूप तांत

उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥ ३५ ॥ नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झं, ते हं कहं नाणुगमिस्स मेक्का ॥ ३६ ॥ पुरोहियं तं ससुयं सदारं, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुंब सारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और योगी वैसके समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दृढता नहीं कर सकूंगा ! अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३८ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागिनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षियों व हंस पक्षियों जालको तोडकर आकाश में विचरते हैं और बहुत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझे अकेली को घर में रहकर क्या करना है! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥३६॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

पुरिसो राय, नसो होइ पसासिओ ॥ माहणेण परिच्चत्त, धण आदाउ मिच्छासि ॥ ३८ ॥
सव्व जग जइ तुह सव्व चावि धण भवे ॥ सव्व पि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय त तव
॥ ३९ ॥ मारिहासि रायं जया तयावा मणोरम कामगुणे पहाय ॥ एक्को हु धम्मो
नर देवताण, नाविज्जई अन्नमि हेह किंचि ॥ ४० ॥ (काव्य) नाह रमे पक्खिणि
पजरेवा, सताण छिन्ना चरिस्सामि मोण ॥ अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्ग

वमन किया हुआ आहार ग्रहण करे वह प्रशंसनीय होवे नहीं ऐसे ही आप ब्राह्मण के त्यागे हुवे धन की इच्छा करते हैं सो आप को उचित नहीं है ॥ ३८ ॥ कदाचित जगत का सब द्रव्य तुम को मील जाय तो भी धनादिक से तुमारी तृष्णा पूर्ण होसकती नहीं है ऐसे ही हे राजन् ! वक्त धनादि तुम को दुःख से बचाने समर्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ अहो राजन् ! इन मनोहर काम भोगों का त्याग कर किसी समय भी तुम मर जावोगे इस समय अहो नरदेव ! धर्म सिवाय अन्य कुच्छ भी तुम को शरण भूत नहीं होगा ॥ ४० ॥ (तब राजा बोला कि जब तुझे इतना ज्ञान है तो इस राज्य में क्यों बैठी है, तब रानी बोली) हे राजन् ! जैसे पींजरे में पूराइ हुई पक्षिनी आनद नहीं मानती है, वैसे ही मैं भी तेरे राज्य में रही हुई आनद नहीं मानती हूं अब मैं आरभ परिग्रह का त्याग कर सरल कृत्य करने वाली, विषय कषाय रूप मांस रहित, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती हुइ स्नेह रूप तांत

उदारा, धीरा हु भिक्खायरिय चरंति ॥ ३५ ॥ नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झं ते हं कहं नाणुगमिस्स मेक्का ॥ ३६ ॥ पुरोहियं त ससुयं सदारं, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुंब सारं विउलुत्तम च, राय अभिक्ख समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और धोरी बैलके समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दृढता नहीं कर सकूंगा ! अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३५ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागिनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षीयों व हंस पक्षियों जालको तोडकर आकाश में विचरते है और पर्वत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझे अकेली को घर में रहकर क्या करना है! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥३६॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

अ

निरामिसा ॥ ४६ ॥ गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे संसार वड्डणे ॥ उरगो सुवण्ण पासन्व संकमाणो तणुचरे ॥ ४७ ॥ नागोव्व बंधणं छिंचा अप्पणो वसहिं वए ॥ एय पत्थं महाराय, उसुयारि त्ति मे सुयं ॥ ४८ ॥ चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए, निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४९ ॥ सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चच्चाकामगुणे वरे ॥ तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कम्मा ॥५०॥ एवं

रहित पक्षि को कोई दुःखी नहीं करता है वैसे ही विषय कषाय रूप मांस को छोडकर अपन निरोगि ॥ ४६ ॥ इन गीध पक्षी के दृष्टांत से कामभोगों को संसार की वृद्धि करनेवाले जानकर जैसे सर्प गरुड पक्षी से डरता हुआ चलता है तैसे ही अपन भी पाप से डरते हुए चलेंगे ॥ ४७ ॥ अहो इषु कार राजन् ! मैंने सुना है कि जैसे हस्ती अपना बंधन तोडकर विंध्याचल अटवी में जाकर स्वतंत्रता पूर्वक गमन करता है वैसे ही धीर पुरुष मोह रूप शृंखला को तोडकर मोक्ष रूप विंध्याचल अटवि में सुख पूर्वक विचरते हैं अहो राजन्! ऐसा तुम भी करो ॥ ४८ ॥ कमलावती रानी के ऐसे वचन सुनकर इषुकार राजा प्रतिबोध पाया और राज्य व बहुत कठिनता से त्याग सके ऐसे काम भोगों का त्याग कर विषयवासना, धन रूप आमिष, स्नेह व परिग्रह रहित बने ॥ ४९ ॥ घोर पराक्रम करने वाले उक्त छे ही पुरुषोंने धर्म जानकर, व श्रेष्ठ काम भोगों का त्याग कर तप व घोर

हारम नियत्त दोसा॥ ४१ ॥ (गाथा) दवग्गिणा जहा रण्णे डज्झमाणेसु जतुसु॥ अन्ने सत्ता पमोयंति, रागद्दोस वसगया ॥ ४२ ॥ एवमेव वय मूढा, काम भोगेसु मुच्छिया ॥ डज्झमाण न बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जग ॥ ४३ ॥ भोगे भोच्चा वमित्ताय लहु भू‧विहारिणो ॥ आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ॥ ४४ ॥ इमे य बद्धा फदंति मम हत्थज्ज मागया वयंच सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥ ४५ ॥ सामिस कुलल दिस्स बज्झमाण निरामिसं ॥ आमिसं सव्व मुज्झित्ता, विहरिस्सामो

छेदन कर संयम अंगीकार करूंगी ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार अटवि मे दवाग्नि से जलते हुए जन्तुओं देखकर उस से दूर रहे हुवे अन्य जीव राग द्वेष होने से आनंदित होते हैं; वैसेही काम भोग में गृद्ध बने हुए अपन मूढ राग द्वेष रूप अग्नि से जलता हुवा जगत को नहीं जानते हैं और प्रतिबंध में बंधा रहे हैं ॥ ४२ ४३ ॥ परंतु जो विनकी होते है वे जिस प्रकार पक्षियों आकाश में स्वेच्छाचारी होते है वैसे ही व भी भोग के हुए भोगों का त्याग कर यथाविध साधु के आचार मे हर्ष पाते हुए अप्रतिबंध विहार करते हैं ॥ ४४ ॥ यह शब्दादिक काम भोग की सामग्री तुमारे व हमारे हाथ में जो आई है और उस में आसक्त बने हुए है परंतु यह अस्थिर हैं अर्थात् इन का अवश्य तजना पडेगा इसलिये ये जिस प्रकार पुरोहित वगैरहने किया वैसे ही अपनको करना उचित है ॥ ४५ ॥ प्रत्यक्ष में देखो-जो मांस टूकडा सहित गीध पक्षी होता है उसे के पीछे अन्य कितने पक्षियों लगते हैं और दु:खी करते हैं परंतु मांस

निरामिसा ॥ ४६ ॥ गिद्धोवमे उ नच्चाण, कामे संसार वड्ढणे ॥ उरगो सुवण्ण पासव्व संकमाणो तणुंचरे ॥ ४७ ॥ नागोव्व बंधणं छित्ता अप्पणो वसहिं वए ॥ एयं पच्छं महाराय, उसुयारि त्ति मे सुयं ॥ ४८ ॥ चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए, निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४९ ॥ सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चच्चाकामगुणे वरे ॥ तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥ एवं

रहित पक्षि को कोई दुःखी नहीं करता है वैसे ही विषय कषाय रूप मांस को छोडकर अपन निसंग ॥ ४६ ॥ इन गीध पक्षी के दृष्टांत से कामभोगों को संसार की वृद्धि करनेवाले जानकर जैसे सर्प गरुड पक्षी से डरता हुआ चलता है तैसे ही अपन भी पाप से डरते हुए चलेंगे ॥ ४७ ॥ अहो इषुकार राजन् ! मैंने सुना है कि जैसे हस्ती अपना बंधन तोडकर विंध्याचल अटवी में जाकर स्वतंत्रता पूर्वक गमन करता है वैसे ही धीर पुरुष मोह रूप शृंखला को तोडकर मोक्ष रूप विंध्याचल अटवि में सुख पूर्वक विचरते हैं अहो राजन्! ऐसा तुम भी करो ॥ ४८ ॥ कमलावती रानी के ऐसे वचन सुनकर इषुकार राजा प्रतिबोध पाया और राज्य व बहुत कठिनता से त्याग सके ऐसे काम भोगों का त्याग कर विषयवासना, धन रूप आमिष, स्नेह व परिग्रह रहित बने ॥ ४९ ॥ घोर पराक्रम करने वाले उक्त छे ही पुरुषोंने धर्म जानकर, व श्रेष्ट काम भोगों का त्याग कर तप व घोर

ते कसमो धुन्ना स ने धम्मपरायणा ॥ जम्म मच्चु भउव्विग्गा, दुक्खस्सत गवेसिणो ॥ ५१ ॥ सासणे विगयमोहाण, पुव्विं भावण भाविया ॥ अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सत मुवागया ॥५२॥ राया सह देवीए माहणो य पुरोहिओ ॥ माहणी दारगा चेव, सव्व त परिनिव्वुडा ॥५३॥ त्तिबेमि ॥ उसुयारिज्जं चउदसमज्झयण ॥ १४ ॥

व्रत का आचरन किया ॥ ५० ॥ इस तरह वे छे ही जीव क्रमशः बोध पा के धर्म में परायण बने जन्म मरण के भय के उद्विग्न बने और दुःख के अंत की गवेषणा करने वाले हुए ॥ ५१ ॥ जिन शासन में मोह रहित पुरुषों, अपने पूर्व जन्म को जाति स्मरण ज्ञान से जानकर भावित आत्मा होने से वैराग्य पाय और बहुत अल्प समय में सब दुःखों का अंत किया मोक्ष पाये ॥५२॥ १ इक्षुकार राजा २ कमलावती रानी, ३ भृगु पुरोहित ४ यशा भार्या ५ देवभद्र और ६ यशोभद्र ये दोनों कुमार यों छ ही जीव कर्म रूप दावानल बुझाकर शीतली भूत बने ॥ ५३ ॥ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह इक्षुकार नामक चौदवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

* *

॥ सभिक्षु नामक पञ्चदश मध्ययनम् ॥

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे नियाण छिन्ने ॥
सथव जहिज्ज अकाम कामे, अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥ १ ॥ राओवरय
चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए ॥ पण्णे अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हि वि
न मुच्छिए स भिक्खू ॥ २ ॥ अक्कोसवह विइत्तुधीरे, मुणीचरे लाढे नियमायगुत्ते ॥

पन्दरवे अध्ययन में निदान रहित करनी करने का कहा ऐसी करनी साधु को होती है इसलिये इस पन्नरवे अध्ययन में साधु का आचार कहते हैं जो कोई शुद्धमन से श्रुत धर्म व चारित्र धर्म अंगीकार करके अन्य साधुओं के साथ सरल स्वभावी व नियाणा रहित बनकर संसारिक स्वजन संबंधियों का परिचय का त्याग करे और कामाभिलाष रहित अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे वही भिक्षु कहाता है ॥ १ ॥ प्रधान साधु रागद्वेष से निवर्त कर विचरे सूत्र का ज्ञाता, बनकर अपने आत्मा को दुर्गति से बचाने वाला, प्रज्ञावान, परिषह जीतकर सर्वदर्शी बने हुवे जो कोई किसी वस्तु में मूर्च्छित होवे नहीं वही भिक्षु है ॥ २ ॥ देशांतर में विहार करते किसी स्थान कोई आक्रोश वचन से निभत्सना करे तथा कोई प्रहार करे सब अपने कर्मोदय हुए हैं ऐसा जानकर उन

ते कसमो बुद्धा सव्वे धम्मपरायणा ॥ जम्म मच्चु भउव्विग्गा, दुक्खस्संत गवेसिणो ॥ ५१ ॥ सासणे विगयमोहाण, पुर्व्वि भावण भाविया ॥ अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्संत मुवागया ॥५२॥ राया सह देवीए माहणो य पुरोहिओ ॥ माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडा ॥५३॥ त्तिबेमि ॥ उसुयारिज्जं चउदसमज्झयणं ॥ १४ ॥

र्म का आचरन किया ॥ ५० ॥ इस तरह वे छ ही जीव क्रमशः बोध पा के धर्म में परायण बने जन्म मरण के भय के उद्विग्न बने और दुःख के अंत की गवेषणा करने वाले हुए ॥ ५१ ॥ जिन शासन में मोह रहित पुरुषों, अपने पूर्व जन्म को जाति स्मरण ज्ञान से जानकर भावित आत्मा होने से वैराग्य पाय और बहुत अल्प समय में सब दुःखों का अंत किया मोक्ष पाये ॥५२॥ १ इक्षुकार राजा २ कमलावती रानी, ३ भृगु पुरोहित ४ यशा भार्या ५ देवभद्र और ६ यशोभद्र ये दोनों कुमार यों छ ही जीव कर्म रूप दावानल बुझाकर शीतली भूत बने ॥ ५३ ॥ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह इक्षुकार नामक चौदवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

॥ सभिक्षु नामक पञ्चदश मध्ययनम् ॥

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे नियाण छिन्ने ॥
सथव जहिज्ज अकाम कामे, अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥ १ ॥ राओवरय
चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए ॥ पण्णे अभिभूय सव्वदसी, जे कम्हि वि
न मुच्छिए स भिक्खू ॥ २ ॥ अक्कोसवह विइत्तु धीरे, मुणीचरे लाढे नियमायगुत्ते ॥

पन्दरवे अध्ययन में निदान रहित करनी करने का कहा ऐसी करनी साधु को होती है इसलिये इस पन्नरहवे अध्ययन में साधु का आचार कहते हैं जो कोई शुद्धमन से श्रुत धर्म व चारित्र धर्म अंगीकार करके अन्य साधुओं के साथ सरल स्वभावी, व नियाणा रहित बनकर संसारिक स्वजन संबंधियों का परिचय का त्याग करे और कामाभिलाप रहित अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे वही भिक्षु कहाता है ॥ १ ॥ प्रधान साधु रागद्वेष से निवर्त कर विचरे सूत्र का ज्ञाता, बनकर अपने आत्मा को दुर्गति से बचाने वाला, प्रज्ञावान, परिषह जीतकर सर्वदर्शी बने हुवे जो कोई किसी वस्तु में मूर्च्छित होवे नहीं वही भिक्षु है ॥ २ ॥ देशांतर में विहार करते किसी स्थान कोइ आक्रोश वचन से निभर्त्सना करे तथा कोइ प्रहार करे सब अपने कर्मोदय हुए हैं ऐसा जानकर उन

अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे जेकसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ३ ॥ पंत सयणासण भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दसमसगं॥ अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जेकसिणं अहियासए सभिक्खू ॥ ४ ॥ नो सक्कइ मिच्छई न पूयं, नो य वंदणगं कओ पसंसं ॥से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिएआयगवेसए स भिक्खू ॥ ५ ॥ जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छई ॥ नरनारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोउहलं उवेइ स

कर्मों को क्षय करने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ ऐसा जानकर क्रोध करे नहीं, असंयम से आत्मा को गोपवे अपना मन स्थिर रखे, संसार के झगडे में पडे नहीं, विषवाद करे नहीं, वैसे ही अहंकार करे नहीं, आकुल व्याकुल होवे नहीं इस तरह जो समभाव से सब आक्रोशकारी वचन व ताडन सहन करे वही साधु कहाता है ॥३॥ प्रांत (बचे हुवे) शयनासन का सेवन करके शीत उष्ण व विविध प्रकार दंश मच्छर के परिषह को आकुल व्याकुल चित्त रहित व विषवाद रहित जो सहन करे वही भिक्षु कहाता है ॥ ४ ॥ जो सत्कार, पूजा वंदन और प्रशंसा की वांच्छा करे नहीं और जो संयति सुव्रति तपस्वी ज्ञान क्रिया सहित व आत्मगवेषक होवे वही भिक्षु कहाता है ॥५॥ जिन स्त्री पुरुषों की संगति करने से संयम रूप जीवितव्य की घात होवे तथा कषाय नो कषाय रूप संपूर्ण मोहनीय कर्म की उत्पत्ति होवे उन स्त्री पुरुषों का परिचय करे नहीं वैसे ही संसार अवस्था

भिक्खू ॥ ६ ॥ छिन्नं सर भोममतल्लिक्खं, सुमिण लक्खणदंडवत्थु विज्ज ॥ अग वियार सरस्स विजयं जे, विज्जाहिं न जीवति स भिक्खू ॥ ७ ॥ मंत मूल विविह विज्जचिंत, वमण विरेयण धूम णेत्तसिणाणं ॥ आउरे सरण तिगिच्छं च, त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ८ ॥ खत्तियगेण उग्गराय पुत्ता, माहण भोइय विविहाय

में भोगवे हुवे भोगों का स्मरण भी करे नहीं, वही भिक्षु कहाता है ॥ ६ ॥ १ वस्त्रादि वस्तु अथवा अंगोपांग छेदन की विद्या २ पक्षियों अथवा मनुष्य के स्वर जानने की विद्या ३ भूकंप अथवा भूमि के लक्षण जानने की विद्या ४ खगोल (ग्रहचारादि) विद्या, ५ शुभाशुभ स्वप्न के फल जानने की विद्या, ६ स्त्री पुरुष आदि के शुभाशुभ लक्षण जानने की विद्या, ७ काष्ट के लक्षण अथवा काष्ठ से अन्य वस्तु बनाने की विद्या, ८ घरादि बनाने की विद्या ९ अंगस्फुरण का ज्ञान, १० सातस्वर से गायन करने की विद्या, इत्यादि पापविद्या से जो कोई अपनी आजीविका करे नहीं उसे साधु कहना ॥ ७ ॥ १ व्यंतरादिक के मंत्र, २ जड़ीबूटी आदि मूल ३ औषधोपचार ४ वमन कराने का औषध, ५ विरेचन जुलाब का औषध, ६ धूम्रपान कराने की विद्या अथवा गुदा द्वार को धूम्र देकर रोगादि निवृत्ति के उपाय, ७ वस्त्रादिक को धूप देना ८ आंख का अंजन करना ९ पुत्रादिक के लिये स्नान कराना इत्यादि वैद्यक शास्त्र का अभ्यास करना रोगादिक से पीड़ित हो मात पिता आदि का स्मरण करना इतने कामों का प्रत्याख्यान करके जो कोई संयम मार्ग में प्रवर्ते उस साधु कहना ॥ ८ ॥ क्षत्रिय के समूह, कोतवाल, राजपुत्र, ब्राह्मण, राजा,

सिप्पिणो ॥ नो तेसिं वयइ सिलोग पूयं, त परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९ ॥ गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व संथुया हविज्जा ॥ तेसिं इहलोइय फलट्ठा जो संथव न करेइ स भिक्खू ॥ १० ॥ सयणासण पाणभोयण, विविहं खाइम साइमं परेसिं ॥ अदए पडिसेहिए नियठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥ ११ ॥ ज किंचि आहार पाण जाय, विविह खाइम साइमं परेसिं ॥ जो तं तिविहेण नाणुकंपे मणवयकाय सुसंवुडे स भिक्खू ॥ १२ ॥ आयामग चेव

प्रधान, भोगी पुरुष और चित्रकारादि विविध प्रकार की कला में कुशल पुरुषों की प्रशंसा व पूजा करना अनर्थ का कारण मान जो परिहरे उसे साधु कहना ॥ ९ ॥ दीक्षा अंगीकार किये पहिले किसी गृहस्थ का देखे होवे अथवा दीक्षा लिये पीछे किसी गृहस्थ को देखे होवे तो उन का परिचय इस लोक के फल की प्राप्ति के लिये जो करे नहीं उसे साधु कहना ॥१०॥ शयन, आसन, भोजन व विविध प्रकार के खादिम व स्वादिम की गृहस्थ के पास याचना करे और वह देवे नहीं तो उस पर जो द्वेष करे नहीं, उसे साधु कहना ॥ ११ ॥ जो गृहस्थ के घर से अशन पानी पक्वान्न मुखवास विविध प्रकार के ग्रहण करके अपने स्वधर्मी साधुओं का संविभाग करे मन वचन व काया के योगों का वैसा ही आश्रव तथा कषाय इत्यादि के स्थान का सम्यक् प्रकार से गोप कर रखे उसे साधु कहना ॥ १२ ॥ जो ओसामन में के दाने,

जवावणच, सीय सोवीर च जवोदगं च ॥ न हीलए पिंडनीरसंतु पंतकुलाइ परिव्वए
स भिक्खू ॥ १३ ॥ सद्दा विविहा भवंति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तिरिच्छा ॥
भीमा भय भेरवा उदारा, सोचा न विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥ वाद विविह समिच्च
लोए, खेयाणुगए य कोवियप्पा, पन्ने अभिभूय सव्वदसी, उवसंते अविहेडए स
भिक्खू ॥ १५ ॥ असिप्प जीवी अगिहे अमित्त, जिईदिए सव्वओ विप्पमुक्को ॥

अन्न का भोजन ठंडा आहार आंतमांत रुक्षशुष्क यव का भोजन कांजी आदि का पानी इत्यादि निरस आहार पानी प्राप्त होने पर उस की निंदा करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १३ ॥ इस लोक में अनेक प्रकार के द्वेष उत्पन्न करनेवाले दुःखकारी महा कठिन व अत्यंत रौद्र ऐसे देव मनुष्य तिर्यंच के शब्द सुनकर जो धर्म ध्यान से चलित होवे नहीं उसे साधु कहना ॥ १४ ॥ इस लोक में तर्क शास्त्र व्याकरण शास्त्र आदि पठन करनेवाले बहुत पाखंडी लोगों शास्त्र के परमार्थ के अज्ञान हो परस्पर अनेक प्रकार का विवाद करते हैं ऐसे क्लेश में नहीं पडते हुवे उन के तरफ से जो परिषह होवे उसे समभाव से सहे परंतु किसी प्रकार से उन को पीडा उत्पन्न करे नहीं स्वतः के आत्मा को आगम का ज्ञाता मानकर सदैव उपशांत बनकर सदैव ज्ञान दर्शन व चारित्र में रमण करे उसे साधु कहना ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से घर की ममत्व का त्याग कर बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त बनकर चित्रकार प्रमुख की कला से उपजीविका करे नहीं और

सिप्पिणो ॥ नो तेसिं वयइ सिलोग पूयं, त परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९ ॥ गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व सथुया हविज्जा ॥ तेसिं इहलोइय फलट्ठा जो सथव न करेइ स भिक्खू ॥ १० ॥ सयणासण पाणभोयण, विविह खाइम साइम परेसिं ॥ अदए पडिसेहिए नियठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥ ११ ॥ ज किंच आहार पाण जाय, विविहं खाइम साइमं परेसिं ॥ जो त तिविहेण नाणुकंपे, मणवयकाय सुसंवुडे स भिक्खू ॥ १२ ॥ आयामग चेव

प्रधान, भोगी पुरुष और शिल्पकारादि विविध प्रकार की कला में कुशल पुरुषों की प्रशंसा व पूजा करना अनर्थ का कारण जान जो परिहरे उसे साधु कहना ॥ ९ ॥ दीक्षा अंगीकार किये पहिले किसी गृहस्थ का देखे होवे अथवा दीक्षा लिये पीछे किसी गृहस्थ को देखे होवे या उन का परिचय इस लोक के फल की प्राप्ति के लिये जो करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १० ॥ शयन, आसन भोजन व विविध प्रकार के खादिम स्वादिम की गृहस्थ के पास याचना करे और वह देवे नहीं तो उस पर जो द्वेष करे नहीं, उसे साधु कहना ॥ ११ ॥ जो गृहस्थ के घर से अशन पानी पक्वान्न मुखवास विविध प्रकार के ग्रहण करके अपने स्वधर्मी साधुओं का संविभाग करे मन वचन व काया के योगों का वैसा ही आश्रव तथा कषाय वगैरह के स्थान का सम्यक् प्रकार से गोप कर रखे उसे साधु कहना ॥ १२ ॥ जो ओसामन में के दाने,

जवोदणच, सीयं सोवीर च जवोदगं च ॥ न हीलए पिंडनीरसंतु पंतकुलाइं परिव्वए स भिक्खू ॥ १३ ॥ सद्दा विविहा भवंति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तिरिच्छा ॥ भीमा भय भेरवा उदारा, सोच्चा न विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥ वाद विविहं समिच्च लोए, सहियाणुगए य कोवियप्पा, पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, उवसंते अविहेडए स भिक्खू ॥ १५ ॥ असिप्प जीवी अगिहे अमित्ते, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्को ॥

जव का भोजन ठंडा आहार ओसामन रसभुक्त यव का भोजन कांजी आदि का पानी इत्यादि निरस आहार पानी प्राप्त होने पर उस की निन्दा करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १३ ॥ इस लोक में अनेक प्रकार के द्वेष उत्पन्न करनेवाले दुःखकारी महा कठिन व अत्यंत रौद्र ऐसे देव मनुष्य तिर्यंच के शब्द सुनकर जो धर्म ध्यान से चलित होवे नहीं उसे साधु कहना ॥ १४ ॥ इस लोक में तर्क शास्त्र व्याकरण शास्त्र आदि पठन करनेवाले बहुत पाखंडी लोगों शास्त्र के परमार्थ के अज्ञान से परस्पर अनेक प्रकार का विवाद करते हैं ऐसे क्लेश में नहीं पडते हुवे उन के तरफ से जो परिषह होवे उसे समभाव से सहे परंतु किसी प्रकार से उन को पीडा उत्पन्न करे नहीं स्वतःक आत्मा को आगम का ज्ञाता मानकर सदैव उपशांत बनकर सदैव ज्ञान दर्शन व चारित्र में रमण करे उसे साधु कहना ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से घर की ममत्व का त्याग कर बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त बनकर चित्रकार प्रमुख की कला से उपजीविका करे नहीं और

अणुक्कसाइ लहुअप्पभक्खी चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥ १६ ॥
त्तिबेमि ॥ इति भिक्खूनामं पंचदस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ १५ ॥

अल्प भोजनादि से इन्द्रियों का जय कर कषायों को उपशांत कर अभिमान व राग द्वेष रहित जो विचरे उसे साधु कहना ॥ १६ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसे मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह भिक्षु धर्म नामक पन्नरहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

॥ ब्रह्मचर्य समाधि स्थानक नामक षोडश मध्ययनम् ॥

(गाथा) सुय मे आउस तेण भगवया एवं मक्खाय, इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं दसबंभचेर समाहिठाण पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म-सजमबहुले संवर बहुले, समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिदिए, गुत्तबंभयारी, सयाअप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ कयेर खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दसबंभचेर समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म सजम बहुले संवर बहुले समाहि बहुले गुत्ते, गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरज्जा? ॥इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता,

पन्दरहवे अध्ययन में साधु के गुन कहे साधु होते हैं वे ब्रह्मचारी होते हैं इस लिये इस सोलवे अध्ययन में ब्रह्मचर्य का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो आयुष्मन जम्बू! मैंने सुना है कि भगवान ने इस प्रकार कहा है श्री स्थविर भगवान ने ब्रह्मचर्य में समाधि रहने के दश स्थानक कहे हैं इन को सुनकर व अवधार कर संयम की वृद्धि करने वाले संवर की वृद्धि करने वाले, समाधि की वृद्धि करने वाले मन वचन काया के योगों का गोपन करने वाले, गुप्त इन्द्रियों वाले व गुप्त ब्रह्मचर्य पालने वाले, संयमी सदैव अप्रमादि पनकर विचरे प्रश्न-स्थविर भगवान ने ऐसे दश ब्रह्मचर्य में समाधि के स्थान कौनसे २ कहे हैं कि जिन को सुनकर व अवधार कर संयम संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले, तीनों योगों का गोपन करने वाले, गुप्तेन्द्रिय, व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे ?

अणुकसाई लहुअप्पभक्खी चिच्चा गिहं एगचर स भिक्खू ॥ १६ ॥ त्तिबेमि ॥ इति भिक्खुनाम पचदस मज्झयण सम्मत्त ॥ १५ ॥

अल्प भोजनादि से इन्द्रियों का जय कर कषायों को उपशांत कर अभिमान व राग द्वेष रहित जो विचरे उसे साधु कहना ॥ १६ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसे मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह भिक्षु के धर्म नामक पन्नरहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा॥ तम्हा नोइत्थि पसु पडग ससत्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा ॥ १ ॥ नो इत्थीण कह कहित्ता भवति से निग्गथे। त कहमिति चे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थीण कह कहमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सकावा, कखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीह कालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा।

पालता हू जिस का फल मुझे मीलेगा या नहीं यह व्यर्थ कष्ट तो नहीं है ऐसे व्रत के फल में शका होगा, ४ इस विचार से मन से ब्रह्मचर्य का विनाश होवे ५ विषय की अभिलाषा होने से चित्त मन उन्मादी बने, ६ विषय की बहुत अभिलाषा होने से अनेक प्रकार के दीर्घ काल रहे वैसे रोग की प्राप्ति होवे और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्ट होवे इस तरह के दुर्गुण को जानकर स्त्री पशु व नपुसक सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन करने वाला होवे नहीं ॥ १ ॥ दूसरा स्थान-जो स्त्री के श्रृंगार की कथा करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न स्त्री के श्रृंगार की कथा करनेवाले को साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के श्रृंगार की कथा करेगा उस के ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा ३ वितिगिच्छा, ४ संयम का भग ५ उन्माद की प्राप्ति ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता इन सात दुर्गुनों की प्राप्ति होगी ऐसा जान

जे भिक्खू सोच्चा निसम्म-संजम बहुले,संवर बहुले समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभचारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ तंजहा विवित्ताइं सयणासणाइं सेवेज्जा से निग्गंथे । नो इत्थी पसु पंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति से निग्गंथे तं कहमितिचे ? आयरियाह निग्गंथस्स खलु इत्थि पसु पंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा, कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा

उत्तर—ये निम्नोक्त दश ब्रह्मचर्य में समाधि स्थानक कहे हैं कि जिन को सुनकर संयम संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले गुप्त गुप्तेन्द्रिय व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे तद्यथा—जिस स्थान स्त्री, पशु पंडग रहता होवे उस स्थान में वैसे ही शैय्या आसन पाट पाटले आदि जो भोगते नहीं उसे साधु कहना परंतु स्त्री पशु पंडगवाला शयन, आसन, पाट पाटला वगैरह का सेवन करते होवे उसे साधु नहीं कहना प्रश्न-स्त्री पशु पंडग सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन किस कारन नहीं करना ? उत्तर जो साधु निर्ग्रंथ स्त्री पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन करेगा, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का पालन करने में शंका होगा कि मैं ब्रह्मचर्य पालूं या नहीं अथवा अन्य को भी उस के ब्रह्मचर्य पालन में शंका होगा कि यह स्त्री आदि के संसर्ग में रहता है तो क्या ब्रह्मचर्य पालता होगा या नहीं २ स्त्री आदि के साथ [illegible]

भेदवा लभेज्जा, उम्मायवा पाउणिज्जा,, दीहकालियवा रोगा[illegible]

पण्णात्ताओ धम्माओ भसेज्जा॥ तम्हा नो इत्थि पसु पडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा ॥ १ ॥ नो इत्थीण कह कहित्ता भवति से निग्गथे। त कहमिति चे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थीण कह कहमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सकावा, कखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीह कालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा।

पालता हू जिस का फल मुझे मीलेगा या नहीं यह व्यर्थ कष्ट तो नहीं है ऐसे व्रत के फल में शंका होगा, ४ इस विचार से मन से ब्रह्मचर्य का विनाश होवे ५ विषय की अभिलाषा होने से चित्त मन उन्मादी बने, ६ विषय की बहुत अभिलाषा होने से अनेक प्रकार के दीर्घ काल रहे वैसे रोग की प्राप्ति होवे और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्ट होवे इस तरह के दुर्गुण को जानकर स्त्री पशु व नपुसक सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन करने वाला होवे नहीं ॥ १ ॥ दूसरा स्थान-जो स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न स्त्री के शृंगार की कथा करनेवाले को साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के शृंगार की कथा करेगा उस के ब्रह्मचय में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ संयम का भग ५ उन्माद की प्राप्ति ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता इन सात दुर्गुनों की प्राप्ति होगी ऐसा जान

जे भिक्खू सोचा निसम्म-संजम बहुले,सवर बहुले समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभचारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ तजहा विवित्ताइ सयणासणाइ सेवेज्जा से निग्गथे। नो इत्थी पसु पंडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता भवति से निग्गथे तं कहमितिचे? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थि पसु पडग ससत्ताइ सयणासणाइ सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे सकावा, कखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा

उत्तर—ये निम्नोक्त दश ब्रह्मचर्य में समाधि स्थानक कहे हैं कि जिन को सुनकर संयम, संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले गुप्त गुप्तेन्द्रिय व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे तद्यथा—जिस स्थान स्त्री, पशु पंडग रहता होवे उस स्थान में वैसे ही शैय्या आसन पाट पाटले आदि जो भोगवे नहीं उसे साधु कहना परंतु स्त्री पशु पंडगवाला शयन, आसन, पाट पाटला वगैरह का सेवन करते होवे उसे साधु नहीं कहना प्रश्न-स्त्री पशु पंडग सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन किस कारन नहीं करना? उत्तर जो साधु निर्ग्रंथ स्त्री पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन करेगा, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का पालन करने में शंका होगा कि मैं ब्रह्मचर्य पालू या नहीं अथवा अन्य को भी उस के ब्रह्मचर्य पालन में शंका होगा कि यह स्त्री आदि के संसर्ग में रहता है तो क्या ब्रह्मचर्य पालता

निग्गंथे । त कहमिति चे ? आयरियाह—निग्गथस्स खलु—इत्थाण इ१५याइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोएमाणस्स निज्झाएमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा उम्मायवा पाउणिज्जा, दीह कालिय वा रोगायंक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, । तम्हा नो इत्थीण इंदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोएज्जा निज्झाएज्जा ॥ ४ ॥ नो इत्थीण कुडुंतर सि वा, दुसतरसि वा, भित्तंतरसि वा, कुइयसद्द वा, रुइयसद्द वा, गीयसद्द वा, हसिय सद्दवा, थणियसद्द वा, कंदियसद्द वा, विलवियसद्द वा, सुणेत्ता भवति, से निग्गंथे

स्त्री के मनोहर अंगोपांग निरखे उसे साधु क्यों नहीं कहना? उत्तर—जो ब्रह्मचारी स्त्री के मनोहर मनोरम अंगोपांग नीरखेगा उस के १ शंका २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रतभंग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता यह सात दुर्गुनों की प्राप्ति होती है ऐसा जान साधु को स्त्री के अंगोपांग नहीं देखना ॥ ४ ॥ पांचवा स्थानक—ब्रह्मचारी मैथुन सेवन के समय होते हुवे स्त्री के कोकिल जैसे शब्द, रुदन के शब्द, गीत गायन के शब्द हास्य, स्नेह लुब्ध के शब्द, आक्रंद के शब्द, पति के विरह से व्याकुलता के शब्द, सिसकिसाट के शब्द, इत्यादि कामोत्पादक शब्द पाषाणादिक की

तम्हा नो इत्थि कहं कहेज्जा ॥ २ ॥ नो इत्थीण सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता भवइ से निग्गंथे । त कहमितिचे ? आयरियाह निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे-संकावा, कंखावा, वितिगिच्छावा समुप्पज्जेज्जा भेदवा लभेज्जा उम्मायवा पाउणिज्जा, दीहकालियवा रोगायंक हवेज्जा केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा ॥ ३ ॥ नो इत्थीण इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवति से

कर साधु स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं ॥ २ ॥ तीसरा स्थानक-स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं * उसे निर्ग्रंथ कहना ब्रह्म-स्त्री के साथ एक आसन पर ब्रह्मचारी को क्यों नहीं बैठना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठेगा उस को एक प्रकार १ शंका, २ कांक्षा, ३ विति गिच्छा, ४ व्रत भंग ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग, और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता यों सात दुर्गुनों की प्राप्ति होती है ऐसा जान निर्ग्रंथ स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं ॥ ३ ॥ चौथा स्थानक-स्त्री के मनोहर व मनोरम स्तन जघन वगैरह अंगोपांग जो निरखे नहीं उसे निर्ग्रंथ कहना जो

* यहां स्त्री बेठकर उठ गई होवे उस स्थान पर एक मुहूर्त्त पर्यन्त तक बैठे नहीं

पुव्वकीलिय अणुसरित्ता हवइ से निग्गथे । त कहमिति चे ? आयरियाह–निग्गथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरय पुव्वकीलियं अणुसरेमाणस्स बभयारिस्स बमचेरे संकावा कखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, । तम्हा नो इत्थीणं पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरेज्जा ॥ ६ ॥ नो पणीय आहार आहारित्ता हवइ से निग्गथे । त कहमिति चे ? आयरियाह–निग्गथस्स खलु पणीय आहार आहारेमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सकावा कखावा वितिगिच्छावा

रति सेवन व काम क्रीडा किया होवे उस का जो स्मरण करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न–पहिले स्त्री के साथ रति सेवन किये हुवे का स्मरण करे उसे साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर—जो ब्रह्मचारी प्रथम भोगावस्था में स्त्री आदि क साथ रति सेवन व काम क्रीडा की होवे उसे याद करेगा, तो उसे १ शंका २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रतभंग ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग, और ७ धर्म से भ्रष्टता होगा ऐसा जानकर निर्ग्रंथ पूर्वकृत रति व काम क्रीडा का स्मरण करे नहीं ॥६॥ सातवा स्थानक–जो सदैव घृतादिवाला स्निग्ध आहार करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न–ब्रह्मचारी सदैव सरस आहार क्यों करे नहीं ? उत्तर–ब्रह्मचारी सदैव सरस स्निग्ध आहार करेगा उसे १ शंका,

। स कहमितिचे? आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थीण कुड्डंतरंसि वा, दूसतरंसि वा भित्तरंसि वा कुइयसद्दंवा, रुइयसद्दंवा, गीयसद्द वा हसियसद्द वा थणियसद्द वा, कंदियसद्दं वा, विलवियसद्द वा, सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा कंखावा विति-गिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेदंवा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीण कुड्डंतरंसिवा, दूसतरंसि वा भित्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्द वा, गीयसद्द वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्द वा कंदियसद्द वा, विलवियसद्द वा सुणमाणे विहरेज्जा ॥५॥ नो इत्थीण

भित्ति के अंतर से, टाटी व वस्त्रादिक के पडदे के अंतर से जो सुने नहीं उसे निर्ग्रन्थ कहना प्रश्न—ऐसा क्यों कहा? उत्तर जो कोई निर्ग्रन्थ स्त्री के कोकिला जैसे शब्द, रोने के शब्द गीत गायन के शब्द हास्य स्नेह व भय के शब्द, आक्रंदकारी शब्द, और विलापात के शब्द टाटी, वस्त्र व भित्ति के अंतर से सुनते हैं उन के ब्रह्मचर्य में १ शंका २ कांक्षा ३ वितिगिच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होता है इन सात दुर्गुनों को जानकर निर्ग्रंथ को स्त्री के उक्त प्रकार के शब्द श्रवण नहीं करते हुवे विचरना ॥ ५ ॥ [illegible]

बंभचेररओ थीण, चक्खुगेज्झं विवज्जए ॥ ४ ॥ कुइत रुइत गीत हसित थणिय कंदिय ॥ बंभचेररओ थीण, सोयगिज्झ विवज्जए ॥ ५ ॥ हास कीड रई दप्प, सहसावित्ता सिणाणि य ॥ बंभचेर रओ थीण, णाणुचिंते कयाइवि ॥ ६ ॥ पणिय भत्तपाण तु, खिप्पं मय विवड्ढण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥ धम्म लद्ध मित काल, जत्तत्थ पणिहाणव ॥ नाइमत्त तु भुंजिज्जा, बंभचेर रओ सया ॥ ८ ॥ विभूस परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमडण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, सिंगारत्थ न

का आकार इतना सराग दृष्टि से देखे नहीं ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का कोकिला जैसे शब्द रुदन के, गीत के, हसने के स्नेह लुब्धता के आक्रंद के वगैरह कण को गृद्ध करे ऐसे शब्दोंका त्याग करे ॥५॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु संसार अवस्था में स्त्री के साथ हास्य कामक्रीडा रति सेवन किया होवे स्त्री को त्रास उपजाया होवे और साथ भोजन किया होवे उस की चिंतवना मात्र भी करे नहीं ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु विषय की वृद्धि करने वाला स्निग्ध आहार सदैव करे नहीं ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु-साधु का धर्म निर्वाह करने के लिये निर्दोष आहार मिले उसे गृद्धता रहित क्षुधा ि तना आहार कर परतु मर्यादा स अधिक आहार करे नहीं ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्नान करना, केशसंमार्जन करना

च्छावा समुपज्जिज्जा, भेदंवा लभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा। दीहकालियंवा रोगायंक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा । तम्हा नो सद्द रूव रस गंध फासाणु-वाती भवेज्जा, दसमे बंभचेर समाहि ठाणे भवति ॥१०॥ भवति इत्थ सिलोगा–(गाथा) जं विवित्त मणाइण्णं, रहियं इत्थिजणेण य ॥ बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयंतु निसेवए ॥ १ ॥ मणपल्हाय जणणी, कामरागविवड्ढणी ॥ बंभचेर रओ भिक्खू थीकहं तु विवज्जए ॥ २ ॥ समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ३ ॥ अंगपच्चंग संठाणं, चारुल्लविय पेहियं ॥

ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा वितिगिच्छा, व्रत भंग, उन्माद दीर्घ काल का रोग और धर्म से भ्रष्टता होवे ऐसे सात दुर्गुणों जानकर इन्द्रियों के विषय के भोक्ता बने नहीं ॥ १० ॥ यह दश ब्रह्मचर्य के समाधि स्थानक हुए अब आगे इन दशों का कथन संक्षेप से गाथा द्वारा कहते हैं ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये स्त्री पशु पंडग रहित स्थानक का सेवन करे ॥ १ ॥ मन को आनंद करनेवाली विषय राग बढाने वाली स्त्री संबंधी शृंगार प्रमुख की कथा ब्रह्मचर्य में रक्त मुनि करे नहीं ॥ २ ॥ और ब्रह्मचर्य में रमण करने वाला साधु स्त्री साथ का संसर्ग व उस के साथ वारंवार वार्तालाप का त्याग करे ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का मनोहर बोलना, कटाक्ष से देखना, स्त्री के स्तन, मुख मस्तकादिक

बंभचेररओ थीण, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥ ४ ॥ कुइत रुइत गीत, हसित थणिय कंदिय ॥ बंभचेररओ थीण, सोयगिज्झं विवज्जए ॥ ५ ॥ हास कीड रई दप्प, सहसावित्ता सिणाणि य ॥ बंभचेर रओ थीण, णाणुचिंते कयाइवि ॥ ६ ॥ पणिय भत्तपाण तु, खिप्पं मय विवड्ढण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥ धम्म लद्ध मित काल, जत्तत्थ पणिहाणव ॥ नाइमत्त तु भुंजिज्जा, बंभचेर रओ सया ॥ ८ ॥ विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, सिंगारत्थ न

का आकार इतना सराग दृष्टि से देखे नहीं ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का कोकिला जैसे शब्द रुदन के, गीत के, हसने के स्नेह लुब्धता के आक्रंद के वगैरह कण को गृद्ध करे ऐसे शब्दों का त्याग करे ॥५॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु संसार अवस्था में स्त्री के साथ हास्य कामक्रीडा रति सेवन किया होवे स्त्री को त्रास उपजाया होवे और साथ भोजन किया होवे उस की चिंतवना मात्र भी करे नहीं ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु विषय की वृद्धि करने वाला स्निग्ध आहार सदैव करे नहीं ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु-साधु का धर्म निर्वाह करने के लिये निर्दोष आहार मिले उसे गृद्धता रहित क्षुधा जितना आहार करे परतु मर्यादा से अधिक आहार करे नहीं ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्नान करना, केशसंमार्जन करना

धारए ॥ ९ ॥ सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य ॥ पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए ॥ १० ॥ आलओ थीजणाइण्णो थीकहा य मणोरमा ॥ संथवो चेव नारीणं, तासिंदिय दरिसणं ॥ ११ ॥ कुइयं रुइयं गीयं, सहभुत्ता सियाणिय ॥ पणीयं भत्त पाणं च अइमायं पाण भोयणं ॥ १२ ॥ गत्त भूसण मिट्ठं च काम भोगा य दुज्जया ॥ नरस्सत्त गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ १३ ॥ दुज्जए काम भोगे य निच्चसो परिवज्जए ॥ संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥ १४ ॥

वगैरह शरीर का शृंगार करे नहीं ॥ ९ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु कामगुन के उत्पादक शब्द, रूप, गंध रस व स्पर्श का सेवन करे नहीं ॥ १० ॥ अब यही दश स्थानक विशेष संक्षेप से कहते हैं १ स्त्री सहित स्थान में रहना २ स्त्री की मनोरम कथा करना ३ स्त्री का परिचय ४ स्त्री की इन्द्रियों का निरीक्षण, ५ विषयसमय के रुदन गीत वगैरह शब्द सुनना, ६ पहिले की हुई हास्य क्रीडा का स्मरण करना ७ सरस आहार करना, ८ मर्यादा उपरांत भोजन करना, ९ शरीर की विभूषा करना और १० दुर्जय पांच प्रकार के शब्दादिक काम भोग ये दश बोल आत्मा को तालपुट विष समान आत्म गुण के घातक है ॥ ११ १३॥ इसलिये इन दुर्जेय काम भोगों को एकाग्र चित्तवाला साधु सदैव वर्जे वैसे ही ब्रह्मचर्य में रक्त साधु उन शंका के स्थान का त्याग करे ॥ १४॥ इस प्रकार शील रूप रथ चलाने वाले सारथी समान साधु व

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइम धम्म सारही ॥ धम्मारामेरए दते, बभचेर समाहिए ॥ १५ ॥ देव दाणव गधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा ॥ बभयारिं नमसति, दुक्करं जे करति त ॥ १६ ॥ एस धम्मे धुवे निचे, सासए जिण देसिए ॥ सिद्धा सिज्झति चाणेण, सिज्झिस्सति तहावरे ॥ १७ ॥ त्तिबेमि ॥ इति बभचेर समाहि—ठाण सोलस्समज्झयण सम्मत्त ॥ १६ ॥ * * * * *

ध्यानरूप बगीचे में रमन करते मस्त बने और इन्द्रियों को दमन करते ब्रह्मचर्य में समाधि भाव युक्त धर्मध्यान में रमन करे ॥ १५ ॥ जिस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अति दुष्कर है ऐसे व्रत को पालन करने वाले ब्रह्मचारी साधु को वैमानिक देव दानव-ज्योतिषी देव, भुवनपति देव, गंधर्व, राक्षस किन्नरादि वाणव्यंतर यों सब देवता नमस्कार करते हैं ॥ १६ ॥ यह ब्रह्मचर्य रूप धर्म ध्रुव है सदैव शाश्वत है ऐसे ब्रह्मचर्य पालनेवाले गत काल में अनंत सिद्ध हुए, वर्तमान में संख्यातें सिद्ध होते हैं और अनागत में अनन्त सिद्ध होंगे ॥ १७ ॥ ऐसा में कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह ब्रह्मचर्य समाधि नामक सोलहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

॥ पावसमणिज्ज सप्तदश अध्ययनम् ॥

(काव्य) जेकेइ उपव्वइए नियठे, धम्मं सुणित्ता विणओववन्ने ॥ सुदुल्लहं लहिउ बोहिलाभं विहरज्ज पच्छा य जहा सुहंतु ॥ १ ॥ सेज्जा दढा पाउरणंमि अत्थि, उप्पज्जइ भोत्तु तहेव पाउं ॥ जाणामि जं वट्टइ आउसोत्ति किं नाम काहामि सुएण भंते ॥ २ ॥ (गाथा)—जेकेई पव्वइए निद्दासील पगामसो ॥ भोच्चा पेच्चा सुहं वसइ, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ ३ ॥आयरिय उवज्झाएहिं,सुय विणय च गाहिए॥

सोलहवे अध्ययन में ब्रह्मचर्य की गुप्ति का कथन किया उस का पालन पापी साधु नहीं कर सकता है इस लिये सतरहवे अध्ययन में पापी साधु का कथन करते हैं—जो कोई साधु निर्ग्रंथ प्रथम विनय मार्ग संयम धर्म सुनकर और अति दुर्लभ ऐसा समकित (सम्यक् संयम) प्राप्त कर फिर शिथिलाचारी बनकर जैसे शरीर का सुख होवे वैसे विचरे ॥ १ ॥ उसे गुरु हित शिक्षा देवे तो वह कहे कि—अहो पूज्य ! मुझे तो रहने को अच्छा स्थान मिलता है, पहिनने को वस्त्र मिलते हैं, खानेपीने को अच्छा आहार पानी मिलता है और मैं धादिक पदार्थ जिस तरह वर्तते हैं वह मैं जानता हूं तो अब शास्त्राभ्यास करके क्या करना है ? ॥ २ ॥ अब ऐसे साधु के कर्तव्य कहते हैं—जो कोई प्रव्रजित बनकर बहुत निद्रा लेवे और आहार पानी करके बहुत समय तक सुख से सोता रहे उसे पाप श्रमण (साधु) कहते हैं ॥ ३ ॥ आचार्य उपाध्याय के पास से

ते चेव खिंसई बाले, पावसमण त्ति वुच्चई ॥ ४ ॥ आयरिय उवज्झायाण, सम्मं न पडितप्पई ॥अप्पडिपूयए थद्धे पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ५ ॥ सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ॥ असजते सजय मन्नमाणा, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ६ ॥ सथार फलग पीढ, निसेज्ज पायकबल ॥ अपमज्जिय मारुहति पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ७ ॥ दवदवस्स चरति पमत्तय अभिक्खण ॥ उल्लघणे य चण्डेय, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ ८ ॥ पडिलेहेति पमत्ते, अवउज्झइ पायकवल ॥ पडिलेहा

श्रुत व विनय माग का अभ्यास कर उन में मावेण हुए पीछे वही अज्ञानी उन आचार्यादि की हीलना निंदा करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥४॥ जो कोइ अभिमान में मस्त बना हुवा आचार्य उपाध्याय व गुरुवादिक की शुद्ध मन से सेवा करे नहीं और उन की पूजा श्लाघा करे नहीं उस को पाप श्रमण कहते हैं ॥ ५ ॥ जो कोई द्वीन्द्रियादि त्रस माणी धान्य बीज तृणादि हरिकाय को पांव से दाबता हुवा चले इस मकार असंयम करता हुवा भी स्वतः को संयति माने उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ६ ॥ संथारा, (बीछोना)पाट, पाटला शैय्या व कम्बल को विना पूंजे उपभोग में लेवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ७ ॥ जो कोई साधु बहुत शीघ्रता से चले, ईर्या समिति में ममादी होवे, वारंवार यथा कर्म क्रिया करने का उल्लंघन करे और क्रोधी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ८ ॥ जो ममादी बन पडिलेहना करते कुछ देखे कुछ न

अणाउत्ते, पावसमण त्ति वुच्चई ॥९॥ पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु निसामिया ॥ गुरु परिभावए निच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १० ॥ बहुमाई य मुहरी थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ॥ असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ११ ॥ विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपन्नहा ॥ वुग्गहे कलहे रत्ते पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १२ ॥ अथिरासणे कुक्कुइए जत्थ तत्थ निसीयई ॥ आसणम्मि अणाउत्ते, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १३ ॥ ससरक्खपाए सुवइ, सेज्जं न

देखे, कम्बल पात्रादि उपकरण जहां तहां डाल देवे और प्रतिलेखना में असावधान होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥९॥ जो पडिलेहना करता हुवा बातों करे अथवा बातों सुनता हुवा उपयोग शून्य हो प्रतिलेखन करे गुरु के वचन का पराभव करे, और सदैव असाता उत्पन्न करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १० ॥ जो बहुत मायावी बहुत बोलनेवाला (वाचाल) अभिमानी, रसलुब्ध, अजितेन्द्रिय असंविभागी, और अप्रीतिकारी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ११ ॥ जो विवाद की उदीरणा करे अधर्मी होवे, अपनी प्रज्ञा से दूसरे की घात करनेवाला होवे, और क्लेश में रक्त होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १२ ॥ जो हलमलते अस्थिर आसन पर बैठे, कुचकुचाट होवे वैसे आसन पर बैठे और सावधान पना रहित आसन पर बैठे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १३ ॥ सचित्त रज से भरे हुवे पांव को बिना पूंजे तथा

पडिलेहइ ॥ सयारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १४ ॥ दुद्ध दही विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ॥ अरते य तवोकम्मे पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १५ ॥ अत्थ तम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ॥ चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १६ ॥ आयरिय परिच्चाई, परपासंड सेवए ॥ गाणंगणिए दुब्भूए पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १७ ॥ सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे ॥ निमित्तेण य ववहरइ पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १८ ॥ सन्नाइ पिंड जेमेइ, नेच्छइ सामुदाणियं ॥ गिहिनिसेज्जं

बिछोने को भी विना पूछे उसपर सोजावे वैसे ही स्थानककी पूंजना प्रतिलेखना करे नहीं उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १४ ॥ जो दुग्ध दधि प्रमाद विगय का वारंवार आहार करे और तपश्चर्या करने में अराति धारन करे, उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥१५॥ सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यंत वारंवार आहारादि भक्षण किया करे और गुरु वगैरह शिक्षा देवे तो सामने बोले उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १६ ॥ जो सद्गुरु की संगति छोडकर पाखंडियों की संगति करे अपनी उत्तम संप्रदाय का त्याग कर अन्य की संप्रदाय में जावे और बहुत लोग निंदा करे वैसा कर्तव्य करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १७ ॥ अपना स्थान छोडकर अन्य संसारी पुरुषों के घरादि में लुब्ध बनकर फिरे ज्योतिषी वगैरह निमित्त प्रकाशे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १८ ॥ स्वज्ञाति के आहार की इच्छा करे परन्तु सामुदानिक आहार की गवेषणा करे नहीं; गृहस्थ्या,

राया, सिग्घमागम्म सो तहिं ॥ हए मिरउ पासित्ता, अणगार तत्थ पासइ ॥ ६ ॥
अह राया तत्थ समतो, अणगारा मणा हतो ॥ मए उमद पुण्णेणं, रसगिद्धेण
घण्णुणा ॥ ७ ॥ आस विसज्जइत्ताण अणगारस्स सो निओ ॥ विणएण वदएपाए
भगवं एत्थ मे खमे ॥ ८ ॥ अह मोणेण सो भगवं अणगारे झाणमस्सिते ॥ रायाण
न पडिमतेइ, तओ राया मयद्दओ ॥ ९॥ सजओ अहमस्मीति, भगवं वाहराहि मे,
॥ कुद्धे तेएण अणगार, डहेज्ज नर कोडिओ ॥ १० ॥ अभओ पत्थिवा तुब्भ,

भी वहाँ आया वहाँ रमाया हुवा मृग को और एक अणगार को देखा ॥ ६ ॥ तब वह राजा संभ्रांत बन कर विचार करने लगा कि मैं लुब्ध व मन्दपुण्य था। मैंने इस मुनि के मृग को मार डाला ॥ ७ ॥ राजा ने तत्काल घोडे पर से नीचे उतर कर मुनि के पांव में विनय पूर्वक वंदना नमस्कार किया और कहा अहो भगवन् ! मृग वध रूप मेरे अपराध की क्षमा करो ॥ ८ ॥ इस समय मुनि मौन सहित धर्म ध्यान में लीन हो रहे थे इस से राजा को पीछा उत्तर दिया नहीं तब राजा विशेष भयभीत हुवा, ॥ ९ ॥ अहो भगवन् ! मैं संयति राजा हूं मुझे पुकार तो आप बोलावो, क्यों कि क्रुद्ध बने हुए अनगार अपने तेज से क्रोडों मनुष्य को जलाते हैं ॥ १० ॥ उक्त वचन

१ संयति राजा को पहिले साधु की सगति का अभाव होने से घायल हुवा मृग मुनि के पास आकर पडा देखकर अनुमान से ऐसा समझा कि यह मृग मुनि का ही होगा

अभयदाया भवाहि य ॥ अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥ ११ ॥ जया सव्व परिच्चज्ज गतव्वमवसस्स ते ॥ अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ॥ १२ ॥ जीविय चेव रूवं च, विज्जु संपाय चंचलं ॥ जत्थ तं मुज्झसी राय, पेच्चत्थं नावबुज्झसि ॥ १३ ॥ दाराणिय सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा ॥ जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुव्वयंति य ॥ १४ ॥ नीहरंति मयं पुत्ता, पितरं परम दुक्खिया ॥ पितराऽवि तहा पुत्ते बंधुरा । तवं चरे ॥ १५ ॥ तओ तेणज्जिए दव्वे दारे य परिरक्खिए ॥ कीलंतिन्न नरा राय, हट्ठतुट्ठ मलंकिया ॥ १६ ॥ तेणावि जं कयं

गुनकर व राजा को भयभीत जानकर ध्यान पारकर मुनि बोले) हे पार्थिव ! तुझे अभय है और तू भी अभयदाता हो इस अनित्य मनुष्य लोक में जीव हिंसा में क्यों आसक्त होता है ॥ ११ ॥ जब कभी सब का परित्याग कर परवश बनकर जाना तो है तो इस अनित्य लोक में तथा राज्य में क्यों आसक्त हो रहा है ॥ १२ ॥ हे राजा ! यह जीवितव्य व रूप विद्युत्पात समान चंचल है इस में तू मुग्ध बनकर परलोक को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ स्त्री, पुत्र, मित्र व बंधव वगैरह जहां लग घर का स्वामी जीता है वहां लग ही उस के सहाय से अपनी आजीविका करते हैं परन्तु मरगये पीछे उस के साथ वे नहीं जाते हैं ॥ १४ ॥ जगत की यह रीति है कि महा दुःखी बने हुए पुत्र भी मृत पिता को ले जाते हैं, पिता पुत्र को ले जाता है, भाई भाई को ले जाता है, और

मूत्र

कम्म, सुहं वा जइ वा दुहं ॥ कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छती उ परं भवं ॥ १७ ॥ सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ॥ महया संवेगनिव्वेदं, समावन्नो नराहिवो ॥ १८ ॥ संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ॥ गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥ १९ ॥ चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ॥

अर्थ

स्मशान में जला देते हैं ऐसा जानकर हे राजन्! तप का आचरन कर ॥ १५ ॥ घर के स्वामीने जो धन उपार्जन किया था और जिस स्त्री की रक्षा की थी, उस स्वामी के मरे पीछे उस धन व दारा से हृष्ट तुष्ट व आभरणालंकार अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों क्रीडा करते हैं अर्थात् उन के ही वस्त्राभरण से अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों उस की ही स्त्री के साथ क्रीडा करते हैं ॥ १६ ॥ और वह मृत पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुवे कर्मों सहित दूसरे भव में जाता है ॥ १७ ॥ अनगार के पास से ऐसा धर्म सुनकर वह संयती राजा संवेग (वैराग्य) और निर्वेद [काम भोग में अरुचि] को प्राप्त हुवा ॥ १८ ॥ उस संयती राजाने अपना राज्य का त्याग कर गर्दभाली अनगार के पास जिन शासन की दीक्षा अंगीकार की ॥ १९ ॥ संयती राजाने एक प्रकार राज्य छोडकर अपने गुरु के पास आसेवना व ग्रहणा रूप ज्ञान की और आचार की शिक्षाका अभ्यास कर गुरु आज्ञा से एकल विहारी हुए, विहार करते मार्ग में क्षत्रिय राजर्षि मिले वह संयती

॥ जहात वासइल्प, पसर्ण ते तहा मणो ॥ २० ॥ किं नाम ? किं गोत्त ? क...
ट्ठाए व माहणे ॥ कह पडियरसी बुद्धे ? कहं विणीएत्ति वुच्चसी ? ॥ २१ ॥
सजओ नाम नामेण, तहा गोत्तेण गोतमो ॥ गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचारण
पारगा ॥ २२ ॥ किरियं अकिरियं विणयं, अण्णाणं च महामुणी ॥ एएहिं चउहिं

मुनि को कहने लगे अहो मुनि ! जैसे तुम्हारा प्रसन्नकारी रूप है वैसा ही तुम्हारा मन है ॥ २० ॥
अब उन से प्रश्न करने लगे—अहो मुनि ! १ तुम्हारा नाम क्या है ? २ तुम्हारा गोत्र क्या है ?
३ किस लिये तुम साधु बने ? ४ तुम किस गुरु के शिष्य हो ? और ५ विनीत शिष्य किस को कहना ?
यों पांच प्रश्न पूछे ॥ २१ ॥ अब संयति मुनि उन क्षत्रिय राजर्षि को इस प्रकार उत्तर देने लगे—१ संयति
मेरा नाम है २ गौतम मेरा गोत्र है, ४ विद्या चारित्र में पारगामी गर्दभाली मेरे गुरु धर्माचार्य हैं
[३ हिंसा के मार्ग से बचाने के लिये साधु बना हूं और गुरु की सेवा करे वह विनीत शिष्य है] इस
तरह पांचों प्रश्न का उत्तर दिया ॥ २२ ॥ अब गुरु के पास से प्राप्त किया हुवा ज्ञान संयति मुनि क्षत्रिय
राजर्षि को बताने लगे—१ क्रियावादी ज्ञान बिना क्रिया को ही प्राधान्यपना माननेवाले इस के १८०
भेद हैं २ अक्रियावादी क्रिया को नहीं माननेवाले, इस के ८४ भेद हैं, ३ विनयवादी मात्र विनय से
मोक्ष माननेवाले इस के ३२ भेद हैं, और ४ अज्ञानवादी-अज्ञानता को ही श्रेष्ठ स्थापन करनेवाले इस के

कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ॥ कम्मुणा तेण संजुत्तो गच्छती उ परं भवं ॥ १७ ॥
सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अतिए ॥ महया संवेगनिव्वेदं, समावन्नो
नराहिवो ॥ १८ ॥ संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ॥ गद्दभालिस्स
भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥ १९ ॥ चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ॥

श्मशान में जला देते हैं ऐसा जानकर हे राजन्! तप का आचरन कर ॥ १५ ॥ घर के स्वामीने जो धन उपार्जन किया था और जिस स्त्री की रक्षा की थी, उस स्वामीके मरे पीछे उस धन व दारा से हृष्ट तुष्ट व आभरणालंकार अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों क्रीडा करते हैं अर्थात् उन के ही वस्त्राभरण से अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों उस की ही स्त्री के साथ क्रीडा करते हैं ॥ १६ ॥ और वह मृत पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुए कर्मों सहित दूसरे भव में जाता है ॥ १७ ॥ अनगार के पास से ऐसा धर्म सुनकर वह संयती राजा संवेग (वैराग्य) और निर्वेद [काम भोग में अरुचि] को प्राप्त हुवा ॥ १८ ॥ उस संयती राजाने अपना राज्य का त्याग कर गर्दभाली अनगार के पास जिन शासन की दीक्षा अंगीकार की ॥ १९ ॥ संयती राजाने उक्त प्रकार राज्य छोडकर अपने गुरु के पास आसेवना व ग्रहणा रूप ज्ञान की और आचारकी क्रियाका अभ्यास कर गुरु आज्ञा से एकल विहारी हुए. विहार करते मार्ग में क्षत्रिय राजर्षि मिले वह संयती

वाले वो ईश्वर को कर्ता मानते हैं और मीमांसकमतवाले आत्मा को सर्व व्यापी मानते हैं दोनों कहते हैं कि-पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु और आकाश इन पांच के संयोग से शरीर की उत्पत्ति होती है, इस में ईश्वर का तेज पडता है इस से सब क्रिया होती है जब ईश्वर अपना तेज खींच लेते हैं तब पांचों भूत भिन्न २ होकर अपने स्वभाव में लीन हो जाते हैं इस से जीव को पुण्य पापादि कोई भी क्रिया नहीं लगती है; नरक स्वर्ग वगैर कुछ भी नहीं है इन मतावलम्बी उक्त काल, स्वभाव नियत कर्म और पुरुषार्थ इन पांच को मानकर छठा यदृच्छा अर्थात् अकस्मात्, को मानते हैं यों २ वस्तु मीलने से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति मानते हैं, जैसे दुध में खटाइ मीलने से दही बने, यहां जीवादिक नव पदार्थ में से पुण्य पाप ये दो पदार्थ छोडकर शेष सात पदार्थ को बारह भेद पर उतारते हैं कि उक्त सातों पदार्थ अपनी इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है, २ पर की इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है ३ कोइ कहे अपनी इच्छा से है परंतु स्वभाव से नहीं है ४ कोइ कहते हैं कि अन्य की इच्छा से है परंतु स्वभाव से नहीं है ५ अपनी इच्छा से है परंतु नियत से नहीं है ६ पर की इच्छा से है नियत से नहीं है ७ अपनी इच्छा से है कर्म से नहीं है ८ अन्य की इच्छा से परंतु कर्म से नहीं है ९ अपनी इच्छा से है उद्यम से नहीं है, १० परकी इच्छा से उद्यम से नहीं ११ अपनी इच्छा से यदृच्छासे नहीं, १२ अन्य की इच्छा से यदृच्छासे नहीं यों सातों पदार्थ को बारह गुना करने से ८४ होते हैं यह अक्रियावादी का कथन हुवा ३ विनयवादी का कथन करते हैं विनयवादी विनय को ही सब से

८७ भेद हैं यों चारों के सब मिलकर ३६३ पाखंडी के मत मानना क्रियावादी के १८० भेद कहते हैं। १ कालवादी, २ स्वभाववादी ३ नियतवादी ४ कर्मवादी और ५ उद्यमवादी इस में कालवादी कहता है कि सब वस्तु काल से होती है-तीर्थंकरादि उत्तम पुरुष काल में होते हैं कालमें स्त्री गर्भ धारन करती है काल से पुत्र होता है, वगैरह सब काल से ही होता है २ तब स्वभाववादी कहता है कि सब वस्तु स्वभाव से होती है भव्य का स्वभाव मोक्ष में जाने का है और अभव्य का स्वभाव परिभ्रमण करने का है मयूर पीछ की चित्रता अग्नि की उष्णता पानी की शीतलता, वगैरह, सब स्वभाव से ही होते हैं तब नियतवादी कहता है कि-सब वस्तु ही भवितव्यता से होती है भवितव्यता को कोई भी नहीं टाल सकता है कर्मवादी कहता है कि सब वस्तु कर्म से ही होती है देव नरक मनुष्य तिर्यंच सब कर्माधीन है वगैरह और उद्यम वादी कहता है कि सब वस्तु उद्यम से ही होती है जगत में कला कौशल्यता सब उद्यम से प्रगट हुई है कि इतना सब संयम में उद्यम करने से ही मुक्ति मीलती है यों पांचों वादियों १ जीव २ अजीव ३ पुण्य ४ पाप ५ आस्रव ६ संवर ७ निर्जरा ८ बंध और ९ मोक्ष इन नव पदार्थों को चार प्रकार के मानते हैं १ कितनेक कहते हैं कि यह २ ही अपनी इच्छा से नित्य है कितनेक कहते हैं कि अपनी इच्छा से अनित्य है, कितनेक कहते हैं कि य नव ही पर की इच्छा से नित्य है और ४ कितनेक कहते हैं कि यह पर की इच्छा से अनित्य है यों नव पदार्थ का चौगुने करने से ३६ होते हैं, और उक्त ३६ को पांच वादी से पांच गुना करने से १८० क्रिया वादी के भेद होते हैं यह क्रिया वादी का कथन हुवा ॥ अब अक्रियावादी का कहते हैं—मिथ्यात्वि का

कारिणो ॥ दिव्व च गइं गच्छति, चारत्ता धम्म ...
मुसा भासा निरत्थिया ॥ सजममाणा वि अहं वसामि इरियामि य ॥ २६ ॥
सव्वेते विइयामज्झ, मिच्छादिट्ठी अणारिया ॥ विज्जमाणे परेलोए, सम्म जा-
णामि अप्पग ॥ २७ ॥ अहमासि महापाणे, जुतिम वरिसमतोवमे ॥ जा सा
पाली महापाली, दिव्वा वरिस सओवमा ॥ २८ ॥ से चुए बम्भलोगाओ, माणुस

करनेवाले पाखंडियों हैं वे घोर भयकर नरक में पडते हैं और जो जिन प्रणित धर्म का आचरण करते हैं वे देव गति अथवा मोक्ष गति में जाते हैं ॥ २५ ॥ उक्त क्रियावादी का मत माया कपट सहित है और उन का उपदेश भी माया कपट सहित है यह मोक्ष रूप परमार्थ साधन में शून्य रूप है इस लिये इन मिथ्यात्वियों के वचन का अनादर करता हुवा जिन प्रणीत दीक्षा धारन कर पांच समिति में प्रवर्तता हूं ॥ २६ ॥ पूर्वोक्त मिथ्यात्वियों के मतांतर जितने जगत में प्रवर्त रहे हैं वे मरे जाने हुए हैं वे विद्यमान परलोक की नास्ति करते हैं किसी का कथन नहीं स्वीकारते हैं मैंने तो मेरे आत्मा के परभव को सम्यक् प्रकार से जाना है ॥ २७ ॥ यह इस प्रकार है मैं पूर्व भव में पांचवे ब्रह्म देवलोक के महाप्राण विमान में महाद्युति वंत देवता था वहां मेरा पाली की सौ वर्ष की अपेक्षा रूप छोटी

ठाणेहिं, मेयप्ने किं पमासई ॥ २३ ॥ इति पाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए ॥
विज्जा चरण संपन्ने, सच्चे सच्च परक्कमे ॥ २४ ॥ नडंति नरए घोरे जे नरा पाव

श्रेष्ठ मानते हैं वे कहते हैं कि १ सूर्य का, २ राजा का ३ ज्ञानी का, ४ साधु का ५ वृद्ध का, ६ धर्म का ७ माता का और ८ पिता का इन आठों का मन, वचन व काया से और दान देकर विनय करे यों आठ को चार गुना करने से विनयवादी के ३२ भेद होते हैं ४ अज्ञानवादी के ६७ भेद होते हैं वे कहते हैं कि-जो पाप अज्ञानावस्था में होवे उस के पाप की निवृत्ति हो सकती है जैसे अजान में किसी को पांव लगने से वह गुना माफ कर देता है इस से अज्ञानी ही रहना अच्छा है नरक स्वर्ग वगैरह किसने देखे हैं कि जिस से शास्त्रोक्त कथन सत्य माने इस के ६७ भेद होते हैं—१ कौन जाने सत्य है २ कौन जाने असत्य है, ३ कौन जाने जीव का सत्ता सत्यपना है ४ असत्यपना है, ५ अवाच्यपना है ६ सद्वाच्यपना है और ७ असद्वाच्यपना है यों नव पदार्थ के साथ इन सात को गुना करने से ६३ होवे हैं इस में १ सत्यपना २ असत्यपना, ३ सदसत्यपना और ४ वाच्यपना ये चार मिलाने से ६७ होवे हैं इस प्रकार ३६३ पाखंडियों के मत्त के जान क्षायिक ज्ञान क्षायक चारित्र के धारक सत्यवादी कर्म रूप अग्नि बुझाकर शीतलीभूत बने हुए श्री ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर स्वामीने द्वादश विध परिषद में उक्त ३६३ पाखण्डि...

शास्त्रोद्धार प्रारम्भ वीराब्द २४४२ ज्ञान पञ्चमी

इति
उत्तराध्ययन सूत्र
समाप्तम्
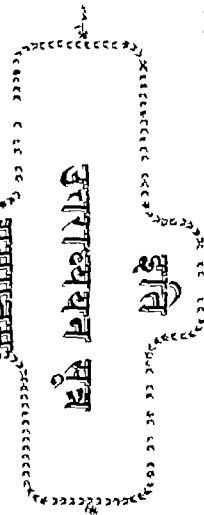
शास्त्रोद्धार समाप्ति वीराब्द २४४६ विजयादशमी

भवमागते ॥ अप्पणो य परेसिं च, आउ जाणे जहा तहा ॥ २९ ॥ नाणारुइं च छंदंच, परिवज्जेज्ज संजए ॥ अणट्ठा जे य सव्वत्था इइ विज्जामणु संचरे ॥ ३० ॥ पडिक्कमामि पसिणाणं परमतेहिं वा पुणो ॥ अहो उट्ठिए अहोराय, इति विज्जा तवंचरे ॥ ३१ ॥ जं च मे पुच्छसि काले सम्म सुद्धेण चेयसा ॥ ताइं पाउकरे

पायली की उपमा से महा पायली रूप दश सागरोपम का आयुष्य था ॥ २८ ॥ इस पांचवे ब्रह्म देवलोक से चवकर यहां मनुष्य भव में मैं आया हूं और मेरा यहां का यथातथ्य आयुष्य जानता हूं ॥ २९ ॥ अहो क्षत्रिय राजर्षिजी उक्त क्रियावादी प्रमुख मिथ्यात्वियों की बहुत प्रकार की रुचि बहुत प्रकार की कल्पना, बहुत प्रकार के अभिप्राय हैं उन को साधु सर्वथा प्रकार वर्जे, वही विद्या संयम युक्त बना मुनि संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥ ३० ॥ अहो क्षत्रिय राजर्षिन् ! ज्योतिषी निमित्तादिक के प्रश्नोत्तर देने से तथा गृहस्थों के गुह्य वार्तालाप से निवर्त कर सदैव सावधान बनकर अहर्निश संयम व तप में उद्यमी बना हूं यह मेरा विनय मार्ग है और इस प्रकार ही अन्य पंडित महा प्रवर्त रहे हैं ॥ ३१ ॥ तब क्षत्रिय राजर्षि संयति मुनि के वार्तालाप से संतुष्ट होकर कहने लगे कि अपने दोनों

१ चारकोस का लम्बा चौड़ा व ऊंडापने में देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रके मनुष्य बालाग्र भरके ठूंस ठूंस कर भरे नहीं उससे भरे और हजारों वर्ष में एक बालाग्र निकालते जब वह पाला खाली हो जाय एक पल्योपम रूप छोटा पाला और ऐसा कोड़ पाला खाली होवे उसको वर्यका एक सागरोपम।

मौन रहा परंतु उस नमुची प्रधानने अपना हठाग्र छोडा नहीं तब निरुपाय से उस की इच्छानुसार चक्र-वर्तीने सात दिन का राज्य नमुची प्रधान को दिया उसने यज्ञ का प्रारंभ किया सब लोग निजराना करने आये परंतु सुव्रताचार्य आये नहीं ऐसा देख सुभट के साथ बुलवाय आचार्य वहां आये तब नमुची बोला तुम मेरे राज्य में रहकर मुझे ही नमस्कार नहीं करते हो इस से मेरे राज्य से बाहिर निकल जाओ आचार्यने बहुत समझाया परंतु वह समझा नहीं तब आचार्य स्वस्थान आये और बोले कि यदि विष्णुकुमार श्रमण इस समय पर होते तो ठीक होता एक साधु बोला कि मेरु पर्वत पर वे तप कर रहे हैं उन के पास जाकर सब बात मैं विदित कर सकता हूं परंतु पीछा आने की मेरी शक्ति नहीं है आचार्य बोले कि विष्णु कुमार ही तुम को ले आवेगा विद्या के प्रभाव से मेरु पर्वत पर जाकर विष्णु कुमार मुनि से सब बात निवेदन की तत्काल विष्णु कुमार उस साधु सहित आये अपने संसार के भाई चक्रवर्ती से मिले और ऐसा अनुचित काय के लिये उपालंभ दिया तब चक्रवर्ती बोले मैं वचन से बंधाया हूं सात दिन तक कुच्छ नहीं बोल सकता हूं आगे देख लेवूंगा तब वह विष्णुकुमार मुनि नमुचि के पास आये सब परिषद् चक्रवर्ती का भाई मानकर उपस्थित हुई, नमुची भी भयभीत हुवा मुनि बोले-तेरा छ खण्ड में राज्य है हम कहां जावे ? तब उसने कहा कि मात्र तुम्हारे लिये तुम मांगो इतना स्थान देता हूं, अन्य साधु के लिये नहीं मुनिने क्रोधावेश में तीन पांव जमीन मांगी नमुचीने वह स्वीकार की, उस ही समय वैक्रेय लब्धि से एक लाख योजन का रूप बनाकर एक पांव जम्बूद्वीप

जिणक्खायं, पव्वोगइमणुत्तरं ॥ ४३ ॥ दसण्णरज्ज मुदितं, चइत्ताण मुणिचरे ॥
दसण्णभद्दो निक्खतो सक्खं सक्केण चोइओ ॥ ४४ ॥ करकंडू कालिंगेसु,

गया ॥४३॥ कथा—राजगृही नगरी के समुद्र विजय राजा की विजया रानी को चउदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ उसका नाम जयसेन दिया कालान्तर में चक्रवर्ती की सब ऋद्धि प्राप्त हुए पीछे उस को छोडकर दीक्षा अंगीकार की केवल ज्ञान प्राप्त किया और सब मीलकर तीन हजार वर्ष का आयुष्य भोगव कर मोक्ष में गया ॥*॥

अब आगे अन्य राजाओं का कथन करते हैं—शक्रेन्द्र की प्रेरणा प्रेराया हुवा दशारन देश का त्याग कर दशारनभद्र राजाने संयम अंगीकार किया ॥ ४४ ॥ यहां दशारन भद्र राजा की कथा कहते हैं— दशारन देश के दशारन पुर नगर का दशारन भद्र राजा श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी का अनुरागी था सदैव भगवान के समाचार सुने पीछे भोजन करता था एकदा भगवान दशारन पुर पधारे और वन पालक ने खबर दी राजा बहुत खुशी हुवा और वनपालक को इनाम में साढी बारह लाख रुपये दिये सब नगर को सुशोभित बनाया और लोगों से कहा अपनी २ शक्ति अनुसार सब सजाई कर भगवान के दर्शन को लिये चलो यदि किसी के पास द्रव्य न होवे तो भंडार में से

* इन में आठवा स्वयंभू व बारह वा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का कथन नहीं किया, क्यों की इन दोनोंने संयम अंगीकार नहीं किया, इसलिये वे दोनों नरक में गये हैं यहां तो जो मोक्ष में गये उन दसही चक्रवर्ती का ही कथन किया गया है

को राजा अपने १८ हजार हाथी २४ लाख घोडे, २१ हजार रथ, १ हजार पालखी, ९१ क्रोड पदाति, १६ हजार ध्वजा और ५०० रानियों के सुख ठाठपाठ से और स्वयं भी वस्त्राभूषण से सुसज्जित बनकर अपने पाटवीय हस्ति पर आरूढ हो कर छत्र चामर सहित प्रजाजनों के आशीर्वाद सहित भगवान के दर्शन के लिये निकला इस ठाठ से निकलते हुए उन को गर्व हुआ कि जिस प्रकार मैं भगवान के दर्शन के लिये जाता हूं वैसे अन्य कोई नहीं गया होगा उस समय शक्रेन्द्र भी भगवान के वन्दन के लिये आये थे उनोंने अवधि ज्ञान से दशार्णभद्र का अभिमान जाना तिर्थंकर भगवान के दर्शन को जाते अभिमान करना अनुचित जान कर, उस के मान का मर्दन करने के लिये हाथी की सेना के अधिपति देव को आज्ञा की उस देवने आकाश में ६४ हजार हाथी वैक्रेय कर मेघाडम्बर समान राजा की सारी सेना आच्छादित कर दी हाथीयों के दीप्य भूषण दामनी जैसे चमकने लगे और गजों का गुलगुलाट शब्द महा मेघ समान गर्जने लगा उन में एक २ हाथी को ५०० मुख एक मुख पर आठ दंतशूल, एक दंतशूल पर आठ २ बावडियों एक २ बावडी में आठ २ कमल, एक २ कमल की एक लाख पांखडियों, एक पांखडी पर बतीस प्रकार के नाटक, कमल के बीच की कर्णिका पर इन्द्र भवन, जिस में इन्द्र का सिंहासन, ईशान कोन में चौरासी हजार सामानिक के चौरासी हजार सिंहासन पूर्व में आठ अग्रमहिषियों के आठ हजार सिंहासन यों सब परिवार जानना इस प्रकार सब हाथियों में से मात्र एक हाथी नीचे उतारा इस हाथी को देखने अन्य सब लोक भग गये फक्त दशार्णभद्र राजा रहगया

पंचालेसु यदुम्महो ॥ नमीराया विदेहेसु गंधारेसुयनग्गई ॥ ४५ ॥ नमीनमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ॥ चइऊण गेहवइदेही, सामण्णे पज्जुवाट्ठिओ

गए चिन्ताग्रस्त हो विचारने लगा कि मेरा मान कैसे रहे ! अब संयम सिवाय और कोई उपाय नहीं है ऐसा विचार कर भगवान के पास जाकर संयम अंगीकार कर साधु समुदाय में बैठे इन्द्र भगवान को नमस्कार कर साधुओं को नमस्कार करने लगा तो दशारनभद्र को साधु बने हुए देखे इन्द्र उन को बारंवार धन्यवाद दे अपना अपराध क्षमा कर स्वस्थान गया दशारनभद्र मुनिराज अपने कर्मोंका क्षय कर मोक्ष गये ॥ * ॥

१ कलिंग देश का करकंडु राजा २ पांचाल देश दुमइ राजा, विदेह देश का नमीराजा, और गांधार देश का निग्गइ राजा इन चारों प्रत्येक बुद्धने साथ ही दीक्षा अंगीकार की, साथ ही केवल ज्ञान पाये और साथ ही मोक्ष गये ॥४६॥ इन चार में से संयम में आत्मा नमाने वाले नमीराजर्षी को साक्षात् शक्रेन्द्र चलित करने आये तथापि वे विदेह देश व गृहादि का त्याग कर संयम मार्ग में स्थित रहे ॥४७॥ इन में से नमीराजर्षी की कथा तो इसके नवमे अध्ययन में कही गई है शेष तीन प्रत्येक बुद्ध का कथन कहते हैं करकंडु राजा कालिंग देश की चंपानगरी के दधिवाहन राजा की रानी व चेडा राजा की पुत्री पद्मावतीको गर्भ के तीसरे मास में दोहद हुआ कि पुरुष का पोषाक पहिन कर

–थो पर स्वार होकर राजा के साथ वन क्रीडा करने आई. राजा उसी ही प्रकार रानी के साथ वन क्रीडा करने गये इतने में हस्ती मदोन्मत्त बनकर भागा राजा वृक्ष की शाखा पकडकर नीचे उतर कर अपने राज्य में आया और रानी उतर सकी नहीं वह हस्ती भगता हुवा एक तलाव में गया तब रानी पानी में पडकर तीरती हुइ बाहिर आइ और किसी तापस के आश्रम में गई तापस अपना धर्म मित्र पत्र [illegible] जानकर उसे स्तनपुर के [illegible] पहुंचाने आया वह पद्मावती [illegible] से गांवमें साध्वी [illegible] उपाश्रय पूछती हुइ गइ और उन के पास दीक्षा ली फिर गर्भ के [illegible] देख कर [illegible] पूछन लगे तब पद्मावतीने सब वृत्त कहा और बोली कि यदि पहिले से ही यह बात कहतीतो तुम मुझ दीक्षा नहीं देते इस से मैंने गर्भ छिपाया साध्वीजीने उपालंभ दिया और धर्म की [illegible] के लिये पद्मावती का गुप्त रखी सवा नव मास में पुत्रका जन्म हुवा उसे गुप्तपने श्मशान में [illegible] दिया उसे चंडाल उठाकर ले गया उसे देखकर पद्मावती साध्वी [illegible] आइ और प्रायश्चित लिया उस साध्वी का पुत्र पर प्रेम होने से चांडाल के यहां गुप्तपने जाती और पय पान करा कर पीछी पीछी आती बचपन में चांडाल के यहां का भोजन करने से उसका [illegible] का रोग हुवा, जिससे उसका नाम करकंडु दिया वह श्मशान का चारक साथ करता हुवा आप राजा बन किसीको प्रधान बनावे, मस्त छोकरों का [illegible] यह देख कर साध्वीजी को विचार हुवा कि यह राजा होगा एकदा यह करकंडु श्मशानमें [illegible] था वहां कोई साधु अपने शिष्य से बोले कि–इस बांस को चार अंगुल जमीन में खोद कर

बेपन पास रखे तो सातवे दिन राजा होवे यह बात एक ब्राह्मण व करकण्डु यों दोनों ने सुनी ब्राह्मण उस बांस को लेकर चला करकण्डु बोला कि–रे स्मशान का रेंड चोरने वाला तू कौन दोनों मे बड़ा क्लेश होगया लोगोंने करकण्डु को समझाया तब करकण्डु बोला कि–इस दंड से सातवे दिन में मुझे राज्य मीलन का है लोगों हसते हुए बोलने लगे कि–जो तुझे राज्य मीले तब एक गांव ब्राह्मण को भी देना उसने यह बात मानी अब गांव के लोग चांडाल पर नाराज होगये जिस से करकंडु उस दंड को लेकर परदेश में निकला सातवे दिन कंचनपुर के बाहिर आकर दंड सिराने दे सोता उस समय उस गांव का राजा अपुत्रिया मर जाने से रायतो ने पांच द्रव्य प्रगट किये हाथी की सुंड में पुष्पमाला जलकलश दिये उस के पीछे सब परिवार निकला वह हस्ती जहां करकंडु सोता था वहां आया उस को उठाकर उस के गले में पुष्प माला डाली शिर पर कलश ढोला सुंड से उठा कर अपनी पीठ पर चढाया कुल देवने पुष्प वृष्टि की करकंडु का पुण्य प्रभाव देख सब आश्चर्य पाये राज्यारोहन किया और सुख पूर्वक राज्य पालता विचरन लगा अब उस ब्राह्मण को खबर होते ही वह करकंडु राजा के पास आया और बोला कि मैं कलिंग देश में रहता हूं इस से उस देश में मुझे एक ग्राम दो करकंडुने कलिंग देश की चंपा नगरी के दधिवाहन राजा पर अपनी मुद्रा सहित एक पत्र इस ब्राह्मण को एक गाम देने का लिखा और साथ सुभट भेजा दधिवाहन राजा हसकर बोले कि क्या चांडाल को राज्य मिलने से वह मदमस्त

बन गया है ऐसा कहकर उनके सुभटों को निकाल दिये सुभटोंने करकंडु राजा से कहा करकंडु क्रोधित बनकर अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया दधिवाहन राजाने उस का सामना किया यह समाचार पद्मावती आर्याजीने सुना और उपकार का कारन मानकर अपनी गुरुनी की आज्ञा लेकर करकंडु के पास आइ करकंडुने नमस्कार कर आनेका कारन पूछा तब सब वृत्तांत कहा फिर वहां से दधिवाहन राजा पास आइ और अपना गत का सब वृत्तांत कहा कि—यह तुम्हारा ही पुत्र है यों दोनों पुत्र पिता को मीलाये दधिवाहन राजा इस करकंडु को राज्य देकर संयम लेकर मोक्ष में गये करकंडु राजा एकदा गोकुल देखने गया था वहां एक बच्छडे का सुन्दराकार देख उस पर प्रेम उत्पन्न हुआ, और कहा कि इस को खूब दुग्ध पानकरा अच्छी तरह पालना और स्वतंत्र फिरने देना इस तरह अच्छा खान पान मीलने से वह एक बडा सांड बन गया और राजा के महेल नीचे रहने लगा जब उस को वृद्धावस्था प्राप्त हुइ तब शिथिल शरीर होने से वह पृथ्वीपर गिर पडा और कोई भी उस के पास आवे नहीं राजाको यह देखकर वैराग्य भाव प्राप्त हुआ कि इस उदारिक शरीर की यही रचना है यों स्वयं प्रति बोध पाकर दीक्षा धारन कर विचरने लगे यह करकंडु राजा की कथा हुई ॥१॥

दूसरा प्रत्येक बुद्ध दुमोह राजा की कथा कहते पांचाल देश के कपिलपुर नगर का जय राजा महल के लिये भूमि खोदवाते थे जिस में से एक चमत्कारिक मुकुट निकला उसे धारन करने से राजा के दो मुख दीखने लगे जिस से लोगों इस राजाको दुमोह नाम से बुलाने लगे उज्जयनी नगरी के चंद्रप्रद्योतन राजा को इस बात की मालूम हुई और अपना लोहजंघ दूत द्वारा वह मुकुट देने को कहलाया दुमोह राजाने कहा कि

रे पुन्यहीन ' दूसरे की वस्तु देख ललचाता है तो मेरे चार रत्न—१ अग्निभिसरथ, २ लोहजंग दूत ३ अनिलगिरी हस्ती और ४ शिवादेवी रानी वे मुझे देदो दूतने यह समाचार अपने राजा से कहा इस पर से वह क्रुद्ध बनकर दो लाख रथी पांच लाख घोडे, दो लाख रथ सात क्रोड पदाति यों चतुरंगिनी सेना लेकर आया दुमोह राजा भी चतुरंगिनी सेना सहित सन्मुख आया दोनों को परस्पर युद्ध हुआ चण्डप्रद्योतन राजा हारगया, उस को पकड कर दुमोह राजा अपने राज्य में लाया और उस को अपनी कन्या देकर उज्जैनी पहूंचा दिया दुमोह राजा के राज्य में सो २ वर्ष में इन्द्र महोत्सव होता था इस के लिये इन्द्र स्तंभ सुसज्जित किया जाता था, बहुत लोग उस की पूजा करते थे अन्यदा वह स्तंभ जीर्ण होकर गिर गया और लोग उसे जलाने लेगये यह देख दुमोह राजा को वैराग्य प्राप्त हुवा कि जहां लग पुण्य है वहां लग उस की पूजा होती है पुण्य क्षय होने पर इस स्तंभ जैसी रचना होजाती है यों स्वय प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेकर विचरने लगे यह तीसरा प्रत्येक बुद्ध दुमोह की कथा हुइ ॥

अब चौथा प्रत्येक बुद्ध निगाइ राजा की कथा कहते हैं-गांधार देश के पुंडरवर्धन नगर का सिंहरथ राजाने सोदागर के पास से नये घोडे खरीदे उस की परीक्षा के लिये वह अश्वारूढ बनकर फिराने लगा उस घोडे की लगाम खींचते पवनवेग से जाता हुआ बारह योजन की भयंकर अटवी में ले गया राजाने वृक्ष की शाखा पकड लगाम छोड दी कि वह घोडा वहां ही खडा रह गया राजा को अपना दोष मालुम हुआ कि यह घोडा उलटी लगाम का है ऐसा मुझे मालुम नहीं होने से दोनों को व्यर्थ दुःख हुआ राजाने

वहां फिरते २ एक सात भूमिका का । महेल देखा उस में जाकर देखता है तो एक महारूपवती कन्या रही है उसे देख आश्चर्य चकित हुआ कन्याने अपने आसन से उठकर राजा का सत्कार सन्मान किया राजा उस का हाल पूछने लगा कि तू यहां अकेली कैसे है ? कन्याने कहा कि—मेरा पाणिग्रहण किये पीछे मैं सब कहूंगी राजाने उस से गंधर्व लग्न किया और स्नान पान कर भोग विलास कर सुख पूर्वक दोनों बैठे वह कन्या कहने लगी कि क्षितिप्रतिष्ठ नगर के जितशत्रु राजा ने चित्रसभा बनवाने के लिये यहां के चित्रकारों को बुलाये और सारी सभा चारों चित्रकारों को सम विभाग में बांट दी तीन चित्रकार तो अपने२परिवार सहित आकर काम करते थे परंतु एक वृद्ध चित्रांगद नामक चित्रकार को मात्र एक कन्या कनकमंजरी नामकी परिचारिका थी इस से वह अहर्निश यहां ही रहकर अपना कार्य किया करता था एकदा उस की कन्या उस चित्रकार के लिये भोजन लेकर आती थी, यहां राजा का साथ घोडा फिराता हुवा मध्य बजार में आ गया चित्रकार की कन्या यह देख कर पीछे सरक गई और राजा चला गया, भोजन लेकर अपने पिता के पास आई और भोजन रखा चित्रकार दिशा जाने को गया इतने में कन्याने एक मयूर अपने पिता के चित्रण के स्थान बनाया राजा भी उस दिन वहां चित्र देखने आया और चित्रित मयूर का सच्चा मयूर ही जानकर पकडने हाथ मारते नख की ठोकर लगी जिस से नख टूट गये तब वह कन्या हंसकर बोली कि चौथा मूर्ख भी यह मिल गया है राजाने उस से पूछा कि चार मूर्ख कौन २ हैं ! तब वह बोली कि प्रथम मूर्ख मेरा पिता कि जिस में भोजन लाई तब वह दिशा जाने को

गया दूसरा इस राजा का साला कि जो मध्य बजार में घोडा फिराता है, और किसी को नहीं दुखाता है तीसरा मूर्ख प्रधान कि जिसने इस चित्रसभामें कुछ गुणागुण का भेद समझे बिना ही सबको जगह का समविभाग कर दिया और चौथा मूर्ख तु कि जो इतने मनुष्यके बीचमें चित्रित मयूरको सत्य मयूर मानकर उसे पकडने लगे ऐसा सुन राजाने उस कन्या को विदुषी (बुद्धिमती) जान उससे पाणिग्रहण किया प्रथम रात्रि में जब राजा उस के शयन मंदिरमें आया व पूर्व संकेत अनुसार मदनका दासी बोली रानी जी कोइ कथा करो रानीने कहा राजा सो जायेंगे तब कहूंगी राजा कपट निद्राकर सो गया तब रानीने कहा कि वसंत पुर नगर में एक देवने एक हाथ के मंदिर में चार हाथ की प्रतिमा रखी मदना दासी बोली यह किस तरह ! रानीने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूंगी राजा सुनकर विस्मित हुआ और इस का अर्थ सुनने के लिये दूसरे दिन भी उसी रानीके महलमें आया राजा के कपट निद्रामें सोने पर दासीने कल का अर्थ पूछा, तब रानीने कहा कि वह देव कृष्ण था मकथा जिसने मणि चन्द्रकांत रघुनाथ (?) को मार्ते रखी थी पुनः दासीने कहा कि और कोई कथा कहो तब रानी ने कहा कि एक राजाने एक चार को संदूक में डालकर पानी में बहा दिया बाद किसीने संदूक निकाली और पूछा कि तुझे कितने दिन सा संदूक में वास है ! तब उसने कहा कि तीन दिन हुवे हैं दासीने प्रश्न किया कि उस चार को तीन दिन की कैसे मालूम हुई ! रानीने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूंगी राजा इस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिये तीसरे दिन भी वहां आया और कपट निद्रा में सो गया रानीने दासी के प्रश्न का उत्तर कहा

यहां फिरते २ एक सात भूमिका का । महेल देखा उस में आकर देखता है तो एक महारूपवती कन्या रही है उसे देख आश्चर्य चकित हुआ कन्याने अपने आसन से उठकर राजा का सत्कार सन्मान किया राजा उस का हाल पूछने लगा कि तू यहां अकेली कैसे है ? कन्याने कहा कि—मेरा पाणिग्रहण किये पाछे मैं सब कहूंगी राजाने उस से गधर्व लग्न किया और स्नान पान कर भोग विलास कर सुख पूर्वक दोनों बैठे तब कन्या कहने लगी कि क्षितिप्रतिष्ठ नगर के जितशत्रु राजाने चित्रसभा बनवाने के लिये वहां के चित्रकारों को बुलाये और सारी सभा चारों चित्रकारों को सम विभाग में बांट दी तीन चित्रकार तो अपने परिवार सहित आकर काम करते थे परंतु चौथा वृद्ध चित्रांगद नामक चित्रकार को मात्र एक कन्या कनकमंजरी नामकी परिवार में थी इस से वह अहर्निश वहां ही रहकर अपना कार्य किया करता था एकदा उस की कन्या उस चित्रकार के लिये भोजन लेकर आरही थी, वहां राजा का सवार घोडा फिराता हुआ मध्य बजार में आ रहा था चित्रकार की कन्या यह देख कर पीछे सरक गई और बच गई वह भोजन लेकर अपने पिता के पास आ और भोजन र । तब चित्रकार दिशा जाने को गया इतने में कन्याने एक मयूर अपने पिता के चित्राय के स्थान बनाया राजा भी उस दिन वहां चित्रसभा देखने आया और चित्रित मयूर को सच्चा मयूर ही जानकर पकडने हाथ मारते भींत की टक्कर लगी जिस से नख टूट गये तब यह कन्या हसकर बोली कि चौथा मूर्ख भी यह दृष्ट मिला है राजाने उस से पूछा कि चार मूर्ख कौन २ हैं ? तब वह बोली कि प्रथम मूर्ख मेरा पिता कि जब मैं भोजन लाई तब वह दिशा जाने का

आत्मनिंदा किया करती थी इस को पढ़कर राजा से कहा कि यह आप को वश में करने का ...
रही है राजाने कान लगाया तो इस प्रकार यह सुनने लगा ' तू चित्रकार की पुत्री है न कि राजा की
रानी, तुझे किसी बात का अभिमान नहीं चाहिये नम्रता पूर्वक सब से मिल कर रहना " ऐसा सुन
राजा सतुष्ट हुवा और उसे पटरानी बनाई कालान्तर से निम्नाचार्य का उपदेश सुनकर राजा रानी
दोनोंने व्रत अंगीकार किया आयुष्य का अंत देखकर सथारा किया और काल के अवसर में कालकर
दोनों स्वर्गलोक गये वहां से कनकमंजरी का जीव चवकर वैताढ्य पर्वत पर तोरणपुर नगर में कनक
माला नाम की राजपुत्री हुई एकदा वासव विद्याधरने उस का रूप देखकर हरन की और यह महल
बनाकर इस में रखी पीछे से कनकमाला का भाई आया और वासव से युद्ध किया दोनों मृत्यु पाये
कनकमाला भाई के लिये विलापात कर रही थी इतने में एक विद्याधर आकर कहने लगा कि मैं तेरा
पूर्व जन्म का पिता चित्रांगद चित्रकार का जीव हूं तैंने मेरे अंत समय में मुझे धर्म की सहाय दीथा
जिस प्रकार से मैं विद्याधर हुवा हूं मेरा चित्रगति नाम है तू चिंता मत कर यहां सिंहरथ राजा
आवेगा वह तेरा पति होगा यों कहकर वह चलागया और उन के कहने पर से मैं आप की मार्ग
प्रतीक्षा करती बैठी थी आपने पधारकर मेरे मनोरथ फलित कर दिये तत्पश्चात् एकमास वहां रहकर कनक
माला की गगन गामिनी विद्या से विमान में बैठ कर राजा अपने राज्य में आया बारबार विमान में बैठ कर
नगमनागमन करने से उस राजा का नाम निग्गइ दिया एकदा वन क्रीडा कर आते मनोहर आम्र वृक्ष

कि उस को देजरेका स्मर आता था ३ फिर दासीने कोई नविन कथा कहने का कहा तब रानीने कहा कि किसी राजाने कितनेक सोनार को अंध भूमारे में बैठा कर दीपक के प्रकाश दागिना बनावाव पूछा कि—रात्रि हुई कि नहीं ? तब एक सोनार बोला नहीं हुई तब दासीने पूछा कि अंध भूआर में उसे कैसे मालुम हुवा ? रानीने उस का उत्तर दूसरे दिन देने का कहा राजा उस दिन भी यहां आया रानीने आगे के प्रश्न का उत्तर दिया कि वह सोनार रात्रि अंधा था ४ पुनः रानीनेकथा कही कि एक गुरुजी के पास चार लडु थे तिन में से एक खवाने आया, दूसरा पहिले चेले को दिया तीसरा दूसरे को दिया और चौथा चौथे को दिया दासीने कहा यह कैसे ? रानीने कहा इस का उत्तर कल दूंगी उस दिन राजा यहां सोनेको आया तब रानीने कहा कि तीसरे का नाम चौथमल था ५ एक शेठ के भंडार में से एक चोर तीसरे भाग का धन ले गया, दूसरा आधा और तीसरा सब ले गया तीनों मिले और देखातो सबके पास बराबर धन निकला तो वह धन कितना था ? दासाने कहा आप ही कहो ! रानीने कलका उत्तर देने कहा राजाभी उत्तर सुनने का रा ी के सदैव यहां आया करता था तब रानाने कहा कि सब मिलकर छ सोनैये थे पुनः रानीने कथाकी एक ऊंट बडा वृक्ष देखकर उस को खाने गया प तु उस का मुह वहां पहूंचा नहीं तब उसपर मलमूत्र कर चल गया दासीने पूछा यह किस तरह ! रानीने कल उत्तर देने का कहा उस दिन राजा भी यहां आया और रानीने उत्तर कहा कि वह वृक्ष कूवे में था इस तरह राजा सदैव यहां ही आने लगा तब अन्य शोकिनी रानियों उस के छिद्र देखन लगी पर रानी सदैव मध्यान्ह में एकांत में बैठकर

आत्मनिंदा किया करती थी इस को पढाकर राजा से कहा कि यह आप का ...
रही है राजाने कान लगाया तो इस प्रकार वह सुनने लगा ' तू चित्रकार की पुत्री है न कि राजा की रानी, तुझे किसी बात का अभिमान नहीं चाहिये नम्रता पूर्वक सब से मिल कर रहना " ऐसा सुन राजा संतुष्ट हुवा और उसे पटरानी बनाई कालान्तर से विमलाचार्य का उपदेश सुनकर राजा रानी दोनोंने व्रत अंगीकार किया आयुष्य का अंत देखकर संथारा किया और काल के अवसर में कालकर दोनों देवलोक गये वहां से कनकमंजरी का जीव चवकर वैताढ्य पर्वत पर तोरणपुर नगर में कनक माला नाम की राजपुत्री हुई एकदा वासव विद्याधरने उस का रूप देखकर हरन की और यह महेल बनाकर इस में रखी पीछे से कनकमाला का भाई आया और वासव से युद्ध किया दोनों मृत्यु पाये कनकमाला भाई के लिये विलापात कर रही थी उतने में एक विद्याधर आकर कहने लगा कि मैं तेरा पूर्व जन्म का पिता चित्रांगद चित्रकार का जीव हूं तैने मेरे अंत समय में मुझे धर्म की सहाय दीथा जिस प्रभाव से मैं विद्याधर हुवा हूं मेरा चित्रगत नाम है तू चिंता मत कर यहां सिंहरथ राजा आवेगा वह तेरा पति होगा यों कहकर वह चलागया और उन के कहने पर से मैं आप की प्रतीक्षा करती बैठी थी आपने पधारकर मेरे मनोरथ फलित कर दिये तत्पश्चात् एक मास वहां रहकर कनकमाला की गगन गामिनी विद्या से विमान में बैठ कर राजा अपने राज्य में आया वारंवार विमान में बैठ कर गमनागमन करने से उस राजा का नाम निग्गइ दिया एकदा वन क्रीडा करने जाते मनोहर आम्र वृक्ष

कि उस को वेमरेका ज्वर आया था ३ फिर दासीने कोई नवीन कथा कहने का कहा तब रानीने कहा, कि किसी राजाने कितनेक सोनार को अंध भूमारे में बैठा कर दीपक के प्रकाश से गिना बनाबात पूछा कि—रात्रि हुई कि नहीं? तब एक सोनार बोला नहीं हुई तब दासीने पूछा कि अंध भूमार में उसे कैसे मालुम हुवा? रानीने उस का उत्तर दूसरे दिन देने का कहा राजा उस दिन भी वहां आया रानीने आगे के प्रश्न का उत्तर दिया कि वह सोनार रात्रि अंधा था ४ पुनः रानीने कथा कही कि एक गुरुजी के पास चार लड्डू थे जिन में से एक स्वयंने खाया, दूसरा पहिले चेले को दिया तीसरा दूसरे को दिया और चौथा चौथे को दिया दासीने कहा यह कैसे? रानीने कहा इस का उत्तर कल दूंगी उस दिन राजा वहां सोनेको आया तब रानीने कहा कि तीसरे का नाम चौथमल था ५ एक सेठ के भंडार में से एक चोर तीसरे भाग का धन ले गया, दूसरा आधा और तीसरा सब ले गया तीनों मिले और देखा तो सबके पास बराबर धन निकला तो वह धन कितना था? दासीने कहा आप ही कहो? रानीने कलका उत्तर देने कहा राजाभी उत्तर सुनने का था? के सदैव वहां आया करता था तब रानीने कहा कि सब मिलकर छ सोनैये थे पुनः रानीने कथा की-एक ऊंट बड़ा वृक्ष देखकर उस को खाने गया परंतु उस का मुख वहां पहुंचा नहीं तब उसपर मलमूत्र कर चल गया दासीने पूछा यह किस तरह? रानीने कल उत्तर देने का कहा उस दिन राजा भी वहां आया और रानीने उत्तर कहा कि वह वृक्ष कूवे में था इस तरह राजा सदैव वहां ही आने लगा उस समय सौकिनी रानियों उस के छिद्र देखने लगी वह रानी सदैव मध्यान्ह में एकांत में बैठकर

उस ने प्रथम एक गुटिका खाइ जिस से उस का शरीर सुवर्ण समान हो गया और उस का नाम सुवर्ण गुटिका रखा फिर दूसरी गुटिका खा कर चंद्र प्रद्योतन राजा का स्मरण किया वह अनिलगिरि हाथी पर चढकर आया और उसे ले गया उदायन राजा को इस बात की मालूम हुइ इस से चौदह हजार मुकुटबंध राजाओं को साथ लेकर आया और चंद्र प्रद्योतन राजा का संग्राम में पराजय कर बंधन से बांध कर ले चला मार्ग में चतुर्मास लगने से एक स्थान छावनी डाल कर रहा संवत्सरी का दिन आने से उदायन राजाने पौषध किया रसोये ने चंद्र प्रद्योतन राजा से पूछा कि आप के लिये क्या रसोइ बनाऊं! चंद्रप्रद्योतन राजाने आज रसोइ के पूछने का कारन पूछा तब उसने कहा कि उदायन राजाने संवत्सरी पर्व होने से पौषध किया है इस से आप की इच्छानुकुल भोजन बनाने का है चंद्रप्रद्योतन राजाने विचारा कि आज मुझे यह विष देकर मार डालेंगे इस से उस ने भी उपवास करने का कहा और उदायन राजा के पास जाकर आप भी पौषध लेकर बैठ गया संध्या को संवत्सरी प्रतिक्रमण करके उदायन राजा चंद्रप्रद्योतन से खमाने लगे तब वह उदायन राजा से बोला कि मुझे तो कैद कर रखा है और खमाते हो उदायन राजाने उसे सुवर्ण गुटिका दासी के साथ पाणिग्रहण कराया उज्जयनी भेज दिया उदायन राजा वीतमय पाटन आये एकदा उदायन राजा को पौषध में भगवान के दर्शन की अभिलाषा हुइ भगवान भी विचरते २ वहां पधार गये, उदायन राजा बडी धूमधाम से वंदन करने निकला देशना सुन कर वैरागी बना और विचार किया कि मेरा अभीच कुमार मुझे बहुत ही प्रिय है

या

॥ ४६ ॥ एते नरिंदवसभा, निक्खता जिणसासणे ॥ पुत्ते रज्जे ठवेऊण, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥ ४७ ॥ सोवीररायवसभो, चइत्ताण मुणीचरे ॥ उदायणो पव्वइओ॥ पत्तोगइमणुत्तरं ॥ ४८ ॥ तहेव कासीराया, सेओ सच्चपरक्कमे ॥ कामभोगे

देखकर मंजरी तोडी पीछे से सब सनाने पत्र शाखा वगैरह तोडकर वृक्ष को ठुंठा बना दिया राजाने पीछे आते वही वृक्ष देखा और वैराग्य पाया यौवनादि संपदा से ही शरीर की शोभा है इस से वाचित हो कर दीक्षा अंगीकार कर विहार किया ये चारों प्रत्येक बुद्ध साथ ही दीक्षा लेकर शिवजी के चोमुख मंदिर में अलग २ रहे फिर परस्पर वार्तालाप हुवा चारों केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये

राजाओं में वृषभ समान पूर्वोक्त राजाओंने अपने पुत्र को राज्य देकर जिन मार्ग में दीक्षा अंगीकार की और संयम में सावधान हुए ॥ ४७ ॥ सिंधु सोवीर देश का धोरी बैल समान उदायन राजाने राज्य का त्याग कर दीक्षा अंगीकार की और वह मोक्ष गति को प्राप्त हुवा ॥ ४८ ॥ यहां उदायन राजा की कथा कहते हैं—सिंधु सोवीर देश के वीतभयपाटण में उदायन राजा रहता था उस की प्रभावती रानी व कुब्जा दासी थी एकदा गांधार देश का कोई श्रावक यहां आया और वह यहां बीमार पडा कुब्जा दासी ने उस की अच्छी तरह सेवा भक्ति की जिस पर से उस श्रावक ने संतुष्ट हो दो गुटिका दी जिस में से एक गोली खाने से मनोहर रूप होवे और दूसरी गोली खाने से इच्छित पुरुष मील सके

परिचज्ज पहण कम्ममहावणं ॥ ४९ ॥ तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ॥
रज्जं तु गुणसमिद्धं पयहित्तु महायसो ॥ तहेवुग्गं तवंकिच्चा, अव्वक्खित्तेण
चेयसा ॥ महब्बलो रायरिसी आदाय सिरसासिरं ॥ ५१ ॥ कहं धीरो अहेऊहिं,
उम्मत्तो व महिं चरे ॥ एतविसेसमादाय, सूरा दढ परक्कमा ॥ ५२ ॥ अच्चंत
नियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई ॥ अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया ॥५३॥

भोगों का त्याग कर संयम अंगीकार कर कर्म रूप महा वन का नाश किया ॥ ४९ ॥ वैसे ही महा यशस्वी व विमल कीर्तिवाला विजय नाम का दूसरा बलदेव राजाने भी न्याय करने के गुन से अधिक शब्दादिक गुण से मनोहर ऐसा राज्य का त्याग कर प्रव्रज्या अंगीकार की ॥ ५० ॥ वैसे ही उग्र तपश्चर्या करनेवाला महाबल राजर्षिने अव्यग्र चित्त से महा परिश्रम से केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी प्राप्त की ॥ ५१ ॥ जब पूर्वोक्त पुरुषों इस तरह प्रव्रज्या अंगीकार कर मोक्ष में गये तब धीर पुरुष मिथ्यात्वियों के कुहेतु से उन्मत्त बनकर किस लिये विचरे अर्थात् उन्मत्त बनकर नहीं विचरे और इसी कारन से पूर्वोक्त भरतादिकने ज्ञान सहित शुद्ध क्रिया अंगीकार कर जैन मार्ग स्वीकार किया ॥ ५२ ॥ समकितादिक कारन से कर्म रूप मैल नष्ट करनेवाली जिनागम रूप वाणी मैंने कही. इस का अवलम्बन कर अतीत काल में अनंत जीव मुक्ति में गये, वर्तमान में मुक्ति में जाते हैं और अनागत में मुक्ति में जावेंगे ॥५३॥

पहि मैं इस को राज्य दूंगा तो वह उस में लुब्ध बन कर नरकगामी होगा और पुत्र के साथ ऐसा करना मुझे उचित नहीं है इस विचार से केशी कुमार नामक भाणेज को राज्य देकर उदायन राजाने दीक्षा अंगीकार की अभीच कुमार को आश्चर्य हुवा कि मेरे में क्या अपलक्षण है कि जिस से मुझे छोड कर भाणेज को राज्य दिया इस से क्रोधित हो कर चंपा नगरी में मासीका पुत्र भाइ कूणिक राजा के पास जाकर रहा रागद्वेष से उदायन राजा को वंदना करना छोड दिया उदायन राजर्षीने अगियारह अंग कंठस्थ किये और भगवान की आज्ञा लेकर एकल्ल विहारी हो विचरते वीतभय पाटन आये केशी राजाने यह समाचार सुनकर विचार किया कि न मालूम इन का मन राज्य में ललचाया हो और राज्य लेने आये हो इस से गांव में ऐसी आज्ञा फिराइ कि कोइ भी उदायन साधु को रहने के लिये स्थान देवे नहीं यदि देगे तो उस के जान मालका नुकसान होगा राजा के डर से उदायन मुनि को किसीने ठहरने दिया नहीं मात्र एक कुंभारने नीडर बन कर अपनी झोंपडी रहने दी पर मन राजा चुप हो गये परन्तु राज्य वैद्यों को बोलाकर औषध में विष डालकर उदायन मुनि को वह औषध दिया औषध लेते ही अत्यंत उज्वल वेदना हुई परंतु समभाव से सहन करते क्षपक श्रेणी पर चढकर अंतकृत केवली हो मुक्ति में गये उन की प्रभावती रानी देवी हुइ थी उसने यह हाल जानकर कुपित बन कर धूल की वृष्टि से वीतभय पाटण का नाश कर दिया यह उदायन राजा की कथा हुइ ॥

वैसे ही काशी देश का भनी अर्धसनीय सातवा नंदन नाम का बलदेव राजाने भी राज्य व काम

॥ मृगापुत्रीय नामक मेकोनविंशतितम मध्ययनम् ॥

सुग्गीवे नयर रम्मे, काणणुज्जाण सोहिए ॥ रायाबलभद्दोत्ति, मिया तस्सग्ग माहिसी ॥ १ ॥ तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्तिविस्सुए ॥ अम्मापिऊणदइए, जुवराया दमीसरे ॥ २ ॥ नदणे सोउपासाए, कीलए सह इत्थीहिं ॥ देवो दोगुंदगो चेव निच्चंमुदितमाणसो ॥ ३ ॥ मणिरयण कोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ

अठारवे अध्ययन में भोग व ऋद्धि का त्याग कहा ऐसा त्याग संयमी कर सकते हैं और जो संयमी होते हैं वे सावद्य औषधि नहीं करते हैं यह अधिकार इस उन्नीसवे अध्ययन में कहा है बडे वृक्षों से क्रीडा करने योग्य ऐसा उद्यान से सुशोभित व ऋद्धि समृद्धि से रमणीय सुग्रीव नगर में बलभद्र राजा राज्य करता था उस की मृगावती नाम की पटरानी थी ॥ १ ॥ उन को बलश्री नाम का पुत्र हुवा कि जो मृगापुत्र से विख्यात हुवा * वह मात पिता को प्रिय युवराज व यतीश्वर हुवा ॥ २ ॥ सदैव प्रमुदित मनवाला वह मृगापुत्र प्रासाद पर त्रयास्त्रिंशक देवता जैसे अपनी स्त्रियों साथ क्रीडा करता हुवा विचर रहा था ॥ ३ ॥ मणिरत्न की भूमितलवाला प्रासाद के गवाक्ष में बैठकर मृगा पुत्र नगर के त्रिक

* रानी का दिया नाम बल श्री कुमार था और राजा का दिया नाम मृगापुत्र था

कहिंधीरे अहेऊहिं अप्पाणं परियावसे ॥ सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे भयति नीरए ॥ ५४ ॥ त्तिबेमि ॥ संजइज्जमट्ठारस मज्झयणं सम्मत्त ॥ १८ ॥ * *

जिस से कुशल होता होवे उस में धैर्यवन्त पुरुष अपने आत्मा को कैसे स्थापन करे? अर्थात् नहीं करे परन्तु सब कर्म संग से मुक्त बनकर कर्म रूप रज रहित शाश्वत सिद्ध होवे ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह संयति राजा का अठारहवा अध्ययन हुवा ॥ १८ ॥ *

अम्मापियर सामण्णं चपुराकय ॥ ९ ॥ विसएसु अरज्जतो रज्जंतो सजमम्मिय ॥ अम्मापियर मुवागम्म, इम वयण मब्बवी ॥ १० ॥ (काव्य) सुयाणि मे पच महव्वयाणि, नरएसु दुक्ख च तिरिक्खजोणिसु ॥ निव्विण्ण कामोमि महण्णवाउ अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ॥ ११ ॥ (गाथा) अम्म ताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ॥ पच्छा कडुयविवागा अणुबंध दुहावहा ॥ १२ ॥ इम सरीर अणिच्च असुई असुइसभव ॥ असासयावासमिण दुक्ख केसाण भायण ॥ १३ ॥

पहिले माचरन किया हुआ साधुपना का स्मरण करने लगा ॥ ९ ॥ फिर विपय भोगों में अनासक्त व चारित्र में आसक्त बना हुआ वह मृगापुत्र माता पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगा ॥ १० ॥ अहो मातापिता ! नरक व तिर्यंच में जो दुःख होता है सो तथा साधु के पांच महाव्रत ये पूर्व भव में मैंने सुना है इस से अब मैं इस ससार समुद्र से निवृत्ति करने का कामी हुआ हूं मातपिता ! आप आज्ञा दो कि मैं चारित्र अंगीकार करूं ॥ ११ ॥ अहो मातपिता ! किंपाक फल समान पहिले अच्छा स्वाद वाले और पीछे कटुक फल देने वाले, और निरतर दुःख देने वाले वैसे काम भोग मैंने भोगवे हैं ॥ १२ ॥ यह शरीर भी अनित्य, अशुचिमय अशुचि उत्पन्न करने वाला, अशाश्वतवासवाला दुःख का कारन भूत और क्लेश का भाजन है ॥ १३ ॥ ऐसा अशाश्वत शरीर में मुझे आनंद नहीं मीलता है

आलाएइ नगरस्स चउक्कतियचच्चरे ॥ ४ ॥ अह तत्थ अइच्छन्तं पासई समण संजयं ॥ तवनियम संजम धरं सीलड्ढं गुणआगरं ॥ ५ ॥ तं देहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाएउ ॥ कहिं मन्नेरिसंरूवं दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥ ६ ॥ साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे ॥ मोहंगयस्स संतस्स, जातीसरणं समुप्पन्नं ॥ ७ ॥ देवलोग चुओसंतो माणुस्सं भवमागओ ॥ सन्निनाणे समुप्पन्ने जाइसरणं पुराणयं ॥ ८ ॥ जातीसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ॥ सरई पोराणियं जाइ

चौक व चत्वर का अवलोकन कर रहा था ॥ ४ ॥ उस समय तप नियम व संयम को धारन करनेवाले अठारह सहस्रसीलांग रूप अदिवाले व गुण की खानवाले साधु मुनिराज को मार्ग में आते हुए देखे ॥ ५ ॥ मृगापुत्र अनिमिष दृष्टि से उस साधु मुनि को देखने लगा और विचारने लगा कि मैंने पहिले ऐसा रूप किसी स्थान देखा है ॥ ६ ॥ साधु के दर्शन से उस मृगा पुत्र के भाव विशुद्ध होने से व मोहनीय कर्म का उपशम होने से उस को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा ॥ ७ ॥ संज्ञा * का भव बताने वाला ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से मृगा पुत्रने देखा कि मैं देवलोक से चवकर यहां मनुष्य लोक में आया हूं ॥ ८ ॥ जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से महर्द्धिक मृगा पुत्र अपनी पहिले की जाति व

* संज्ञी के भव व्याख्या किये हुवे को जाति स्मरण ज्ञानवाला देख सकता है

महत तु अप्पाहिज्जो पवज्जई ॥ गच्छतो सो दुही होइ, छुहा तण्हाए पीडिओ ॥१९॥
एव धम्म अकाऊण, जो गच्छइ पर भव ॥ गच्छतो सो दुही होइ वाही रोगेहि
पीडिओ ॥ २० ॥ अद्धाण जो महत तु, सपाहिज्जो पवज्जइ ॥ गच्छतो सो सुही
होइ, छुहातण्हा विवज्जिओ ॥ २१ ॥ एव धम्मपि काऊण, जो गच्छइ पर भव,
गच्छतो सो सुही होई अप्पकम्मे अवयणे ॥ २२ ॥ जहा गेहे पलित्तम्मि तस्स
गेहस्स जो पहू ॥ सारभडाणि नीणेइ असार अवउज्झइ ॥ २३ ॥ एव लोए
पलित्तम्मि, जराए मरणेणय ॥ अप्पाण तारइस्सामि, तुब्भेहि अणुमन्निओ ॥२४॥

उस में क्षुधा तृपा से पीडित होता हुवा दुःखी होता है वैसे ही धर्म किया विना जो जीव परभव में जाता है वह वहां व्याधि रोग से पीडित बना हुवा दुःखी होता है ॥ २० ॥ जैसे कोइ पुरुष अपना माता सहित महा अम्बी का पंथ में जाता है और क्षुधा तृपा की बाधा रहित सुखी होता है वैसे ही जीव धर्म करके परभव में जाता है और वहां अल्प कर्म व अल्प वेदना वाला होने से सुखी होता है ॥ २२ ॥ जैसे किसी का घर जलता होवे वो घर का स्वामी अच्छी सार वस्त बचाने का उपाय करता है और अस्सार वस्तु का त्याग करता है वैसे ही यह लोक जरा व मरण से जल रहा है इस से आप की आज्ञा लेकर मैं मेरे आत्मा को तारूंगा ॥ २३-२४ ॥ अब मातापिता पुत्र को

असासए सरीरम्मि, रइ नोव लभामहं ॥ पच्छा पुरा य चइयव्वे, फेणबुब्बुय सन्निभे ॥ १४ ॥ माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए ॥ जरामरणघत्थम्मि, खणपिन रमामहं ॥ १५ ॥ जम्म दुक्ख जरा दुक्ख रोगाणि मरणाणिय ॥ अहो दुक्खा हु ससारो जत्थ कीसति जतवो ॥ १६ ॥ खेत्त वत्थुं हिरण्णच, पुत्त दार च बन्धवा ॥ चइत्ताण इम देह, गतव्व मवसस्सभे ॥ १७ ॥ जह किंपागफलाण, परिणामो न सुदरा ॥ एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुदरो ॥ १८ ॥ अद्धाण जो

ऐसा पानी का परपोटा समान नाशवंत शरीर को पहिले पीछे जब कभी त्यागना है ॥ १४ ॥ व्याधि रोगों का घर समान व जरा मरण से घेराया हुआ इस असार मनुष्यत्व में क्षणमात्र भी आनंद नहीं प्राप्त कर सकता हूं ॥ १५ ॥ जिस संसार में जन्म का दुःख, जरा का दुःख रोग का दुःख, मरण का दुःख है अहो यह संसार सरेस्वर दुःख मय है और इस में ही प्राणी पीडित होते हैं ॥ १६ ॥ क्षेत्र, वस्तु, हिरण्य, पुत्र, दारा, बंधव और इस शरीर को छोडकर अवश्य परलोक में जाने का है ॥ १७ ॥ जैसे किंपाक फल दीखने मे सुंदर व खाने में मीठे है परंतु परिणमे पीछे प्राण हरण करने वाला है वैसे ही काम भोग देखने में सुंदर भोगवने में मधुर परंतु आगमिक काल में महा दुःख के दाता होते है ॥ १८ ॥ जिस प्रकार कोइ पुरुष माता भोजन पान का संगविना महा अटवी में जाता है

सव्वारंभ परिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥ ३० ॥ चउव्विहे वि आहारे, राइभोयण वज्जणा ॥ सन्निही संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ॥ ३१ ॥ छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसग वेयणा ॥ अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेवय ॥ ३२ ॥ तालणा तज्जणाचेव, वहबंधपरीसहा ॥ दुक्खं भिक्खायरिया, जायणाय अलाभया ॥ ३३ ॥ कावोया जाइमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो॥दुक्खं बंभव्वयंघोरं, धारेउ य महप्पणा

ग्रह रहित रहना महा दुष्कर है ॥ ३० ॥ रात्रि में असनादि चारों आहार का त्याग करना, और किसी प्रकार संचय नहीं रखना यह दुष्कर है ॥ ३१ ॥ क्षुधा परिषह तृषा परिषह शीत परिषह, उष्ण परिषह दंश मशक परिषह आक्रोश वचन, दुःखकारी उपाश्रय तृण स्पर्श, व मैल का परि… चपेटादिक ताड़न अंगुली से तर्जना, चाबुक वगैरह से मारना याचना करके भिक्षा करना और याचना करते हुवे भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति होवे नहीं सो अलाभ परिषह इत्यादि परिषह साधु को सहन करना अति दुष्कर है ॥३२ ३३॥ जिस प्रकार कपोतादि जीवों का छोड़कर अनाज के दाने को चुगते हैं वैसी ही वृत्ति साधु की है अर्थात् साधु भी सदोष आहार का त्याग कर निर्दोष आहार ग्रहण कर विचरे केश लोच करना, भी बहुत दारुण है, व घोर ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करना दुःखदायी है ॥ ३४ ॥ अहो पुत्र ! पुन

से विंति अम्मापियरो, सामण्ण पुत्त दुक्कर ॥ गुणाण तु सहस्साइ धारेयव्वाइ भिक्खुणा ॥ २५ ॥ समया सव्व भूएसु, सत्तुमित्तेसुवा जगे । पाणातिवाय विरई जावज्जीवाए दुक्कर ॥ २६ ॥ निच्चकाल प्पमत्तेण मुसावाय विवज्जण ॥ भासियव्व हियं सच्च निच्चाउत्तेण दुक्कर ॥ २७ ॥ दंत सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जण ॥ अणवज्जे सणिज्जस्स, गिण्हणा अविदुक्कर ॥ २८ ॥ विरई अबम्भचेरस्स कामभोग रसन्नुणा ॥ उग्ग महव्वय बभं धारेयव्व सुदुक्कर ॥२९॥ धणधन्न पेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणा ॥

कहने लगे हे पुत्र ! साधपना पालन अति कठिन है साधुओं को क्षमादि सहस्रों गुणों धारन करना चाहिये ॥ २५ ॥ और भी शत्रु मित्र रूप सब भूतों में समता भाव धारन करना और जावजीव पर्यंत प्राणातिपात से विरति भाव धारन करना चाहिये अहो पुत्र ! यह दुष्कर है ॥ २६ ॥ सदैव अप्रमादी बनकर मृषावाद का त्याग करना और सत्य पथ्य वचन बोलना अति दुष्कर है ॥ २७॥ दंत शोधन के लिये सली मात्र बिना दाती ग्रहण नहीं करना और शरीर के निर्वाह के लिये आहार आदि भी बयालीस दोष रहित एषणा गवेषणा कर ग्रहण करना भी अति दुष्कर है ॥२८॥ कामभोग के रस को जाननेवाले को अब्रह्मचर्य से विरति और ब्रह्मचर्य रूप घोर उग्र महाव्रत धारन करना अति दुष्कर है ॥ २९ ॥ धन, धान्य व दास में निर्ममत्व धारन करना, सब आरंभ का त्याग करना और परि

वेगतीदह्वीए, चरित्ते पुत्त दुक्करे ॥ जवा लोहमया चेव चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ सुदुक्करा ॥ तह दुक्करं करेउं जे, तरुण्णे समणत्तण
॥ ४० ॥ जहा दुक्खं भरेउं जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्खं करेउं जे,
कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी ॥ तहा
निहुयनीसंक, दुक्करं समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्करं रयणायरो ॥
तहा अणुवसंतेण, दुक्करं दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुंज माणुस्सए भोगे, पंच लक्खणए

चबता है वैसे ही साथ का इया समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने खाना दुष्कर है वैसे ही सयम का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयंभूरमण] समुद्र भुजा से तिरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को समा रूप सागर तिरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहा पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

॥ ३४ ॥ सुहोइआ तुमं पुत्ता, सुकुमाला सुमज्जिओ ॥ न हु सी पभू तुम पुत्ता, सामण्ण मणुपालिया ॥ ३५ ॥ जावज्जीव मविस्सामो, गुणाण तु महब्भरो ॥ गुरुओ लो भारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥ ३६ ॥ आगासे गंगसोउव्व, पडिसोआव्व दुत्तरा ॥ बाहाहिं सागरो चेव तारियव्वो गुणोदही ॥ ३७ ॥ बालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे ॥ असिधारागमणं चेव दुक्करं चरिओ तवो ॥ ३८ ॥ अही

अनुमान समझनेवाले व सम्यग्शीलिये हो इस से साधुपना पालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो ॥३०॥ मेरा पुत्र ! साधु के चरण करणादि गुणों का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है ॥ ३७ ॥ जैसे ऊंचे बहुत हिमवंत पर्वत पर से पडता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही साधु के गुण रूप समुद्र को पार होना कठिन है ॥ ३७ ॥ जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है वैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३८ ॥ अहो पुत्र ! जैसे सर्प एक दृष्टि से

वेगतिषट्टीए, चरिचे पुत्त दुक्करे ॥ जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ सुदुक्करा ॥ तह दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं
॥ ४० ॥ जहा दुक्खं भरेउं जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्खं करेउं जे,
कीवेण समणत्तणं ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी ॥ तहा
निहुयनीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्करं रयणायरो ॥
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुंज माणुस्सए भोगे, पंच लक्खणए

चबता है वैसे ही साधु को ईर्या समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने चबाना दुष्कर है वैसे ही संयम का आचरण करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयंभूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को क्षमा रूप सागर तीरना — है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

॥ १४ ॥ सुहाइआ तुमं पुत्ता सुकुमाला सुमज्जिओ ॥ न हु सी पभू तुम पुत्ता, सामण्ण मणुपालिया ॥ ३५ ॥ जावज्जीव मविस्सामो, गुणाण तु महब्भरो ॥ गुरुओ लो भारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥ ३६ ॥ आगासे गंगसोउव्व, पडिसाओव्व दुत्तरो ॥ बाहाहि सागरो चेव, तारियव्वो गुणोदही ॥ ३७ ॥ बालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे ॥ असिधारागमण चेव, दुक्करं चरिओ तवो ॥ ३८ ॥ अही

अनुमान समझनवाले व सुखशीलिये हो इस से साधुपना पालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो ॥३४॥ अहो पुत्र! साधु के चरण करणादि गुण का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है ॥३५॥ जैसे ऊंचे चुल्ल हिमवंत पर्वत पर से पडता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही साधु के गुण रूप समुद्र को पार होना कठिन है ॥३७॥ जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है

वेगतीयट्ठीए, चरित्ते पुत्त दुक्करे ॥ जहा लोहमया चेव, चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ सुदुक्करा ॥ तह दुक्कर करेउ जे, तरुण्णे समणत्तण
॥ ४० ॥ जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्ख करउ जे,
कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करा मंदरो गिरी ॥ तहा
निहुयनीसंक, दुक्कर समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्कर रयणायरो ॥
तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुज माणुस्सए भोग, पच लक्खणए

चरता है वैसे ही साधु का ईर्या समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने खाना दुष्कर है वैसे ही संयम का आचरण करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजू से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयंभूरमण] समुद्र भुजा से तिरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को क्षमा रूप सागर तिरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

॥ ३४ ॥ सुहाइओ तुमं पुत्ता सुकुमाला सुमज्जिओ ॥ न हु सी पभू तुम पुत्ता, रा मण्ण गणुगालिया ॥ ३५ ॥ जावज्जीव मविस्सामो गुणाण तु महब्भरो ॥ गुरुओ लो भारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥ ३६ ॥ आगासे गंगसोउव्व, पडिसोओव्व दुत्तर ॥ वाहाहि सागरो चेव, तारियव्वो गुणोदही ॥ ३७ ॥ वालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे ॥ असिधारागमणं चेव, दुक्कर चरिओ तवो ॥ ३८ ॥ अही

सम्भ्रम समझनवाले व मसलीले हो इस से संयम पालने में तुम समर्थ नहीं हो सक्ते हो ॥ ३ ॥ अहो पुत्र ! साधु के चरण करणादि गुण का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है ॥ ३७ ॥ जैसे ऊंचे चुल्ल हिमवत पर्वत पर से पडता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही साधु के गुण रूप समुद्र को पार होना कठिन है ॥ ३७ ॥ जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है वैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३८ ॥ अहो पुत्र ! जैसे

वेगतीवट्ठीए, चरिचे पुत्त दुक्कर ॥ जवा लोहमया चेव, चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥ जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ अदुक्करा ॥ तह दुक्कर करेउ जे, तरुण्णे समणत्तण ॥ ४० ॥ जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्ख करउजे, कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मदरो गिरी ॥ तहा निहुयनीसंक, दुक्कर समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहि तरिओ, दुक्कर रयणायरो ॥ तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुंज माणुस्सए भोगे, पच लक्खणए

चलता है वैसे ही साध होकर समिति का चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने चबाना दुष्कर है वैसे ही सयम का आचरण करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयभूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को समा रूप सागर तीरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

तुम ॥ भुत्त भोगी तआ जाया, पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥ ४४ ॥ सो बेइ अम्मा पियरो, ० मेयं जहा फुडं ॥ इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्कर ॥४५॥ सारीर माणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो ॥ मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्ख भयाणि य ॥ ४६ ॥ जरामरण कंतारे, चाउरंते भयागरे ॥ मए सोढाणि भीमाणि जम्माइं मरणाणिय ॥ ४७ ॥ जहा इह अगणी उण्हो इत्तोणंतगुणेताहिं ॥ नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥ ४८ ॥ जहा इह इमं सीयं, इत्तो णत

भोगना बड़ा दुष्कर है, इस लिये यौवन में प्राप्त हुवे शब्द रूप, रस, गंध व स्पर्श ये पांच प्रकार के कामभोग भोगकर फिर भुक्त भोगी हुए पीछे तुम धर्माचरण करना ॥ ४४ ॥ अब मृगापुत्र माता पिता को कहने लगा कि तुमने कहा वह सत्य है परंतु इस लोक के निस्पृही मन को कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥ ४५ ॥ मैंने अनेक बार शारीरिक व मानसिक दुःख भय उत्पन्न करने वाली ऐसी भयंकर वेदना सहन की है ॥ ४६ ॥ चतुर्गति रूप संसार अटवी में जरा मृत्यु रूप महा भयंकर दुःखों से जन्म मरण कर असाता वेदनी अनंत बार भुक्ता है ॥ ४७ ॥ यहां जो अग्नि है उस से अनंत गुनी उष्ण अग्नि नरक में है और उस की असाता मैंने भुक्ती है

गुणेतहिं ॥ नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइयामए ॥ ४९ ॥ कन्दतो कुदुकुमीसु, उड्डपाओ अ०ोसिरो ॥ हुयासणे जलतम्मि, पक्कपुव्वो अणतसो ॥ ५० ॥ महा दवग्गि सकासे, मरुम्मि वइरवालुए ॥ कलम्बवालुयाएय, दड्ढपुव्वो अणतसो ॥ ५१॥ रसतो कुदकुमीसु, उड्ढ बद्धो अबन्धवो ॥करवत्तकर कयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणतसो ॥ ५२ ॥ अइतिक्ख कटगाइण्णे, तुगे सिंबलि पायवे ॥ खेविय पासबद्धेण कड्ढो कड्ढाहिं दुक्कर ॥५३॥ महा जतेसु उच्छू वा,आरसतो सुभेरव।।पीडितो मिसकम्मेहिं, पाव

॥४८॥ यहां पर जो हिमालयादिमें शीत है इससे अनत गुनी शीत वेदना नरकमें है इसको भी मैंने भुक्ती है ॥ ४९ ॥ प्रज्वलित भट्टी पर लाट की कढाइ आदि भाजन तपाकर उस पर मेरे पांव ऊंचे व मस्तक नीचा रखकर मुझे अनंतवार पचाया है ॥५०॥ मरुस्थल जैसी रेती तथा कदंव नामक नदी की रेती जैस रेती को महा दवाग्नि जैसी बनाकर उस में मुझे अनत वार भूजा है ॥ ५१ ॥ बांधव रहित मुझे कुभी में आक्रंद करता हुवा उठाकर ऊंची वृक्ष की शाखा से बांधा और वहां छोटा व बड़ी करवती से मेरे शरिर का विदारन किया ॥ ५२ ॥ अति तीक्ष्ण कांटे से व्याप्त [illegible] वृक्ष को ऊंचे बंधन से मुझे बांधकर झोके (झूले) दिये इस से असह्य वेदना भोगनी पड़ी ॥ ५३ ॥ मेरे अधम कर्मोदय से रौद्र भयानक शब्द आक्रंद

कम्मा अणनरो॥५४॥कुवतो कोल्सणएहिं सामेहिं सचलेहि य॥पाडिओ फालिओ छिन्ना,
विप्फुरतो अणेगसो ॥५५॥असीहिय असिवण्णाहि भल्लीहि पट्टिसेहि य॥छिन्ना भिन्नो
विभिन्नो य ओइण्णो पावकम्मुणा ॥ ५६ ॥ अवसो लोह रहे जुत्तो जल्ते समिला
जुए ॥चोइओ तचजुत्ताहिं रोज्झो वा ज पाडिओ ॥ ५७ ॥ हुयासणे जलन्ताम्मि,
पियासु महिसो विव ॥ दड्ढो पक्काय अवसो पाव कम्मेहि पाविओ ॥ ५८ ॥ वला
सडास तुंडेहिं, लोहतुंडहि पक्खीहिं ॥ विलुत्तो विलवतोहं, ढंकगिद्धेहि णतसा

रते हुए मेरे मस्तकमें गुकी मग्ज मनवी बार पीला ॥५४॥सबल जाति के परमाधर्मीने श्वान व शुअरका रूप बना कर कोलाट शब्द करते हुए मुझे जमीन पर डालकर तडफडते हुए मेरा पंजादि स छेदन किया और दांतों से भेदन किया ॥ ५५ ॥ पाप कर्म के उदय से मैं नरक में उत्पन्न हुवा तब अलसी के पुष्प के वर्ण समान खड्ग तथा भाले स छोटे मेरे टुकड किये ॥ ५६ ॥ जाज्वल्यमान अग्नि समान धग धग करता तथा समला सहित लोह रथ में मुझे परवश पडे हो जोता फिर तत्त जोत से बांध कर रोझ पशु का जैस मार मारे वैसे ही लकडियों के प्रहार से मम स्थान में मुझे मारा ॥ ५७ ॥ मेरे उपार्जन किये हुवे पाप कर्म स परवश पडे हुए म जाज्वल्यमान अग्नि की चिता में यज्ञ के भैंसे की तरह भडता मैंसान की तरह भड़था किया ॥ ५८ ॥ ढंक कंक आदि मांसाहारी पक्षियों के तीक्ष्ण चोंच वाले रूप बना कर परमाधर्मियों ने संडासी व चापडे जैसे मुंख कर मेरे शरीर का मांसमनती बार नीकाला

॥ ५९ ॥ तण्हाकिलन्तो धावंतो पत्तो वेयरणिं नदिं ॥ जलं पाहिं ति चिंततो खुरधाराहिं विवाइओ ॥ ६० ॥ उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ॥ असिपत्तेहिं पडंतेहिं छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥ ६१ ॥ मुग्गरेहिं मुसंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य ॥ गयासं भग्गगत्तेहिं पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥ ६२ ॥ खुरेहिं तिक्खधारेहिं छुरियाहिं कप्पणीहि य ॥ कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्कित्तो य अणेगसो ॥ ६३ ॥ पासेहिं कूडजालेहिं मिओ वा अवसो अहं ॥ वाहिओ बद्धरुद्धो वा, बहुसो चेव विवाइओ ॥ ६४ ॥ गलेहिं मगरजालेहिं मच्छो वा अवसो अहं ॥ उल्लिओ

॥ ५९ तृषा से पीड़ित बना हुआ वैतरनी नदी में जाकर पानी पीऊंगा इस विचार से वहां गया परंतु उसके जैसी धारवाला तीक्ष्ण पानी पग में पड़कर अत्यन्त पीड़ित हुवा ॥ ६० ॥ गरमी के ताप से आकुल व्याकुल बनकर शीतलता के लिये असिपत्र वन में गया उन वृक्षों के पत्र खड्ग की धारा समान मेरे शरीर पर पड़ने से अनंत वार मेरे शरीर का छेदन हुवा ॥ ६१ ॥ मुझे अनाथ जानकर यम देवताओंने मुद्गल व मुसंढी से मेरे शरीर का अनंती वार भंग किया ॥ ६२ ॥ मेरे शरीर का चर्म वृक्ष की छाल जैसे छूरीकी तीक्ष्ण धारा से अनंत वार निकाला और वस्त्र की तरह कैंची से अनंत वार काटा ॥ ६३ ॥ जैसे मृग को पाश में बांधते हैं वैसे ही परवश पड़ा हुवा मेरा अनंती वार नाग पाश से बंधन से बांधा और श्वासोश्वास का रुंधन कर जीवित से रहित किया ॥ ६४ ॥ मुझे परवशपना से अनेक वार जैसे मच्छ को

फालिओ गहिओ,मारिओय अणंतसो ॥६५॥ वीदसएहि जालेहिं, लिप्पाहि सउणो विव॥गहिओ लग्गोबद्धाय मारिओ य अणंतसो ॥६६॥कुहाड फरसुमाईहिं वड्ढईहिं दुमो विव ॥ कुट्टिओ फालिओ छिन्नो तच्छिओ य अणंतसो ॥ ६७ ॥ चवेडमुट्ठि-माईहिं, कुमारेहिं अयंपिव ॥ ताडिओ कुट्टिओभिन्नो चुण्णिओय अणंतसो ॥ ६८ ॥ तत्ता इं तम्बलोहाइ तउयाइ सीसायाणि य॥पाइओ कलकलंताइ आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥ तुह पियाइ मसाइ खंडाइ सोल्लगाणि य ॥ खाविओ मिसमसाइं, अग्गिवण्णाइं

जाल में पकड़कर मच्छी से मारते हैं वैसे ही पकड़कर मारा ॥ ६५ ॥ जाल रूप पिंजरे में पक्षी की तरह बंध करके सींचाने क रूप से मेरे शरीर को चूंट खाया और मनको मार मारा ॥ ६६ ॥ जिस प्रकार सुथार काष्ट का छेदन भेदन करता है वैसे ही यम देवोंने मुझे कुहाडे से काष्ट परशु से छेदा, गाडी की धूरी की तरह कूट, यों अनेक बार दुःख दिया॥ ६७ ॥ जिस प्रकार लोहार लोहे को कूटता है वैसे ही यम देवतान मुझे थप्पे स, मुष्टि से, लात प्रहार से कूट कर सूक्ष्म २ टुकडे २ कर डाले ॥ ६८ ॥ मुझे मरराट करते को तप्त कर उकलता हुआ ताम्र कथोर लोहा, सीसा इत्यादि धातु का रस का पान कराया ॥ ६९ ॥ रे दुष्ट ! तुझ मांस बहुत प्रियकारी था सू मांस के सूले कर तल भुंज कर खाता था इस प्रकार वे परमाधर्मी बोलते हुए मेरे शरीर का मांस तोड २ कर बारीक २ टुकडे कर अग्नि वर

वेगसो ॥ ७० ॥ तुह पिया सुरासीहू मेरओ य महूणि य॥ पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणिय॥७१॥निच्च भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य॥परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥ ७२ ॥ तिव्व चउप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ॥ महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेदिता मए ॥ ७३ ॥ जारिसा माणुसे लोए ताता दीसन्ति वेयणा ॥ एत्तो अणन्त गुणिया नरएसु दुक्ख वेयणा ॥ ७४ ॥ सव्वभवेसु असाया वेयणा वेदिता मए ॥ निमेसंतरमित्तंपि जं साता नत्थि वेयणा॥७५॥ तं बितंम्मापियरो,

रूप्य बनाकर अ ती बार मुझे पि लाया ॥ ७० ॥ हे मद्यपान करनेवाले ! मुझे गुड़ का, म ए, मधुस का बना मदिरा बहुत प्रिय था यों गत जन्म का स्मरण कर मेरे ही शरीर का रुधिर चरबी निकाल कर अग्नि पर उकाल कर मुझे पिलाया ॥७१॥ नरक में सदैव भय भ्रांत उद्वेग युक्त व दुःख से कंपायमान शरीर वाला मैंने अत्यंत दुःखमय वेदना भुक्ति है ॥७ ॥ नरक सम्बंधी अति तीव्र वेदना व कष्ट तेत्तीस सागरोपम पर्यंत महा भयंकर वेदना कम्पायमान शरीर सहित मैंने भुक्ति है।७३॥ इस मनुष्य लोक की असाता वेदनी से अनंत गुनी अधिक नरक की असाता वेदनी है ॥७४॥ मेषोन्मेष भी (आंख के टमकार इतना भी) जहां सुख नहीं है वैसी असाता वेदना सब भव में मैंने भुक्ति है॥७५॥तब मृगापुत्र से मात पिता कहने लगे कि

छंदेण पुत्त पव्वया मवरं।पुण सामण्णे,दुक्ख निप्पडिकम्मया॥७६॥ सो बेइ अम्मापियरो एवमेय जहा फुट ॥ पडिकम्म को कुणइ अरण्णे मियपक्खिणं ॥ ७७ ॥ एगभूए अरण्णवा जहा उ चरई मिगे ॥एवं धम्म चरिस्सामि संजमेण तवेण य ॥ ७८ ॥ जहा मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई ॥ अच्छंत रुक्खमूलम्मि को ण ताहे तिगिच्छइ ॥ ७९ ॥ को वा से ओसहं देइ को वा से पुच्छई सुहं ॥को से भत्तं

हे पुत्र ! तुमने कहा वह सब सत्य है परंतु साधुपना में जब कभी वेदना होती है और साधु को सब औषध करना नहीं कल्पता है तब तू क्या करेगा ? ॥ ७६ ॥ तब मृगापुत्र बोला–अहो मात पिता ! तुमने कहा सो ठीक है परन्तु जब वनवासी पशु पक्षी बीमार होते हैं तब उन की औषध कौन करता है ? ॥७७॥ जब जंगल में अकेला मृग फिरता उस ही प्रकार मैं भी संयमी व तपस्वी बन एकाकी धर्मका आचरन करूंगा ॥ ७८ ॥ जैसे महा अरण्य में मृग का कोई रोग होता है तब वह वृक्ष के मूल में आकर पड़ता है वहां उस की कौन चिकित्सा करता है ? उस को कौन औषधि देता है उस को कौन 'सुखी हो' ऐसा पूछता है और उसे कौन भोजन पानी ला देता है ? जब वह मृग रोग रहित होता है तब भोजन पानी के लिये वन में व सरोवर में फिरता है वहां वह मृग तृण आदि खाकर व पानी पीकर फिर अपने स्थान जाता है इस प्रकार संयम में रक्त साधु को विविध प्रकार का रोग होवे तो मृग समान गतिवाला बन, समभाव राग परिषह सहे जब आरोग्य हो तब गोचरी में विचरे ऐसे जो साधु होते हैं वे उस देवलोक की गति अथवा मुक्ति में जाते हैं ॥ ७९-८१ ॥ जैसे अकेला मृग

पाण वा आइरित्तु पणामए ॥ ८० ॥ जया य से सुही होइ, तया गच्छइ गोयर ॥ भत्त पाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥ ८१ ॥ खाइत्ता पाणिय पाउ, वल्लरेहिं सरेहि य॥ मिग चारिय चरित्ताणं, गच्छती मिगचारियं ॥ ८२ ॥ एव समुट्ठिओ भिक्खू एवमेव अणेगए ॥ मिगचरिय चरित्ताण, उड्ढ पक्कमती दिस ॥८३॥(काव्य) जहा मिगे एग अणेगचारी अणेगवासे धुवगोयरे य ॥ एव मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो वि य खिंसएज्जा ॥ ८४ ॥ [गाथा] मिगचारिय चरिस्सामि, एव पुत्ता जहासुहं ॥ अम्मापिईहिं अणुन्नाओ, जहाइ उवहिं तहा ॥ ८५ ॥ मियचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणि ॥ तुब्भेहिं अब्भणुन्नाओ, गच्छ पुत्त

नवीन २ स्थानक में रहे परंतु एक स्थानमें सदैव रहकर अपना निर्वाह नहीं करता है वैसे ही साधु मृगचर्या जैसे अप्रतिबन्ध विचरता हुवा तथा गौचरी के लिये निकला हुवा अपनी तथा परकी हीलना निंदा करे नहीं ॥८४॥ मैं मृग समान विचरूंगा ऐसा मृग पुत्र के कहने पर मात पिता कहने लगे कि हे पुत्र! तुम को जैसे सुख होवे वैसे करो इस तरह मातपिता की आज्ञा लेकर मृगापुत्रने सब उपाधि का त्याग किया ॥ ८५ ॥ अहो मातपिता! आप की आज्ञा होवे तो सब दुःख से मुक्त करने वाली वैसी मृग चर्या में अंगीकार

॥ ९१ ॥ गारवेसु कसाएसु दण्ड सल्ल भएसु य। नियत्तो हास सोगाओ, अनियाणो अबन्धणो ॥ ९२ ॥ अणिस्सिओ इहलोए, परलोए अणिस्सिओ ॥ वासीचन्दण कप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥ ९३ ॥ अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवा॥ अज्झप्पज्झाण जोगेहिं, पसत्थ दम सासणे ॥ ९४ ॥ एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य ॥ भावणाहि य सुद्धाहिं सम्मं भावेत्तु अप्पयं ॥ ९५ ॥ बहुयाणि उ

निंदा प्रशंसा व मान अपमान यों सब समपरिणाम वाला हुआ ॥ ९१ ॥ तीन गर्व चार कषाय तीन दंड तीन शल्य सात भय व हास्य शोक से निवर्ता और बंध तथा निदान रहित बना ॥ ९२ ॥ इस लोक में यश इत्यादि परलोक में देवलोक की ऋद्धि इत्यादिक की इच्छा रहित करनी करे का। चंदनादिक से चरचे अथवा कोई वसूले से छेदे उनपर तथा मान अपमान में समभाव रखने लगे ॥ ९३ ॥ मृगापुत्र मुनि जिन शासन में हिंसादिक सर्व अप्रशस्त द्वार से सर्वथा प्रकार निवर्ते और शुद्ध अंतःकरण से धर्मध्यानादि योगों का व्यापार से प्रशस्त उपशम भाव धारन किया ॥ ९४ ॥ इस प्रकार मृगापुत्र ज्ञान दर्शन, चारित्र तप तथा पांच महाव्रत की पचीस भावना से सम्यक् प्रकार आत्मा में निवास किया ॥ ९५ ॥ मृगापुत्र मुनि बहुत प्रकार बहुत वर्ष चारित्र का पालन कर अंत में एक महिने का

॥ महानिर्ग्रन्थतीय नामकं विंशतितम मध्ययनम् ॥

सिद्धाण नमो किचा संजयाण य भावओ ॥ अत्थ धम्म गतिं तच, अणुसिट्ठिं, सुणेह मे ॥ १ ॥ पभूय रयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ॥ विहारं जत्तं निज्जाओ, मंडि कुच्छिसि चेइए ॥ २ ॥ नाणा दुम लयाइण्णं, नाणा पक्खिनिसेविअं,

उन्नीसवे अध्ययन में सावद्य औषधी का त्याग किया तो निर्वद्य औषध करने वाले का बीसवा अध्ययन कहते हैं- हे शिष्य ! सिद्ध भगवंत दो प्रकार के हैं साधक सिद्ध सो अरिहंत और असाधक सिद्ध सो सिद्ध भगवंत रूप व तीन प्रकार के—आचार्य उपाध्याय और साधु इन पांचों को भाव से नमस्कार करके आत्महितार्थी जीवों की अर्थ सिद्धी रूप धर्म में गति, जिस प्रकार करना उस का यथातथ्य स्वरूप कहता हूं सो दत्तचित्त कर अनुक्रम से सुनो ॥ १ ॥ मगध देश का अधिपति, सूर्य (कर्क) रत्नों का धारक श्रेणिक महाराजा अश्व क्रीडा करने (घोडे फिराने) राजगृही नगरी से निकल कर मंडीकुक्षि नामक बगीचे में गया ॥ २ ॥ वह मंडीकुक्षी बगीचा, आम्रादि अनेक प्रकार के वृक्षों, द्राक्षादि अनेक प्रकार की लताओं कर शोभित था तथा अनेक प्रकार के पुष्पों कर वृक्षों क्यारियों से संस्कारित था और इत्यादि अनेक प्रकार के पक्षीयों कर सत्रित था इत्यादि गुणों कर वह

चेइयं ॥ नाणा कुसुमसंछन्नं उज्जाणं नंदणोवमं ॥ ३ ॥ तत्थ सो पासई साहु, संजयं सुसमाहियं ॥ निसिन्नं रुक्खमूलम्मि सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥ तस्स रूवं तु पासित्ता राइणो तम्मि संजए ॥ अच्चंत परमो आसी अउलो रूव विम्हओ ॥ ५ ॥ अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ॥ अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥ तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ॥ नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥ तरुणोसि अज्जो पव्वइओ, भोग कालम्मि

बगीचा नंदन वन समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३ ॥ उस बगीचे में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुवे सुकोमल सुखोचित इन्द्रियों का भय करने वाले समाधि निमग्न ऐसे एक साधु को देखे ॥ ४ ॥ वह राजा—उस साधु का अत्यन्त आश्चर्य कारक अनुपम रूप को देख कर उत्कृष्ट विस्मय को प्राप्त हुवा ॥ ५ ॥ अहा इति आश्चर्य कारक इन साधु के शरीर का वर्ण इन्द्रियों का रूप (आकार), मन की आर्यता सरलता, मृगादि सौम्यता क्षमा निर्लोभता और इस तारुण्यता में भोगों की असंगतीपना यह इन का बडाही आश्चर्य कारक है ॥ ६ ॥ यों आश्चर्य चकित बना दोनों हाथ जोड मस्तक पर आवर्तन कर उन के पदारविंद को वन्दन कर नजीक में सन्मुख हाथ जोड कर बैठा हुवा इस प्रकार प्रश्न पूछने लगा ॥ ७ ॥ अहो आर्य तपस्वि ! इस भोगोपभोग भोगवने की तारुण्य अवस्था में चारित्र में सावधान

सजया ॥ उवट्ठितो सि सामण्णे, एगमट्ठं सुणामि ता ॥ ८ ॥ अणाहो मि महाराय, नाहो मज्झ न विज्जई ॥ अनुकंपगं सुहिं वावि काँचि नाभिसमेमहं ॥ ९ ॥ ततो सो पहसिओ राया सेणिओ मगहाहिवो ॥ एवं ते इड्ढिमंतस्स कहं नाहो न विज्जई ॥ १० ॥ होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया ॥ मित्तनाईपरिवुडो माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥ ११ ॥ अप्पणा वि अणाहो सि सेणिया मगहाहिवा ॥ अप्पणा अणा

व्रतधारी किस कारन से हुवे, अर्थ-क्रयम मैं सुनना चाहता हूं ? ॥ ८ ॥ तब साधु बोले हे महाराजा ! मेरे को योग्य क्षेम कुशलता रूप मेरी अनुकम्पा का करने वाला इच्छित सुख को अर्पने वाला मित्र मात्र भी कोई नाथ नहीं होने से मैं अनाथ हूं इस लिये दीक्षा धारन की है ॥ ९ ॥ उक्त मुनि के वचन सुन श्रेणिक राजा हसने लगा और चिन्तवन लगा कि इस प्रकार उत्तम लक्षण व्यंजन रूप सम्पदा के धारक को किस प्रकार नाथ नहीं होवे ॥ १० ॥ अहो भय से त्रास करके बोले साधु जी ! मैं तुमारा नाथ हो जाऊं इस मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना बहुत मुशकिल है इस लिए मित्र, ज्ञाति आदि कों के साथ परिवरे हुवे मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोग को भोगवो ॥ ११ ॥ तब साधू जी बोले हे मगधाधिपति ! तू स्वयं ही अनाथ है तु अपनी आत्मा का ही नाथ नहीं है तो दूसरे का नाथ किस

अणाहो वा नराहिवा ॥ १६ ॥ सुणेहमे महाराय अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥ जहा अणाहो भवई, जहा मेयं पवत्तियं ॥ १७ ॥ कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुर भेयणी ॥ तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय धणसंचओ ॥ १८ ॥ पढमे वए महाराय, अतुला मे अच्छिवेयणा ॥ अहोत्था विउलो दाहो सव्वगत्तेसु पत्थिवा ॥ १९ ॥ सत्थं जहा परमतिक्खं सरीर विवरंतरे ॥ आवीलिज्ज अरीकुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥ २० ॥ तियमे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडती ॥ इंदासणि

होता है ॥ १६ ॥ इसलिये हे महाराजा ! जिस प्रकार मैं अनाथ हुआ तथा जगत् में जिस प्रकार अनाथ सनाथ होते हैं वह मैं तुझे कहता हूं सो तू दत्तचित्त से श्रवन कर ॥ १७ ॥ बहुत पुरानी अर्थ भेद की उत्पादक कोसंबी नाम की नगरी में प्रभूत धन संचय (बहुत द्रव्य का धारक) नाम का मेरा पिता रहता था ॥ १८ ॥ हे पृथ्वीपति महाराजा ! मेरी प्रथम (तारुण्य) अवस्था के कारन नेत्रों में ऐसी अतुल्य आंख की वेदना उत्पन्न हुई जिस से सर्व शरीर में दाहज्वर व्याप्त हुआ ॥ १९ ॥ यथा, अहीत जैसे कोई वैरी कोपित हो कर अति तीक्ष्ण शस्त्र धारन कर के अन्दर कर्ण आंख नासिकादि का भेदन करे उस जिस प्रकार की वेदना होवे वैसे वेदना मुझे हुई ॥ २० ॥ तथा जिस प्रकार इन्द्र

समापोरा,वेयणा परमदारुणा ॥२१॥ उवट्ठिता मे आयरिया, विज्जा मंत तिगिच्छया ॥ अधी या सत्थकुसला मंत मूल विसारया ॥२२॥ ते मे तिगिच्छ कुव्वति, चाउप्पाय जहाहियं ॥ न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २३ ॥ पियामे सव्वसारंपि, दिज्जाहि मम कारणा ॥ न य दुक्खाउ मोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २४ ॥ माया य मे महाराय, पुत्तसोग दुहट्टिया ॥ न य दुक्खाउ मोयति, एसा

किसी प्रकार कोपित हो शस्त्र का प्रहार करने से वह दुःख पेदा होवे वैसी प्रज्वलित वेदना भोगवता है इस प्रकार मेरे कम्मर के मध्य में तथा मस्तक में दारुण की महा वेदना हुइ उसे समता भी बहुत ही कठिन हो गया ॥ २१ ॥ (तब देखो पिताने से) वहां ने वैद्य शास्त्र के निपुण मंत्र जडी बूटी के जान विद्याकर नवीन औषधोपचार में उत्तम ऐसे वैद्यों मेरे लिये आये ॥ २२ ॥ उन वैद्योने १ औषध कर २ उपचार कर ३ पथ्य कर, और ४ प्रयत्न कर इन चारों प्रकार कर जिस प्रकार मेरा हित हो उस प्रकार करते हुए भी मुझे उस दुःख से मुक्त करसके नहीं यह मेरा अनाथ पना ॥२३॥ मेरे पिताने मेरे आराम के लिये घर का सारभूत द्रव्य वैद्यादि को दिया तो भी मुझे दुःख से मुक्त करसके नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २४ ॥ [illegible]

मज्झ अणाहया ॥ २५ ॥ मायरो मे महाराया, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा ॥ नय दुक्खा विमोयति एसा मज्झ अणाहया ॥ २६ ॥ भाइणीओ मे महाराय, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा ॥ नय दुक्खा विमोयति एसा मज्झ अणाहया ॥ २७ ॥ भारिया मे महाराय अणुरत्ता अणुव्वया। अंसुपुण्णाहिं नयणेहिं, उर मे परिसिंचई ॥ २८ ॥ अन्नं पाणं च ण्हाणं च गंधमल्लविलेवणं ॥ मए नायमनायं वा, सा बाला नेव भुंजति ॥ ॥ २९ ॥ खणंपि मे महाराय, पासाओ मे नफिट्टती ॥ नय दुक्खा

दुखनी आर्तवती थी परन्तु वह भी मझे दुःख से मुक्त करसकी नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २५ ॥ हे महाराज ! मेरे छोटे बड़े भाई भी थे वे भी मझे दुःख से मुक्त कर सके नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २६ ॥ हे महाराजा मेरे छोटी बडी बहिनो भी थी वे भी मझे दुःख से मुक्त करसकी नहीं यह मेरा अनाथ पना ॥२७॥ हे महाराजा ! हमारी मेरा अत्यन्त रागवाली स्त्रियों के साथ सम्भोग कर अस्तरूप पतिव्रता मेरी स्त्री भी थी वह मेरे दुःख से दुःखित होती हुई मेरे आंसू भरा आंखों से मेरा हृदय को सिञ्चती हुई रहती थी ॥ २८ ॥ उस स्त्री ने मेरे ध्यान में तथा अध्यान में अशन पानी का भोगवना स्नान करना सुगंधी द्रव्य का सेवन पुष्प माला कुंकुमादि का विलेपन तिलकादि करना इत्यादि शृंगार छोड़ दिया था अर्थात् भोगवती नहीं थी॥२९॥ हे महाराजा!

कुडकहावण वा ॥ राढामणी वेरुलिय प्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥ ४२ ॥
कुसील लिंग इह धारइत्ता इसिज्झय जीविय वूहइत्ता ॥ असंजए सजय
लप्पमाणे विणिग्घाय मागच्छइ से चिरपि ॥ ४३ ॥ विस
तु पीय जह कालकूडं, हणइ सत्थ जह कुग्गहीय ॥ एसो वि धम्मो विसओ
ववन्नो, हणइ वेयाल इवाविवन्नो ॥ ४४ ॥ जे लक्खणं सुविण पउजमाणे, निमित्त

होती है, जिस प्रकार खोटा नाणा असार होता है, और जिस प्रकार कांचका टुकडा राढामणि के समान प्रकाश करता हुआ भी मानकर पुरुष (जौहरी) के आगे मूल्य प्राप्त नहीं करसक्ता है, तैसेही अन्त करणमें कपट रख कर करणी करने वाला असार जानना ॥ ४२ ॥ इस मनुष्य लोक में जो कोइ साधु के गुन विना रजोहरण मुख वस्त्रिकादि साधु का लिंग भेष धारन कर के अपनी अजीविका-पेटभराई करते हैं असंयति (असाधु) हो कर साधु नाम धराते हैं वे द्रव्यलिंगीयों बहुत काल पर्यंत संसार में दुःख पावेंगे ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार तालपुट (जिस तालवे को स्पर्श होते ही मृत्यु प्राप्त होवें ऐसा) विष खाने से प्राण का नाश होता है, तथा जिस प्रकार अविधी (उल्टा) शस्त्र हाथ मे धारन करने से और जिस प्रकार विधिविना वेतालिक मंत्र का जाप करने से मृत्यु निपजती है, तैसे ही विषय धर्मको आराधने वाला वारम्वार मृत्यु पाता है ॥ ४४ ॥ जो साधु चक्रादि लक्षण विचार (सामुद्रिक शास्त्र)

नाहई मच्चुमुह तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥ ४८ ॥ निरट्ठया नग्गरुइ उ तस्स, ज उत्तमट्ठ विवज्जा समेइ ॥ इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लो० ॥ ४९ ॥ एमेव हा छद कुसीलरूवे, मग्ग विराहित्तु जिणुत्तमाण कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परियावमेइ ॥ ५० ॥ सोच्चाण महानि सुभासिय इम, अणुसासण नाणगुणोववेय ॥ मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व महा नियठाण वए पहेण ॥ ५१ ॥ चरित्त मायारगुणन्निए तओ, अणुत्तर सजम पालि०

मृत्यु की वक्त मरा पश्चाताप करेगा ॥ ४८ ॥ जो मदम में रूची रहित बनकर आत्म कस्थान साधक जो सयम का असमर्थ है उस का नाश करता है उस के इस लोक का भी नाश होता है और परलोक का भी नाश होता है अर्थात् दोनों लोक में पश्चाताप करता है ॥ ४९ ॥ कुशीलिया स्वछन्दा चारी जिनेन्द्र भगवान का उत्तमोत्तम मार्ग की विराधना कर जिस प्रकार मांस खंड ग्रहण की हुइ पक्षिणी दु:खनी होती है उस ही प्रकार वह भोग रसादि में गृद्धवना हुआ पश्चाताप करेगा ॥ ५० ॥ हे मेधावी (पण्डित) श्रेणिक ! मैंने जो भक्त ज्ञानादि गुणकर युक्त हित शिक्षाओं कही उसे श्रवन कर जो जो कुशीलीयों-अनाचारियों के मार्ग है उस का सर्वथा त्याग कर-कुशीलीयों की गत को छोड कर महानिग्रन्थ के मार्ग में प्रवर्ते सो ही सुखी होगा ॥ ५१ ॥ जो ज्ञानादि गुन कर सम्पन्न

फीकुशल सपगाढे ॥ कुहेडविज्जासवदारजीवी, नगच्छइ सरण तम्मि काले ॥४५॥ तम तमेणेव उ से असलि, सया दुही विप्परिया मुवेति ॥ सधावती नरग तिरिक्ख जोणि, मोण विराहेत्तु असाहुरूवे ॥ ४६ ॥ उद्देसिय कीयगड नियाग, न मुचइ किंचि अणेसणिज्जं ॥ अग्गीविवा सव्व भक्खी भवित्ता इचो चुए गच्छइ कट्टु पाव ॥ ४७ ॥ न तं अरी कंठछेत्ता करइ, ज से करे अप्पणिया दुरप्पया ॥ से

स्वप्न विचार निमित्त विद्या मंत्र तंत्र यंत्रादि विद्या आश्चर्य उत्पन्न करने कौतुक इन्द्रजाल विद्या पर सब जीवों को आजीविका के करता होवे है मरणान्त में दुर्गति से बचाने समर्थ नहीं होते है ॥ ४५ ॥ अति अज्ञान पन के वश में हो साधु के वेष य ह क्रिया रहित स्वप्न यातें परलोक में मुख की भाषा से कुछ भूढ़ सेवे वा भी वह चारित्र का विराधक असाधु निरंतर नरक तिर्यच योनि में परिभ्रमण करेगा ॥४६॥ जिस प्रकार अग्नि सर्व भक्षी होती है तैसे ही वह साधु भी उद्देशिक साधु के लिये बनाया स्वयंकर्म-मोल लाया, नित्यपिंड, इत्यादि दोषों युक्त अनएषणीक आहार आदि किंचित मात्र भी छोड़े नहीं ऐसा साधु यहां पाप कर्म की उपार्जना कर दुर्गति में जाता है ॥ ४७ ॥ प्राण का नाश करने वाले वैरी जितना दुःख नहीं करता है उतना दुःख दूर रमा दुराचारी करता है वह गुनविना अपनी इच्छा वर्ष रहित

ज मे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण ॥ ५५ ॥ [गाथा] तं सि नाहो अणाहाणं, सव्व भूयाण संजया ॥ खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउ ॥ ५६ ॥ पुच्छिऊण मए तुब्भ, झाणाविग्घाओ जो कओ ॥ निमतिया य भोगेहिं, त सव्व मरिसेहि मे ॥ ५७ ॥ (काव्य) एव थुणित्ताण स रायसींहो, अणगारसीह परमाइ भत्तीए ॥ सओरोहो सपरियणो सबधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥ ५८ ॥ (गाहा)

आप ही सनाथ और सबन्धव बने हो !! ॥ ५५ ॥ अहो सर्व जीवों के रक्षपाल संयति ! तुम ही सब भूत-अनाथ प्राणीयों के नाथ हो, अहो महामाहत्म न् ! मैं आप को क्षमाता हूं, मेरा अपराध माफ करना और मैं आप की दी हुइ हित शिक्षा को इच्छता हूं !! ॥ ५६ ॥ अहो संयाति ! आप ध्यान में निर्मग्न बने थे मैने उस में विघ्न किया, आप यौवनावस्था में साधु क्यों हुवे, वगैरा प्रश्न पूछे राज्यादि भोग का आमंत्रण किया इत्यादि भो जो मैने आप के अपराध किये हैं उन सब को आप माफ करो, मैं क्षमाता हूं !! ॥ ५७ ॥ सब राजाओं में सिंह समान श्रेणिक राजा अपने अन्तःपुर माइबन्ध कुटम्ब परिवार से परिवरा हुआ साधुओं में सिंह समान अनाथी नामक निर्ग्रन्थ की स्तुति गुणग्राम कर के (बोध भव रूप मिथ्यात्व मेल त्याग कर) जिन भणित धर्म में प्रेमानुराग में रक्त बना सम्यक्त्व प्राप्त की फिर

याण ॥ निरासवे सखवियाण कम्मं, उवेइ ठाण विउलुत्तम धुय ॥ २५ ॥ एवुग्ग एतेवि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ॥ महानियण्ठिज्जमिण महासुय, से कहेई महया वित्थरेण ॥ ५३ ॥ [गाहा] तुट्ठोय सेणिओ राया इणमुदाहु कयञ्जली ॥ अणाहत्त जहाभूय, सुट्ठु मे उवदंसिय ॥ ५४ ॥ (काव्य) तुब्भ सुलद्ध खु मणुस्स जम्म, लाभा सुलद्धा य तुमेमहेसी ॥ तुब्भे सणाहा य सबंधवा य,

उपशमोपम यथाख्यात चारित्र का पालन कर आश्रव रहित होता है वो कर्म रूपी रज का क्षय कर के शाश्वत नित्य सदैव स्थिर अत्युत्तम सिद्धस्थानक को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं जिनेभू ! महानिर्ग्रन्थ का पंथ दर्शाने वाला यह अध्ययन को कर्म शत्रु को जीतने में रौद्र इन्द्रियों के जय करने वाले तपोधनी श्रुतधी महामती महायशवंत अनाथी नामक निर्ग्रंथ ने यह महाश्रुत नामक अध्ययन बहुत विस्तार पूर्वक श्रेणिक राजा को सुनाया ॥ ५३ ॥ उक्त कथन श्रवण कर श्रेणिक राजा संतुष्ट हुआ, दोनों हाथ जोड कर कहने लगा कि अहो महामुने ! आपने मुझे अनाथ पने का स्वरूप सम्यक् प्रकार जैसा था तैसा यथातथ्य अच्छा कहा ॥ ५४ ॥ अहो महा ऋषि आप को मनुष्य जन्म की प्राप्ति और मनुष्य जन्म का लाभ द्रव्य रूप सम्पदा तथा भाव से ज्ञानादि गुन की बहुत अच्छी प्राप्त हुई है श्री जिनेश्वर भगवंत भाषित अत्युत्तम मार्ग को अंगीकार कर चल के स्थिर हो

॥ समुद्र पालीक नामकं एकविंशतितम मध्ययनम् ॥

चंपाए पालिए नाम सावए आसि वाणिए॥ महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥ १ ॥ निग्गंथे पावयणे, सावए सेवि कोविए ॥ पोएण ववहरंते, पिहुंडनगर मागए ॥२॥ पिहुंडे ववहरतस्स वाणिओ देइ धूयर ॥ तं ससत्त पइगिज्झ सदेसमुह पत्थिओ ॥ ३ ॥ अह पालियस्स घरणी, समुद्दमि पसुवती ॥ अह बालए तहिं जाए समुद्दपालित्ति नामए ॥ ४ ॥ खेमेण आगए चंपं सावए वाणिए घर ॥ संवड्ढति तस्स

बीसवे अध्ययन में महानिर्ग्रन्थपना का कथन करा जो महानिर्ग्रन्थ होते हैं वे ही मोक्ष सहित स्थान का सेवन करते हैं सो इस इक्कीसवे अध्ययन में कहते हैं चंपा नगरी में वणिकजाति का पालित नाम का सार्थवाह श्री महावीर भगवान का शिष्य व महात्मा वाला रहता था ॥ १ ॥ वह निर्ग्रन्थ के प्रवचन (शास्त्र) में प्रवीण था वह एकदा जहाज से व्यापार के लिये पिहुंड नगर को गया ॥ २ ॥ वहां पिहुंड नगर में व्यापार करते उस पालित को किसी वणिक ने अपनी कन्या दी वह गर्भवती हुई तब उसे अपनी साथ लेकर अपने नगर को आने लगा ॥३॥ उस पालित की स्त्री को समुद्र में पुत्र प्रसव हुवा जिस पर से उस पुत्र का नाम समुद्रपाल रखा ॥ ४ ॥ वह श्रावक पालित नाम का वणिक कुशल क्षेम

ऊससियरोमकूवो काऊण य पयाहिण ॥ अभिवंदिऊण सिरसा अइयाओ नराहिवो ॥ ५९ ॥ इयरो वि गुणसमिद्धो तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ॥ विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगय मोहो ॥ ६० ॥ त्तिबेमि ॥ इति महानियंठिज्ज बीस अज्झयण सम्मत्त ॥२०॥ • • ० • • •

हर्षित हुए कर रोमराई विकसाय मान हुवे दोनों हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा कर वंदना कर अनाथी निर्ग्रन्थ को वंदना नमस्कार कर के अपने स्थान गये ॥ ५९ ॥ ऊपर कहे इत्यादि गुणों सहित तीन गुप्ति गुप्त, तीन दंडसे रहित दोनों प्रकार के संयोग रहित सब प्रकार से मोह रहित होकर पक्षी की तरह अप्रतिबद्ध देश में विहार करने लगे ॥ ६० ॥ ऐसा सुधर्मास्वामीने जम्बुस्वामी से कहा ॥ इति महा निर्ग्रन्थ नामका बीसवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ २० ॥ ✿ ✿ • •

अक्कूको तत्थ ऽहियासएज्जा रयाइंखेयेज्ज पुरे कयाइं ॥ १८ ॥ पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सततं वियक्खणो ॥ मेरुव्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥ १९ ॥ अणुन्नए नावणए महेसी, नयावि पूयं गरहं च सजए ॥ स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥ २० ॥ अरइरइसहे पहीण संथवे विरए आयहिए पहाणवं ॥ परमट्ठपएहिं चिट्ठई छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥ २१ ॥ विवित्त लयणाइं भएज्ज ताई, निरोवलेवाइं असंथडाइं ॥

शीत उष्ण, दंश मशक व अनेक प्रकार के रोग शरीर को दुःखित करे परंतु आक्रंद नहीं करता हुआ वह सब सहन करे और अपने पूर्व कृत कर्म का क्षय करे ॥ १८ ॥ विचक्षण मुनि राग द्वेष व मोह का त्याग कर जैसे वायु से मेरुपर्वत चलित होवे नहीं वैसे आत्मा को गोप कर समभावी बनकर अपने कृत कर्म जानकर परिषह सहन करे ॥ १९ ॥ साधु द्रव्य से ऋद्धि वाला व भाव से अभिमानादिक से ऊंचा न होवे, वैसे ही द्रव्य से दुष्कृत्य कर व भाव से कायरता से नीचा भी होवे नहीं और भी साधु पूजा व निंदा की वांछा करे नहीं वैसे ही समुद्र पाल मुनिने सरल भाव अंगीकार किया व ज्ञान दर्शनादिक निवृत्ति मार्ग प्राप्त किया ॥ २० ॥ असंयम में रति व संयम में अरति का नाश कर गृहस्थ का परिचय नहीं करते हुए अपने आत्मा के हितरूप धन आश्रव का निरुंधन कर शोक ममत्व परिग्रह की तृष्णा छेदन कर उत्तम संयम ज्ञानादि में आत्मा को रमाते रहने लगे ॥ २१ ॥ आत्मा तथा पर

सयओग सुया न असब्भमाहु ॥ १४ ॥ उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ॥ न सव्व सव्वत्थ ऽभिरोयएज्जा न यावि पूयं गरहं च संजए ॥१५॥ अणेगछंदा इह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ॥ भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥ १६ ॥ परीसहा दुव्विसहा अणेगे सीयंति जत्थ बहु कायरा नरा ॥ से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू संगामसीसे इव नागराया ॥ १७ ॥ सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं ॥

घन भयंकर शब्दों सुनकर त्रास पावे नहीं वैसे ही अभिमान करे नहीं ॥ १४ ॥ शुभ कर्मों का विपाक अपने कर्म का फल है ऐसा जानकर उस की उपेक्षा करता हुवा विचरे और प्रिय व अप्रिय जो होवे उसे सहन करे मनोज्ञ अमनोज्ञ जो वस्तु मिले उस की अभिलाषा करे नहीं, वैसे ही अपनी प्रशंसा तथा निंदा की वांच्छा करे नहीं ॥ १५ ॥ इस संसार में जीवों के अनेक प्रकार के अभिप्राय हैं उसका भयभावसे ग्रहण कर देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी महा भयंकर जो परिषह उपसर्ग होवे उसे समभाव से सहन करे ॥ १६ ॥ जो परिषह करे वे दुस्सह और कायर पुरुष उस से दुःखी होते हैं, परंतु जैसे संग्राम में हस्ती किसी से भयभीत होवे नहीं, वैसे ही साधु परिषह से डरावे नहीं ॥ १७ ॥

॥ रथनेमी नामकं द्वाविंशतितम मध्ययनम् ॥

सोरिय पुरमि नयरे, आसि राया महिड्डिए ॥ वसुदेवो त्ति नामेण, राय लक्खण सजुए ॥ १ ॥ तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ॥ तासिं दोण्ह दुवे पुत्ता, इट्ठा राम केसवा ॥ २ ॥ सोरियपुरमि नयरे, आसी राया महिड्डिए ॥ समुद्द विजए नाम, राय लक्खण सजुए ॥ ३ ॥ तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ॥ भगवं अरिट्ठनेमित्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥ ४ ॥ सोऽरिट्ठनेमि

इक्कीसवे अध्ययन में स्त्रियादि रहित स्थानक का सेवन करने का कहा स्त्रियादि सहित स्थानक सेवन करने के दोष इस बावीसवे अध्ययन में कहते है सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण के धारक महर्द्धिक वासुदेव राजा था ॥ १ ॥ उस को रोहिनी व देवकी ऐसी दो स्त्रियों थी इन दोनों में रोहिनी से बलभद्र और देवकी से कृष्ण वासुदेव यों इष्टकारी दो पुत्र का जन्म हुवा ॥ २ ॥ उस ही सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण युक्त व महर्द्धिक समुद्र विजय नाम का राजा रहता था ॥ ३ ॥ उस की सिवा नामक स्त्री से महा यशस्वी भगवान अरिष्टनेमी का जन्म हुवा वे लोक के नाथ व दमीश्वर हुए ॥ ४ ॥ वे अरिष्टनेमी गांभार्यादि गुण युक्त, एक हजार आठ उत्तम लक्षण धारन करने वाले, गौतम गोत्रीय व

इसीहि विण्णाइ महायसेहिं काएण, फासेज्ज परीसहाइं ॥ २२ ॥ सन्नाणनाणो वगए महेसी अणुत्तर चरिओ धम्म सचय ॥ अणुत्तरे नाणधरे जसमी ओभासई सूरिए अतलिक्खे॥२३॥दुविहं खवे ऊणय पुण्णपाव,निरंगण सव्वओ विप्पमुक्के तरित्ता समुद्द व महा भवोघं, समुद्दपाले अपुणागम गए ॥ २४ ॥ त्तिबेमि ॥ इति समुद्दपालीयं इक्कविसम अज्झयण सम्मत्त ॥ २१ ॥ • • •

काया का रक्षक मुनि राग प्रमुख रहित निरुपलेप व स्त्रियादि रहित उपाश्रय का सेवन करे और परिषह सहन करे ऐसे सेवन महातपस्वी ऋषियों ने किया है॥ २२ ॥ महायशस्वी समुद्र पाल ऋषि ज्ञान युक्त दस प्रकार का यति धर्म का सम्यक् प्रकार से आचरन कर जिस प्रकार आकाश में सूर्य प्रकाशता है वैसे ही उत्तम केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारक बने॥ २३ ॥ ज्ञानावरणीय आदि चार घनघातिक व वेदनीयादि चार अघातिक अथवा सुख पुण्य व दुःख—पाप इन आठ ही प्रकार के कर्मों का क्षयकर शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो काया की चपलता रहित अयोगी बन[अपरावतार रूप संसार समुद्र से तीरकर पुनरागमन नहीं ऐसी सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबूस्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं। यह इक्कीसवा अध्ययन हुआ * * * * *

नामो उ, लक्खणस्सर सजुओ ॥ अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥ ५ ॥ वज्जरिसह संघयणा समचउरंसा झसोयरो ॥ तस्स रायमई कन्न, भज्ज जायइ केसवो ॥ ६ ॥ अह सा रायवर कन्ना, सुसीला चारु पेहणी॥ सव्व लक्खण संपन्ना विज्जुसोयामणिप्पभा ॥ ७ ॥ अहाह जणओ तीसे, वासुदेव महिड्ढियं॥ इहागच्छउ कुमारो जा से कन्नं ददामहं ॥ ८ ॥ सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कय कोउय मंगलो ॥ दिव्वजुयल परिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥ ९ ॥ मत्त च

कृष्ण वर्ण के शरीरवाले थे ॥५॥ वज्र ऋषभ नाराच संघयन सम चतुस्र संस्थान मच्छी जैसा सुन्दर उदर श्री नेमीनाथ के लिये श्री कृष्ण वासुदेव उग्रसेन राजा के पास से राजेमती कन्या की याचना की ॥६॥ वह राजेमती कन्या भी सुशीला मनोहर रूपवाली, सर्व लक्षण युक्त और विद्युत, सौदामिनी समान कान्ति वाली थी ॥ ७ ॥ उस राजमती कन्या के पिता उग्रसेन राजाने महर्द्धिक कृष्ण वासुदेव को कहा कि यदि यहां नेमीकुमार पधार कर यहां पर आवे तो मैं मेरी कन्या देऊं ॥८॥ नेमीनाथ भगवान को सर्व औषधि से स्नान कराया, कपाल प्रमुख स्थान पर तीलकमांगलिक किये दीव्य वस्त्र पहिनाये और आभूषण से अलंकृत किये ॥ ९ ॥ वासुदेव के ज्येष्ठ मदोन्मत्त गंध हाथी पर आरूढ होने से जैसे मस्तक

गधहत्थि वासुदेवस्स जेट्ठगं ॥ आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥
अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए ॥ दसार चक्केण य सो, सव्वओ परि
वारिओ ॥ ११ ॥ चउरंगिणीए सेनाए, रइयाए जहक्कम ॥ तुरियाण सन्निना ण
दिव्वेण गगणं फुसे ॥ १२ ॥ एयारिसाए इड्ढीए जुत्तीए उत्तमाइय ॥ नियगाओ
भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥ १३ ॥ अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाण
भयद्दुए ॥ वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धसु दुक्खिए ॥ १४ ॥ जीवियंतं तु संपत्ते,
मंसट्ठा भक्खियव्वए ॥ पासेत्ता से महापन्ने, सारहिं इणमब्बवी ॥ १५ ॥ करस

पर चूड़ामणि सशोभित दीखता है वैसे ही वे दीखते थे ॥ १० ॥ अब ऊँचे छत्र व चामर से सशोभित
दशार्ह के समूह से परवरे हुवे यथाक्रम से चतुरंगिनी सेना सहित गगन को गर्जित करे वैसे वादित्र के
दीव्य शब्द सहित ऐसी गति व उत्तम कांतिवाले यादव कुल में उत्पन्न ऐसे श्री भगवान् नेमीनाथ भगवान
अपने भवन से निकले ॥ १२, १३ ॥ अब नेमनाथ भगवान उग्रसेन राजा के यहां गये तब उनोंने
बाड़े में पशुओं को व पिंजरे में पक्षियों को अति पीड़ित दुःखित व मरन भय से घबराते हुए देखा ॥ १४ ॥
मांस खाने के लिये इन प्राणियों को जीवितव्य नाश होने का अवसर पास आया है ऐसा जान कर
नेमीनाथ भगवान ने सारथी से इस प्रकार बोलने लगे ॥ १५ ॥ यह सब सुख की इच्छा करने

भद्दा इम पाणा, एते सव्वे सुहेसिणो ॥ वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥ १६ ॥ अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उपाणणो ॥ तुज्झ विवाह कज्जमि, भोयावेउ बहु जण ॥ १७ ॥ सोऊण तस्स वयण बहुपाणि विणासण ॥ चिंतेइ से महापन्नो, साणुक्कोसे जिए हिओ ॥ १८ ॥ जइ मज्झ कारणा एए, हम्मति सुबहु जिया ॥ नमे एय तु निस्सेस, परलोगे भविस्सइ ॥ १९ ॥ सो कुंडलाण जुयल, सुत्तग च महायसो ॥ आभरणाणिय सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥ २० ॥ मण

वाले प्राणियों को वाडे में व पिंजरे में किस लिये रोक कर रखे हैं ॥ १६ ॥ तब सारथी कहने लगा कि ये दीन प्राणी आप के विवाह कार्य में बहुत लोगों का जीमन के लिये रोक रखे हैं ॥ १७ ॥ बहुत प्राणियों का विनाश होगा ऐसा उस सारथी का वचन सुनकर जीवों की महा करुणा वाले व महा महाज्ञान नेमिनाथ भगवान इस प्रकार चिन्तवने लगे ॥ १८ ॥ यदि मेरे लिए ये सब प्राणी मारे जावेंगे तो परलोक में मेरा कल्याण नहीं होगा ॥ १९ ॥ उन महा यशस्वी नेमीनाथ भगवानने कुंडल का युगल, कटि मेखला व सब आभरण उस सारथी को दे दिये ॥ २० ॥ और दीक्षा ग्रहण करने के परिणाम से पीछे स्वयं अपने घर आये (वर्षीदान दिया) तब लोकांतिक देव उन की

परिणामेय कए, देवा य जहोइय समोइण्ण ॥ सव्वड्ढीइ सपरिसा, निक्खमण तस्स काउ जे ॥ २१ ॥ देवमणुस्स परिवुडो सीयारयण तओ समरूढो ॥ निक्खमिय बारगाओ रेवययमि ट्ठिओ भगव ॥ २२ ॥ उज्जाण सपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ॥ साहस्सीइ परिवुडो, अह निक्खमईउ चित्ताहिं ॥ २३ ॥ अह स सुगधगधिए तुरिय मउकुचिए ॥ सयमेव लुचइ केसे, पंचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥ २४ ॥ वासुदेवो य ण भणइ, लुत्त केस जिइदिय ॥ इच्छिय

आने की विधि अनुसार मनुष्य लोक में आकर भगवान से बोले अहो जगत् के नाथ तीर्थ प्रवर्तावो फिर नमीनाथ भगवान का दीक्षा उत्सव सब ऋद्धि व सब परिवार से किया ॥ २१ ॥ देव मनुष्य के परिवार से परवरे हुए रत्न की शीविका पर आरूढ होकर द्वारिका नगरी से निकल कर रेवत पर्वत पर रहे ॥ २२ ॥ वहां उद्यान में जाकर शीविका से नीचे उतरे और चित्रा नक्षत्र के योग में एक हजार राजकुमार सहित दीक्षा अंगीकार की ॥ २३ ॥ फिर सर्वाधिपंत बनकर सुगंधित रुचय [वट] १८ हुए बालों का अपन हाथ से पंच मुष्टि लोच किया ॥ २४ ॥ केश लोच करने वाले व

१ कृष्णजी के ८ पुत्र, बलदेवजी के ७२ पुत्र फगमी के १६१ माइ उग्रसेन राजा के ८ पुत्र नमीनाथजी के १८ भाइयों दशसन प्रमुख १ , २१० भाइयों पुत्रों, आठ महा राजा, भभाभ, उन का पुत्र और मरत्त यों सब मीलकर १० ० पुरुष हुए

केसे विहमता वत्तरिगया ॥ ३० ॥ वासुदेवेण्य ण भगइ लुत्तकेम जिइंदिय ॥
ससार सागर घार तर कज लहु लहु ॥ ३१ ॥ सा पव्वइया सति, पव्वाबेमी तहिं
बहु ॥ सयण परियण चेव सीलवना बहुस्सुया ॥ ३२ ॥ गिरि रेवतय जता वासे
णुल्लाउ अंतरा ॥ वासते अंधयारमि, अतो लयणस्स सा ठिया ॥ ३३ ॥ चीवराइ
विसारति, जहा जायत्ति पासिया ॥ रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छादिट्ठा य तीइवि ॥ ३४ ॥

न भ्रम समान काल और कोमल ऐसे बालों का अपने हाथ से लोच किया ॥ ३० ॥ अपने हाथ से केश का लोच करनेवाली राजमतिजी को वासुदेव कहने लगे कि अहो कन्ये! संसार सागर का शीघ्र पार करना. ॥ ३१ ॥ राजमतीने ऐसा जो उस समय उस के साथ उस के स्वजनों का सेवक की और उस के परिवार की बहुत (७००) स्त्रियोंने दीक्षा ली राजमती बहुत शीलवान की ओर पण्डित की पाठी थी ॥ ३२ ॥ दीक्षा धारन कर नेमिनाथजी के दर्शन को जाते मार्ग में वर्षा होने से राजमती के वस्त्र भीग गये इस से गुफा में अंधकार होने से वहां गई ॥ ३३ ॥ अंधकार में प्रथम कोई भी दृष्टिगत नहीं होने से अपने शरीर के सब वस्त्र उतार कर सुकाने लगी और जन्म समय जैसा रूप था वैसा रूप देखकर रथनेमी भग्नचित्तवाला हुआ कि जिस को राजेमतीने पीछे से देखा ॥ ३४ ॥ उस रथनेमी संयति को एकांत मे देख कर वह राजेमती साध्वी

सुट्ठिया नियमव्वए ॥ जाइं कूलंचसीलंच, रक्खमाणी तयं वदे ॥४०॥ जइसि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूवरो ॥ तहाविते न इच्छामि जइसिसक्खं पुरंदरो ॥ ४१ ॥ पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ॥ नेच्छंति वंतयं भुत्तं, कुले जाया अगंधणे ॥ ४१ ॥ धिरत्थु ते जसोकामी जो तं जीविय कारणा ॥ वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥ ४२ ॥ अहं च भोगरायस्स, तंचसि अंधगवण्हिणो ॥ माकुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥ ४३ ॥ जइतं काहिसि

व्रत में निश्चल बनी हुइ जाति कुल व शील की रक्षा करती हुइ इस प्रकार बोलने लगी ॥ ४० ॥ यदि तू रूप से वैश्रमण हो अथवा लालित्य से नलकुबेर हो अथवा साक्षात् सुरेन्द्र हो तो भी तेरी वांच्छा में कदापि करूं नहीं ॥ ४१ ॥ अगंधन कुल में उत्पन्न हुवा सर्प धूम्र सहित दु सह अग्नि में प्रवेश करना वांच्छे परंतु वमन किया हुवा आहार की इच्छा करे नहीं ॥ ४१ ॥ अहो अपयशके कामिन ! तुझे धिक्कार हो क्यों कि मात्र जीवित के लिये वमन की इच्छा करता है इस से तो मरण श्रेय है ॥ ४२ ॥ मैं भोगराजा-उग्रसेन की पुत्री हूं और तू अंधकविष्णु-समुद्रविजय राजा का पुत्र है एसे उत्तम कुल के होकर गंधन कुल के सर्प समान मत होवे इसलिये निश्चल संयम का आचरण कर ॥ ४३ ॥

माव, जाआ दिच्छसि नारिओ ॥ वायाइद्धोव्वहडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ४४ ॥ गोवालो भंडवालोवा, जहा तहव्वाणिस्सरो ॥ एव अणिस्सरो तंपि सामण्णस्स भविस्ससि ॥ ४५ ॥ कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो ॥ इंदियाइं वसे काउ अप्पाणं उवसहरे ॥ ४६ ॥ तीसे सा वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासिय ॥ अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥ ४७ ॥ उग्गं तव चरित्ताण, जाया

जिन को तू देखेगा और मन में काम भोग की अभिलाषा रख भाव तू करेगा तो वायु से इधर उधर भटकने वाले मूल बिना के हडजाति के वृक्ष जैसे तू अस्थिर आत्मा वाला होगा ॥ ४४ ॥ जैसे गोपाल बकरी का स्वामी है परंतु गायों का स्वामी नहीं है, जैसे भंडारी कुंचियों का स्वामी है परंतु द्रव्य का नहीं है वैसे ही तू विषय अभिलाषी बना हुआ चारित्र का स्वामी नहीं हो सकेगा ॥ ४५ ॥ क्रोध मान माया व लोभ का सर्वथा प्रकार से निग्रह करके व इन्द्रियों का संवर कर आत्मा को काम भोग से पीछा खींच ॥ ४६ ॥ उस संयमिनी राजमती के सुभाषित वचन सुनकर जैसे अंकुश से हाथी वश में होता है वैसे ही वह धर्म में स्थिर हुआ ॥ ४७ ॥ मन गुप्ति वचन गुप्ति काय गुप्ति वाले, जितेन्द्रिय व दृढ व्रत वाले रथनेमि निश्चलपना से यावज्जीव चारित्र पाला ॥ ४७ ॥ फिर

क्षोणिगावि केवली ॥ सव्वं कम्म खविताण सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥ ४८ ॥ एव करेति संबुद्धा पंडिया पवि क्खणा ॥ विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसोत्तमो ॥ ४९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति रहनेमिज्ज अज्झयणं सम्मत्त ॥ २२ ॥ ✽ ✽ ✽

उग्र तप का आचरन कर रहनेमी व राजेमती दोनों केवली हुए और सब कर्मों का क्षय कर प्रधान मोक्ष गति को प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ जैसे पुरुषोत्तम रथनेमी कामभोगों से निवर्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए वैसे ही अविचक्षण पंडित व ज्ञानी काम भोगों से निवर्त कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ ४९ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बु स्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह बावीसवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ २२ ॥ ✽ ✽ ✽ ✽

॥ केशि गौतामिकं त्रयोविंशत्तितम मध्ययनम् ॥

जिणे पासेत्ति नामेण, अरहा लोग पूइओ ॥ संबुद्धप्पाय सव्वन्नू धम्मतित्थयरे जिण ॥ १ ॥ तस्स लोग पईवस्स, आसिसीसे महायसे ॥ केसी कुमार समणे विज्जा चरण पारगे ॥ २ ॥ ओहिनाण सुए बुद्धे सीससंघ समाउले ॥ गामाणुगामं रीयंते सावत्थिं पुरमागए ॥ ३ ॥ तिंदुयं नाम उज्जाणं, तम्मि नगर मंडले ॥ फासुए सिज्ज संथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ४ ॥ अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे ॥

पावीसवे अध्ययन में धैर्य धारन करने का कहा सशय से निर्वृतिवाले धैय धारन कर सकते हैं इस लिये इस तेवीसवे अध्ययन में सशय निर्वृत्ति का कथन करते हैं जिस का आत्मा सब पदार्थ न मस्त का ज्ञाता है वैसा कर्मों रूप वैरी जितने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, धर्मतीर्थ करने वाले सब लोक के पूज्यनीय ऐसे पार्श्वनाथ नाम के अरिहंत हुवे ॥ १ ॥ लोक में प्रदीप समान ऐसे श्री पार्श्व नाथ स्वामी का महा यशस्वी ज्ञान व चारित्र का पारगामी केशीकुमार नामक श्रमण था ॥ २ ॥ वह केशीकुमार श्रमण मतिज्ञान श्रुतज्ञान, व अवधिज्ञान सहित अपने बहुत शिष्य वृन्द से ग्रामानुग्राम फिरते हुवे श्रावस्ती नगरी में आये ॥ ३ ॥ उस श्रावस्ती नगरी में तिंदुक नाम का उद्यान था, उस में प्रासुक शैय्या संथारा आज्ञा पूर्वक लेकर उस ही तिंदुक उद्यान में रहे ॥ ४ ॥ उस ही समय

भगव वद्धमाणो त्ति, सव्व लोगम्मि विस्सुए ॥ ५ ॥ ···

सीसे महायसे ॥ भगव गोयमे नामं, विज्जाचरणपारए ॥ ६ ॥ बारसग विऊ बुद्धे, सीससघ समाउले ॥ गमाणुगाम रीयते, से वि सावत्थि मागए ॥ ७ ॥ कोट्ठग नाम उज्जाणं, तम्मि नगर मडले॥फासुए सिज्ज सथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ८ ॥ केसी कुमार समणे, गोयमे य महायसे ॥ उभओ वि तत्थ विहरिंसु, अल्लीण सुसमाहिया ॥ ९ ॥ उभओ सीस सघाण, सजयाण तवस्सिण॥तत्थ चिंता समुप्पन्ना, गुणवताण ताइणं ॥ १० ॥ केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो ॥ आयार धम्म

में सब लोक में प्रसिद्ध धर्म तीर्थंकर भगवान श्री वर्धमान स्वामी विचर रहे थे ॥ ५ ॥ उन लोक प्रदीप को महा यशस्वी ज्ञान व चारित्र का पारगामी भगवान गौतम नामका शिष्य था ॥ ६ ॥ बारह अंग के ज्ञाता, भगवान गौतम स्वामी अपने शिष्य समुदाय सहित ग्रामानुग्राम फिरते हुए श्रावस्ती नगरी में आये ॥७॥ उस नगरी में उसमें कोष्टक नामका उद्यान था वहां प्रासुक शैय्या संथारा देखकर निवास किया ॥ ८ ॥ सुसमाधिवंत मन वचन काया की गुप्ति से गुप्त और महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम ये दोनों वहां विचरन लगे ॥ ९ ॥ षट् काया के रक्षपाल संयती तपस्वी व अनेक गुणवंत ऐसे दोनों के शिष्य समुदाय में चिंता उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ चार महा व्रतादि रूप हमारा धर्म कैसा, और यह पांच महा

पाणिही इमा वा सा व करिसी॥ ११॥ चाउज्जामोय जो धम्मो इमा जोपचसिक्खिआ वेसिओ वद्धमाणेण, पासेणय महामुणी ॥ १२ ॥ अचेलओ य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ॥ एग कज्जपवन्नाण, विसेसे किं नु कारण ॥ १३ ॥अहते तत्थ सीसाण, विन्नाय पवितक्किय ॥ समागमे कयमई, उभओ केसि गोयमा ॥ १४ ॥ गोयमे पडिरूवन्नू सीससंघ समाउले ॥ जेट्ठकुल मवक्खतो तिंदुयं वणमागओ ॥ १५ ॥

मवाले रूप इन का धर्म कैसा ? इन की और हमारी आचार धर्म की क्रिया कैसी है ? ॥ ११ ॥ चार महा व्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ स्वामीने कहा है और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा है ॥ १२ ॥ श्री पार्श्वनाथ भगवान का सचेलक (प्रमाण रहित वस्त्र धारन करने का) और महावीर स्वामी का अचेलक [प्रमाण सहित वस्त्र धारन करने का] धर्म है दोनों का मुक्ति साधन रूप एक कार्य होने पर इतनी विशेषता होने का क्या कारन है ? ॥ १३ ॥ केशी और गौतम दोनोंने अपने २ शिष्य का संशय युक्त अभिप्राय जानकर मीलने का विचार किया ॥ १४ ॥ विनय मार्ग व अवसर के ज्ञाता गौतम स्वामी अपने से ज्येष्ठ कुल वाले केशी स्वामी को जानकर अपने शिष्य के परिवार से तिंदुक उद्यान में आये ॥ १५ ॥ गौतम स्वामी को आते हुए देखकर केशी स्वामी ने अपने सब परिवारसे शुद्ध मन से

केसी कुमार समणं, गोयमं दिस्समागयं ॥ पडिरूवं पडिवत्तिं, सम्मं संपडिवज्जइ ॥
पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ॥ गोयमस्स निसेज्जाए खिप्पं सं
॥ १७ ॥ केसीकुमारसमणे, गोयमे य महायसे ॥ उभओ निसण्णा सोहंति,
चंद सूरसमप्पभा ॥ १८ ॥ समागया बहु तत्थ पासंडा कोउगेणयं ॥ गिहत्थाणं
च णेगाओ साहस्सीओ समागया ॥ १९ ॥ देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस्स
किन्नरा ॥ अदिस्साण च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥ २० ॥ पुच्छामिते

गौतम स्वामी की सेवा भक्ति की ॥ १६ ॥ फासुक शाली व्रीही, कोद्रव व राल यों चार जात का पराल और पांचवा दर्भ प्रमुख घास वगैरह शीघ्रमेव गौतम स्वामी के बैठने के लिए (बिछा) दिया ॥ १७ ॥ महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम स्वामी दोनों वहां बैठे तब वे चंद्र व सूर्य समान दीखने लगे ॥ १८ ॥ वहां कितनेक पाखंडियों कुतूहल देखने एकत्रित हुए वैसे ही हजारों गृहस्थ भी वहां आये ॥ १९ ॥ देव, दानव गंधर्व, यक्ष, राक्षस किन्नर और भूत वगैरह अदृश्य पने वहां कौतुक देखने आये ॥ २० ॥ अब केशी स्वामी गौतम स्वामी से कहने लगे कि—अहो महानुभाव ! मैं आप से कोई प्रश्न पूछना चाहता हूं, इस तरह बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार

महामागा, केसी गोयम मब्बवी ॥ तओ केसिं बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ २१ ॥
पुच्छ भंते ! जहिच्छं ते, केसी गोयममब्बवी ॥ तओ केसी अणुन्नाए, गोयम
इण मब्बवी ॥ २२ ॥ चाउज्जामो इमो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ॥ देसिओ
वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २३ ॥ एगकज्ज पवन्नाणं, विसेसे किं नु कारण॥
धम्मे दुविहे मेहावि, कहं विप्पच्चओ न ते ॥ २४ ॥ तओ केसिं बुवंत तु,
गोयमो इण मब्बवी ॥ पन्ना समिक्खए धम्मतत्तं, तत्तविणिच्छियं ॥ २५ ॥

कहने लगे अहो भगवन् ! केसी आप की इच्छा होवे वैसा पूछो इस तरह आज्ञा लेकर केशी
स्वामी गौतम स्वामी से प्रश्न पूछने लगे ॥ २१ २२ ॥ चार महा व्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ भगवान
ने कहा और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा ये दोनों मोक्ष पहुंचने का एक ही कार्य
अंगीकार कर प्रवर्तते हैं तो इन में ऐसी विशेषता होने का क्या कारन है ? अहो मेधाविन् ! इस
तरह दो प्रकार के धर्म में आप को क्या विभ्रम नहीं होता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार बोलते हुए केशी
स्वामी को गौतम स्वामी तत्त्व के निश्चय के लिये अपनी बुद्धि से विचार कर इस प्रकार धर्म का
तत्त्व कहने लगे ॥ २५ ॥ प्रथम तीर्थंकर के समय में साधु सरल और मूर्ख होते हैं पश्चिम तीर्थंकर

पुरिमा उज्जुजड्डाओ, वंकजड्डाओ पच्छिमा ॥ मज्झिमा उज्जुपन्नाओ, तेण धम्मे दुहाकए

के समय में साधु वक्र और मूर्ख होते हैं बीच के बाइस तीर्थंकर के समय में साधु सरल और प्रज्ञावान होते हैं इस लिये धर्म के दो भेद किये हैं कथा—प्रथम तीर्थंकर के साधु बाहिर जाकर देरसे आने से गुरुने पूछा इतनी देर क्यों लगी तब वे बोले-नृत्य का-नट का तमाशा देखने खडे रहेथे गुरु बोले-साधु को नटका तमाशा नहीं देखना उनोंने वचन प्रमाण किया अन्य दिन देर से आने गुरुजीने से पूछा, तब बोले कि-आज नटनी का तमाशा देखने खडे रहे थे गुरु बोले उस दिन मना किया था ना साधू बोले हमने नटनी का तमाशा देखा नहि परन्तु नटनी का देखा है. गुरु बोले साधु को तमाशा नहीं देखना उनोंने वचन प्रमाण किया था फिर किसी भी प्रकार का तमाशा नहीं देखा मध्य के तीर्थंकर के साधु बाहिर जा देर से आने से गुरुने पूछा तब बोले-नटका तमाशा देखने खडे थे गुरु बोले साधु को नटका तमाशा नहीं देखना आज्ञा प्रमाण की अन्यदा नटनी का तमाशा होता देख विचार किया नटनी का तमाशा देखना तो कुदरती मना हो गया क्यों कि यह तो स्त्री है, ऐसा विचार कर नीची दृष्टी से स्वस्थान आगये अन्तिम तीर्थंकर के साधु देर से आने से गुरुने पुछा तब बोले नटनी का तमाशा देखने खडे थे, गुरु बोले-साधु का तमाशा नहीं देखना साधु बोले-ठीक है अन्यदा देरसे आने से गुरु ने पूछा तब बात को छिपाते हुवे बोले-नट का तमाशा

देखने खडे रहे गरु बोले उस दिन मना किया था ना ? साधु बोले नटनीके तमाशा की मना की थी नट का तमाशा देखने में क्या पाप है ! क्यों पुरुषों को भी नहीं देखना ? आँख मीच रखना ? वगैरा बकवाद करने लगे इति॥ ।।प्रथम तीर्थंकर के साधु ईर्यावही का कायोत्सर्ग बहुत देर से पारने से गुरु ने पूछा-आज कायुत्सर्ग में इतनी देर क्यों लगी ! साधु बोले-दया धर्म चिन्तवता था- कि आषाढ का महिना आया है पानी की वृष्टि भी हुइ है, मेरे बच्चे जो अब खेती में धान्य बावेंगे सुखी होवेंगे ऐसा विचार किया गुरु भी बोले-साधु को सा भी विचार नहीं करना उनोंने आज्ञा प्रमान की ॥ मध्यम तीर्थंकरों के साधु वो ऐसा विचार करे नहीं ॥ अब अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के इ भाव का दृष्टान्त-कोइ श्रीमन्त सेठजी दूसरी वक्त किसी ग्रामिण गरीब वणिक की कन्या से पाणिग्रहण कर लाये वह घर का ठाठ देख पति से कहने लगी आप के यहा हजारों रुपये के पगार वाले मुनीम गुमास्ते हैं तो मेरे भाइ को भी रख लेना ! सेठ बोले वे नौकरी योग्य नहीं है इतने पर तू चाहती हो तो घर का कार्य कराने तेरे पास रखना होतो रख ले दो चार रुपये महिना दे दिया करेंगे सेठानीने उदास हो उसे घर में रखा सेठानीने उस को दुकान पर रखने बहुत आग्रह करने लगी तब सेठजीने उस की बुद्धि की परीक्षा सेठानी को बताने उस की के आठ का बहुत बोलने का स्वभाव होने से उस से कदभी बोले की किसी के साथे नहीं बोलना उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा वह किसी कारण में द्वार बंध कर सोता

तब शेठानीने घबरा कर शेठ को बोलाये शेठजीने भी बहुत पुकारा परंतु उत्तर नहीं दिया तब कमाडो उखाड कर अन्दर देखे तो चुप बैठा है पुछा की इतना इतना पुकारा तो भी क्यों नहीं बोला ? उसने कहा आपने कहा था की सामे नहीं बोलना इसलिये मैं नहीं बोला शेठ हस के बोले अरे ! काम होतो जरूर बोलना उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा शेठ क मन में पक्की की राबडी खाने की आइ, तब शेठानीने राबडी बना अपन भाइ से कहा शेठजी को बुला शेठ बहुत लोगों के मध्य में बैठेथे तो वहां जा कर पुकारा, चलो शेठजी राबडी तैयार होगइ है शेठजी शरमिंद हो घर आये और उसे उपालंभ दिया तब वह बोला कि आपने ही कहा था की काम होतो जरूर बोलना, शेठजी मुस्करा कर बोले अरे! काम होतो धीरसे कानमें आकर कहना परंतु पुकारना नहीं उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा शेठजी के घरमें आग लगी तब शेठानी बोली—अरे जा शेठजीको बोला वह गया धीरे २ शेठजी के पास आकर बैठा, जब शेठ काम से निवर्ते तब कानमे बोला—चलो ! घर में अंगार लगी है शेठजी बोले—अरे इतनी देर क्यों नहीं पुकारा अब तो घर जलकर भस्म होगया होगा ! वह बोला आपकी आज्ञा प्रमाने चलता हू तोभी आप हरवक्त मुझे ठपका देतेहो तब शेठ शेठानी से बोले इसे यहां से रवाने कर शेठानी बोली यह तो मूर्ख है परंतु हरवक्त आपके साथ रखोगे तो होंश्यार होजायगा शेठ परगामजाते उसे साथ लिया और उसका चोरी का स्वभाव होने से बोले देख किसी की कोइ वस्तु पडी होतो उसे हाथ नहीं लगाना उसने आज्ञा प्रमान की आगे जाते शेठजी का दुशाला पडगया उसने उठाया नहीं व

॥ १९ ॥ पुरिमाण दुव्विसोज्झोओ, चरिमाण दुरणुपालओ ॥ कप्पो मज्झि

शेठजी बोले-अरे मूर्ख ! दूशाला पडगया उसे उठाकर क्यों नहीं लाया ? वह बोला-आपने मना किया है कि किसी की कोइ वस्तु पडी होवो उठाना नहीं इस लिये मैंने नहीं उठाया शेठजी लोहेव हो बोले. अरे ! दूसरे का माल नहीं उठाना परन्तु घर का माल तो जरूर उठा लेना वह आज्ञा प्रमान कर घोडे के पीछेर आता था घोडेने लिद की कि तत्काल उसने उसे उठा दूशाले में बांध ली आगे शेठजीने दूशाला मांगा तब शेठ के हाथ में दिया शेठने पूछा इस में क्या बन्धा है वह बोला कि अपने घोडे की लीद शेठ बोले अरे मूर्ख ! दूशाला का सत्यानाश करडाला वह बोला आपने ही कहा था की अपने घर की वस्तु तो जरूर उठा लेना शेठ बोले ठीक ! तेरे साथ में भी मूर्ख बना ! रात को सोती वक्त शेठ बोले जागता है होश्यार रहना निगा रखना उसने आज्ञा प्रमान की सब रात सोया नहीं रात को चोर आ घोडा लगये परंतु कुछ बोला नहीं फजर शेठजीने पूछा घोडा कहां है वह बोला-चोर लगये शेठ-अरे तो तूमे कैसे लेजाने दिया वह बोला-मुझे तो फक्त निगा रखने की ही आज्ञा दी थी, बोलने का कब कहा था शेठजी घेरस घर को आये, स्त्री से सब बात कही उसे निकाल देया ऐसे अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र और जड होते हैं इति प्रथम प्रश्न ॥ २ ॥ • ॥

॥ २६ ॥ प्रथम तीर्थंकर के साधु को निरतिचारपना से धर्म पालना दुष्कर,

मगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥ २७ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झ तमे कहसु गोयमा ! ॥२८॥ अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ॥ देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २९ ॥ एगकज्ज पवन्नाणं, विसेसे किंनु कारण ॥धम्मे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ न ते ॥ ३० ॥ केसिमेव वयत तुं, गोयमो इणमब्बवी॥ विन्नाणेण समागम्म, धम्म साहण मिच्छिय

चरिम तीर्थंकर के समय के साधु को निरातिचारपने धर्म का आचरन करना दुष्कर परंतु बीच के बाइस तीर्थंकर के साधु को धर्म समजना भी सुगम और उस का आचरना भी सुगम होता है ॥ २७ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है इस से मेरा संशय मीट गया अब दूसरा संशय मुझे रहा है सो अहो गौतम ! उसे आप कहो ॥ २८ ॥ अब दूसरा केशी स्वामी गौतम स्वामी से पूछने लगे-अहो गौतम! मानोपेत श्वेत वस्त्र रूप अचेल धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा और मानोपेत रहित अर्थात् वस्त्र की लम्बाइ चौडाइ व मूल्य के प्रमाण रहित धर्म श्री पार्श्वनाथ महा मुनिने कहा तो इस में ऐसी भिन्नता क्यों कही ॥२९॥दोनों का मोक्ष जाने का एक ही उद्देश है तो इतनी भिन्नपना होने का क्या कारन है? अहो मेधाविन् ! इस द्विविध धर्म में आप को क्या आश्चय नहीं होता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार बोलते हुवे केशीस्वामी को गौतमस्वामी विज्ञान से सम्यक् प्रकार जानकर इस प्रकार बोलने लगे कि-धर्म साधन करने की इच्छा ! के लिये वस्त्र की आज्ञा भगवानने दी है ॥ ३१ ॥

॥ ३१ ॥ पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविह विगप्पणं ॥ जत्तत्थ गहणत्थ च, लोगे लिंगपओयण ॥ ३२ ॥ अह भवे पइन्नाउ, मोक्खसब्भूय साहणा ॥ नाण च दसणं चेव, चरित्त चेव निच्छए ॥ ३३ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नो वि ससओ मज्झं, त मे कहसु गोयमा ॥ ३४ ॥ अणेगाण सहस्साण मज्झे चिट्ठसि गोयमा ॥ ते य ते अहिगच्छाति, कह तेनिज्जिया तुमे ॥ ३५ ॥ एगे जिए

साधु का वेष लोक में प्रतीत करने वाला है वैसे ही साधु के वेष में कदाचित मन सयम से विपरीत प्रवर्ते तो ऐसा विचार भी आजावे कि मैं साधु हूं मुझे अनाचार का सेवन करना अनुचित है इस से संयम का निर्वाह के लिये भी साधु का वेष पहिनने का प्रयोजन है ॥ ३२ ॥ मोक्ष का साधन भूत साधु का वेष व्यवहार नय से है परंतु निश्चय नयसे तो ज्ञान, दर्शन, व चारित्र ही मोक्ष का साधन है ॥३३॥ तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि-अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा बहुत अच्छा है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है, अब मुझे और भी सशय है कि जिस का आप कथन करो ॥ ३४ ॥ अब तीसरा केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम ! हजारो शत्रु के बीचे में तुम रहे हो वे ही तुम को जीतने के लिये आते हैं तो तुमने उन शत्रुओं का कैसे जय किया ॥ ३५ ॥ तब गौतम स्वामी बोलने लगे कि

जिया पच, पच जिए जिया दस ॥ दसहा उ जिणित्ताण, सव्व सत्तू जिणामहं ॥ ३६ ॥ सत्तूय इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्ववी ॥ केसीमेवं वुवंतंतु गोयमो इणमब्ववी ॥ ३७ ॥ एगप्प अजिए सत्तू कसाया इंदियाणि य॥ ते जिणित्ता जहा नायं, विहरामि अहमुणी ॥ ३८ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झं त मे कहसु गोयमा ॥ ३९ ॥ दीसंति बहवे लोए, पसबद्धा

एक को जीतने से पांच जीताते है पांच को जीतने से दश जीताते हैं और दश को जीतने से सब शत्रुओं को मने जीते हैं ॥ ३६ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि वे शत्रु कौन से २ हैं ? इस प्रकार बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार बोलने लगे ॥ ३७ ॥ मन की दुष्ट प्रवृत्ति रूप एक आत्मा अजेय शत्रु है इस लिये जिनोंने मन को जीता है उनोंने १ मन व ४ कषाय यों पांच को जीते हैं जिनोंने मन व कषाय यों पांच को जीते है उनोंने पांच इन्द्रियों सहित दश को जीते है इन दश को जीतने से सब शत्रुओं का जय होता है इसलिये अहो मुने! सब शत्रुओं को जीत कर जिस प्रकार जिन शासन का न्याय है इस प्रकार मैं विचर रहा हूं ॥ ३८ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की प्रज्ञा बहुत अच्छी है जिस से मेरे संशय का छेदन हुवा है अहो गौतम! मुझे और भी संशय हुवा है जिस को आप कहे ॥ ३९ ॥ चौथा प्रश्न—अहो मुने! इस लोक में बहुत से जीव बंधन से बंधाये हुए

सरीरिणो ॥ मुक्कपासो लहुभूओ, कह तं विहरसि मुणी ॥ ४० ॥ ते पासे सव्वसो छित्ता, निहंतूण उवायओ ॥ मुक्कपासो लहुभूओ, विहरामि अहं मुणी ॥ ४१ ॥ पासाय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ४२ ॥ रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ॥ ते छिंदित्ता जहा नायं ॥ विहरामि जहक्कम ॥ ४३ ॥ साहु गोयम पण्णा ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥ ४४ ॥ अंतोहियय संभूया, लया

ग्रहित होते हैं परंतु तुम उन बंधनों को छोड कर लघुभूत बन कर किस प्रकार विचरते हो ॥ ४० ॥ तब गौतम स्वामी बोले अहो मुने ! किसी उपाय से उस पाश का सर्वथा प्रकार से छेदन कर मुक्त पाश वाला होकर लघुभूत अप्रतिबंध बनकर मैं विचरता हूं ॥ ४१ ॥ तब केशी स्वामी गौतम को कहने लगे कि वे पाश कौनसे २ हैं ? तब गौतम स्वामी केशी स्वामी को इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ४२ ॥ रागद्वेष ने उत्पन्न हुआ तीव्र भयंकर स्नेह पाश है, उस का छेदन कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे यथानुक्रम से मैं विचरता हूं ॥ ४३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा श्रेष्ठ है इस से मेरा संशय का छेदन हुवा है अब अन्य भी मेरा संशय है जिस को आप कहे. ॥ ४४ ॥ अभ्य

चिट्ठइ गोयमा ॥ फलेइ विसभक्खाणि, सा उ उद्धारिया कह ॥ ४५ ॥ त लय सव्वसो छिचा, उद्धरिचा समूलिय ॥ विहरामि जहा नाय, मुक्कोमि विस भक्खण ॥ ४६ ॥ लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव वयत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ४७ ॥ भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ॥ तमुद्धरित्ता जहा नायं, विहरामि जहा सुह ॥ ४८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नोमे संसओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ४९ ॥सपज्ज-

पानवा हृदय में एक लता उत्पन्न होकर रही है, जिस को विष समान फल लगते हैं अहो गौतम ! तुमने उस को कैसे निकाल डाली ? ॥ ४५ ॥ गौतम स्वामी कहने लगे कि उस लता को मूल में से ही सर्वथा प्रकार से तोड कर मैंने निकाल डाली है और विषमय फल के भक्षण से रहित बना हुआ जैसे जैन शासन का न्याय है उस अनुसार मैं विचरता हूं ॥ ४६ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि यह लता कौनसी है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देते हैं ॥ ४७ ॥ इस संसार में तृष्णा रूप भयंकर व भीम फल देने वाली लता है उस को निकाल कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे सुख पूर्वक मैं विचरता हूं ॥ ४८ ॥ पुनः केशी स्वामी कहने लगे कि आप की प्रज्ञा अच्छी है क्यों कि आपने मेरे संशय का छेदन किया अब मुझे और भी संशय है कि जो आप कहेंगे ॥ ४९ ॥ प्रश्न छट्ठा-केशी स्वामी कहने

लिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ॥ जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥ महामेहप्पसूयाओ, गिज्झवारि जलुत्तम ॥ सिंचामि सयय देहं, सित्ता नोय डहति मे ॥ ५१ ॥ अग्गीय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेवं वयंतं तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ५२ ॥ कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं ॥सुयधाराभिहया संता, भिन्नाहु न डहतिमे ॥ ५३ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झ, तंमे कहसु गोयमा ॥ ५४ ॥

अहो गौतम! हृदय में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है वह शरीर में रही हुई शरीर को जला रही है सो तुमने उसे कैसे बुझाइ ॥ ५० ॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि मैं महामेघ में से उत्पन्न हुआ पानी में से श्रेष्ठ पानी लेकर निरंतर शरीर पर सिंचन करता हूं इस तरह सिंचन करने से वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५१ ॥ तब केशी स्वामी बोले कि वह अग्नि कोनसी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ५२ ॥ अहो केशी मुने! कषाय रूप अग्नि कही है और श्रुत, शील व तप रूप जल कहा है. श्रुत रूप पानी की धारा से सिंचन कराइ हुइ कषाय रूप अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५३ ॥ अहो गौतम! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है अब और भी मेरा संशय है जिस का आप निवारण करो ॥ ५४ ॥ अब साधवा केशी स्वामि

अथ साहसिओ भीमो, दुट्ठासो परिधावई ॥ जासि गोयम आरूढो, कहंतेण न हीरसि ॥ ५५ ॥ पहावतं निगिण्हामि, सुयरस्सी, समाहिय ॥ न मे गच्छइ उम्मग्ग, मग्गच पडिवज्जई ॥ ५६ ॥ आसेय इइ के वुचे, केसी गोयम मब्ववी ॥ केसिमेव वयततु गोयमो इणमब्ववी ॥ ५७ ॥ मणो साहसिओ भीमो दुट्ठासो परिधावई ॥ त सम्मं तु निगिण्हामि धम्म सिक्खाइ कथग ॥ ५८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ५९ ॥ कुप्पहा वहवो लोए

बोले कि अहो मुने ! यह साहसिक भयकर दुष्ट अश्व चारों दिशा में दौड रहा है अहो गौतम ! उस पर आरूढ होने से क्या तुम को वह उन्मार्ग में नहीं लेजाता है ? ॥ ५५ ॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि जब यह घोडा चारों दिशा में दौडता फिरता है तब सिद्धांत रूप लगाम से मैं उस का निग्रह करता हू इस से वह मुझ उन्मार्ग में नहीं लेजाता है परतु सन्मार्ग ही अगीकार कराता है ॥ ५६ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि वह अश्व कौनसा है ? तब गौतम स्वामी उस का उत्तर देते हैं ॥ ५७ ॥ मन रूपी साहसिक भयकर दुष्ट अश्व दौड रहा है उस का धर्म की शिक्षा से जातिवत घोडा जैसे सम्यक् प्रकार से निग्रह करता हू ॥ ५८ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे सशय का छेदन हुआ अब और भी अन्य सशय मुझे रहा है कि जिस का आप निर्णय करें, ॥५९॥ प्रश्न आठवा

लिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ॥ जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥ महामेहप्पसूयाओ, गिज्झवारि जलुत्तम ॥ सिंचामि सयय देह, सित्ता नोय डहति मे ॥ ५१ ॥ अग्गीय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव बयत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ५२ ॥ कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं ॥सुयधाराभिहया संता भिन्नाहु न डहतिमे ॥ ५३ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, तंमे कहसु गोयमा ॥ ५४ ॥

लगे अहो गौतम! हृदय में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है वह शरीर में रही हुई शरीर को जला रही है सो तुमने उसे कैसे बुझाइ ?॥५०॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि मैं महामेघ में से उत्पन्न हुआ पानी में से श्रेष्ट पानी लेकर निरंतर शरीर पर सिंचन करता हूं इस तरह सिंचन करने से यह अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५१ ॥ तब केशी स्वामी बोले कि यह अग्नि कौनसी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ५२ ॥ अहो केशी मुने! कषाय रूप अग्नि कही है और श्रुत, शील व तप रूप जल कहा है श्रुत रूप पानी की धारा से सिंचन कराइ हुइ कषाय रूप अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५३ ॥ अहो गौतम! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है अब और भी मेरा संशय है जिस का आप निवारण करो ॥ ५४ ॥ अब सातवा-केशी स्वामी

सरणं गई पइट्ठाय, दीव क मन्नसि मुणी ॥ ६५ ॥ अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ॥ महाउदग वेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥ ६६ ॥ दीवे य इइ के वुत्ते केसी गोयम मब्बवी ॥ केसीमेवं वयत तु, गोयमो इणमब्बवी॥ ६७ ॥ जरामरणवेगेणं वुज्झमाणाण पाणिण ॥ धम्मो दीवो पइट्ठाय, गई सरणमुत्तम ॥ ६८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नो वि, संसओ मज्झं, त मेकहसु गोयमा ॥ ६९ ॥ अण्णवंसि महोहंसि, नावा वि परिधावई ॥ जंसि गोयमारूढो, कहं पार गमिस्ससि

डूबते हुवे प्राणियों को महाज के प्रतिष्ठान जैसे आधारभूत द्वीप किसको मानते हो ? ॥ ६५ ॥ गोतम स्वामी उत्तर देने लगे कि पानी के बीच में महा आलयवाला एक बड़ा द्वीप है वहां पर पानी के वेग की गति भी नहीं होती है ॥ ६६ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि यह द्वीप कौनसा है ? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी बोलने लगे ॥ ६७ ॥ जरामरण पानी के वेग में प्राणियों डूब रहे हैं इस में धर्म रूप द्वीप का ठहरने के लिये उत्तम शरण है ॥ ६८ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इसी से मेरे संशय का छेदन हुवा अब अन्य भी संशय मुझे है सो आप इस का खुलासा करो ॥ ६९ ॥ प्रश्न दसवा—पानी के महा प्रवाह रूप समुद्र में नावा परिभ्रमण कर रही है अहो गौतम ! उस में बैठ कर तुम कैसे समुद्र उत्तीर्ण होते हो ॥७०॥

जेहिं नस्सांति जंतुणो ॥ अद्धाणे कह वट्टंते, त न नस्ससि गोयमा ॥ ६० ॥ जेय मग्गेण गच्छंति जेय उम्मग्ग पट्ठिया ॥ ते सव्वे वेइया मज्झं, त न नस्सामहं मुणी ॥ ६१ ॥मग्गेय इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेवं बुवंततु गोयमो इण मब्बवी ॥ ६२ ॥ कुप्पवयण पासंडी, सव्वे उम्मग्ग पट्ठिया ॥ सम्मग्गंतु जिणक्खाय एस मग्गेहि उत्तमे ॥ ६३ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ६४ ॥ महा उदग वेगेण, वुज्झमाणाण पाणिण

अहो मुन ! इस लोक में बहुत कुपंथ हैं इस से जीवों का विनाश होता है अहो गौतम ! ऐसे मार्ग में रहता हुआ तू क्यों नहीं नष्ट होता है ? ॥६०॥ तब गौतम स्वामी कहने लग जो कोई सुमार्ग में जाता है और जो कोई कुमार्ग में जाता है वे सब मैंने जाने हैं, इस से अहो मुने ! मैं नष्ट नहीं होता हूं ॥ ६१ ॥ तब केशी स्वामी गौतम स्वामी को कहने लगे कि वे मार्ग कौन से हैं ? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे ॥ ६२ ॥ कुप्रवचन रूप ३६३ कपिलादि पाखंडी ये सब उन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले हैं और सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाला एक वीतराग प्रणीत मार्ग श्रेष्ट है ॥ ६३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ

उज्जोय, सव्वलोगंमि पाणिण ॥ ७५ ॥ उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोय पभंकरो ॥ सो करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयमि पाणिण ॥ ७६ ॥ भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी केसिमेवं वयत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ७७ ॥ उग्गओ खीण संसारो, सव्वन्नू, जिण भक्खरो ॥ सो करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयमि पाणिण ॥ ७८ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ तमे कहसु गोयमा ॥ ७९ ॥ सारीर माणसे दुक्खे वुज्झमाणाण पाणिण ॥ खेमसिव

प्राणी रहे हैं सो संपुर्ण लोक में रहे हुए प्राणियों को कौन प्रकाश करेगा ? ॥ ७५ ॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि सब लोक में प्रकाश करने वाला निर्मल भानु उदित हुवा है वही सब लोक में प्राणियों को उद्योत करेगा ॥ ७६ ॥ तब केशी स्वामी पूछने लगे कि वह सूर्य कौनसा है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ७७ ॥ जिस का संसार क्षय हुवा है और जो सर्वज्ञ है वह जिनेश्वर रूप भास्कर उदित हुवा है और वही सब लोक में प्राणियों को उद्योत करेगा ॥ ७८ ॥ तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरा संशय दूर हो गया है अब और भी मुझे संशय है कि जो आप दूर करें. ॥ ७९ ॥

॥ ७० ॥ जाउ अस्साविणी, नावा नसा पारस्स गामिणी ॥ जा निरस्साविणी नावा,
साउ पारस्स गामिणी ॥ ७१ ॥ नावा य इइ का वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥
केसी मेव वयतं तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ७२ ॥ सरीर माहु नावत्ति, जीवे
वुच्चइ नाविओ ॥ ससरो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो ॥ ७३ ॥ साहु
गोयम पन्नाते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु
गोयमा ॥ ७४ ॥ अन्धयार तमो घोरे, चिट्ठति पाणिणो ॥ को करिस्सइ

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि नावा दो प्रकार की है जिस नावा में छिद्र से पानी आता है वह नावा समुद्र को पार नहीं जासकती है अर्थात् बीच में डुबती है और जो नावा आश्रव छिद्र रहित है वह नावा समुद्र को पार पहुँच सकती है ॥ ७१ ॥ तब केशी स्वामी पुछने लगे कि वह नावा कौनसी है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ७२ ॥ संसार रूप समुद्र में शरीर रूप नावा है और जीव उस का नाविक कहा है जो आश्रव रूप छिद्र का निरुंधन करते है वे साधु महा पुरुषों संसार समुद्र को तीर कर पार होते हैं ॥ ७३ ॥ अब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की बुद्धि अच्छी है आपने मेरा संदेह दूर कर दिया है अब और भी मेरा संदेह है कि जो आप दूर करे ॥ ७४ ॥ प्रभ अग्यारहवा—जहा दृष्टि का विषय नहीं होवे वैसे महा घोर अंधकार में बहुत

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो॥ नमो ते संसयातीत, सव्वसुत्तमहोयही ॥ ८५ ॥ एव तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे ॥ अभिवंदित्ता सिरसा, गोयम तु महायस ८६ ॥ पंचमहव्वय धम्म, पडिवज्जइ भावओ ॥ पुरिमस्स पच्छिमंमि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥ ८७ ॥ केसी गोयमओ निच्च तम्मि आसि समागमे ॥ सुयसील समुक्करिसो, महत्थत्थ विणिच्छओ ॥८८॥ तोसिया परिसा सव्वा सम्मग्ग समुवाट्ठिया

का छेदन किया है अहो महासमुद्र समान सब शास्त्र के पारगामी व सब संशय रहित ऐसे आप को नमस्कार होवो ॥ ८५ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार सब संशय का छेदन होने से वह घोर पराक्रम वाले केशी स्वामी महा यशस्वी गौतम स्वामी को मस्तक से नमस्कार करके चरिम तीर्थंकर का सुख देने वाला मार्ग में गौतमस्वामी के पास से पांच महाव्रत रूप धर्म भाव से अंगीकार किया ॥ ८७ ॥ केशी स्वामी व गौतम स्वामी का यहां तिंदुक उद्यान में समागम हुआ उनोंने महा सिद्धान्त संबंधी चारित्राचार की वृद्धि के लिये तथा अपने शिष्यों के समाधान के लिये निर्णय किया ॥ ८८ ॥ उक्त केशी स्वामी व गौतम स्वामी का संवाद सुनकर दोनों का (२००० साधुओं को) एकत्रित हुए देखकर सब परिषदा संतुष्ट हुई मोक्ष मार्ग के साधन के लिये उद्यमवंत बनी सम्यक्

मज्झावाहं, ठाण किं मन्नसी मुणी ॥८०॥ अत्थि एग धुवट्ठाण, लोगग्गमि दुरारुहं॥ जत्थ नत्थिजरा मच्चु वेयणा वाहिणो तहा ॥ ८१ ॥ ठाणेइइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसीमेव वयततु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ८२ ॥ निव्वाणति अबाहति, सिद्धी लोगग्गमेवय ॥ खेम सिव अणाबाहं, ज तरति महेसिणो ॥ ८३ ॥ तठाणं सासय वास, लोयग्गमि दुरारुहं॥ज सपत्ता न सोयति, भवोहत करा मुणी ॥ ८४ ॥

प्रश्न पारख्या—शारीरिक व मानसिक दुःख से पीडित बने हुए प्राणियों का अव्याबाध कल्याणकारी स्थान तुम कौनसा मानते हो ? ॥ ८० ॥ गौतम स्वामी उत्तर देने लगे कि लोक के अग्र भाग में एक निश्चल स्थानक रहा है कि जहां जाना महा दुष्कर है उस स्थान में जरा, मृत्यु, वेदना व व्याधि नहीं है ॥८१॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि वह स्थान कौनसा है ? तो गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥८२॥ अहो केशी! उस स्थान का नाम निर्वाण है, कर्म रूपी दावानल को बुझाकर शीतलीभूत बने हुवे जीव वह स्थान प्राप्त कर सकते हैं उन के जन्म जरा मरण के स्वाभाविक दुःख दूर हो जाते हैं ऐसा स्थान महा ऋषीश्वर ही प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८३ ॥ वह स्थान सदैव शाश्वत वास वाला व लोकाग्र में रहा हुआ है. उस पर चढना अति दुष्कर है. भव रूपी ओघ के अंत करने वाले मुनि ऐसे स्थान को प्राप्त कर शोच (चिंता) करे नहीं. ॥ ८४ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा बहुत अच्छी है आपने मेरे सब संशय

॥ अष्ट प्रवचन माता नामक चतुर्विंशतितम मध्ययनम् ॥

अट्ठपवयण मायाओ, समिईगुत्ती तहेवय ॥पंचेव सामिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया ॥ १ ॥ इरिया भासेसणा दाणे, उच्चारे समिई इय ॥ मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥ २ ॥ एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ॥ दुवालसंग जिण-

तेवीसवे अध्ययन में संशय की निवृत्ति करी नि संशयी जिन प्रवचन का आराधन कर सकते हैं इस लिये इस चौवीसवे अध्ययन में आठ प्रवचन कहते हैं श्री तीर्थंकर भगवानने पांच समिति व तीन गुप्ति यों आठ प्रवचन माता * के कहे हैं ॥ १ ॥ इन आठ प्रवचन के नाम कहते हैं–१ ईर्या समिति देखकर तथा प्रमार्जकर चलने का, २ भाषा समिति निर्वद्य वचन बोलने का ३ एषणा समिति-निर्दोष आहार स्थानक वस्त्र पात्र ग्रहण करने का, ४ आदान समिति भंडोपकरण यत्ना से लेना व यत्ना से रखने का, और ५ परिस्थापनीय समिति उच्चारप्रस्रवणादि यत्ना पूर्वक परिठाने का तीन गुप्ति १ मनगुप्ति दुष्ट विचार से मन को रोकना, २ वचन गुप्ति दुष्ट वचन से वचन को रोकना और ३ काया गुप्ति दुष्ट आचार से काया को रोकना यह आठ प्रवचन माता के जानना ॥ २ ॥ यह आठ प्रवचन

* माता शब्द का अर्थ पुष्टि होता है अर्थात् संयम की पुष्टि करने वाले भाता जिस प्रकार माता पुत्र का कल्याण करती है वैसे ही प्रवचन संयम के क्षेम के करने वाले हैं

॥ सथुया ते पसीयतु, भयव केसी गोयमे ॥ ८९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति केसीगोयमिज्ज तेवीस अज्झयणं सम्मत्त ॥२३॥ * * * *

प्रकार सत्य मन से मोक्ष मार्ग के दर्शक केशी स्वामी व गौतम स्वामी की स्तुति कर विसर्जन हुए वैसे ही केशी स्वामी व गौतम स्वामी दोनों प्रसन्न हुए यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को कहने लगे कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह केशी व गौतम स्वामी का तेवीसवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ २३ ॥ * * * *

क्साय , माय जत्थ उ पवयण ॥ ३ ॥ आलंबणेण कालेण, मग्गेण जयणायया

चउ कारण परिसुद्धं, सजए इरियरिए ॥ ४ ॥ तत्थआलंबणं नाणं, दंसणं चरण

तहा ॥ कालेय दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥ ५ ॥ दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ

माता के भेद संक्षेप से कहे परंतु इन आठों प्रवचनमें भगवान कथित ही द्वादशांगी ज्ञानका समावेश होता है अर्थात् आठ प्रवचन चारित्राचार में है यह ज्ञान व दर्शन बिना नहीं होता है इस लिये मोक्ष पथ का दर्शक ज्ञानादि तीनों रत्न तथा द्वादशांग का समावेश इस में हो जाता है ॥ ३ ॥ अब इन आठ प्रवचन में से प्रथम ईर्या समिति का कथन करते हैं १ आलंबन, २ काल, ३ मार्ग ४ यतना इन चार कारनों से संयती साधु ईर्या समिति शुद्ध पालन करे ॥ ४ ॥ इन चार कारनों में प्रथम आलंबन के तीनभेद किये हैं—ज्ञान दर्शन व चारित्र अर्थात् इन तीन का आलंबन, २ ईर्या समिती का काल दिन है, अर्थात् ईर्या समिति का आचार करनेवाले दिन में ही आहार विहार करते हैं परंतु रात्रि में नहीं करते हैं कारनप्रयात् रात्रि में गमन चलन करे तो रजोहरण से पूंजकर करते हैं ३ ईर्या समिति का मार्ग कुपथका त्याग करने का है क्यों की कुपथ में विचरने से दीमक वगैरह के नागरे में से संयम की विराधना होवे और भटक होने से आत्मा की विराधना होवे ॥ ५ ॥ ईर्यासमिति का चौथा कारन जो यतना है उसका द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, व भाव से इन चारों से विस्तार पूर्वक कथन आगे करता हूं सो

कहासु तहेव य ॥ ९ ॥ एयाइ अट्ठ ठाणाइ, परिवज्जित्तु संजए ॥ असावज्ज मिय
काल, भास भासिज्ज पन्नव ॥ १० ॥ गवेसणाए गहणेय, परिभोगेसणाय जा ॥

और यतना से चलने लगे सर्पने साधु को मुंह में पकड कर नीचे डाल दिये तो भी पीछे यतना
रजोहरण से भूमिका की प्रतिलेखना की इस प्रकार दया पाल साधु को देखकर देवता अपना रूप
प्रगट कर साधु को नमस्कार कर पीछा गया इस प्रकार ईर्या समिति सब साधु पालना चाहिये ॥*॥
दूसरी भाषा समिति कहते हैं जो ज्ञानवान साधु हैं वे भाषा बोलते समय १ क्रोधकारी, २ मानकारी,
३ मायाकारी ४ लोभकारी ५ हास्यकारी ६ भयकारी ७ अन्य का अपवाद अथवा अपमान वाली
और ८ विकथा-निरर्थक बातों इन आठ प्रकार के वचन को वर्जकर पाप रहित मर्यादा युक्त
निर्दोष भाषा बोले यह भाषा समिति का कथन हुवा. ॥ २१० ॥ इसपर कथा कहते हैं—किसी
नगर को परचक्री राजा घेर कर रहा था उस समय अंदर से साधु निकले उन को परचक्री के
सुभटोंने पूछा कि अंदर कितनी सेना है ! साधु विचार कर इस प्रकार बोलने लगे कि आंखों देखे
सो बोल नहीं और बोले सो देखे नहीं यों सुन साधु को बावले जानकर छोड दिये इस प्रकार
अन्य साधु भी वचन विचार कर बोले यह भाषा समिति पर कथा हुई ॥ * ॥ अब तीसरी एषणा
समिती कहते हैं—एषणा तीन प्रकार की है निर्दोष वस्तु की गवेषणा करने से एषणा [illegible]

१० लालच कर से वह लोभ दोष, ११ दान दिये पहिले या पीछे दातार के गुणानुवाद करे वह पूर्व पश्चात् संस्तव दोष १२ वशीकरणादि विद्या फोड़ के वह विद्या दोष, १३ व्यंतरादिक मंत्र कर ले वह मंत्र दोष १४ पाचनादि चूर्ण कर ले वह चूर्ण दोष, १५ गर्भ पालन स्तम्भन करे वह मूल कर्म दोष, और १६ सौभाग्य तथा पूजादि अर्थ स्नानादि करा कर ले वह योग दोष यह १६ उत्पात दोष साधु लगावे ॥ २ ॥ संकिए मक्खिए, निक्खित्ते पेहिए साहरए दायगो मिस्सए ॥ अपरिणि लित्त छड्डिए, एसणे दस दोसाए ॥ १ ॥ अर्थ—१ यह सूजता है या असूजता है ऐसा साधु को तथा दातार को शंका हो वह शंकित दोष २ सचित्त वस्तु पानी आदि से हाथ भाजनादि मक्खी की पांख जितना भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे वह निक्खित्त दोष ३ सचित्त वस्तु पर अचित रक्खी हो उसे ले वह निक्खित्त दोष ४ अचित वस्तु पर सचित्त वस्तु रक्खी वह सचित्त वस्तु ले वह पहित दोष, ५ सचित्त वस्तु के बीच में आचार वस्तु रखी हो जैसे गढ़ के ढग में गढ़ उसे निकाल दे वह साहरिया दोष, ६ अंध पंगु बहुत वृद्ध, छाय यथा इत्यादि के हाथ से ले वह दायक दोष ७ पूरा अचित न हुआ हो ऐसा तत्काल का धोवन इत्यादि वोरा ले वह मिश्र दोष, ८ पूरा पूर्ण परिणमा न हो ऐसे जो काल का अमानता होला ऊंच दगण ले वह अपरिणत दोष ९ लीपा हुआ न हो ऊपर आहार ले सदा दान देकर फिर हाथ भाजनादि सचित्त पानी से धोवे वह लिप्त दोष, और १० नीचे गिराता २ (होरता छाटता) देवे वह छर्दित दोष यह दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों समिल हो लगावे ॥ ३ ॥ अब दूसरी पीरे

पीछे गायों उद्वर्त कर गिराने वह उद्भिन्न, ३ साधु के लिये और अपने लिये अग्मगर निपजाया, साधु के लिये निपजाया उस की सीत (दानादि) अपने लिये निपजाया उस में प्रवेश वह पूति कर्म है अपन लिय और साधु के लिये सामिर निपजाया वह मिश्र ५ साधु को ही देवूगा यों स्थापन कर रखे वह स्थापन, ६ इस साधु के भिक्षा के दिन साधु को अच्छा आहार देने मिजमानों को जमावे वह पाहुडिय ७ अन्धारे स्थान में प्रकाश कर दे वह प्रकर ८ खरीद मोल लाकर वह कृतगड, ९ उधार लेदे वह पामिच, १० अदला बदला करदे वह परियट, ११ सन्मुख लावे वह अभिहड, १२ मुद्रा (छादा) उखाड कर दे वह भिन्न, १३ ऊपर से नीचे लावे वह मालोहड १४ निर्बल के हाथ में से छीन कर दे वह अच्छिन्न, १५ मालिक की आज्ञा बिना दे वह अणिसिट्ठ और १६ साधु आये जान ज्यादा निपजाकर दे वह अज्झोयर। यों सोल हद्गम दोष गृहस्थ लगाते हैं ॥ १ ॥ गाथा—धाई दूई निमित्त, आजीव वणिमग तिगिच्छ कोहमाण माया लोह, इंति दसदोसाय ॥ १ पुव्व पच्छा संथवं विज्जापग चुन्न जोगे ॥ मूल कम्म उप्पायणा दोसा हवंति सोलसा ॥ २ ॥ अर्थ— १ दातार के बच्चों को खिला-रमा कर ले सो धाइ २ दूत की तरह समाचार कह कर ले सो दूत दोष, ३ ज्योतिष निमित्त प्रकाश करले वह निमित्त दोष, ४ जाति पक्ष-सम्बन्ध [illegible] वह आजीविक दोष भिखारी की तरह कंगला-लाचारी कर लेवे वह वणिमग दोष ६ औषध योपचार करके ले वह तिगिच्छ दोष ७ धारणा देखा ही क्रोधकर ले वह क्रोध दोष ८ अभिमान कर ले [illegible] मान दोष ९ [illegible] कर के वह माया दोष

धरगाहिय, मंडगु दुविहं मुणी ॥ गिण्हतो निक्खिवंतो वा, पउजेज्ज इम विहिं ॥१३॥ चक्खुसा पडिलेहित्ता पमज्जेज जयं जई ॥ आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ, वि समिए सया ॥ १४ ॥ उच्चार पासवण खेल, सिंघाणजल्लियं ॥ आहारं उवहिं

की याचना करने गया था । परन्तु वहां देवता के निमित्त से असूझता हो जाये बहुत जरूर होने पर असूझता पानी ग्रहण करे नहीं यों फिरते २ अपनी लब्धि से देवता को झुकाकर शुद्ध निर्दोष पानी ग्रहण कर लाया तब देवता अपना रूप प्रगट कर नदीषेण को वंदना नमस्कार कर स्व स्थान गया नंदीषेण का जीव वहां से आयुष्य पूर्ण होने पर सयकर कृष्णजी के पिता वसुदेव हुए ॥ ३ ॥ अब चौथी आदान निक्षेपना समिति कहते हैं-भंडोपकरण दो प्रकार के कहे हैं—औघिक व उपग्राहिक इस में जो औघिक है सो पारीभारी वस्तु अर्थात् काम कर के गृहस्थ की वस्तु गृहस्थ को दे सके ऐसे पाट पाटला अथवा जिन उपकरणो के नाम शास्त्र में कहा होवे वैसे जैसे वस्त्र रजोहरणादि वगैरह और उपग्राहिक जो पीछा देने में आवे नहीं सो तथा जिन का नाम शास्त्र में नहीं और जो वर्जनीय भी नहीं वे ऐसे पाटी पूठा वगैरह इन को यथावसर होने पर उठाते दृष्टि से देखे अथवा रजोहरणादि से पूंजे और पीछा रखते भी दृष्टि से देखे और रजोहरणादि से पूंजे परन्तु पटका झटका करे नहीं यह चौथी आदान निक्षेपना समिति हुई ॥ १३ १४ ॥ इस पर कथा कहते है किसी आचार्यने शिष्य को अकाल

षणेषणा के चार दोष कहते हैं-मनोज्ञ वस्तु का संयोग मिलाने जैसे दूध मागयातो सक्कर सने जावे यह संयोग दोष २ अतिमात्र अप्रमाण-क्षुधा उपरांत आहार करे यह अप्रमाण दोष,३मनोज्ञ आहार प्राप्त कर आहार की तथा दातार की प्रशंसा करे यह इंगाल दोष, और ४ अमनोज्ञ तथा कमी आहार प्राप्त कर आहार की तथा दातार की निन्दा करे यह धूम्र दोष यों १६ उद्गमन १६ उत्पातन १० एषणा और ४ परिभोगेषणा के सब ४६ दोष टालकर आहार करे यहां पर कथा कहते हैं-नंदसेन के गांव रोता बचपन में मरने से मामा के यहां बड़ा हुआ यह कुरूप होने से उस के साथ कोई भी लग्न करे नहीं इस से पर्वत पर से पड़कर मरने का उसने निश्चय किया वहां किसी साधु का उपदेश पाने से उसने साधुपना अंगीकार किया बेले २ की तपश्चर्या सहित सब शरीर को साधु की वैय्यावृत्य में अर्पन कर विचरने लगा एकदा सभा में इन्द्रने नंदीषेण की प्रशंसा की इस पर से एक देवता उन की परीक्षा करने के लिये वृद्ध साधु का रूप बना कर दस्तों की बिमारी से पीड़ित बना हुआ गांव के बाहिर पड़ा नंदीषेण भी ऐसा समाचार सुनकर तत्काल उन के पास आये और चलने की शक्ति नहीं होने से अपने स्कंध पर उठा कर ले चले मार्ग में उस साधु रूप देवताने नंदीषेण का सब शरीर विष्टामय से भरदिया और अपशब्दों, चपेट व लताादि प्रहार भी करने लगा परंतु नंदीषेण कुपित नहीं हुआ उस साधु रूप देवता को उपाश्रय में रख कर शरीर की शुद्धि करने के लिये पानी

४० या दोष=शुभाहेर कारण उत्पन्न हुवा बिना आहार करे ... [illegible]

आयाय मसलोए, आनाए चेव संलोए ॥ १६ ॥ अणावाय मसंलोए, परस्से णुवघाइए ॥ समे अज्झुसिरे यावि, अचिर काल कयम्मि य ॥ १७ ॥ विच्छिण्णे दूरं मोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए ॥ तस पाणवीय रहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥ १८ ॥

एयाओ पंचसमिईओ, समासेण वियाहिया ॥ एत्तो तओय गुत्तीओ वोच्छामि अणुपुव्वसो

कपरा वगैरह होवे नहीं ोर भीत वगैरह ढाएगत होते होवे ६ अग्नि वगैरह प्रमुख से आचित हुए थोडा का ा हुआ हो ६ विस्तीर्ण लम्बी चौडी जमीन हो, ७ भूमि के अंदर का भाग बहुत दूरतक अचित हुआ हो ८ अपने उपाश्रय से परिठाने का स्थान दूर हो, ९ चेदर वगैरह के बिल नहोवे, और १० त्रस पीढी आदि के ाय बीज हरी घस ीवादि वहां नहोवे इस प्रकार के दश स्थानक में उच्चार पासीरा वेवे यह पांचवी परिस्थापनीय समिति कही ॥ १८ ॥ यहां कथा कहते हैं—कुम्भसारथीने एकदा शिष्य से कहा कि स्थंडिलादि परिठाने की भूमि संदेव अवश्य देखनी चाहिये तब एक अविनीत शिष्य बोला कि क्या वहां कुछ बैठा है कि सदैव दोनों समय प्रतिलेखना क्रिया करे ! गुरु मौन रहे पश्चात देवने गुरु की आज्ञा मनाने के लिये ऊंटका रूप वैक्रेय किया रात्रि को शिष्य परिठाने गया सब ऊंट को देख आश्चर्य चकित हुआ. गुरु का अपराध खमाया और पीछे से उच्चारादि भूमिका की

देह, अप्पाणं वोसिरामि ॥ १५ ॥ अणावाय मसंलोए ॥ अणावाए चेव होइ संलोए

में भाव लेखना किया तब पुनः भावलेखना करने की आज्ञा दी तब शिष्य बोले क्या आप जिस उपयोग लगाते कि अभी भी भाव लेखना कराते हो ? तब गुरु मौन रहे, जब इधर शिष्य भगोलकाण संभालता था, उधर ने ही उस में सांपने फूत्कार किया, शिष्य देखकर विस्मित हुआ और गुरु के वचन पर श्रद्धा रखकर कालकाल शुद्ध उपयोग से प्रतिलेखना करने लगे ॥ ७ ॥ अब पांचवी परिस्थापनीय समिति कहते हैं—१ उच्चार पुरीसादि २ प्रस्रवण-लघुनीत, ३ श्लेष्म खेंकार, ४ सिंघाण नाक का मैल, ५ जल्ल-पसीना, ६ दोषित अथवा अधिक आहार, ७ वैसे ही निरुपयोगी वस्त्र पात्रादि उपधि और ८ मृत साधु का शरीर इत्यादि और नखकेश वगैरह और भी परिठाने योग्य वस्तु होवे उन को यतना पूर्वक परिठावे ॥ १८ ॥ अब परिठाने के दश बोल कहते हैं—प्रथम बोल में चौभंगी—१ कोई मनुष्य आता भी नहीं है और देखता भी नहीं है २ कोई मनुष्य आता नहीं है और देखता है ३ कोई आता है और देखता नहीं है और ४ कोई मनुष्य आता भी है और देखता भी है इन चार में से प्रथम भांगा शुद्ध है अर्थात् जिस स्थान कोई मनुष्य आता भी न होवे और देखता भी न होवे वहां उच्चार प्रस्रवणादि परिठाना और शेष तीन भांगे अशुद्ध हैं २ जिस स्थान परिठाने से अपना आत्मा की तथा दूसरे के आत्मा की घात न होवे, ३ ऊंच नीच भूमि नहोवे परंतु समभूमि होवे ४ तृण पत्र

सडाम्विहा ॥ सारंभ समारंभे, आरंभेय तहेव य ॥ वंय पवत्तमाणतु, नियत्तेज्ज अये जइ ॥ २३ ॥ ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ॥ उल्लंघण पल्लंघण, इंदियाण

बहुत समय लगा तब गुरुजीने पुछा कि इतनी देर क्यों हुइ शिष्यने उत्तर दिया कि मैं इस विचार में था कि वर्षा ऋतु आइ है, अब मरे पशुओं को खेत में अनाज डाल देंगे तो उस की अच्छी उत्पत्ति होने से वे सुखी होंगे इस विचार से देर लग गइ गुरु ने कहा कि ऐसा साधु को ऐसा साधुभी विचार नहीं करना चाहिये तब शिष्यने मिथ्या दुष्कृत्य दिया ॥ ० ॥ दूसरी वचन गुप्ति—१ सत्य वचन गुप्ति, २ असत्य वचन गुप्ति ३ मीश्र वचन गुप्ति और ४ व्यवहार वचन गुप्ति यावत् असत्य वचन व मीश्र वचन गुप्ति अंगीकार करे ॥ २२ ॥ और सारंभ समारंभ व आरंभ से वचन को निवारे + यह दूसरी वचन गुप्ति हुइ ॥ २३ ॥ इस पर कथा कहते हैं गुणवन्त साधुजी विहार करके जा रहे थे मार्ग में चोर मीले जो बोले कि तेरे दर्शन के लिये आगे जाय माता है उन का हमारे समाचार मत कहना साधु कुच्छ भी बोले बिना आगे गये आगे साधु के कुटुम्बियों थे वे साधु के दर्शन कर सुखी हुए साधुने धर्मोपदेश दिया और वे पीछे गये रास्ते में चोरोंने उन को लुटे और कहने लगे

+ यह मरे तो अच्छा यह सारंभ अन्य का मारने के लिये विष शस्त्रादिक की सामग्री मीलाने का वचन कहे सो समारंभ और किसी को त्रास देवे अथवा कठोर वचन बोले सो आरंभ

॥ १९ ॥ सच्चा तहेव मोसाय सच्चमोसा तहेवय। चउत्थी असच्चमोसाय, मणगुत्तीओ चउव्विहा ॥ २० ॥ सारंभ समारंभे, आरंभय तहेवय ॥ मण पवत्तमाणंतु, नियत्तेज्जजयं जई ॥ २१ ॥ सच्चा तहेव मोसाय, सच्च मोसा तहेवय ॥ चउत्थी असच्च मोसाय, वइगुत्ती

प्रतिलेखना करने लगा ॥ ० ॥ यह पांचों समिति का कथन संक्षेप से कहा है इस का विस्तार पूर्वक कथन आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध से जानना अब आगे तीनों गुप्ति का कथन अनुक्रम से कहता हूं ॥ १९ ॥ प्रथम मन गुप्ति कहते हैं-मनगुप्ति के चार भेद कहे हैं-१ सत्य मन गुप्ति सो धर्मास्तिकाय पदार्थ का यथार्थ जिनाज्ञानुसार चिंतवन करे २ असत्यमनगुप्ति-जिनाज्ञा से विपरीत चिंतवन करे, ३ मिश्रमनगुप्ति सो कुच्छ सत्य कुच्छ असत्य यों मिश्र चिंतवन करे, और ४ व्यवहार मन गुप्ति सो ग्राम आया, पर्वत गले, वगैरह सच्चा भी नहीं और झूठा भी नहीं ऐसा विचार करे इन चारों में से असत्य मन गुप्ति व मिश्र मन गुप्ति कर और मन को सारंभ, समारंभ व आरंभ से निवारे * यह मनगुप्ति का कथन हुआ ॥ २१ ॥ इस पर कथा कहते हैं—कुशन गायक स धु ध्यान

* किसी को मारने का विचार करे सो सारंभ, किसी को मारने की सामग्री मीलाने का विचार करे सो समारंभ, और मस्तक प्रहार से मारे सो आरंभ.

घुत्ता, अतुमत्थेसु सव्वसो ॥ २६ ॥ एसा पवयणमाया, जे सम्म आयरें मुणी ॥
से खिप्प सव्व ससारा, विप्प मुच्चइ पंडिए ॥ २७ ॥ त्तिबेमि ॥ पवयण
मायाणाम चउवीसय अज्झयण सम्मत्त ॥ २४ ॥ * * *

सर्ग कर खडे रह गये सोमील ब्राह्मण हवन सामग्री लाने को बाहिर गया था उसने पीछे आते गज सुकुमाल मुनि को देखे और क्रोधातुर हो कर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर मी ी मिट्टी की पाल बांध कर जाज्वल्यमान अग्नि के खीर वसु में भर दिये मुनि की खोप ी खीचडी की तरह खदबद गई आंखें छीटक कर बाहिर आगइ अति उज्वल वेदना समभाव से सहन की परंतु किञ्चिन्मात्र भी काया को हलाइ नहीं, कर्म क्षय कर मोक्ष पधार एसे ही अन्य साधु को भी कायगुप्ति करना ॥ २५ ॥ उपसंहार–उक्त पांच समिति वो चारित्राराधन के कार्य साधन के लिये कही और तीनों गुप्ति सर्वथा प्रकार से निवर्तने रूप कही (पांच समिति अपवाद मार्ग है और तीन गुप्ति उत्सर्ग मार्ग है) ॥ २६ ॥ जो पण्डित साधु होवे वे फक्त आठों प्रवचन माता के कहे अनुसार सम्यक् प्रकार आचरन करके शीघ्रता से ससार से छूट कर मोक्ष पावेंगे ॥ २७ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बु स्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह आठ प्रवचन माता का चोवीसवा अध्ययन कहा ॥ २४ ॥

घोसे त्ति नामेण, जन्न जयइ वेयवी ॥ ४ ॥ अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमण पारणे ॥ विजय घोसस्स जन्नमि, भिक्खट्ठा उवट्ठिए ॥ ५ ॥ समुवट्ठिय तहिं सतं जायगो पडिसेहए ॥ न हु दाहामि ते भिक्ख, भिक्खु जायाहि अन्नओ ॥६॥ जे वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठाय जिइंदिया ॥ जोइसंगविऊ जे य जन्न धम्मस्स पारगा ॥ ७ ॥ जे समत्था समुद्धत्तु परमप्पाण मेव य ॥ तेसिं अन्नमिण देय भो भिक्खू सव्व कामिय ॥ ८ ॥ सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ॥ न वि रुट्ठो

उस वक्त उस वाणारसी नगरी में वेदों का पाठी विजयघोष नामक ब्राह्मणने वेदाज्ञानसार यज्ञ प्रारम्भ किया था ॥ ४ ॥ उस वक्त वे विजय घोस नामक अनगार—साधुजी मासक्षमणोपवास के पारने के लिये भिक्षार्थ सावधान हुए वहां विजयघोष ब्राह्मन के यज्ञ पाडे में आकर खडे रहे ॥ ५ ॥ उस यज्ञ पाडे में साधु को समपस्थित (आये) हुए देखकर विजयघोष विप्र उन मुनि का तिरस्कार करता हुआ बोला कि—भो भिक्षुक ! मै तुझे निश्चय से भिक्षा नहीं दूंगा इस लिये तू यह घर छोडकर अन्य पर याचना कर क्यों कि—यहां यज्ञ पाडे में निष्पन्न हुआ आहार तो जो विप्रों वेद के जान हैं यज्ञार्थि हैं, ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हैं, और जो यज्ञ के पारगामी हैं वे अपने आत्मा को और अन्य के आत्मा को ससार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं, ऐसे विप्रों के लिये ही यह षट्रस संयुक्त इच्छा तृप्ति का करनेवाला आहार भोजिक है (परंतु अन्य के लिये नहीं है) ॥६-८॥ उक्त प्रकार से जयघोष मुनि

॥ यज्ञ कीय नामक पंचविंशतितम मध्ययनम् ॥

माहण कुल समूओ, आसि विप्पो महायसो ॥ जायाई जमजन्नमि जयघोसे त्ति नामओ ॥ १ ॥ इंदियगामनिग्गाही, मग्गगामी, महामुणी ॥ गामाणुगाम रीयतो पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥ २ ॥ वाणारसीए बाहिया, उज्जाणमि मणोरमे ॥ फासुए सेज्ज सथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ३ ॥ अह तेणेव कालेण पुरीए तत्थ माहणे, ॥ विजय

चौवीसवे अध्ययन में आठ प्रवचन माता के कहे वे तो भाव ब्राह्मण के होवे इसलिये पचीसवे अध्ययन में भाव ब्राह्मण का कथन करते हैं ॥ (वानारसी नगरी के रहवासी ब्राह्मण जात्युत्पन्न, जय घोष और विजय घोष नामक दो भ्राताओं में से जय घोष को साधु की संगती होने से द्रव्य यज्ञ का त्याग कर साधु बन भाव यज्ञ करने प्रवृत्त हुए) वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न महा यशवंत जयघोष नामक महामुनि इन्द्रियों के समूह रूप पशुओं को पंच महाव्रत रूप यज्ञ कुंड में निग्रह कर [होम कर] भाव से मोक्षमार्ग में प्रवर्तते हुए, द्रव्य से [अपने आत्मा का उद्धार करने] ग्रामानुग्राम विचरते (निवास करते) हुए वाणारसी नगरी पधारे ॥ १ २ ॥ वाणारसी नगरी के बाहिर मनोरम नामक उद्यान में प्रासुक निर्दोष स्थानक पाट संथारक आदि की याचना कर उस समय से आत्मा भावते विचरने लगे ॥ ३ ॥

मुहं बूहि ज व धम्माण वा मुह ॥ १४ ॥ जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाण मेव य ॥ एवं मे ससय सव्वं, साहु कहसु पुच्छिओ ॥ १५ ॥ अग्गिहोत्ता मुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसा मुहं ॥ नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माण कासवो मुहं ॥ जहा चंद गहाईया, चिट्ठंति पंजली उडा ॥ वंदमाणा नमसंता, उत्तम मणहारिणो

नक्षत्र का मुख्य धर्म का मुख्य कौन है ? और ससार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन है यह हमारे मन में संदेह है सो इस का खुलासा आप कृपा करके कहो ॥ १६ ॥ तब जयघोष मुनि बोले कि हे विप्रों ! (१ जीव रूपकुंड, २ तपरूपी वेदीका, ३ कर्मरूप ईंधन ४ ध्यान रूपी आग, ५ शरीर रूपगोर, ६ कर्मयोग रूप धारू, ७ शुद्ध भाव तथा जीवदया रूप आहुति इस प्रकार का) जो अग्निहोत्र है यही वेद का मुख्य है और ऐसा यज्ञ ही वेद में मुख्य है, येही वेद प्रमाण सूत है इस प्रकार यज्ञ के अर्थी साधुओं येही यज्ञ के प्रवर्तक हैं नक्षत्रों में प्रधान चन्द्रमा है और धर्म में मुख्य धर्म के प्रवर्तक श्री ऋषभ देवजी तथा श्री महावीर स्वामीजी हैं जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्र ताराओं दोनों हाथ जोड़कर खड़ रहते हैं गुणस्तवन करते हैं नम्रता से सेवा करते हैं इस प्रकार चौसठ प्रीति से मानते हुये रहते हैं तैसे ही आदीनाथजी के तथा महावीर स्वामीजी के आगे चौसठ ही

नवि तुट्ठो नवि रुट्ठो उत्तमट्ठ गवेसओ ॥ ९ ॥ नन्नट्ठं पाणहेउं वा, नवि निव्वाहणाय वा ॥ तेसिं विमोक्खणट्ठाए, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥ नवि जाणसि वेयमुहं, नवि जन्नाण जं मुहं ॥ नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥११॥ जे समत्था समुद्धत्तुं परमप्पाणमेव य ॥ न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१२॥ तस्स क्खेव पमोक्खं तु अचयंतो तहिं दिओ ॥ स परिसो पंजली होउं पुच्छई तं महामुणिं ॥ १३ ॥ वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं ॥ नक्खत्ताण

का विजय घोष जिनने तिरस्कार किया तो भी वे मोक्षार्थ के गवेषी मुनि न तो रुष्ट (क्रोधी) हुए और न तुष्ट हुवे; परंतु समभाव से रहे और आहार पानी वस्त्रादि के लाभ के वास्ते नहीं परंतु विजय घोष का उद्धार करने के लिये इस प्रकार बोले—॥९॥ हे विप्र! वेद में मुख्य कौन है यज्ञ में मुख्य कौन है, नक्षत्र में मुख्य कौन है, और धर्म में मुख्य कौन है उसे तू जानता नहीं है, वैसे ही अपना आत्मा का तथा पर आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन है उसे भी तू जानता नहीं है जो तू जानता हो तो कहे! ॥११ १२॥ उक्त प्रकार मुनि के वचन सुनकर विजय घोष ब्राह्मण उन मुनि को प्रत्युत्तर देने असमर्थ होकर उस यज्ञ पाडे में आए हुए सब ब्राह्मणों के साथ दोनों हाथ जोडकर उन मुनि को इस प्रकार पूछने लगा ॥ १३ ॥ अहो साधुजी! वेदों का मुख्य यज्ञ का मुख्य

कुसल सदिट्ठ त वय बूम माहण ॥ १९ ॥ जो न सज्जइ आगतु, पव्वयतो न सोयई ॥ रमइ अज्ज वयणमि, त वय बूम माहण ॥ २० ॥ जायरूवं जहा मिट्ठ, निद्धत मल पावग ॥ राग दोस भयाईय त वय बूम माहण ॥ २१ ॥ तवस्सिय

स्व परात्मा का तारने योग्य ब्राह्मणों होते हैं उन के लक्षण कहते हैं—हे विप्रो ! केवलज्ञानीयोंने घृत से सींचन की हुई अग्नि समान जो ब्राह्मणों जगत् में सदैव पूज्यनिय कहे हैं उनो को मैं भी ब्राह्मण कहता हूं (उन के लक्षण–) ॥ १९ ॥ जो आगामि काल में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये सज्ज नहीं

न भूतो न भाविष्यति ॥ १ ॥ अथ—जो पशुओं का वधकर देवतादि की पूजा करें सो घोर नरक में जावे क्यों कि हिंसा में धर्म न कभी हुवा और न कभी होगा ! ॥ २ ॥ इसलिये व्यासजी के बहु मुख्य भरना श्लोक-ज्ञान पालि परिक्षिप्त, ब्रह्मचर्य दयाम्भ स ॥ स्नात्वारिते विमल तीर्थे, पापपङ्क पहारिणि ॥ ४ ॥ ध्यानाग्नौ जीव कुण्डस्थ दममारुत दीपिते असत कर्मसमिध क्षेपैमिहोत्र कुरुत्तमन् ॥ ५ ॥ कषाय पशूभिर्दुष्टे धर्मकामार्थ नाशके शम मात्र हुतैर्यज्ञ, विधेहि विहित बुधैं ॥६॥ अथ—ज्ञान रूपा तलाव में दया और ब्रह्मचर्य रूपी पानी है एसे तीर्थ में स्नान कर कर्म मल से शुद्ध बन फिर जीव रूपीकुंड में दमरूप पवन से दीपित या ध्यान रूपी अग्नि है उस में असत्कर्म रूपी काष्ट को डाल कर उत्तम अग्निहोत्र करो, धर्म काम और अर्थ को नाश करने वाले शम रूप मंत्र की आहुती को प्राप्त हुवे ऐसे दुष्ट कषाय रूपी पशुओं से ज्ञानवंतो द्वारा किया हुआ यज्ञ करो अश्वमेधसो-मनरूपी घोडे का, गामेध सो असत्य वचन का, अजामेध सो इन्द्रियों का मार नरमेध सो कामन्व का परुक कुंड की अग्नि में यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ४ १ ।

॥ १७ ॥ अजाणागा जन्नवाई विज्जा माहण संपया ॥ गूढा सज्झाय तवसा, भास च्छन्नाइवग्गिणो ॥ १८ ॥ जो लोए बंभणो वुत्तो अग्गीव महिओ जहा ॥ सया

इन्हों सेवा करते हैं * ॥१७॥ अब जो ब्राह्मणों कहाने वाले होते हैं उन का कथन करते हैं जो ब्राह्मणा उक्त प्रकार से वेद के तत्त्व के अजान हो कर यज्ञ करते हैं, अर्थात् विद्यारूप ब्राह्मन की सम्पदा है उस को भी नहीं जानते हैं और धनादि के मोह में मुग्ध बनकर स्वाध्याय तपादि नहीं करते हैं ऐसे मूढ विप्रों ढकी हुइ अग्नि के समान होते हैं अर्थात् जिस प्रकार ढकी हुइ अग्नि बाहिर से शीतल देखाती है परंतु अन्दर से जाज्वल्यमान होती है, तैसे ही ये ब्राह्मणों भी ब्राह्मण का वेष धारन कर ऊपर से निष्कामी शीतली भूत होते हैं, परंतु अन्दर में कामाग्नि क्रोधाग्नि कर प्रदीप्त हैं ॥ १८ ॥ अब जो

* ज्योतिष्यी लोगों सब ग्रहों में चन्द्रमा को प्रधान मानते हैं इसलिये चन्द्रमा के दृष्टांत से तीर्थंकरों का गौरव दरसाकर उन का महत्त्व उन के मन में ठसाया है

* श्लोक–यूपं छित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमम् ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ अर्थ-यज्ञस्थंभका छेदन कर पशूओं की घातकर रक्त का कर्दम मचा यदि स्वर्ग में जाते हों तो फिर नरक में कौन जावेगा ? ॥ २ ॥ श्लोक–वेदा पठाइत्थानेन, पठ्यमानेन या ऽ चया ॥ ध्यांति जन्तुनगतघृणा घोरा ते यांति दुर्गतिम् ॥ १ ॥ तत्त्वज्ञ पुरुषों का फरमान है कि जो पुरुष घृणा रहित वेदवाक्य के मंत्र करते कल्पतरुसे या वच के मिस से जीवों को मारते हैं वे घोर दुर्गति में जाते हैं ॥२॥ वेदान्ति भी कहते हैं श्लोक–भक्ते सुमति मज्जाम पशुभि मन्मार्थ ॥ हिंसा नाम भवेद्धर्मो

वयइ जो उ, त वय बूम माहणं ॥ २४ ॥ चितमत मचित्तवा,अप्प व जइवा बहु॥ न गिण्हइ अदत्त जे, तं वय बूम माहण ॥ २५ ॥ दिव्व माणुस तेरिच्छ, जो न सेवइ मेहुण ॥ मणसा काय वक्केण, त वय बूम माहण ॥ २६ ॥ जहा पोम जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा ॥ एव अलित्त कामेहिं, त वय बूम माहण ॥ २७ ॥

के वश हो हसी के वश के वश हो तथा भय के वश हो मृषा (झूठ) बोले नहीं, बोलावे नहीं बोलते को अच्छा जाने नहीं मन से वचन से काया से उन का मैं ब्राह्मण कहता हु ॥ २४ ॥ जो सचित्त–मनुष्य पशु आदि, अचित्त–वस्त्र पात्रादि, तथा सुवर्णादि अल्प–थोडा तथा बहुत * इन को चारों तीन करन तीन जोग से नहीं करे उसे ब्राह्मन कहना ॥ २५ ॥ देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यच सम्बन्धी मैथुन तीन करन तीन जोग से सेवन नहीं करे उस मैं ब्राह्मण कहता हु ॥ २६ ॥ जिस प्रकार पद्म कमल कीचड में उत्पन्न हो पानी में वृद्धिपा कर पुनः कीचड पानी से लिप्त नहीं होता है ऐसे ही जो कामरूपी कर्दम से उत्पन्न हो भोग रूप पानी से वृद्धीपा पुनःकामभोग से लिप्त नहीं होते हैं उन ही का मैं ब्राह्मन कहता हु ॥ २७ ॥ जो अचित्त निर्दोष अन्य के लिये बनाया आहार को प्राप्त कर उस में लोलुपता रहित भोगवने वाले सुवर्णादि द्रव्य के त्यागी कुटुम्बियों का तथा गृहस्थों के

---

१ द्रव्य से थोडा भाव से बहुत रत्नादि, २ द्रव्य से बहुत भाव से थोडा प्रस्तरादि ३ द्रव्य से भी बहुत भाव से भी बहुत रत्न कम्बलादि और ४ द्रव्य से ही थोडा तथा भाव से ही थोडा राख वगैरह

किसं दत अवाचिय मस सोणिय ॥ सुव्वय पत्त निव्वाण, त वय बूम माहण ॥ २२ ॥ तस पाणे वियाणेत्ता, सगहण य थावरे ॥ जो न हिंसइ तिविहेण, त वय बूम माहण ॥२३॥ कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ॥ मुस न

होते हैं तथा स्वजनादि के स्थानक में आकर असाक्त नहीं होते हैं और जो बीत हुई बात का शोप-पश्चाताप नहीं करते हैं तथा अन्य स्थान में व दीक्षा ग्रहण करने में खेदित नहीं होते हैं और तीर्थं करों के वचन में तथा मार्ग में रमण करते हैं सदैव खुश रहते हैं उन ही को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २० ॥ जिस प्रकार सुवर्ण को भट्टी में तपाकर क्षारादि से धोकर उस का मैल दूरकर गेरु आदि औप चढाने से शोभता है, वैसे ही जो आत्मा रूप सुवर्ण को तप रूप अग्नि में तपकर चारित्र रूप क्षार से धोकर रागद्वेष तथा सातों भय रहित हुवे हैं वे मोक्ष रूप सुवर्ण समान महा अर्थ पाते हैं उन को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २१ ॥ जिनोंने इन्द्रियों का दमन करके द्वादश प्रकार का तप कर अपने शरीर का रक्त मांस सुका कर शरीर को कृश बना दिया है सुव्रति निर्वाण प्राप्त करने योग्य बने हैं उन को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २२ ॥ जो बेन्द्रिय आदि त्रस प्राणी को और पृथव्यादि स्थावर प्राणी को संक्षेप से तथा विस्तार से जानकर मन वचन काया के योग कर घात करे नहीं कराये नहीं और करते को

बंभचेरेण बंभणो ॥ नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥ ३१ ॥ कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ॥ वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥ एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ॥ सव्व कम्म विनिमुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥ ३४ ॥ एवं गुण समाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा ॥ ते समत्था उ उद्धत्तुं, परमप्पाण मेव य ॥ ३५ ॥ एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य माहणे ॥ समुदाय तयं तं तु,

है ज्ञानाभ्यास से मुनि होते हैं और तपश्चर्या करने से तपस्वी होते हैं ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणों की ब्रह्मचर्यादि क्रिया करने से ब्राह्मण होते है, दुःखी जीवों का रक्षण करने से क्षत्री होते है नीतीमयाने व्यपार करने से वैश्य होते हैं और कृषी कर्म तथा सेवा चाकरी करने से शूद्र होते हैं ॥ ३३ ॥ यह जो मैंने उक्त अहिंसादि कथन किया यह सर्वज्ञ तीर्थकरों का प्रतिपादन किया हुवा है उक्त धर्माराधन कर के ही तीर्थंकर तथा केवलज्ञानी होते हैं और सर्व कर्मांश का क्षयकर मोक्ष प्राप्त करते हैं उन ही को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३४ ॥ हे विजयघोष ! यह पूर्वोक्त प्रकार अहिंसादि गुनकर सहित जो उत्तम ब्राह्मण होते हैं वे ही ब्राह्मण अपनी तथा अन्य की आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार धर्मोपदेश करके जयघोष नामक महाऋषिने विजय घोष ब्राह्मण के संशय का

आलोलुयं मुहाजीवी, अणगारं अकिंचनं ॥ असंसत्त गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥ २८ ॥ जहित्ता पुव्व संजोगं, नाति संगेय बंधवे ॥ जो न सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥ पसुबंधा सव्ववेया य, जट्ठं च पावकम्मुणा ॥ न तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंति ह ॥ ३० ॥ नवि मुंडिएण समणो ओंकारेण न बंभणो ॥ न मुणी रण्णवासेण कुसचीरेण तावसो ॥ ३१ ॥ समयाए समणो होइ

सब प रहित होवे उसे मैं ब्राह्मन कहता हूं ॥ २८ ॥ जो पूर्वात्-संसार सम्बन्धी संयोग मात पिता सी पुत्र भाईयों ज्ञातीजनों को छोडकर निकले, पुनः उन के भोग (सेंह) में सज्ज (लुब्ध) न होवे उन को मैं ब्राह्मन कहता हूं ॥ २९ ॥ हे विजयघोष ! तेरे मान्यता से वेदों हैं वे सर्व पशुओं के वध [घात] के स्थापक हैं, तैसे ही यज्ञ का करना भी पाप कर्म के हेतु भूत है इस लिए यह दुराचार है सो आत्मा का त्राण शरण कदापि नहीं होता है परन्तु धर्मार्थ किया पाप सर्व कर्म का बन्धकर दुर्गति दाता होता है ॥ ३० ॥ हे विजय घोष ! मस्तक मुण्डित करने से साधु नहीं होते हैं, ॐकार के उच्चार से ब्राह्मण नहीं होते हैं वनवास करने से मुनि नहीं होते हैं और वल्कल के वस्त्र पहनने से तापस नहीं

निक्खमसु दिया ॥ मा भमाहिसि भयावट्टे घोर संसार ...

हाइ भोगेसु, अभोगी नोव लिप्पई ॥ भो गी भमइ संसारे ॥ अभोगी विप्प मुच्चई

॥ ४१ ॥ उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टिया मया ॥ दो वि आवडिया कुड्डे,

जो उल्लो सो तत्थ लग्गइ ॥ ४२ ॥ एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा काम लालसा ॥

विरत्ताओ न लग्गंति, जहा से सुक्क गोलए ॥ ४३ ॥ एवं से विजयघोसे जय

नहीं है परंतु तू शीघ्रता से गृह कदाग्रह का त्याग कर दीक्षा धारन कर कि जिस से तू अनंत भ्रमन (परिभ्रम) वाले संसार समुद्र में परिभ्रमण करने से छूट जा गा ॥ ४० ॥ हे विप्र ! कामभोग के सेवन से आत्मा कर्मों कर लिप्त होता है वह संसार में परिभ्रमण करता है और भोग रहित आत्मा कर्मों से निर्लेप होता है वह संसार से मुक्त होता है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार आला और सुका दोनों मट्टी के गोले को भींत में डालने से जो आला गोला होता है वह भींत को चौंट जाता है इस प्रकार जो दुष्ट बुद्धि कामभोग के लम्पटी जीव होते हैं वे पाप कर्मोपार्जन कर संसार रूपी भींत को चोंटे रहते हैं और जो सूका गोला होता है वह तत्काल खिसक पड़ता है ऐसे जो कामभोग से विरक्त होते हैं वे संसार रूपी भींत को चोंटते नहीं हैं परंतु मोक्ष चले जाते हैं ॥ ४२ ४३ ॥ इस प्रकार श्रवण कर विजयघोष

जयघोस महामुर्णि ॥ ३६ ॥ तुट्ठे य विजयघोसे इण मुदाहु कयजली ॥ माहणत्त जहाभूय सुट्ठ मे उवदसिय ॥ ३७ ॥ तुब्भे जइया जन्नाण, तुब्भे वेयविऊ-विऊ ॥ जोइसगविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ॥ ३८ ॥ तुब्भे समत्था उद्धत्तु, परमप्पाण मेवय ॥ तमणुग्गह करेहम्ह, भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥ ३९ ॥ न कज्ज मज्झ भिक्खेण, खिप्प

छेदन तथा संशय का निवारन होने से विजय घोष ब्राह्मनने जयघोष मुनि के वचन सत्यमान कर हृदय में धारन किया -धारन किये इन जयघोष महामुनि के वचनों से विजय घोष ब्राह्मन सतुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोडकर यों बोला-अहो मुनि ! जिस प्रकार ब्राह्मन के लक्षण होते हैं उस ही प्रकार आपने मुझे सत्य कहे-बहुत ही अच्छे कहे ॥ ३६-३७ ॥ अहो मुनि ! आप ही सचे यज्ञ के करने वाले हो आप ही सचे वेद के जानने वाले हो, आप ही ज्योतिष शास्त्र में प्रवीन हो और आप ही सत्य धर्म के पारगामी हो ॥ ३८ ॥ आप ही अपना आत्मा का तथा अन्य के आत्मा का उद्धार करने समर्थ हो इस लिये अहो सब भिक्षुओं में उत्तम भिक्षु ! आप हमारे यहां से भिक्षा ग्रहण कर हमारे पर उपकार करो ॥ ३९ ॥ तब जयघो[illegible]

॥ सामाचारी नामकं षड्विंशतितम मध्ययनम् ॥

सामायारिं पवक्खामि सव्व दुक्खविमोक्खणिं ॥ जं चरित्ताण निग्गथा, तिण्णा ससार सागर ॥१॥ पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया ॥ आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥ २ ॥ पचमा छन्दणा नाम, इच्छाकारो य छट्ठओ ॥ सत्तमो मिच्छकारो उ तहक्कारो य अट्ठमो ॥ ३ ॥ अब्भुट्ठाण च नवम, दसमी उवसपदा ॥ एसा दसगा साहूण, सामायारी पवेइया ॥ ४ ॥ गमणे आवस्सिय

पचीसवे अध्ययन में भाव ब्राह्मण के गुण का वर्णन किया, भाव ब्राह्मण साधु समाचारीवाले होवे हैं इस लिये छब्बीसवे अध्ययन में दश समाचारी कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि—हे जम्बू ! जिन समाचारी का समाचरन कर साधुओं ससार समुद्र से तीरे हैं वे सब दु ख से मुक्त करनेवाली दशविधि समाचारी मैं तुझे कहता हूं ॥ १ ॥ उन दश समाचारी के नाम—१ आवश्यकी, २ निषेधकी ३ आपृच्छना, ४ प्रतिपृच्छना, ५ छंदना, ६ इच्छाकार ७ मिच्छाकार, ८ तहत्तिकार, ९ अभ्युत्थना, और १० उपसम्पदा यह दश प्रकार की साधु की समाचारी जानना ॥ २-४ ॥ अब इन दशों का अर्थ कहते हैं—१ उपाश्रय आदि स्थान में रहे हुवे साधु को बाहिर जावे आवस्यही २ मुख्योचार करना अर्थात्

घोसस्स अंतिए ॥ अणगारस्स निक्खंतो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ॥ ४४ ॥ खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ॥ जयघोस विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥ त्तिबेमि ॥ जन्नइज्जं पचविसं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ २५ ॥ • • •

इसमयने जयघोष नामक महा ऋषि के पास अहिंसादि उत्तम धर्म (दीक्षा) अंगीकार किया ॥ ४४ ॥ फिर दोनों भाइयों सम्यक् प्रकार तप संयम का पालन स्पर्शन कर कर्मों का क्षय कर जयघोष विजय घोष दोनों ही मोक्ष पधारे; अनंत अनुत्तर सुख को प्राप्त किया यों सुधर्मा स्वामीने जम्बू स्वामी से कहा इति जयघोष विजयघोष का पचीसवा अध्ययन समाप्त हुवा ॥ २५ ॥

पडिलेहित्ता, वंदित्ता य गुरु तओ ॥ ८ ॥ पुच्छिज्ज पंजलिउडो किं ...

इह ॥ इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥ वेयावच्चे निउत्तेण,

कायव्व अगिलायओ ॥ सज्झाए वा निउत्तेण, सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ १० ॥

उपसम्पदा नामक समाचारी है उस का विशेष स्वरूप दर्शाते हुवे साधु का दिन का आचार रात्रि का आचार का सब कर्तव्य का संक्षेप में वर्णन करते हैं—दिन का चार भाग करना उसे चार प्रहर कहते हैं उस में प्रथम प्रहर है उस के भी चार भाग करना [सब दिन १२ घड़ी का होता है उस का चौथा भाग आठ घड़ी का एक प्रहर गिना जाता है और उस का चौथा भाग दो घड़ी का महूर्त गिना जाता है अढाइ (२॥) घड़ी का घंटा होता है) इस लिये सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आवे उतने में वस्त्राप-करण की प्रतिलेखना करना, फिर गुरुआदि को वंदना नमस्कार कर दोनों हाथ जोड पूछे कि—अहो भगवन्! मैंने प्रतिलेखना तो की है अब मैं वैयावच्च और स्वाध्याय इन दोनों कार्य में से कौनसा काय करूं? ॥ ८-९ ॥ तब गुरु कहे कि—हे वत्स! तुम वैयावच्च करो तो यह गुरु आज्ञा प्रमान कर किंचित ही खेदित नहीं होता हुवा उत्साह पूर्वक वैयावच्च करे, और जो गुरु स्वाध्याय करने की आज्ञा देवे तो सर्व दुःख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय-सज्झाय करे ॥ १० ॥ अब दिन के चारों भाग का

फुआ, ठाणे कुआ निसीहिय ॥ आपुच्छणा सय करण पाकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥ छदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारोय सारण ॥ मिच्छाकाराय निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥ ६ ॥ अब्भुट्ठाण गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा ॥ एवं दुपच संजुत्ता, सामायारी पवेदिता ॥ ७ ॥ पुव्विल्लंमि चउब्भाए, आइच्चमि समुट्ठिए ॥ भडय

मैं अवश्य कार्य है उस के लिये जाता हूं २ उपाश्रय में पीछे प्रवेश करती वक्त निस्सीही। ३ अन्दाचार करना अर्थात् जिस कार्य के लिये गया था उस से निवर्ता हूं ३ अपन को ना कोइ कार्य करना हो तब गुरु आदि को पूछकर करना ४ दूसरे साधु का काम करने का हो तो भी गुरु आदि जेष्ठ को पूछके करना ५ आहार प्रमुख जो कोई वस्तु लाया हो उस से गुरु आदि की आमंत्रणा करना ६ अपनी इच्छा जिस कार्य करने की हो यह गुरु आदि को दर्शानी गुरु आदि का सलाह लेनी तथा अन्य के पास किसी भी प्रकार का कार्य करना हो तो कहे कि-आप की इच्छा हो तो यह कार्य करना ७ किसी प्रकार का अयोग्य कार्य अपने से बना हो तो उस का पश्चाताप पूर्वक मिच्छा मे दुक्कडं देना अर्थात् यह कार्य मैंने खराब किया ८ गुरु आदि जेष्ठ जो वचन कहे—आज्ञा दे उसे शक्ति प्रमाण तथास्तु करना, ९ गुरु आदि जेष्ठ आवे जावे तब खडा होना उन की सेवा भक्ति में तत्पर रहना और १० सूत्र भीतादि गुण की प्राप्ति के लिये गुरु के पास सदैव रहना तथा अन्य गच्छ के आचार्यादि के पास भी सन्मुख ज्ञानादि गुण ग्रहण करना यह पांच पांच अर्थात् दश समाचारी तीर्थंकरों ने कही है ॥८-७॥

पडिलेहित्ता, वंदित्ता य गुरुं तओ ॥ ८ ॥ पुच्छिज्ज पंजलिउडो किं कायव्व मए इह ॥ इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥ वेयावच्चे निउत्तेण, कायव्व अगिलायओ ॥ सज्झाए वा निउत्तेण, सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ १० ॥

उपसम्पदा नामक समाचारी है उस का विशेष स्वरूप दर्शाते हुवे साधु का दिन का आचार रात्रि का आचार का सब कर्तव्य का सक्षेप में वर्णन करते हैं—दिन का चार भाग करना उसे चार प्रहर कहते हैं उस में प्रथम प्रहर है उस के भी चार भाग करना [सब दिन ३२ घडी का होता है उस का चौथा भाग आठ घडी का एक प्रहर गिना जाता है और उस का चौथा भाग दो घडी का मुहूर्त गिना जाता है अढाइ (२॥) घडी का पंगा होता है) इस लिये सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आवे उतने में वस्त्रापकरण की प्रतिलेखना करना, फिर गुरुआदि को वंदना नमस्कार कर दोनों हाथ जोड पूछे कि—अहो भगवन् ! मैंने प्रतिलेखना तो की है अब मैं वैयावच्च और स्वाध्याय इन दोनों कार्य में से कौनसा काय करूं ? ॥ ८१ ॥ तब गुरु कहे कि—हे वत्स ! तुम वैयावच्च करो तो वह गुरु आज्ञा प्रमाण कर किंचित ही खेदित नहीं होता हुवा उत्साह पूर्वक वैयावच्च करे, और जो गुरु स्वाध्याय करने की आज्ञा देवे तो सर्व दु:ख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय सज्झाय करे ॥ १० ॥ अब दिन के चारों भाग का

फुम्मा, ठाणे कुम्मा निसीहिय ॥ आपुच्छणा सय करण परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥ छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारोय सारण ॥ मिच्छाकाराय निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥ ६ ॥ अब्भुट्ठाण गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा ॥ एवं दुपंच संजुत्ता, सामायारी पवेदिता ॥ ७ ॥ पुव्विल्लंमि चउब्भाए, आइच्चंमि समुट्ठिए ॥ भंडय

में अवश्य कार्य है उस के लिये जाता हूं २ उपाश्रय में पीछे प्रवेश करती वक्त निस्सीहि २ छन्दाचार करना अर्थात् जिस कार्य के लिये गया था उस से निवर्ता हूं ३ अपन को जो कोइ कार्य करना हो वह गुरु आदि को पूछकर करना ४ दूसरे साधु का काम करने का हो सो भी गुरुआदि ज्येष्ठ को पूछके करना ५ आहार प्रमुख जो कोई वस्तु लाया हो उस से गुरुआदि की आमंत्रणा करना ६ अपनी इच्छा जिस कार्य करने की हो वह गुरुआदि को दर्शानी गुरुआदि का सलाह लेनी तथा अन्य के पास किसी भी प्रकार का कार्य करना हो तो कहे कि-आप की इच्छा हो तो यह कार्य करना ७ किसी प्रकार का अयोग्य कार्य अपने से बना हो तो उस का पश्चाताप पूर्वक मिच्छामि दुक्कडं देना अर्थात् यह कार्य मैंने खराब किया ८ गुरुआदि ज्येष्ठ जो वचन कहे—आज्ञा दे उसे तहत्ति प्रमाण तथास्तु करना, ९ गुरुआदि ज्येष्ठ आवे जावे तब खडा होना उन की सेवा भक्ति में तत्पर रहना और १० ज्ञानादि गुण की प्राप्ति के लिये गुरु के पास सदैव रहना तथा अन्य गच्छ के आचार्यादि के पास भी सविनय ज्ञानादि गुण ग्रहण करना यह पांच पांच अर्थात् दश समाचारी तीर्थंकरने कही है ॥५-७॥ अब मुनिजी जो

संवत्सर्ण, पक्खेण य दुअंगुलं ॥ वड्ढए हायए वावि मासेणं चउरंगुलं ॥ १४ ॥

पूर्णिमा से हरेक महिने में कृष्ण प्रतिपदा [एकम] से सात दिन में एक अंगुल घटता है पंदरे दिन में दो अंगुल छांया घटती है और महिने में चार अंगुल छांया घटती है, यों घटते २ चैत शुदी पूर्णिमा को तीन पांव छांया की पोरसी होती है और आषाढ महिने में दो पांव छांया की पोरसी होती है फिर सूर्य का पलटा होता है इस लिये आषाढ सु दी पूर्णिमा से सात दिन में एक अंगुल छांया बढाना पंदरे दिन में दो अंगुल छांया बढाना और महिने में चार अंगुल छांया बढाना यों आश्विन सुदी पूर्णिमा को तीन पांव छांया हो जाती है और पोष सुदी पूर्णिमा को चार पांव छांया हो जाती है, इस प्रकार पांव से पोरसी का माप जानना और जो हाथ के बेंत से मापना हो तो दो बेंत का पांव होने से आधा पांव का बेंत होता है इस लिये सब हिसाब आधा गिनना अर्थात् आषाढ महिने में बेंत की एक बेंत पूरी छांया होने पर पोरसी दिन आता है, फिर सात दिन में आधा अंगुल, पंदरे दिन में पूरा अंगुल और महिने में दो २ अंगुल छाया की वृद्धि करते २ पोष महिने तक दो बेंत छांया की पोरसी होती है फिर पक्ष में एक अंगुल और महिने में दो अंगुल घटते २ आषाढ महिने तक एक बेंत छांया की पोरसी होती है घोडियों की गिनती इस प्रकार होती है सूर्य की तरफ पूठ कर खडा रहे जहां तक अपने शरीर की छाया वहां लग के पांव के माप में सात की वृद्धि कर एकसो बीस का भाग देने से जितने आवे उतनी घडी दिन दो प्रहर तक आया और दो प्रहर बाद रहा जानना ॥ १४ ॥ अब दिन की तथा रात्रि की घडी के प्रमाण का यन्त्र देते हैं—

रिवससस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिण भागेसु चउसु वि ॥ ११ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ॥ तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥ १२ ॥ आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ॥ चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी ॥ १३ ॥ अंगुल

संक्षेप में कहते हैं—दिन के प्रथम प्रहर में शास्त्र की स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में अर्थ चिन्तवन रूप ध्यान करे तीसरे प्रहर में गौचरी (आहार आदि की याचना) करे, और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करे ॥ १२ ॥ ✽ प्रथम के दो प्रहर दिन आवे वहां तक उत्तर तरफ मुख रखकर और पीछे के दो प्रहर में दक्षिण दिशा तरफ मुख रखकर सूर्य के ताप [धूप] में खड़ा रहकर फिर दाहिने (जीमने) गोड़े का भाग आगे खड़ा कर घटने पर तर्जनी अंगुली लगावे उस की छांय जमीन पर जिस स्थान पर पड़े वहां से पांव की छांय को मापे आषाढ महिने में दो पैर प्रथम की और पीछे की छांया हो तब प्रहर दिन आया अथवा रहा मानना पोष महिने में चार पांव छांया आवे तथा रहे तब प्रहर दिन आया अथवा रहा मानना और चैत तथा अश्विन महिने में तीन पांव छांया हो तब प्रहर दिन आया तथा रहा मानना ॥ १३ ॥ अब बाकी के बीच के आठ महिने में प्रहरसी का प्रमाण कहते हैं पोष एक

✽ इन चारों प्रहर के मध्य में वैयावृत्य करने का काम होवे तो सब काम छोड प्रथम उस करे. यह कथन नवमी गाथा के अनुसार से कहा है

पांव प्रमाण	आषाढ पां अं	श्रावण पां अं	भाद्रव पां अं	आश्विन पां अं	कार्तिक पां अं	मृगशिर पां अं	पौष पां अं	माघ पां अं	फाल्गुन पां अं	चैत्र पां अं	वैशाख पां अं	जेठ पां अं
कृष्ण सप्तमी	२ ९	२ ७	३ १	३-५	३ ९	४ ३	४ ७	४ ९	४ ३	३ ११	३-७	३ २
अमावस्या	२ ८	२-८	३-२	३ ६	३ १	४ ४	४ ८	४ ८	४ २	३ १०	३ ६	३
शुक्ल सप्तमी	२-७	२ २	३-३	३-७	३ ११	४ ५	४ ९	४-७	४ १	३ ९	३ ५	२ ११
पूर्णिमा	२ ६	२ १०	३ ४	३-८	४	४ ३	४ १०	४ ६	४	३ ८	३ ४	२ १०

आसाढ बहुल पक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य ॥ फग्गुण वइसाहेसु य, बोद्धव्वा-ओमरत्ताओ ॥ १५ ॥ जेट्ठामूले आसाढ सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा ॥ अट्ठहिं

अब कौन से महिने में तिथी घटती तथा वृद्धि पाती है सो कहते हैं—१ अषाढ २ भाद्रव, ३ कार्तिक ४ पौष, ५ फाल्गुन, और ६ वैशाख इन छ महिने के कृष्ण पक्ष में तीथी घटती है, अर्थात् यह ६ महिने २९ दिन के होते हैं इस सिवाय—१ श्रावण, २ आश्विन ३ मृगशिर ४ महा ५ चैत्र, और ६ जेठ, यह ६ महिने पूर्ण ३० दिन के होते हैं अर्थात् एक महिना गुनतीसा और एक महीना तीसा होता है ॥ १५ ॥ अब पौन पोरसी का प्रमाण बताते हैं—१ जेठ, २ अषाढ और ३ श्रावण इन तीन महिने का जो पोरसी का प्रमाण ऊपर कहा है उन पांव पर छ अंगुल अधिक करने से पौन पोरसी का

है—जिस काल में जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करते हों उन का आकाश में चार भाग करना पह नक्षत्र प्रकाश में चाथे भाग में आवे तब प्रहार राथी भाइ जानना आकाश के मध्य में आवे तब आधी रात्रि भाइ जानना तीसरे भाग में जावे तब प्रहर रात्रि रहे जानना और उस नक्षत्र के अस्त होने से रात्रि पूर्ण होता है अब जो नक्षत्र जिस २ महीने की रात्रि का पूर्ण करते हैं उन के नाम चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र नुसार कहते हैं—१ श्रावण महिने का प्रतिपदा से चउदह दिन तक उत्तराषाढा नक्षत्र, फिर सात दिन अभिच नक्षत्र, फिर आठ दिन धनिष्ठा नक्षत्र और श्रवण शुक्ल पूर्णिमा को धनिष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है २ भाद्रव प्रतिपदा से १४ दिन धनिष्ठा, सात दिन शतभिषा, आठ दिन पूर्व भाद्रपद और पूर्णिमा के दिन उत्तर भाद्रपद नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ३ आश्विन महिने की प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराभाद्रपद, पन्द्रे दिन रेवती, और पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र राथी पूर्ण करता है ४ कार्तिक महिने की प्रतिपदा से १४ दिन अश्विनी, १५ दिन भरनी, और पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ५ मृगशिर महिने की प्रतिपदा से १८ दिन कृत्तिका, १२ दिन रोहिणी और पूर्णिमा के दिन मृगशिर नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ६ पौष महिने की प्रतिपदा के १४ दिन मृगशिर आठ दिन आर्द्रा, सात दिन पुनर्वसु और पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ७ महा महिने की प्रतिपदा से १४ दिन तक पुष्य नक्षत्र, १५ दिन अश्लेषा नक्षत्र, और पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ८ फाल्गुन महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मघा,

घीपतयमि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १६ ॥ रत्तिं पि चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा राइभाएसु चउसुवि ॥ १७ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीतिय झाणं झियायई ॥ तइयाए निद्दमोक्खंतु चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय ॥१८॥ ज नेइ जयारत्ति, नक्खत्त तमि नभचउब्भाए॥सम्वे वि

प्रमाण होता है जैसे की-१ भाद्रव, २ आश्विन और कार्तिक इन तीन महीने में उक्त जो पोरषी का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल अधिक करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है, जैसे की-१ मृगशिर २ पोष, और ३ माह इन तीन महीने का पोरषी का जो ऊपर प्रमाण कहा है उस पर दश अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है. जैसे की-१फाल्गुन २ चैत और ३ वैशाख इन तीन महीने में जो पोरषी की छाया का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है, इस प्रकार हरेक महिने में प्रथम पांवों का जो प्रमाण कहा है उस पर उक्त प्रमाण अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरसी का प्रमाण होता है ॥ पोरसी दिन आवे तो पात्र की प्रति लेखना करना ॥ यह दिन का कर्तव्य संक्षेप में कहा ॥ १६ ॥ अब रात्रि का कर्तव्य कहते हैं ॥ विचक्षण साधु रात्रि के भी चार भाग कर फिर उन चारों भागों में पृथक्कर उत्तर गुन का कर्तव्य करे ॥ १७ ॥ रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान धरे तीसरे प्रहर में निद्रा मुक्त होवे, और चौथे प्रहर में पुनःस्वाध्याय करे ॥ १८ ॥ अब रात्रि का प्रहरसी का मान किस प्रकार जानना यह कहते

है—जिस काल में जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करता हो उस को आकाश में चार भाग करना जब नक्षत्र आकाश के चौथे भाग में आवे उस प्रहर रात्री आई मानना आकाश के मध्य में आवे तब आधी रात्रि आई जानना तीसरे भाग में आवे तब प्रहर रात्रि रही जानना और उस नक्षत्र के अस्त होने से रात्रि पूर्ण होता है अब जो नक्षत्र जिस २ महीने की रात्रि को पूर्ण करते हैं उन के नाम चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र अनुसार कहते हैं—१ श्रावण महिने की प्रतिपदा से चउदह दिन तक उत्तराषाढा नक्षत्र, फिर सात दिन अभीच नक्षत्र, फिर आठ दिन धनिष्ठा नक्षत्र और श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को धनिष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है २ भाद्रव प्रतिपदा से १४ दिन धनिष्ठा, सात दिन शतभिषा, आठ दिन पूर्व भाद्रपद और पूर्णिमा के दिन उत्तर भाद्रपद नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ३ आश्विन महिने की प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराभाद्रपद, पन्दरे दिन रेवती, और पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र रात्री पूर्ण करता है ४ कार्तिक महिने की प्रतिपदा से १४ दिन अश्विनी, १५ दिन भरनी, और पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ५ मृगशिर महिने की प्रतिपदा से १४ दिन कृत्तिका, १५ दिन रोहिणी और पूर्णिमा के दिन मृगशिर नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ६ पौष महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मृगशिर, आठ दिन आर्द्रा, सात दिन पुनर्वसु और पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ७ महा माहे की प्रतिपदा से १४ दिन तक पुष्य नक्षत्र, १५ दिन अश्लेषा नक्षत्र, और पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है. ८ फाल्गुन महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मघा,

बीयतयंमि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १६ ॥ रत्तिं पि चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा राइभाएसु चउसुवि ॥ १७ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीतिय झाण झियायई ॥ तइयाए निद्दमोक्खंतु चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय ॥१८॥ ज नेइ जयारत्तिं, नक्खत्त तामि नभचउब्भाए॥सम्पत्ते वि

प्रमाण होता है जैसे कि—१ भाद्रव, २ आश्विन और कार्तिक इन तीन महिने में उक्त जो पोरषी का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल अधिक बढाने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है, जैसे कि—१ मृगशर २ पोष, और ३ महा इन तीन महीने का पोरषी का जो ऊपर प्रमाण कहा है उस पर दश अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है जैसे कि—१फाल्गुन २ चैत और ३ वैशाख इन तीन महीने में जो पोरषी की छाया का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमाण होता है, इस प्रकार हरेक महिने में प्रथम पोरषी का जो प्रमाण कहा है उस पर उक्त प्रमाणे अगुल की वृद्धि करने से पौन पोरसी का प्रमाण होता है ॥ पोरसी दिन आवे तब पात्र की प्रति लेखना करना ॥ यह दिन का कर्तव्य संक्षेप में कहा ॥ १६ ॥ अब रात्रि का कर्तव्य कहते हैं ॥ विचक्षण साधु रात्रि के भी चार भाग कर फिर उन चारों भागों में पृथकर उत्तर गुन का कर्तव्य करे ॥ १७ ॥ रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान धरे तीसरे प्रहर में निद्रा मुक्त होवे, और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे ॥ १८ ॥ अब रात्रि का प्रहरसी का मान किस प्रकार जानना सो कहते

भायणं पडिलेहए ॥ २१ ॥ मुहपत्तिं पडिलेहित्ता पडिलेहिज्ज गोच्छगं ॥ गोच्छग लइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥ २३ ॥ उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थ मेव पडिलेहे ॥ तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्ज ॥ २४ ॥ अणच्चाविय

काम से निवृत्ति पाकर पौरषी के चौथे भाग में गुरु को वंदना करके सर्व दुःख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय करे ॥ २२ ॥ पौरषी के चौथे भाग में पोन पौरषी निवृते बाद गुरु को नमस्कार करके स्वाध्याय के काम से निवृत्त हो पात्रादि भाजन की प्रतिलेखना करे ॥ २३ ॥ अब वस्त्र की पडिलेहना करने की विधी कहते हैं—सब पडिलेहना के पचीस प्रकार कहे हैं उस में १२ तो प्रशस्त (अच्छे) हैं और तेरह अप्रशस्त (खराब) हैं जिस में से प्रथम बारा प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं—१ जमीन से वस्त्र ऊंचा रखे, २ मजबूत पकडे, ३ शीघ्रता नहीं करे ४ आदि से अन्त तक वस्त्रादि का सर्व विभाग सूक्ष्म दृष्टि से देखे यह प्रथम चार पडिलेहना दृष्टी से दूसरो की कही जो दृष्टी देखते जीव की संभा पडे तो—५ वस्त्र को थोडासा खंखेरे (झटके) (यह दूसरी खंखेरने की पडिलेहना) जो खंखेरते भी जीव दूर न होवे तो ६ गुच्छकादि से वस्त्रादि का प्रमार्जे [यह तीसरी] यह पडिलेहना प्रशस्त जानना ॥ २४ ॥ और भी छ प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं–७ वस्त्र को तथा शरीर को नचावे नहीं ८ वस्त्र को मरोडे नहीं, ९ वस्त्रादि कुछ भी विना पडिलेहना नहीं रखे, १० वस्त्रादि का ऊपर छप्परादि से नीचे

रमज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि ॥ १९ ॥ तम्मेव य नक्खत्ते, गयण चउब्भाग साय सेसमि ॥ वेरत्तिय पि काल पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥ २० ॥ पुव्विल्लमि चउब्भाए पडिलेहित्ताण भंडय ॥ गुरु वंदित्तु सज्झाय, कुज्जा दुक्खविमोक्खण ॥ २१ ॥ पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ अपडिक्कमित्ता कालस्स,

१५ दिन पूर्वाफाल्गुनी, और पूर्णिमा को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ९ चैत्र महिने की प्रतिपदा से १४ दिन उत्तराफाल्गुनी १० दिन हस्त और पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है १ वैशाख महिने की प्रतिपदा से १४ दिन चित्रा, १० दिन स्वाति और पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ११ जेष्ठ महिने की प्रतिपदा से १४ दिन विशाखा, १५ दिन अनुराधा और पूर्णिमा को जेष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है और १२ अषाढ महिने की प्रतिपदा से १४ दिन जेष्ठा नक्षत्र, ७ दिन मूल नक्षत्र ८ दिन पूर्वाषाढा और पूर्णिमा को उत्तराषाढा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है यों बार महिने में रात्रि का प्रमाण जानना ॥१९॥ और उक्त नक्षत्रों आकाश के तीन भाग पूर्ण कर चौथा भाग में आवे तब प्रहर रात्रि रहे और उसके भी चौथे भाग में आवे तब दो घड़ी रात्रि रही जानना उस काल को प्रति लेखना कर साधु प्रतिक्रमणादि क्रिया करे ॥२०॥ अब दिन का कर्तव्य विस्तार से कहते हैं—दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चौथे भाग में (सूर्योदय से दो घडी तक) वस्त्रादि उपकरणों की प्रति लेखना करे फिर गुरु महाराज को वंदना नमस्कार करे स्वाध्याय करे ॥ २१ ॥ पौन पोरसी हुवे बाद स्वाध्याय के

सूत्र

घुणा ॥ 'कुणइ पमाणि पमाय, सकिय गणणोयग कुज्जा ॥ २७ ॥ अणूणाइरित्ता पडिलेहा, अविवच्चासा तहेवय ॥ पढम पय पसत्थ, सेसाणिय अप्प सत्थाणि

अर्थ

रखकर पडिलेहना करे (५) एक मदीका-दोनों घर्षे रानों हाथ के मध्य रख पडिलेहना करे, यह छ ही प्रकार की पडिलेहना अप्रशस्त (खराब) कहा है ॥ २७ ॥ और भी सात प्रकार की अप्रशस्त पडिलेहना कहते हैं—१ वस्त्र मजबूत नहीं पकडे ८ वस्त्र लम्बा रखकर पडिलेहना करे, ९ वस्त्र को धरती के साथ रगडे १० एक ही वक्त में सब वस्त्र दृष्टि से देखे ११ पडिलेहना करते वस्त्र को तथा शरीर को हलावे १२ पांच प्रकार के प्रमाद सहित पडिलेहना करे और १३ बारा प्रकार की जो प्रशस्त प्रतिले-हना कही है उस की गिनती करते हुए भूले यह तेरे प्रकार की अप्रशस्त प्रतिलेखना जानना यों पूर्वोक्त १२ प्रशस्त और १३ अप्रशस्त दोनों मिलकर २५ प्रकार की पडिलेहना जानना ॥ २७ ॥ प्रप डिलेहना के आठ भांग कहते हैं—पडि हना की विधी—१ कमी नहीं करे, ज्यादा नहीं करे विपरीत नहीं करे २ कमी नहीं करे ज्यादा नहीं करे परन्तु विपरीत करे, ३ कमी करे ज्यादा करे परन्तु विपरीत नहीं करे, ४ कमी नहीं करे ज्यादा करे और विपरीत करे, ५ कमी करे ज्यादा नहीं करे, विपरीत नहीं करे ६ कमी करे ज्यादा नहीं करे विपरीत करे ७ कमी करे, ज्यादा करे, विपरीत नहीं करे और ८ कमी करे, ज्यादा करे विपरीत करे इन आठ भांगों में प्रथम भांगा प्रशस्त (अच्छा) बाकी सात भांगे

अथल्यिं, अणाणुबंधिममोसालिं ॥ छप्पुरिमा नव पक्खोडा, पाणी पाणिविसोहण ॥ २५ ॥ आरभडा सम्मद्दा वज्जेयव्वा य मोसली तइया ॥ पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥ २६ ॥ पसिढिल पलंबलोला, एगा मोसा अणेग रूव

मयीन न थोर मे छा मीत दि म लगावे नहीं ११ वस्त्र का झटका नहीं और १२ मखादि में मो भीर रही भार वो उस के स्थानी ऊपर ग्रहण कर प्राणी की विराधना एकाय में परिठाय यों १२ मवस्त्र पारणा मानना ॥ २८ ॥ ✽ भा० पडिलेहना ममभस्त कासे हैं—१ आरभडा सो विपरीत तथा शीघ्रता से पडिलेहना कर, २ समादा सो वस्त्र को मरोडे मसले ३ मोसली सो वस्त्र को ऊंचा नीचा तिरछा लगावे ४ पप्फोडा-वस्त्र के झटके ५ विक्खित्ता सो-वस्त्र को बिखेर कर रखे तथा पडिलेहना विना पडिलेहना मेल रखे ६ पांच वेदी का-(१) ऊर्ध्वी वेदीका-एक घुटने पर दोनों हाथ रखकर पडिलेहना करे (२) नीची वेदीका-दोनों हाथ घुटने के नीचे रखकर पडिलेहना करे, (३) तिरछी वेदी का एक घुटने के दोनों पास हाथ रखकर पडिलेहना करे, (४) दो पास वेदीका-घुटने के बीच में दोनों हाथ

✽ कितनेक स्थान नव पक्खोडा का अर्थ ऐसा भी है कि-किसी भी वस्त्र के तीन विभाग कर उस में का एकक विभाग ऊपर मध्य और नीचे ऐसे तीनों स्थान में रखना, तीन श्री नव पक्खोडे होवे है और कितनीक प्रतों में नव खोडा पाठ है उस का अर्थ झटके नहीं ऐसा है

येयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ॥ तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥ ३३ ॥ निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करेज्ज छहिं चेव ॥ ठाणेहिं उ इमेहिं, अणतिक्कमणाइ से होइ ॥ ३४ ॥ आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेरगुत्ती सु

॥ ३२ ॥ अथ छ कारन आहार करन के कहते हैं—१ क्षुधा वेदनी समाने के लिये २ गुरु आदि की वैयावच्च करने के लिये ३ इर्या पंथ शोधन करने अर्थात् आहार बिना आंखों में अंधारी आती हो तो ४ संयम का निर्वाह काल पालन करने ५ अपने प्राण की दया छ काय प्राणीयों की रक्षा करने के लिये और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने अर्थात् आहार बिना चित्त व्याकुल हो धर्म ध्यान में विघ्न पड़ता हो तो आहार करे इन छ कारन में का कोई भी कारन हुवे आहार करे ॥ ३३ ॥ उक्त छ कारन में का कोई भी कारन उत्पन्न हुवे जो साधु साध्वी आहार करते हैं वे तीर्थंकर की आज्ञा के उल्लंघन करने वाले नहीं होते हैं अर्थात् जिनाज्ञा के आराधक होते हैं ॥ ३४ ॥ अब छे कारन से आहार का त्याग कर सो कहते हैं—१ रोग मात्र

यार दूसरे आरे में दो दिन बाद, तीसरे आरे में एक दिन बाद, चौथे आरे में दिन में एक वक्त पांचवे आरे में दो वक्त छठे आरे में वारंवार आहार की इच्छा होती है, इस अपेक्षा से चौथे आरे में दो प्रहर दिन के बाद ही गृहस्थ के घरों में आहार निष्पन्न होने का समय है इसलिये ही सर्व तीर्थंकरों तथा कालिकाल बमोसर अमाम् लिये ग्रामादि में जब भिक्षा का काल हो तब भिक्षा ग्रहण करने जावे.

॥ २८ ॥ पडिलेहणं कुणंतो, मिहोकहं कुणइ जणवय कहं वा ॥ देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ २९ ॥ पुढवी आउक्काए तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाण ॥ पडिलेहणा पमत्तो छण्हंपि विराहओ होइ ॥ ३० ॥ पुढवी आउक्काए, तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाणं ॥ पडिलेहणा आउत्तो छण्ह संरक्खओ होइ ॥ ३१ ॥ तइयाए पोरिसीए भत्तपाणं गवेसए ॥ छण्ह अन्नयराए कारणंमि उवट्ठिए ॥ ३२ ॥

प्रमादस्थ जानना ॥ २८ ॥ अब पडिलेहना करते पांच काम करना नहीं—१ परस्पर वार्तालाप करे नहीं २ चारों विकथा करे नहीं, ३ प्रत्याख्यान करावे नहीं ४ वाचना पृच्छना परियटना अनुप्रेक्षा धर्म कथा पांचों प्रकार की स्वाध्याय आप करे नहीं और पांचों स्वाध्याय अन्य के पास करावे नहीं ॥ २९ ॥ उक्त पांच प्रकार से प्रमाद करता हुवा जो पडिलेहना करेगा वह पृथ्वी २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छ ही काय जीवों की विराधना करनेवाला होगा ॥ ३० ॥ और जो उपयोग सहित पडिलेहना करेगा तो—१ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छ ही काय जीवों की यत्ना करनेवाला होवे यह पडिलेहना का अधिकार कहा ॥ ३१ ॥ अब गोचरी का अधिकार कहते हैं—आगे कहेंगे वे छ कारन में से कोई भी कारन प्राप्त हुवे साधु दिन के तीसरे प्रहर में अर्थात् दो प्रहर दिन आए बाद * गोचरी करने के लिये सावधान होवे

* यहां तीसरा प्रहर में गोचरी का कहा सो चौथे आरा आश्रिय जानना क्यों कि उसके आरे में दीन दिन के

सेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य सजमट्ठाए ॥ तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥ ३३ ॥ निग्गथो धिइमतो, निग्गथी वि न करेज्ज छहिं चेव ॥ ठाणेहिं उ इमेहिं, अणतिक्कमणाइ से होइ ॥ ३४ ॥ आयंके उवसग्गे तितिक्खया बंभचेरगुत्ती सु

॥ ३२ ॥ अब छ कारन आहार करने के कहते हैं—१ क्षुधा वेदनी शमाने के लिय २ गुरु आदि की वैयावच करने के लिये ३ इर्या पथ शोधन करने अर्थात् आहार बिना आंख में अंधारी आती हो तो ४ संयम का निर्वाह करने ५ अपने प्राण की दया छ काय प्राणीयों की रक्षा करने के लिये और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने अर्थात् आहार बिना चित्त व्याकुल हो धर्म ध्यान में विघ्न पड़ता हो तो आहार करे इन छ कारन में का कोइ भी कारन हुवे आहार करे ॥ ३३ ॥ उक्त छ कारन में का कोइ भी कारन उत्पन्न हुवे जो साधु साध्वी आहार करते हैं वे तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले नहीं होते हैं अर्थात् जिनाज्ञा के आराधक होते हैं ॥ ३४ ॥ अब छे कारन से आहार का त्याग कर यह कहते है—१ रोग मात्र

चार दूसरे आरे में दो दिन बाद, तीसरे आरे में एक दिन बाद, चौथे आरे में दिन में एक वक्त पांचवे आरे में दो वक्त छठे आरे में वारंवार आहार की इच्छा होती है, इस अपेक्षा से चौथे आरे में तीसरे प्रहर दिन के बाद की गृहस्थ के घरों में आहार निष्पन्न होने का समय है, इसलिये तीसरे प्रहर गोचरी करे तथा कालेकालं समायरे अर्थात् जिस ग्रामादि में जब भिक्षा का काल हो तब भिक्षा ग्रहण करने जावे.

पाणिदया तवहेउ, सरीर वोच्छेयणट्ठाए ॥ ३५ ॥ अवसेस भंडग, गिज्झ चक्खुसा पडिलेहए ॥ परमद्ध जोयणाओ विहार विहरे मुणी ॥ ३६ ॥ चउत्थीए पोरिसीए निक्खिवित्ताण भायण ॥ सज्झाय तओ कुज्जा सव्वभावविभावण ॥ ३७ ॥ पोरिसीए चउब्भाए वंदित्ताण तओ गुरु ॥ पडिक्कमित्ता कालस्स सेज्ज

होवे सो तपश्चर्या मानी है २ सर्पादि पशुओं तथा देवादि का उपसर्ग उत्पन्न होवे तब आहार छोडे ३ अपने चित्त दूर होवे ४ शील ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने इन्द्रिय जय करने का महान उपाय तपश्चर्या है ५ प्राणी की रक्षार्थ आहार निहारादि अर्थ गमना गमन करने की हिंसा छोडना ६ तपश्चर्या करने के लिये और ६ शरीर का परित्याग (संथारा) करने इन छे कारन आहार का त्याग करता हुआ साधु जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ॥ ३५ ॥ जो कभी साधु को आहार पानी साथ लेकर विहार करना होतो सब भंडोपकरन की पडिलेहणा कर उन सब को अपने साथ में ले उत्कृष्ट आधा योजन (दो कोस) पर्यन्त जा सकता है ॥ ३६ ॥ आहार किये बाद चौथी पहरसी में भंडोपकरण पात्रादि को अच्छी तरह बांधकर अलग रख और फिर सब पदार्थ भाव का प्रकाशने वाली स्वाध्याय करे ॥ ३७ ॥ चौथी पहरसी के चौथे भाग में (दो घडी दिन रहे तब) स्वाध्याय से निवृत्त कर अपने गुरु आदि को वंदना

सु पडिलेहए ॥ ३८ ॥ पासवणुच्चारभूमिं च पडिलेहिज्ज जयं जई ॥ काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व दुक्खविमोक्खणं ॥ ३९ ॥ देवसियं च अतीचारं, चिंतिज्जा

नमस्कार करके शयन करने का मकान शैय्या–पाटादि बिछौनेके वस्त्रादि की पडिलेहणा कर ॥ ३८ ॥ फिर उच्चार – बडी नीत परिठाने की भस्थान–लघुनीत परिठान की भूमी की यत्ना से पडिले हणा करे फिर कायोत्सर्ग कर–अर्थात्–प्रथम नमस्कार मन्त्र कह तिक्खुत्ता से वंदना कर इरियावही तस्स उत्तरी का पाठकह कायोत्सर्ग करे कायुत्सर्ग में इर्यावही की चिंतवना करे कायुत्सर्ग पार लोगस कह फिर प्रति लेखना में जो दोष लगा हो उस का मिथ्या दुष्कृत्यदे फिर एक सिद्ध भगवंत को, दूसरा अरिहंत का, नमोत्थुणं देवे तीसरा 'मम धर्म गुरु धर्माचार्य का होना" इस मुजब प्रथम शेष वस्तु करके फिर गुरु आदि पास प्रथम आवश्यक की आज्ञा ग्रहण कर, इच्छामिणे भंते, नवकार, करेमी भंते इच्छामी ठामी; तस्स उत्तरी का पाठ कहकर सर्व दुःख का क्षय करने वाला कायुत्सर्ग करे ॥ ३९ ॥ कायुत्सर्ग में दिन सम्बन्धी ज्ञान में दर्शन में चारित्र में जो कोई अतिचार लगा हो उस की चिंतवना अनुक्रम से करे अर्थात्—१४ ज्ञान के ५ सम्यक्त्व के २५ भावना पांच महाव्रत की, २ रात्रि भोजन के, ४ इर्या समिति के ३ भाषा समिती के ४७ एषणा समिती के, २ आदान निक्षेपना समिती के, १० परिठावणिया समिती के, ३ मनगुप्ति के, ३ वचन गुप्ति के, ३ काया गुप्ति के

अणुपुव्वसो ॥ नाणमि दंसणे चेव चरित्तम्मि तहेव य ॥ ९० ॥ पारिय काउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ देसियं तु अतिचारं, आलोएज्ज जहक्कम ॥९१॥ पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्व दुक्खवि मोक्खण ॥ ९२ ॥ पारिय काउस्सग्गो वंदित्ताण तओ गुरु ॥ थुइमंगल च

मार पांच संलेखना के यों सब १२५ अतिचार की कायुत्सग में चिंतवना करे ॥ ९० ॥ कायुत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा से लोगस्स कहे, फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा से गुरु आदि को इच्छामी खमासमणा की पाटी से बारे आवृत कर वंदना करे फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे दिन का लगे हुवे उक्त अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥ ९१ ॥ सब अतिचारों का प्रतिक्रमण कर मिच्छामि दुक्कडं देकर निःशल्य होवे श्रमणसूत्र नमो चउवीसाए इच्छामी खमासमणो पाचों पद की वंदना वगैरह करे फिर गुरु आदि को वंदना कर पांचवे आवश्यक की आज्ञा से करेमी भंते इच्छामीठामी तस्सुत्तरी करके सर्व दुःख मुक्त करता चार लोगस्स का कायुत्सर्ग करे यह पांचवा आवश्यक हुवा ॥ ९२ ॥ फिर कायुत्सर्ग पारकर लोगस्स कहकर गुरु वंदन करे अर्थात् इच्छामी खमासमणा से २ द्वादशावृत वंदना करे फिर प्रत्याख्यान करे यह छ ही आवश्यक पूर्ण हुवे इस प्रकार छ ही आवश्यक पूर्ण हुए बाद स्तुति मंगल करे अर्थात् सिद्ध का और अरिहंत को

काऊण, कालं संपडिलेहए ॥ ४३ ॥ पढम पोरिसि सज्झाय बितियं झाणं झियायई
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झाय तु चउत्थिए ॥ ४४ ॥ पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु
पडिलेहए ॥ सज्झाय तु तओ कुज्जा, अबोहतो असजए ॥ ४५ ॥ पोरिसीए
चउब्भाए वंदिऊण तओ गुरु ॥ पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥ ४६ ॥
आगए कायवोस्सग्गे सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व

और पर्याचार्य को नमोथुणं देवे फिर स्वाध्याय करने के लिये काल की पडिलेहना करे दिशा को देखे की रक्त वर्ण की तो नहीं, तारादि तो टूटते नहीं हैं वगैरह ॥ ४३ ॥ फिर रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान करे तीसरे प्रहर में निद्रा से मुक्त होवें और चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥ ४४ ॥ चौथी प्रहरसी के कालका प्रतिलेखन करके अर्थात् चौथी प्रहरसी प्राप्त हुई जानकर १२ असझाय टालकर असंयति यों जाग्रत न होवे इस प्रकार स्वाध्याय करे ॥ ४५ ॥ फिर रात्रि के चौथी पोरसी के चौथे भाग में अर्थात् पीछे की दो घरी रात्री रहे तब स्वाध्याय के काल से निवृत्ति पाकर आवश्यक (प्रतिक्रमण) के काल की प्रतिलेखना करे फिर प्रतिक्रमन की आज्ञा ग्रहण करने गुरु आदि को वंदना करे ॥ ४६ ॥ जब प्रतिक्रमण करने की वक्त हो गई हो तब जिस प्रकार देवसी (दिन सम्बन्धी) प्रतिक्रमण की विधी कही है उस ही प्रमाने दोष विशुद्धि कर पडिले

दुक्खवि मोक्खण ॥ ४७ ॥ राइय च अइयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ॥ नाणमि दसणमि य चरित्तमि तवमि य ॥ ४८ ॥ पारिय काउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ राइय तु अनीचार आलाएज्ज जहक्कम ॥४९॥ पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्व दुक्खवि मोक्खण ॥ ५० ॥ किं तव पडिवज्जामि एव तत्थ विचिंतए ॥ काउसग्ग तु पारित्ता वन्दई य तओ गुरु ॥५०॥

आवश्यक की आज्ञा ले पूर्वोक्त सभी प्रमाण सब दुःख से मुक्त करनेवाला कायोत्सर्ग करे ॥ ४७ ॥ कायोत्सर्ग में रात्रि सम्बन्धी १४ ज्ञान का, ५ सम्यक्त्व के १२५ चारित्र के और १२ तप के यों १५६ अतिचार का अनुक्रम से चिन्तवन कर यह प्रथमावश्यक ॥ १ ॥ कायोत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर लोगस्स कहे फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले दो खमासमना से गुरु वंदना कर यह तीसरा आवश्यक हुवा फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहन कर रात्रि सम्बन्धी ज्ञानादि के अतिचार की आलोचना करे ॥ ४९ ॥ आलोचना कर उस पाप से प्रतिक्रमा है। मिथ्या दुष्कृत दे शुद्ध होवे मायादि तीनों शल्य रहित निःशल्य होवे श्रमण सूत्र नमो चौवीसा खमासमणा पांचों पद की वन्दना कर यह चौथा आवश्यक पूरा हुवा फिर गुरु आदि का वन्दना करके पांचवा आवश्यक की आज्ञा से नवकार करेमी भंते इच्छामि ठामि तस्सुत्तरी का पाठ कहकर सब दुःख से छोडानेवाला कायोत्सर्ग करे ॥ ५० ॥ इस पांचवे आवश्यक के कायोत्सर्ग में चिन्तवन करे

पारिय काउसग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ तवं तु पडिवज्जेज्जा, करिज्ज सिद्धाण संथवं ॥ ५२ ॥ एसा सामायरी समासेण वियाहिया ॥ जं चरित्ता बहु जीवा तिण्णा संसार सागरं ॥ ५३ ॥ त्तिबेमि ॥ इति सामायारी नामक छब्बीसम अज्झयण सम्मत्त ॥ २६ ॥ * * * * *

कि-आज मैं किस प्रकार का तप अंगीकार करूं ? फिर नवकारसी आदि जो तप उस दिन ग्रहण करना हो उस का निश्चय कर कायुत्सर्ग को पारे लोगस्स कहे फिर दो वक्त खमासमणादे यह गुरु वंदना हुवे बाद पांचवा आवश्यक पुरा हुवा ॥ ५१ ॥ फिर पांचवा कायुत्सर्ग आवश्यक पुरा हुवे बाद गुरु आदि को वंदना करके नवकारसी आदि जो तप अंगीकार करने का हो वह अंगीकार करे फिर सिद्धस्तवन अर्थात् अरिहंत को सिद्ध का और धर्माचार्य को नमुथुणं देवे यह छठा आवश्यक पुरा हुवा यह राईसी प्रतिक्रमण की विधी हुई यहां तो यह संक्षेप में छ ही आवश्यक की विधी कही हैं इस की विशेष विधी आवश्यक सूत्र से जानना ॥ ५२ ॥ इस प्रकार दश प्रकार की समाचारी तीर्थंकर भगवान ने कही है इन समाचारी का आचरन कर गत काल में अनंत जीवोंने संसार समुद्र से तीर कर मुक्ति पद प्राप्त किया सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सर्व दुःख का अन्त किया है॥ ५३ ॥ यों सुधर्मा स्वामीजीने जंबू स्वामी जी से कहा कि मैंने जिस प्रकार तीर्थंकर भगवानसे सुना वैसा तेरे से कहा है, इति समाचारी नामक छब्बीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २६ ॥

॥ खलुङ्किय नाम सप्तविंशतितम मध्ययनम् ॥

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए ॥ आइण्णे गण भावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥ १ ॥ वहणे वहमाणस्स, कंतार अइवत्तई ॥ जोगे वहमाणस्स, संसार अइवत्तई ॥ २ ॥ खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई ॥ असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ से य भज्जई ॥ ३ ॥ एगं डसइ पुच्छंमि, एगं विंधइ भिक्खण-

छब्बीसवे अध्ययन में समाचारी कही वह तो शठता त्यागने से ही पालन कर सकता है इस लिये सत्ताईसवे अध्ययन में शठपना त्यागन का कहते हैं जीवों को धर्म में स्थिर करने से स्थविर पद को प्राप्त हुवे साधुओं का गण-समुदाय को धारन करने गणधर आचार्य पद को प्राप्त हुवे सर्व शास्त्रों में विचक्षण आचार्य के गुण युक्त अपनी आत्मा को समाधीमें जोडनेवाले ऐसे गर्ग नाम के आचार्य थे॥१॥ जिस प्रकार विनयवंत बैल गाडी में जोते हुवे मार्ग का वाहन करते-खेंचते हुवे गाडीवान और बैलों सुख से अटवी का उल्लंघन करते हैं तैसे संयम के योग रूप भार में प्रवर्तते विनीत शिष्य के सम्बन्ध से गुरु और शिष्य सुख से संसार रूप अटवी के पार होते हैं॥ २ ॥ और जिस प्रकार गलियार बैल को गाडी आदि में जोतने से उन बैलों को चलाने के लिये गाडीवान उन बैलों को आरा(लोहे की आरवाली लकडी) से फेरता हुवा असमाधी चित्त के उद्वेगपनेको प्राप्त होवे दुःखीपने क्लेश पावे किंतु उस बैलको मारते २ वह आरी भी टूट जावे ॥ ३ ॥ गाडीवान गलियार बैल में से किसी बैलके पूंछ को काटे

॥ एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पह पट्ठिओ ॥ ४ ॥ एगो पडइ पासेण, निवेसइ निवज्जई ॥ उक्कुद्दइ उप्फिडइ, सढे बालगवी वए ॥ ५ ॥ माई मुद्धेण पडइ, कुद्धे गच्छे पडिप्पह ॥ मय लक्खेण चिट्ठई य, वेगेण य पहावई ॥ ६ ॥ छिन्नाले छिंदइ सेल्लिं दुद्दन्तो भंजए जुगं ॥ से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जाहित्ता पलायए ॥७॥ खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ॥ जोइया धम्म जाणम्मि, भज्जंति

किसी को भाणा की आर पारम्बार चुभावे कोइ गलीयार बेल दूसरे को मारे कोई गलीयार बेल उन्मार्ग में प्रवेश करे ॥ ४ ॥ कोइ गलीयार बेल एक तरफ पड़ जावे, कोइ गलीयार बेल बैठ जावे, कोइ गलीयार पड़ सो जावे कोइ गलीयार बेल मेंडक की तरह उछले और कोइ गलीयार बेल गौता कर गाय देख उस के पीछे भगे जाय ॥ ५ ॥ कोई गलीयार बेल धमक कर मुख को जमीन पर फाड़ पड़ जावे, कोई गलियार बेल कोपित हो पीछा भग जावे कोई गलियार बेल मृत्युक की तरह सोता मूर्छा खा कर पड़ जाय और कोई गलियार बेल धूर्तता से गाडीवान को घबराता स्थान उल्लंघन कर शीघ्रता से भग जावे ॥ ६ ॥ कोइ गलियार बेल अपनी दुष्टता कर रस्सी को तोड़ डाले, कोई गलियार बेल दर्दांत हो कर धूसरे को तोड़े कोइ गलियार बेल फुफाड कर गाडीवान के हाथ से छूट कर भग जावे ॥ ७ ॥ कोइ गलियार बेल गाड़े को जोतने से गाड़ेको ही तोड़ डाले इन गलियार बेल के जैसे ही कितनेक कुशिष्य भी होते हैं, उन को धर्म रूपी गाड़े में जोतते हुवे क्रियानुष्ठान में

चिइ दुम्पला ॥ ८ ॥ इड्डीगारविए एगे, एगेत्थ रसगारवे ॥ सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥ ९ ॥ भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाण भीरुए ॥ थद्धे एग च अणुसासम्मी हेऊहिं कारणेहि य ॥ १० ॥ सो वि अंतर भासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई ॥ आयरियाण तु वयण, पडिकूलेइ अभिक्खण ॥ ११ ॥ नसा मम

दुःख बुद्धि वाले बने हुवे अधैर्यता धारन कर सम्यक् मन से नहीं प्रवर्तते हुवे धर्म का नाश करते हैं ॥ ८ ॥ किस प्रकार धर्म का नाश करते हैं सो कहते हैं-कोई कुशिष्य ज्ञानादि ऋद्धि का अहंकारी होता है, कोई कुशिष्य इच्छित आहार की प्राप्ती होने से रस गर्वी होता है, कोई कुशिष्य बहुत काल तक कोपवंत रहता है ॥ ९ ॥ कोई कुशिष्य भिक्षा लाने में आलसी होता है, कोई कुशिष्य भिक्षा में याचनादि अपमान से डरता है कोई कुशिष्य हितशिक्षा देने हेतु कारण से प्रेरित हो गुरु आदि के सन्मुख बोलता है ॥ १० ॥ कोई शिष्य गुरु बोलते हो उस के बीच २ में बोलते हैं कोई कुशिष्य गुरु के वचनों में दोष निकालते हैं, कोई कुशिष्य आचार्य के हितशिक्षा रूप वचन को वारम्वार विपरीत करता है ॥ ११ ॥ अब कुशिष्य किस प्रकार गुरु के वचन को विपरीत करते हैं सो कहते हैं—गुरु कहे कि-जावो आहार आदि वस्तु चाहिये है सो ले आवो तब शिष्य कहे-मुझे कोई श्रावक श्राविकादि पहचानते नहीं है, वे मुझे आहार आदि देंगे या नहीं देंगे तथा वे घर में होंगे या नहीं होंगे, तथा वे

वियाणइ, न य सा मज्झ दाहिई ॥ निग्गया होहिइ मन्ने, साहु अन्नोत्थ वच्चउ ॥ १२॥
पेसिया पलिउंचंति, ते परियंति समंतओ ॥ रायवेट्ठिं च मन्नंता, करेंति भिउडिं मुहे
॥ १३ ॥ वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया ॥ जायपक्खा जहा हंसा,
पक्कमंति दिसो दिसिं ॥ १४ ॥ अह सारही विचिंतेइ, खलुंकेहिं समागओ ॥ किं

सिवाय अन्य साधु को भेज कर भी यह काम करा सकते हो मेरे सिवाय अन्य कोई साधु नहीं है
क्या ? ॥ १२ ॥ किसी कार्य करने के लिये गुरु शिष्य को भेजे और वह काम नहीं करता हुवा गुरु
पूछे तब कहे कि-कब तुमने मुझे काम दिया था काम नहीं करने के लिये गुरु से दूर बैठे या इधर
उधर फिरता फिरे, जो गुरु हुकम करे तो राजा के नोकर की तरह माने काम सुनकर मस्तक पर भ्रम
चढावे मुख मुद्रा उदास करे ॥ १३ ॥ जिस प्रकार हंस के पांखों आने से वह दिशोदिशा में उड़जाता है
इस ही प्रकार गुरुने जिस शिष्य का आहार वस्त्रादि पोषण कर ज्ञानादि का पठन कराया वह स्वयं
विचरने समर्थ हो गुरु को छोड कर स्वेच्छाचारी बनता है ॥ १४ ॥ जिस गलियार बलद को
चलाने से गाडीवान खेदित होता है, उस प्रकार गर्गाचार्य शिष्यों के सम्बन्ध से श्रम को प्राप्त
हुवे विचार करने लगे कि यह दुष्ट शिष्यों मेरे क्या काम के ? इन से मेरा क्या काम होने का है
तो फिर कुशिष्यों से मेरा क्या प्रयोजन ? उलटा इन की संगत से मुझ अनेकधा संताप उत्पन्न होता

मक्ख पुट्ठसीसिहिं, अप्पा मै अवसीयइ ॥ १५ ॥ जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा ॥ गलिगद्दहे जहित्ताण दढं पगिण्हइ तवं ॥ १६ ॥ मिउमद्दव संपन्नो, गंभीरो सुसमाहिओ ॥ विहरइ महिं महप्पा, सील भूएण अप्पणा ॥१७॥ त्तिबेमि ॥ इति खलुंकिज्ज नाम सत्तावीस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २७ ॥ • •

रे इसलिये इन को छोड कर विचरना ही मुझे श्रेयस्कार है ॥ १५ ॥ गलियार गधे के जैसे उन शिष्यों को मान कर उन के प्रेम का परित्याग कर गर्गाचार्य बारे प्रकार के तप से अपनी आत्मा को भावते हुवे विचरने लगे ॥ १६ ॥ सुकोमल स्वभावी विनीत गुरु अहंकार रहित सौम्य मुद्रावाले चारित्र में मग्न संयम-आठ मद रहित क्रोध रहित शीतली भूत गंभीर और उत्तम समाधी वंत महात्मा श्री गर्गाचार्यजी मस्त से पृथ्वी में विहार करने लगें ॥ १७ ॥ इस प्रकार सुधर्मा स्वामीजीने श्री जम्बू स्वामी से कहा ॥ इति गर्गाचार्य का सत्ताविसवा अध्ययन संपूर्ण ॥ २७ ॥ • •

॥ मोक्षमोग गति नामक अष्टाविंशतितम मध्ययनम् ॥

मोक्खभग्ग गइ तच्च, सणेह जिण भासिय ॥ चउकराण सजुत्त, नाण दसण लक्खण ॥ १ ॥ नाण च दसण चव, चरित्तं च तवो तहा ॥ एस मग्गो त्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदसिहिं ॥ २ ॥ नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ॥

सत्तावीसवे अध्ययन में धूर्तपना छाडने का कहा, धूतता छोड कर जो सरल बनता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है इस लिये मोक्ष मार्ग नामक अठावीसवा अध्ययन कहते हैं हे शिष्य ! सर्व कर्म से मुक्त होना उस का नाम मोक्ष है, उस मोक्ष को गमन करन रूप जो गति गमन-मोक्षमार्ग श्री तीर्थंकर भगवानने चार प्रकार से कहा है (वह आगे कहेंगे) और मोक्ष में जो जीवों रहे हैं उन के ज्ञान और दर्शन यह दो लक्षण कहे हैं उन का यथातथ्य स्वरूपमें मेरे से कहूं । सो तुम चित्त से श्रवण करो ॥ १ ॥ मोक्ष मार्ग प्राप्ति के चार कारन कहते हैं— १ ज्ञान पदार्थों के स्वरूप को सम्यक् प्रकार यथातथ्य जानना, २ दर्शन (सम्यक्त्व) पदार्थों के स्वरूप में सम्यक् प्रकार यथातथ्य श्रद्धा करना ३ चारित्र नये आते हुवे कर्माश्रव का निरुंधन करने प्रत्याचरण करना, और ४ तप-पूर्वोपार्जित कर्म का क्षय करने द्वादश प्रकार तप मानना इन चार कारनों करके प्रधान मोक्ष गति के मार्ग में गमन होता है, ऐसे प्रधान मोक्ष पथ के प्रभुने कहा है ॥ २ ॥ उक्त १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, और ४ तप इन चारों को सम्यक् प्रकार आचरन

पयमग्ग मणुप्पत्ता, जीवागच्छंति सोग्गइं ॥ ३ ॥ तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ॥ ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥ एयं पंचविहं

करने से जीवों सद्गति मोक्ष गति को जाते हैं ॥३॥ उक्त चार कारनों में प्रथम कारन जो ज्ञान कहा है उस के ५ प्रकार कहे हैं तद्यथा (१) प्रथम मति ज्ञान जिस के २८ भेद १ श्रोतेन्द्रियका अवग्रह शब्द ग्रहण करे २ श्रोतेन्द्रिय का इहा ग्रहण किये शब्द का विचार करे, ३ श्रोतेन्द्रिय का अवाय-विचार कर निश्चय करे और ४ श्रोतेन्द्रिय की धारना सो उस शब्द को संख्यात असंख्यात काल तक भूले नहीं यह श्रोतेन्द्रिय के चार बोल कहे ऐसे ही ४ चक्षु-इन्द्रिय के, ४ घ्राणेन्द्रिय के ४ रसेन्द्रिय के ४ स्पर्शेन्द्रिय के और ४ मन के यों २४ भेद और १ उत्पातिया, २ विनीया ३ कमीया तथा ४ परिणामीया यह ४ बुद्धि मिलकर मति ज्ञान के २८ भेद हुवे श्रुति ज्ञान के १४ भेद—१ अकारादि अक्षर से जाने वह अक्षर श्रुत, २ अक्षरोच्चार विना खासी आदि से जाने वह अनक्षर श्रुत ३ भाव भेद समझ सूत्र पढे वह समीश्रुत ४ भाव भेद बिन समझे पढे वह असन्नीश्रुत, ५ सम्यक ज्ञान के सूत्र हों वह सम्यक् श्रुत ६ मिथ्यात्वी के शास्त्र वे मिथ्याश्रुत, ७ भरतादि क्षेत्र का आदि सहित ज्ञान सो सादि श्रुत, ८ महाविदेहादि क्षेत्र का आदि रहित ज्ञान सो अनादि श्रुत, ९ भरतादि क्षेत्र का अन्त सहित ज्ञान सो सपज्जव श्रुत, १० महाविदेह क्षेत्र का अन्त रहित ज्ञान सो अपज्जव श्रुत ११ आचारांगादि का ज्ञान सो गमीश्रुत, १२ पूर्वादि का ज्ञान अगमीश्रुत १३ इग्यार

नाणं, दव्वाण य गुणाण य ॥ पज्जवाण य सव्वेसिं, नाणं नाणीहि दंसियं ॥ ५ ॥

गुणाण मासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा, लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया

भग का ज्ञान सो अंगप्रविष्ट और १४ उपांगादि का ज्ञान सो अंग बाहिर अवधिज्ञान के ८ भेद १ जन्म से होवे सो भव पृथक् २ करना से होवे सो क्षयोपशम पृथक् ३ मर्याद सहित क्षेत्र में देखे सो देश से ४ सम्पूर्ण लोक देखे सो सर्व से ५ अनुक्रम से देखे तथा साथ में रहे सो अनुगामी ६ आगे पीछे देखे जहां उत्पन्न हो वहां ही देखे अन्य स्थान जाकर नहीं देखे सो अननुगामी ७ उत्पन्न हो चला जावे सो पडवाई और, ८ पीछा जावे नहीं सो अपडवाई ॥ मनःपर्यव ज्ञान के दो भेद १ संक्षेप से देखे सो ऋजुमति और २ विस्तार से देखे सो विपुल मति ॥ केवल ज्ञान का एक ही भेद यह पांचों ज्ञान के ५१ भेद हुए ॥ ४ ॥ यह पांच प्रकार का ज्ञान धर्मास्तिकायादि छहों द्रव्य में छहों द्रव्य के चलनादि गुन में और छहों द्रव्य की पर्याय में जानपना करना यह जानपना केवल ज्ञानीने कहा है ॥ ५ ॥ अब द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप कहते हैं १ गुण और पर्याय का भाजन वह द्रव्य, २ द्रव्य की पहचान कराने वाला गुन, और ३ द्रव्य में गुणादि का पलटा हो वह पर्याय इस में १ द्रव्य सो जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य गुन सो जीव का गुण ज्ञानादि और अजीव का गुन वर्णादि, पर्याय के दो भेद १ आत्मभावी और २ कर्मभावी आत्म भावी सो ज्ञान दर्शन चारित्र और कर्म भावी नरकादि गति, तथा चलनादि गुण के आश्रय धर्मास्ति प्रमुख छ ही द्रव्य जानना और प्रत्येक [अङ्ग २] द्रव्य के आश्रय है वे गमनादि गुण करना और

भवे ॥ ६ ॥ धम्मो अहम्मो आगास, कालो पुग्गल जतवे ॥ एस लोगोत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥ धम्मो अहम्मो आगासं दव्वं इक्किक्क माहिय

पर्याय सो नवे २ उत्पन्न होवे जूने का क्षय होवे पर्याय है सो द्रव्य के और गुण के दोनों के आश्रय से रहते हैं जैसे धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशास्ति इन तीनों का एकत्र मिलना, एक ही प्रदेशों में रहना, यह अनादि पारिणामिक जानना और एकेक के स्कन्ध देश प्रदेश यों एकेक के तीन २ भेद यों तीनों के ९ भेद और दसवा काल यह दशों अरूपी के पर्याय मानना तैसे ही जीवास्ति काय में केवल ज्ञान केवल दर्शन के पर्याय-सिव न कदापि मिले वे सादि पर्यायासिव और चार ज्ञान तीन अज्ञान, तीन दर्शन पर्याय रूपी होवे उपजे रहे, वैसे ही पुद्गलास्ति के पर्याय मीलते हैं अलग होते हैं संस्थान संयोग विभागादि सब पर्याय का पर्याय मानना ॥ ६ ॥ १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति ३ आकाशास्ति, ४ काल ५ पुद्गलास्ति, और ६ जीवास्ति * इन छ ही द्रव्य रूप लोक * है ऐसा प्रधान ज्ञान के धारक तीर्थंकरने प्ररूपा है ॥ ७ ॥ द्रव्य से धर्मास्ति काय अधर्मास्तिकाय और आकाशास्ति काय का एक ही द्रव्य है अर्थात् यह

* इन द्रव्यों में काल को छोड कर पांच अस्तिकाय कहिये अर्थात् अस्ति=प्रदेश काया=अधिकपना प्रदेश समूह रूप जानना और काल जीव काया नहीं कही, क्यों कि क्षीण २ में पलटा होता है

* आकाशास्ति काय का लोक में रहा और प्रदेश है रहस्य तो लोक अलोक दोनों मिलकर होता है

॥ अणंताणिय दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥ ८ ॥ गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण लक्खणो ॥ भायणं सव्व दव्वाणं, नहं ओगाह लक्खणं ॥ ९ ॥ वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओग लक्खणो ॥ नाणेण दंसणेण च, सुहेण य दुहेण य ॥ १० ॥ नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥ वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ ११ ॥ सद्दंधयार उज्जोओ पहा छाया तवेइ वा ॥ वण्णरस

तीनों असंख्य हैं और काल के, पुद्गल के और जीव के अनंत द्रव्य है अर्थात् काल भी अनंत समय रूप है पुद्गल भी अनंत परमाणु स्कंध रूप है और जीव द्रव्य भी अनंत है ॥ ८ ॥ अब छे द्रव्य के लक्षण कहते हैं १ धर्मास्तिकाय का गति (चलन) लक्षण २ अधर्मास्तिकाय का स्थिति (स्थिर) लक्षण, ३ सब द्रव्य के भाजन रूप आकाशास्तिकाय का विकास लक्षण, ४ समय आवलिकादि की वर्तना रूप काल का वर्तना लक्षण ५ जीव का ज्ञान दर्शन या सुख दुःख के वेदने रूप उपयोग लक्षण ॥ ९-१० ॥ और भी जीव के लक्षण कहते हैं—५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ दर्शन ५ चारित्र चारित्ताचारित्त अचारित्र, नो चारित्र नो अचारित्र नो चारित्ताचारित्ते, ४ बाल तप, पंडित तप, बाल पंडित तप नो बाल नो पंडित नो बाल पंडित तप, ४ बाल वीर्य, पंडित वीर्य, बाल पंडित वीर्य, नो बाल नो पंडित वीर्य, २ साकार और अनाकार यह उपयोग यों छ बोल अन्तर्गत २६ प्रकार के जीव के लक्षण जानना ॥ ११ ॥ अब पुद्गल के

गंध फासा, पुग्गलाण तु लक्खण॥१२॥ एगत्त च पुहत्त च सखा सठाणेमव य ॥

लक्षण कहते हैं—१ शुभाशुभ शब्द २ अधकार, ३ रत्नादि का उद्योत ४ चन्द्रादि की प्रभा, क्रांति ५ आम्रादि की छाया ६ सूर्यादि का ताप, ७ ११ पांच वर्ण १२-१६ पांच रस १७ १८ दोगंध, १९ २६ आठ स्पर्श यह २६ लक्षण पुद्गलों के जानना यह छ ही द्रव्य के लक्षण कहे ॥ १२ ॥ अब पर्याय का लक्षण कहते हैं—१ परमाणु आदि पुद्गलों मिलकर स्कंध होना २ स्कंध बिखर कर पृथक् २ परमाणु आदि होना ३ एक दो आदि संख्याते व अनंते इत्यादि संख्या ४ चतुस्र वृत्त, चतुरस्र, वैरस लम्बा यह संस्थान, ५ वर्णादि का संयोग मिलना, तथा ६ वर्णादि का विभाग वियोग होना यह रूपी अरूपी पर्याय के लक्षण जानना इस प्रकार द्रव्य गुण पर्यायका जानपना हो उसे ज्ञान कहना+

+ ६ द्रव्य में निश्चय तथा व्यवहार की स्थापना करते हैं—१ धर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचेतन यह निश्चय और गति लक्षण यह व्यवहार २ अधर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचेतन्य यह निश्चय और स्थिरगुण यह व्यवहार, ३ आकाशास्तिकाय-लोकाकाश असंख्यात प्रदेशात्मक अलोकाकाश अनंत प्रदेशात्मक अचेतन्यता यह निश्चय विकाशगुन यह व्यवहार, ४ काल-एक पर्याय अरूपी अचेतन्य यह निश्चय वर्ता ऋतु अयन संवत्सरादि व्यवहार, ५ जीव असंख्यात प्रदेशात्मक अरूपी शुद्धाशुद्ध उपयोग चेतन्यता यह निश्चय पंचेन्द्रियादि जाति सो व्यवहार, जीवास्तिकाय. और ६ पुद्गलास्तिकाय में एकरूपी अनंत प्रदेशात्मक अचेतन्यता यह निश्चय,वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थान यह व्यवहार इस प्रकार षद्द्रव्य का निश्चय तथा व्यवहार पना शास्त्र नय प्रमाणे जानना.

सजोगा य विभागाय, पज्जवाण तु लक्खण ॥ १३ ॥ जीवाजीवा य बंधोय, पुण्णं
पावासवो तहा ॥ सवरो निज्जरा मोक्खो सतेए तहिया नव ॥ १४ ॥ तहियाणं
तु भावाण, सब्भावे उवएसण ॥ भावेण सद्दहतस्स, सम्मत्त त वियाहिय ॥१५॥

॥ १३ ॥ अब मुक्ति का दूसरा कारन दर्शन का वर्णन करते हैं—१ जीव २ अजीव ३ बंध, ४ पुण्य, ५ पाप, ६ आश्रव, ७ सवर ८ निर्जरा और ९ मोक्ष, इन नव तत्त्व में से १ असंख्यात प्रदेशी सदा सउप योगी, चेतना लक्षण युक्त, सुख दुःख का जान कर्ता व भोक्ता होवे उसे जीव कहना, २ जड लक्षण चैतन्यता रहित हो अजीव कहना ३ जीवाजीव का (जीव पुद्गल-कर्म) के सम्बन्ध मिल बंध होवे वह बंध ४ जीव के प्रदेश में शुभ पुद्गलों का बन्ध हो आगे को सुखरूप उदय में आवे वह पुण्य ५ जीव के प्रदेश में अशुभ पुद्गलों का बंध हो आगे को दुःख रूप उदय आवे वह पाप ६ शुभाशुभ कर्म पुद्गल आने का रास्ता वह आश्रव ७ शुभाशुभ कर्म आने के रास्ते को रोक वह संवर ८ देश से कर्मों की निर्जरा करे वह निर्जरा और ९ सर्वांश कर्मों का क्षय करे वह मोक्ष इन नव ही पदार्थों की आस्ति है, इन नव ही तत्वों को गुरु के उपदेश कर तथा स्वयं जाति स्मरणादि ज्ञान कर शुद्ध अन्तःकरण के भाव कर उक्त नव ही पदार्थों का श्रद्धान करे उसे श्री तीर्थंकर भगवानने सम्यक्त्व कहा है ॥ १४ १५ ॥ इन

नव ही पदार्थों का—१ सात नय २ चार निक्षेपा, ३ चार प्रमाण ४ द्रव्य क्षेत्र काल भाव ५ निश्चय व्यवहार, ६ द्रव्य और भाव ७ सामान्य और विशेष इन २१ प्रकार कर जाने १० सातनय कहते हैं १नैगमनय वाला ने अनेकगम अनेकरीती अनेक प्रमाण कर एक वस्तु को माने सामान्य मान अर्थात् किसी वस्तु में उस के नाम का अंशमात्र भी गुन हो तो उसे पूर्ण मान विशेष माने अर्थात् उस के नाम प्रमाने पूर्ण गुन उस में पाते होवे तो भी उसे पूर्ण माने तीनों काल की बात और निक्षेप चार ही माने, २ संग्रहनय वाला-वस्तु की सत्ता को ग्रहण करे, एक नाम लेने से सर्व गुन पर्याय परिवार सहित ग्रहन करे जैसे एक बाग का नाम लेने से अनेक पदार्थों की समज हो जावे या सामान्य माने परन्तु विशेष नहीं माने क्यों कि थोडे में समझे तो विशेष की पप मरूर तीनों काल की बात और निक्षेपा चार ही माने ३ व्यवहार नयवाला वस्तु का बाह्य स्वरूप देखे उसी मुजब उस वस्तु को माने उसे अन्दर के गणों की दरकार नहीं परन्तु आचार क्रिया की दरकार है, जैसे तोता हरा केल कालिया व्यवहार में एक ही रंग वाली माने निश्चय में रंग पांच ही माने इस नयवाला सामान्य नहीं माने विशेष माने तीनों काल की बात और निक्षेपा चार ही माने ४ ऋजुसूत्र नयवाला का सरल सरल विचार रहता है, यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात माने गत अनागत की बात को असार जाने जैसे किसी ने कहा सो वर्ष पहिले सोने की वृष्टि हुइ थी या होगी उस यह निसार जाने) क्यों कि अपने क्या काम आई ? और निक्षेपा एक भाव माने

६ शब्दनय वाला जैसा जिस वस्तु का नाम हो वैसा ही उस का अर्थ ग्रहण करे उस वस्तु के नाम प्रमाने उस में गुन हो या मत हो जैसे-शक्रेन्द्र, पुरेन्द्र, शचिपति देवेन्द्र, इन शब्दों का एक ही इन्द्र अर्थ ग्रहण करे परन्तु लिंग शब्द में भेद नहीं माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव ही माने ६ समभिरूढ नयवाला—शब्द पर आरूढ हो उस का अर्थ ग्रहण करे, वस्तु का अंश मात्र गुन कमी होवे तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने, जैसे अरिहंत को सिद्धमाने और यह शब्द का अर्थ कायम करे, जैसे—शक्र सिंहासन पर बैठकर न्यायकरे तब शक्रेन्द्र कहे, हाथ में वज्र ले देवता के पुर को विदारे तब पुरेन्द्र कहे इन्द्राणियों की सभा में बैठे तब शचिपति कहे, देवता की सभा में बैठे तब देवेन्द्र कहे यह सामान्य नहीं माने, विशेष माने, एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने ७ एवंभूत नयवाला—जैसा जिस का नाम वैसा ही उस का काम और प्रमाण यह तीनों पूर्ण होवे वस्तु अपने गुण में पूर्ण होवे, उस गुण मुजब ही क्रिया करती हो, उस वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय व वस्तु धर्म प्रत्यक्ष में देखाता हो उसे ही यह वस्तु कहेगा अंश मात्र गुण कमी हो तो वस्तु नहीं कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने जैसे शक्रेन्द्र शक्र सिंहासन पर बैठ न्याय करते हैं परंतु उन का मन जो देवांगना की तरफ होगा तो उसे शचिपति कहेगा परंतु शक्रेन्द्र नहीं कहेगा इन सातों नय पर सपृष्य दृष्टान्त-किसीने नैगम नयवाले से पूछा-तुम कहां रहते हो ? उसने उत्तर दिया मैं लोक में रहता हूं-तब नैगम नयवाला बोले—लोक तो तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो ? उत्तर

राजा सेठ सेनापति आदि नित्य सभा में जाकर करने योग्य कार्य करे वह लौकिक द्रव्यावश्यक. [१] वल्कल वस्त्रधारी, मृग चर्मधारी भगवे वस्त्रधारी फक नाम तापसादि नित्य नियम प्रमाने ॐकारादि का ध्यान करे क्रिया करे सो कुमावचन द्रव्यावश्यक (३) साधु के गुण रहित छ काय की दया रहित उन्मत्त निरंकुश, मठावलम्बी भगवान की आज्ञा के बाहिर जो साधु हैं वे दोनों वक्त आवश्यक करे वह लोकोत्तर द्रव्यावश्यक—४ भाव निक्षेपा–वस्तु का निज गुन उस में होवे अर्थात् जीव के ज्ञानादि निजगुण और अजीव का वर्णादि निजगुन वस्तु में न होवे तो भाव निक्षेपा शून्य गिना जाता है भाव निक्षेपे के दो भेद—१ शुद्ध उपयोग सहित भावार्थ पर उपयोग लगाकर शास्त्रादि पढे सो आगम से भाव निक्षेप और २ नो आगम से के तीन भेद—(१) राजा सेठ प्रमुख सदैव शुद्ध उपयोग सहित प्रभात को भारत, श्याम को रामायन आदि श्रवण करे सो लौकिक भावावश्यक (२) वल्कल वस्त्र धारी मृग चर्म धारी भगवा वस्त्रधारी शुद्ध उपयोग सहित ॐकारादि मंत्र जापकरे वह कुमावचनी भावावश्यक और (३) साधु साध्वी श्रावक श्राविका भगवंत की आज्ञा प्रमाने प्रवर्तन वाले दोनों वक्त प्रतिक्रमण करे वह लोकोत्तर भावावश्यक यह चारों निक्षेप ज्ञानादि चारो कारन पर करते हैं १ किसी जीव पदार्थ का ज्ञान ऐसे नाम दिया वह नाम निक्षेप, २ ऐसे ही किसी वस्तु की या पुस्तकादि की स्थापना करे वह स्थापना निक्षेप ३ उपयोग शून्य ज्ञान पढ पढावे वह द्रव्य निक्षेपा अथवा ज्ञानी जीव आयुष्य पूर्ण कर गया उसे ज्ञान द्रव्य निक्षेपा कहना और उपयोग सहित ज्ञान का पठन

५ शब्दनय वाला जैसा जिस वस्तु का नाम हो वैसा ही उस का अर्थ ग्रहण करे इस वस्तु के नाम ममाने उस में गुन हो या मत हो जैसे शक्रेन्द्र, पुरेन्द्र, शचिपति देवेन्द्र इन शब्दों का एक ही इन्द्र अर्थ ग्रहण करे परन्तु लिंग शब्द में भेद नहीं माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव ही माने ६ समभिरूढ नयवाला—शब्द पर आरूढ हो उस का अर्थ ग्रहण करे वस्तु का अंश मात्र गुन कमी होवे तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने, जैसे अरिहंत को सिद्ध माने और यह शब्द का अर्थ कायम करे, जैसे—शक्र सिंहासन पर बैठकर न्यायकरे तब शक्रेन्द्र कहे हाथ में वज्र ले देवता के पूर को विदारे तब पुरेन्द्र कहे इन्द्राणियों की सभा में बैठे तब शचिपति कहे, देवता की सभा में बैठे तब देवेन्द्र कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने, एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने ७ एवंभूत नयवाला—जैसा जिस का नाम वैसा ही उस का काम और प्रमाण यह तीनों पूर्ण होवे वस्तु अपने गुण में पूर्ण होवे, उस गुण मुजब ही क्रिया करती हो, उस वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय व वस्तु धर्म प्रत्यक्ष में देखाता हो उसे ही पर वस्तु कहेगा अंश मात्र गुण कमी हो तो वस्तु नहीं कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने जैसे शक्रेन्द्र शक्र सिंहासन पर बैठ न्याय करते हैं परंतु उन का मन जो इन्द्राणी की तरफ होगा तो उसे शचिपति कहेगा परंतु शक्रेन्द्र नहीं कहेगा इन सातों नय पर समन्वय दृष्टान्त—किसीने नैगम नयवाले से पूछा—तुम कहां रहते हो? उसने उत्तर दिया मैं लोक में रहता हूं अशुद्ध नैगम नयवाला बोला,—लोक तो तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो? उत्तर

राजा सेठ सेनापति आदि मिल्य समा में आकर करने योग्य कार्य करे वह लौकीक द्रव्यावश्यक [६] वल्कल वस्त्रधारी, मृग चर्मधारी भगवे वस्त्रधारी फक्त नाम तापसादि मिल्य नियम प्रमाने ॐकारादि का ध्यान करे क्रिया करे सो कुप्रावचन द्रव्यावश्यक (३) साधु के गुन रहित छे काय की दया रहित उन्मत्त निरंकुश, मठावलम्बी भगवान की आज्ञा के बाहिर जो साधु हैं वे दोनों वक्त आवश्यक करे वह लोकोत्तर द्रव्यावश्यक-४ भाव निक्षेपा-वस्तु का निज गुन उस में होवे अर्थात् जीव के ज्ञानादी निजगुन और अजीव का वर्णादि निजगुन वस्तु में न होवे तो भाव निक्षेपा शुन्य गिना जाता है भाव निक्षेपे के दो भेद—१ शुद्ध उपयोग सहित आचार्य पर उपयोग लगाकर पाठादि पढे सो आगम से भाव निक्षेप और २ नो आगम से के तीन भेद—(१) राजा सेठ प्रमुख सदैव शुद्ध उपयोग सहित कमर को भारत, श्याम को रामायण आदि श्रवण करे सो लौकिक भावावश्यक (२) वल्कल वस्त्र धारी मृग चर्म धारी अथवा वस्त्रधारी शुद्ध उपयोग सहित ॐकारादि मंत्र जापकरे वह कुप्रावचनी भावावश्यक, और (३) साधु साध्वी श्रावक श्राविका भगवंत की आज्ञा प्रमाने प्रवर्तने वाले दोनों वक्त प्रतिक्रमण करे वह लाकोत्तर भावावश्यक. यह चारों निक्षेप ज्ञानादि चारो कारन पर करते हैं १ किसी जीव पदार्थ का ज्ञान ऐसे नाम दिया वह नाम निक्षेप, २ ऐसे ही किसी वस्तु की या पुस्तकादि की स्थापना करे वह स्थापना निक्षेप ३ उपयोग शून्य ज्ञान पढे पढावे वह द्रव्य निक्षेपा अथवा ज्ञानी जीव आयुष्य पूर्ण कर गया उसे ज्ञान द्रव्य निक्षेपा कहना और उपयोग सहित ज्ञान का पठन

निक्षेपा चार—१ नाम निक्षेपा—इस के २ भेद—(१) जैसा जिस का नाम हो वैसा ही उस में गुन पावे यह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणी (२) नाम प्रमाणे गुन नहीं हो सो अयथार्थ नाम-जैसे जीव का नाम घूसा कचरा [३] जिस का कुछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे हांसी खांसी छींकादि २ स्थापना निक्षेपना-इस के ४० भेद-[१] काष्ट की, [२] चित्र की, (३) पोत, (चीट) की (४) लेप की, (५) गांठे की [६] मरत (कसीदे की, (७) छन्द (कोरनी) की (८) वस्तु स्थाप्त् कोई वस्तु पड़ने से भेद भावे सो और (१०) बल की इन १० का एक रूप बनावे तथा अनेक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उस का तादृश्य हूबेहु ऊंचाइ चौड़ाइ लक्षन व्यंजन युक्त रूप बनावे, उस को देख साग वस्तु का यथातथ्य भान हो जावे जैसे फोटोग्राफ और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से उलटा असद्भाव स्थापना ऊपर कही वस्तु का मनःकल्पित रूप बनावे जैसे गोल पत्थर पर तेल सिन्दूर लगा कर भेरुंजी की स्थापना करे यह ४० भेद हुवे. ३ द्रव्य निक्षेप-इस के दो भेद (१) शास्त्रादि पढे परन्तु अर्थ समझे नहीं शून्यचित बिना परिणाम से पढे वह आगम से द्रव्यनिक्षेप और (२) नो आगमसे के तीन भेद—(१) जैसे कोइ आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया उस का शरीर पडा है उसे देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान था सो ज्ञानग शरीर, (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुवा देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान होगा सो भविय शरीर और (३) ज्ञायक भविय तिवीरिक्त शरीर के तीन भेद—(अ)

निक्षेपा चार—१ नाम निक्षेप—इस के ३ भेद—(१) जैसा जिस का नाम हो वैसा ही उस में गुन पावे वह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणि (२) नाम प्रमाणे गुन नहीं हो जो अयथार्थ नाम-जैसे जीव का नाम भूला कपरा [३] जिस का कुछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे ह की खांसी छींकादि २ स्थापना निक्षेपना—इस के ४० भेद [१] काष्ट की [२] चित्र की, (३) पोत (वीट) की (४) लेप की (५) गांठ की [६] भरत (कसीदे) की, (७) छर (कोरनी) की (८) वस्तु स्यात् कोई वस्तु पडने से भेद भावे सो और (१०) वस्त्र की इन १० का एक रूप बनावे तथा मरक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उस का यथातथ्य मान आरम्भ होवे ऊंचाई चौडाई आसन व्यंजन युक्त रूप बनावे, उस को देख लोगे वस्तु का यथातथ्य ज्ञान हो जावे जैसे फोटोग्राफ और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से उलट असद्भाव स्थापना ऊपर कही वस्तु का मनःकल्पित रूप बनावे जैसे गाम पत्थर पर तेल सिन्दूर लगा कर भैरूंजी जी की स्थापना कर यह ४० भेद हुवे ३ द्रव्य निक्षेप-इस के दो भेद (१) शास्त्रादि पढे परन्तु अर्थ समझे नहीं उपयोग बिना परिणाम से पढ यह आगम से द्रव्यनिक्षेप और (२) नो आगमसे के तीन भेद—(१) जैसे कोई आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया उस का शरीर पड़ा है उसे देख के यह आवश्यक का ज्ञाता था सो ज्ञानग शरीर, (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुवा जैस्त करे यह आवश्यक का ज्ञान होगा सो भविष शरीर और (३) ज्ञायक भविय व्यतिरिक्त शरीर के तीन भेद—(क)

तप से कर्म भस्म हो सो उपमा प्रमान ॥ ३ ॥ चौथे चोले द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनंत २ लग आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साथ क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमान काल अढाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनंत प्रदेशी. और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र ३८१२७९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले सो ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घटी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं ऐसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, अठारसो योजन ऊंचा तिरछालोक १८०० योजन कम सात रज्जु ऊंचा लोक यों चउदह रज्जु का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक १३ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ रज्जु चौथी नरक ३४ रज्जु पांचवी नरक ४० रज्जु छट्ठी नरक, ४९ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक २० रज्जु तिरछालोक पहिला दूसरा स्वर्ग १० ॥ रज्जु तीसरा चौथा १५ ॥ रज्जू पांचवा छठा १७ ॥ रज्जु सातवा आठवा १४ ॥ रज्जु नवमा दशमा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेयका अनुत्तर विमान ८॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब १४७ रज्जू घनाकार लोक सातवी नरक के नीचे ७ रज्जू चौड़ा ऊपर उतरता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौड़ा

निक्षेपा चार—१ नाम निक्षेप—इस के २ भेद—(१) जैसा जिस का नाम हो वैसा ही उस में गुन पावे वह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणी (२) नाम प्रमाणे गुन नहीं हो सो अयथार्थ नाम-जैसे जीव का नाम भूसा कपरा [३] जिस का कछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे हासी खांसी ढींकादि २ स्थापना निक्षेपना—इस के ४० भेद [१] काष्ठ की, [२] चित्र की, (३) पोत (चीर) की (४) लेप की (५) गांठे की [६] भरत (कसीदे) की, (७) छत्र (तोरनी) की (८) वस्तु स्यात् कोई वस्तु धरने से भेद पावे सो और (१०) वस्त्र भी इन १ का एक रूप बनावे तथा अनेक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उस का आकार इतु ऊंचा चौड़ा अक्षर व्यंजन युक्त रूप बनावे, उस को देख सागे वस्तु का यथातथ्य मान हो जावे जैसे फोटोग्राफ और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से उलट असद्भाव स्थापना करे कोई वस्तु का मनःकल्पित रूप बनाय जैसे गोल पत्थर पर तेल सिन्दूर लगा कर भैरुजी की स्थापना कर यह ४० भेद हुवे ३ द्रव्य निक्षेप इस के दो भेद (१) शास्त्रादि पढे परन्तु अर्थ समझे नहीं उपयोग बिना परिणाम से पढे वह आगम से द्रव्य निक्षेप और (२) नो आगमसे के तीन भेद—(१) जैसे कोई आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया उस का शरीर पड़ा है उसे देख के यह आवश्यक का ज्ञान था सो जानग शरीर, (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुवा देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान होगा सो भविय शरीर. और (३) जानग भविय व्यतिरिक्त शरीर के तीन भेद—(अ)

तप से कर्म भस्म हो सो तपमा प्रमान ॥ १ ॥ चौथे बोले-द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव वो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनत २ द्रव्य आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साथ क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमान काल अढाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनत प्रदेशी और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र ३८१२७९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घडी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं एसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, आठारसो योजन ऊंचाइसे तिरछालोक १८०० योजन रूप सात रज्जु ऊंचालोक यों चउदह रज्ज का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक १६ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ रज्जु चौथी नरक ३४ रज्जु पांचवी नरक ४० रज्जु छठ्ठी नरक, ४९ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक दश रज्जू तिरछालोक पहिला दूसरा स्वर्ग १९॥ रज्जु तीसरा चौथा १७ ॥ रज्जू पांचवा छठ्ठा ३७ ॥ रज्जू सातवा आठवा १४ ॥ रज्जु नववा दशवा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेगना अनूत्तर विमान ६॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब ३४३ रज्जू घनाकार लोक. सातवी नरक के नीचे ७ रज्जु चौडा ऊपर घटता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौडा

तप से कर्म नस्ट हो तो क्रमसा ममाम ॥ २ ॥ चौथे बोले द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिनामी चार अपरिनामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनंत २ द्रव्य, आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साप क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य, पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमान काल अढाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनंत प्रदेशी और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र १८१२०९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घडी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं ऐसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, आठारसो योजन ऊंचापने तिरछालोक १८०० योजन कम सात रज्जु ऊंचालोक यों चवदह रज्जु का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक, १६ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ रज्जु चौथी नरक, ३४ रज्जू पांचवी नरक, ४० रज्जु छठी नरक, ४६ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक दस रज्जू तिरछालोक पहिला दूसरा स्वर्ग १९॥ रज्जु तीसरा चौथा १७॥ रज्जू पांचवा छठा ३७॥ रज्जु, सातवा आठवा १४॥ रज्जु नववा दसवा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेगना अनूत्तर विमान ६॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब ३४३ रज्जू घनाकार लोक सातवी नरक के नीचे ७ रज्जु चौडा ऊपर उतरता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौडा

कहा यह सत्य है परन्तु चार कोस के कूवेकी उपमा दी यह अनहोती क्यों कि कूवा कोइने भरा नहीं (३) अनहोते को होती ओपमा द्वारका कैसी ? तो कि देवलोक जैसी, भागीया सूर्य जैसा, जवार मोती जैसे वगैरा (४) अनहोती को अनहोती उपमा- जैसे गद्धे के श्रृंग कैसे? तो कि घोडे जैसे वंध्या के पुत्र कैसा आकाश कुसुम जैसा ॥ यह चारों प्रमान ज्ञानादि पर उतारते हैं १ सूर्य का बिम्ब देख कर सूर्य का उदय जाना यह प्रत्यक्ष प्रमाण, २ बद्दल में ढके सूर्य को अनुमान से जाना तथा धूप देखकर सूर्योदय माना यह अनुमान प्रमाण ३ सूर्य की ऋद्धि विमानादि का वर्णन जाने यह आगम प्रमाण सूर्य लाल हिंगूली जैसा वगैरे उपमा दे सो उपमा प्रमाण इस सूर्य के उदय के चार प्रमान कहे इस प्रकार सब वस्तु पे ज्ञान आश्रिय चार प्रमाण जानना और २ ज्ञान के जैसे ही चार प्रमाण दर्शन पद कहना ३ अब चारित्र कहते हैं पांचों समिति का पालन करता देख कहे यह चारित्रीय है यह प्रत्यक्ष प्रमान २अनुत्तर विमान के देवता उत्पन्न हुए तब अनुमान से जाने यह चारित्र पालकर उत्पन्न हुवा है यह उपमा ३सूयगडांगादि सूत्र में साधु के दया समिति आदि गुनों का वर्णन किया यह आगम प्रमान और ४ साधु को सूर्य की चन्द्र की पृथ्वी आदि की उपमा दि सो उपमा प्रमान ४ तप आश्रिय ४ प्रमान-व्रत प्रत्याख्यान तप करता देखे व प्रत्यक्ष प्रमान, २ धन्ना अनगार के जैसा दुर्बल अंग देखकर जाने यह तपस्वी है यह अनुमान प्रमान ३ निर्जरा के १५४ भेदादि का कथन शास्त्र में कहा सो आगम प्रमान और ४ जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को भस्मकरे तैसे

इस के १२ भेद ४ ज्ञान, ४ अज्ञान ३ दर्शन, ५ इन्द्रिय, १ दृष्टि ५ चारित्र ५ ज्ञानादि लब्धि, (एवं १०) और ११ बालवीर्य तथा १२ पंडित वीर्य ५ परिणामि भाव के दो भेद-जो पलटे सो गति आदि सादि परिणामि और जो न पलटे सो जीव भव्य अभव्य तथा धर्मास्ति आदि अनादि परिणामि ६ सन्निपात भाव सो एक दो तीन चार पांच भावों का मिलाप होने सो जिस के २६ भंग अनुयोग द्वार से जानना ॥ अब पांचों भाव ज्ञानादि पर उतारते हैं सम्यक्त्वादि जो चारों बोल करे इस का जानपना ज्ञान सो चारों प्रकार के ज्ञान, चारों का श्रद्धान करे यह दर्शन, द्रव्य से छहों द्रव्य क्षेत्र से सर्व लोक सम्बन्धी, काल से जावज्जीव पर्यंत का और भाव से कोटी करणादि कर आश्रव निवर्ते सो चारित्र, द्रव्य क्षेत्र काल का मर्यादा बांधकर एकान्त निर्जरा के अर्थ तप करे सो तप ॥ पांच ये चारों निश्चय और व्यवहार जिस पदार्थ का चिन्तवन किया उस के आभ्यन्तर गुन आभ्यन्तर रूप हो उस निश्चय नय कहना, और अभ्यन्तर गुन बिना जो बाह्य प्रवर्ती यह अशुद्ध व्यवहार यह निश्चय व्यवहार ज्ञानादि चारों पर उतारते हैं—१ सम्यक्त्व सहित अंतरंग जीव के प्रदेश में यथातथ्य जीवादि पदार्थ का जानपना यह निश्चय ज्ञान और श्रवणादि शास्त्र का पठन मननादि करना यह व्यवहार ज्ञान २ अंतरंग में जीवादि पदार्थ श्रद्धान सो निश्चय सम्यक्त्व शंकादि दोष रहित सम्यक्त्व पाले यह व्यवहार सम्यक्त्व, ३ सम्यक्त्व युक्त अठारा पाप का अन्तःकरण से त्यागे यह निश्चय चारित्र महाव्रत समिति गुप्ति आदि का पालन करे यह व्यवहार चारित्र सम्यक्त्व युक्त पर पुद्गलों पर से ममत्व

कहा जा सक्ता है परन्तु चार कोश के कूवेकी उपमादी यह अनहोती क्योंकि कूवा कोइने भरा नहीं (३) अनहोते को होती ओपमा द्वारका कैसी ? तो कि देवलोक जैसी, भागीया सूर्य जैसा, जवार मोती जैसे वगैरा (४) अनहोती को अनहोती उपमा- जैसे गद्धे के श्रृंग कैसे तो कि घोडे जैसे वंध्या के पुत्र कैसा आकाश कुसुम जैसा ॥ यह चारों प्रमान ज्ञानादि पर उतारते हैं १ सूर्य का बिम्ब देख कर सूर्य का उदय जाना यह प्रत्यक्ष प्रमाण, २ पडल में ढके सूर्य को अनुमान से जाना तथा धूप देखकर सूर्योदय जाना यह अनुमान प्रमाण ३ सूर्य की ऋद्धि विमानादि का वर्णन जाने यह आगम प्रमाण सूर्य लाल हिंगूली जैसा वगैरे उपमा दे सो उपमा प्रमाण इस सूर्य के उदय के चार प्रमान को इस प्रकार सब वस्तु पे ज्ञान आश्रिय चार प्रमाण जानना और २ ज्ञान के जैसे ही चार प्रमाण दर्शन पे लगना ३ अब चारित्र कहते हैं पांचों समिति का पालन करता देख कहे यह चारित्रीय है यह प्रत्यक्ष प्रमान २अनुत्तर विमान के देवता उत्पन्न हुए तब अनुमान से जाने यह चारित्र पालकर उत्पन्न हुवा है यह उपना ३ रूपगडांगादि सूत्र में साधु के इर्या समिति आदि गुनों का वर्णन किया यह आगम प्रमान और ४ साधु को सूर्य की चन्द्र की पृथ्वी आदि की उपमा दि सो उपमा प्रमान ४ तप आश्रिय ? प्रमान प्रत्याख्यान तप करता देखे व प्रत्यक्ष प्रमान, २ धन्ना अनगार के जैसा दुर्बल अंग देखकर जाने यह तपस्वी है यह अनुमान प्रमान ३ निर्जरा के १२४ भेदादि का कथन शास्त्र में कहा सो आगम प्रमान और ४ जिस प्रकार अग्नि काष्ट को भस्मकरे वैसे

इस के १२ भेद ४ ज्ञान, ४ अज्ञान ३ दर्शन, ५ इन्द्रिय, १ दृष्टि २ चारित्र, ५ ज्ञानादि लब्धि, (एवं १०) और ११ बालवीर्य तथा १२ पंडित वीर्य, ५ परिणामि भाव के दो भेद-जो पलटे सो गति आदि सादि परिणामि और जो न पलटे सो जीव भव्य अभव्य तथा धर्मास्ति आदि अनादि परिणामि ६ सन्निवाई भाव सो-एक दो तीन चार पांच भावों का मिलाप होवे सो जिस के २६ भंग अनुयोग द्वार से जानना ॥ अब पांचों भाव ज्ञानादि पर उतारते हैं षट्द्रव्यादि जो चारों बोल का इस का जानपना होवे सो चारों प्रकार के ज्ञान, चारों का श्रद्धान होवे वह दर्शन, द्रव्य से छकाया प्रण क्षेत्र स सर्व लोक सम्बन्धी, काल से यावज्जीव पर्यंत का और भाव से कोटी करणादि कर आश्रव निवर्त सो चारित्र, द्रव्य क्षेत्र काल की मर्यादा बांधकर एकान्त निर्जरा के अर्थ तप करे सो तप ॥ पांच के चार्मे निश्चय और व्यवहार जिस पदार्थ का चिन्तवन किया उस का आभ्यन्तर गुन आभ्यन्तर रूप से वह निश्चय नय जानना, और अभ्यन्तर गुन बिना जो बाह्य प्रवर्ती वह अशुद्ध व्यवहार पर निश्चय व्यवहार ज्ञानादि चारों पर उतारते हैं-१ सम्यक्त्व सहित अंतरंग जीव के प्रदेश में यथातथ्य जीवादि पदार्थ का जानपना वह निश्चय ज्ञान और भवरगादि शास्त्र का पठन मननादि करना वह व्यवहार ज्ञान २ अंतरंग में जीवादि पदार्थ श्रद्धान सो निश्चय सम्यक्त्व, शंकादि दोष रहित सम्यक्त्व पाले यह व्यवहार सम्यक्त्व, ३ सम्यक्त्व युक्त अठारा पाप का अन्तःकरण से त्यागे वह निश्चय चारित्र महाव्रत समिति गुप्ति आदि का पालन करे वह व्यवहार चारित्र. सम्यक्त्व युक्त पर पुद्गलों पर से ममत्व

निसग्गुवएस रुई, आणारुईसुत्त बीयरुइ' मेव ॥ अभिगम वित्थार रुइ, किरिया संखेव

रहित ९ना वह निश्चय तप अनशनादि बारा प्रकार का तप करे वह व्यवहार तप ॥ छठे बोले–द्रव्य और भाव–जैसे किसी भ्रमरने लकड़ कोरा उस में कमल का आकार कोरा गया वह भ्रमर के मा। द्रव्य कमल और पंडितन उस की पगाय पैछानी उसे कमल जाना वह पंडित के भाव भावकमल हुआ ऐसे ही सम्यक्त्व विना शुद्ध श्रद्धा विना मिथ्यात्वी का ज्ञान दर्शन चारित्र तप वह द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र तप और जिनाज्ञा सहित शुद्ध श्रद्धा युक्त एकान्त निर्जरा के लिये करे वह भाव ज्ञान दर्शन चारित्र और तप ॥ सातवे बोले सामान्य विशेष–समुचय नाम वह सामान्य उस का विस्तार करे वह विशेष–जैसे ज्ञान यह सामान्य माति ज्ञानादि पांचों ज्ञान का विस्तार से वर्णन करे वह विशेष २ दर्शन सामान्य उपशमादि सम्यक्त्व का कथन करना यह विशेष ३ चारित्र यह सामान्य सामायिकादि चारित्र का वर्णन करना यह विशेष और ४ तप यह सामान्य अनशनादि तप का वर्णन करना वह विशेष ७ नय ४ निक्षेप ४ प्रमाण ४द्रव्यादि, २निश्चय व्यवहार, २ द्रव्य भाव और २ सामान्य विशेष इन पचीस बोलकर ज्ञानादि चारों मोक्ष के कारण को तथा जीवादि नव पदार्थों को जाने उसे सम्यक्त्वी कहना ॥ १५ ॥ अथ सम्यक्त्व प्राप्त करने की दशरुची कहते हैं १ निसर्गरुची २उपदेश रुची ३आज्ञा, रुची, ४सूत्र रुची, ५ बीज रुची, ६अभिगम रुची, ७विस्तार रुची, ८क्रिया रुची, ९ संक्षेप रुची. और १०धर्म रुची

धर्मरुई ॥ १६ ॥ भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च ॥ सहसम्मुइयासव संवरोय, रोएइ उ निसग्गो, ॥ १७ ॥ जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सय मेव ॥ एमेय नन्नहत्तिय सनिसग्गरुइत्ति नायव्वो ॥ १८ ॥ एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई, छउमत्थेण जिणेण व, उवएस रुइत्ति नायव्वो ॥ १९ ॥ रागो दोसो मोहो अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ॥ आणाए रायंतो सो, खलु आणारुई नामं ॥ २० ॥ जो सुत्त महिज्जंतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ॥ अंगेण बाहिरेण व,

धर्म रुची के नाम जानना ॥ १६ ॥ अब इन का विस्तार से अर्थ कहते हैं १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य ४ पाप, ५ आश्रव ६ संवर, ७ निर्जरा ८ बंध और ९ मोक्ष इन ९ पदार्थ के यथातथ्य भाव इन्हें अर्थ ज्ञान से जानकर १ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से जिस प्रकार जिनेश्वर भगवंतने केवल ज्ञान कर जाने वैसे उस ही प्रकार जाति स्मरणादि ज्ञान से स्वतः की मति कर यथातथ्य माने यह नव ही पदार्थ अन्यथा नहीं हैं किन्तु सत्य है ऐसा निश्चय करे श्रद्धे उसे निसर्ग रुची मानना ॥ १७ १८ ॥ और उक्त नव ही पदार्थ के भाव को केवलज्ञानी तथा छद्मस्थ गुरुआदि के उपदेश कर यथातथ्य श्रद्धान कर उसे दूसरी उपदेश रुची जानना ॥ १९ ॥ जिन पुरुषों का राग द्वेष मोह मिथ्यात्वादिक नाश हुआ है वैसे वीतराग की आज्ञा से पूर्वोक्त नव ही पदार्थ का श्रद्धान करे उसे तीसरी आज्ञा रुची कहना ॥ २० ॥ जो कोइ आचारांगादि अंग तथा अंग बाहिर उत्तराध्ययन सूत्रादि

सो सुत्तरुइत्ति नायव्वो ॥ २१ ॥ एगेण अणेगाई, पयाणि जो पसरइ ओ सम्मत्त॥ उदएव्व तेल्लबिंदु सो बीयरुइत्ति नायव्वो ॥ २२ ॥ सो होइ अभिगमरुई सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं। एक्कारस अंगाइं पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥ २३ ॥ दव्वाण सव्व भावा, सव्व पमाणेहि जस्स उवलद्धा ॥ सव्वाहि नयविहीहिं, वित्थार रुइत्ति नायव्वो ॥ २४ ॥ दसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्च समिइ गुत्तीसु ॥ जो किरिया

सूत्र पढता हुआ सम्यक्त्व की प्राप्त करे उसे चौथी सूत्र रुची कहना ॥ २१ ॥ जिस प्रकार एक बीज डालने से अनेक बीजोत्पत्ति होवे तथा जैसे पानी में तैल का बिन्दू प्रसरे तैसे ही जिस को उक्त जीवादि पदार्थ एक दृष्टान्तादि कर बताने से बहुत हेतु बहुत दृष्टान्तादि कर विस्तार से जाने उसे पांचवी बीज रुची जानना ॥ २२ ॥ जो जीवों श्रुत ज्ञान कर इग्यारा अंग बारहवा दृष्टीवादपूर्व इत्यादि सूत्र के अर्थ का जानपना होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे उसे छट्ठी अभिगम रुची कहना ॥ २३ ॥ धर्मास्तिकाया आदि षट् द्रव्य के सब भावों को प्रत्यक्षादि प्रमाण कर नैगमादि सातों नय कर इत्यादि सिद्धान्त की विधी कर जानकर उस से सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे वह सातवी विस्तार रुची जानना ॥ २४ ॥ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय सत्य प्रतिज्ञा, पांच समिति, तीन गुप्ति इत्यादि में शुद्ध वृत्ति से क्रिया करते हुवे सम्यक्त्व की

भावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥ अणभिग्गहिय कुदिट्ठी, संखेवरुइत्ति होइ नायव्वो ॥ अविसारओ पवयणे, अणाभिग्गहिओय सेसेसु ॥ २६ ॥ जो अत्थिकाय धम्मं, सुय धम्म खलु चरित्त धम्मं च ॥ सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्म रुइत्ति नायव्वो ॥ २७ ॥ परमत्थ संथवोवा सुदिट्ठ परमत्थ सेवण वावि ॥ वावन्न कुदंसण वज्जणाय सम्मत्त सद्दहणा ॥ २८ ॥ नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूण दंसण उभइयव्वं

भावे हुवे उसे क्रियारुची जानना ॥ २५ ॥ अनाभिग्रह मिथ्यात्व दृष्टी (भोला जीव) अन्य मति निन्हव और पुन मतादि किसी मत को भी अंगीकार किया नहीं उन मतों का ज्ञान भी जिस में नहीं वैसे ही जिन प्रवचन में भी अजानपन है अर्थात् जैन मार्ग की श्रद्धा तो है परंतु जानपना नहीं हो उसे अपनी संक्षेप रुचीवाला कहना ॥ २६ ॥ छ द्रव्य के चलनादि गुण को अंगप्रविष्ट तथा अंग बाहिर शास्त्र को श्रुत धर्म तथा सम्यक्त्व के स्वरूप को जिस प्रकार तीर्थंकरने कहा उस प्रकार श्रद्धा न करे उसे धर्मरुची जानना ॥२७॥ अब सम्यक्त्व के श्रद्धान कहते हैं—१ जीवादि नवतत्त्व का परमार्थ का ज्ञान होवे २ जो जीवादि तत्त्व के परमार्थ के ज्ञान आचार्यादि होवे उन की सेवा करे ३ जिसने सम्यक्त्व ग्रहण कर उस का वमन किया हो उसकी संगति नहीं करे और ४ पाखण्डादि कुधर्मी की संगति नहीं करे ॥२८॥ सम्यक्त्व रहित को ज्ञान नहीं होवे ज्ञान बिना चारित्र के गुण नहीं होवे चारित्र के गुण बिना कर्मों का [illegible]

चरणगुणा ॥ अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥३०॥ निस्संकिय निकंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ॥ उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥ ३१ ॥ सामाइयत्थ पढम, छेओवट्ठावण भवे बीय ॥ परिहारविसुद्धीय सुहुम होवे, और कर्म से छुटका हुवा विना मोक्ष नहीं होवे ॥३२॥ सम्यक्त्वी के ८ आचार १ जिन वचन में शंका रहित होवे, २ करणी के फल का संशय नहीं करे, ४ मत मतांतरों की अलग २ प्ररूपना सुनकर मन में मुरझावे नहीं, ५ जो जिनाज्ञा के आराधक हों उन के गुणग्राम करे, ६ धर्म से जिन के परिणाम अस्थिर हो उन को स्थिर करे धर्मात्मा की सहायता करे ७ स्वधर्मीयों की भक्ति करे, और ८ जैन मार्ग की प्रभावना (उन्नति) करे यह दूसरा दर्शन कहा ॥ ३२ ॥ अब तीसरा चारित्र का कहते हैं चारित्र पांच प्रकार के कहे हैं—प्रथम सामायिक चारित्र के दो भेद—१ इत्वर थोडे काल का जो प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के वारे के साधु का क्यों कि इन में छेदोपस्थापनीय चारित्र की स्थापना की जाती है २ अवकाथिक-आवज्जीवक सो बावीस तीर्थंकरों के तथा महाविदेह क्षेत्र के साधुओं का दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो प्रकार —१ निरतिचार सो-प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को जघन्य सातवे दिन, मध्यम चार महिने में, उत्कृष्ट छे महिने में पांच महाव्रतारोपण करे

बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एमेवब्भतरो तवो ॥ ३४ ॥ नाणेण जाणई भावे,
दसणेणय सद्दहे ॥ चरित्तेण य गिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥ ३५ ॥ स्ववेचा पुव्व

बहुश्रुतादिका विनय ज्ञानीका, दर्शनीका, चारित्रीयका, तपस्वी का, मन से, वचन से, काया से लोक व्यवहार जैसा मकार का रखे बहुमान करे यह विनय तप ३ वैयावृत्य आचार्य उपाध्याय, शिष्य, रोगी तपस्वी स्थविर स्वधर्मी, कुल-गुरु भ्रात, गण-सम्प्रदायी साधु सघचार तीर्थ इन की भक्ति कर साता उपजावे यह वैयावृत्य तप ४ स्वाध्याय तप वांचन, पृच्छना, परियट्टन, अनुप्रेक्षा, और धर्म कथा करे यह वैयावृत्य तप, ५ ध्यान आर्त ध्यान रौद्र ध्यान को छोडकर आज्ञा विचय अपाय विचय विपाक विचय संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान तथा एकत्ववितर्क अपृथक्त्ववितर्क सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती, समुच्छिन्न क्रिया अनिवृति ध्याता रूप शुक्ल ध्यान यह दो मकार का ध्यान ध्यावे यह ध्यान तप और ६ विउस्सग सो शरीर का, सम्प्रदाय का उपाधीका तथा आहार पानी का त्याग करे यह द्रव्य विउत्सर्ग और कषाय का, कर्म का, ससार का त्याग करे यह भाव विउत्सर्ग यह ६ मकार का अभ्यन्तर तप यह तप के भेद जानना ॥ ३४ ॥ अब मोक्ष के चारों कारनों का सक्षेप में कथन करते है—१ ज्ञान करके जीवादि नवही पदार्थों के भाव को जाने २ दर्शन करके उस का श्रद्धान करे ३ चारित्र कर—आश्रव (कर्मबन्ध के कारण) का त्याग करे आश्रव का निरुंधन करे और ४ तप करके पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करे ॥ ३५ ॥ उपसहार—महाऋषियों जन्म जरा मृत्युरूप व

कम्माइ, सजमेण तवेण य ॥ सव्व दुक्ख पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ॥ त्ति बेमि ॥

इति मोक्खमग्गगइणामज्झयण सम्मत्त ॥ २८ ॥

शारीरिक मानसिक सर्व प्रकार के दु:खों का क्षय करने के लिये ज्ञान और दर्शन युक्त पांच आश्रव पांच इन्द्रिय, चार कषाय और तीन योग के निग्रह रूप सतरा प्रकार के संयम में तथा उक्त बारा प्रकार के तप में पराक्रम फोरवे हैं वे शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करते हैं यों सुधर्मा स्वामीने जंबु स्वामी से कहा है इति मोक्षमार्ग नामक अठावीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २८ ॥

॥ सम्यक्त्व पराक्रम नामकं एकोनत्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं, इह खलु सम्मत्त परक्कमे नाम अज्झयणे समणेण भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइय, जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्व दुक्खाणं मंत करेंति ॥ तस्सणं अयमट्ठे एव माहिज्जइ—तंजहा—संवेगे, निव्वेए, धम्मसद्धा,

सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि हे आयुष्मन् जम्बू! श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजी ने कहा वह मैंने श्रवण किया है कि यों निश्चय सम्यक्त्व में पराक्रम का करने वाला इस अध्ययन का सच्चे मन से श्रद्धान करे प्रतीत लावे हृदय में रुचावे इस में कही क्रिया का स्पर्श करके सेवन करे उन अनुष्ठान का पालन कर पार पहोंचावे, उन गुणों का कीर्ति कर अतिचार रहित बन कर उन का आराधन कर के वह की आज्ञा से पालन कर के बहुत से जीवों सर्व अर्थ की सिद्धी कर सिद्ध हुवे, लोकालोक का स्वरूप जान बद्ध हुवे, कर्म शत्रु से मुक्त हुए कषाय दावानल को बुझा कर परम शीतल भूत हुवे शारीरिक मानसिक सब दुःख का अंतकिया ऐसे सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का कथन

गुरुसाहम्मिय सुस्सूणया, आलोयणा, निंदणया, गरहणया, सामाइए, चउव्वी, सत्थए, वदणे, पडिक्कमणे, काउस्सग्गे पच्चक्खाणे, थयथुईमगले काल पडिले हणया, पायच्छित्त करणे, खमावणे सज्झाए, वायणया, पडिपुच्छणया, परिय ट्टणया, अणुप्पेहा, धम्मकहा, सुयस्स आराहणया, एगग्गमणसन्निवेसणया, सजम

आदि करता हूँ यथा १ संवेग वैराग्य मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषाकर, २ निर्गन्थिपय वांछा से निवृत्ति कर, ३ धर्म करने की श्रद्धा आस्थाकर ४ गुरु स्वधर्मियों की सेवा भक्ति कर ५ पापकी आलोचना कर ६ आरम दोषों की आत्मा साथ निन्दाकर ७ गुरु आदि समीप स्वतः किए पाप की गरहना (कथनी) कर ८ सामायिक सावद्य जोग की निवृत्ति कर ९ चौवीस तीर्थंकर की स्तुति (लोगस्स) कर १० गुरु को द्वादश वृत्त वंदना कर ११ पाप की निवृत्ति रूप प्रति क्रमण कर, १२ कायुस्सर्ग कर १३ नव कारसी आदि के प्रत्याख्यान कर १४ स्तुति युई मगल (नमुत्थणं) कर १५ स्वाध्यायादि साधु के क्रिया काल की पतिलेखना कर १६ प्रायश्चित्त से पाप को विशुद्ध कर, १७ समतसाधना से वैर को उपशमा कर, १८ उ सुपाठ की स्वाध्याय कर १९ शास्त्र की वाचना दे कर, २० सूत्रार्थ का निर्णयार्थ प्रश्न पूछने कर, २१ ग्रहण किये ज्ञान की वारम्वार परियट्टना [करने] कर, २२ सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) कर, २३ धर्म कथा (व्याख्यान) कहने कर, २४ शास्त्रार्थ की

सवे, वोदाणे, सुहसाए, अप्पडिबद्धया, विविचसयणासणसेवणया, विणियट्टणया संभोगपच्चक्खाणे, उवहिपच्चक्खाणे, आहार पच्चक्खाणे, कसाय पच्चक्खाणे, जोगपच्चक्खाणे, सरीरपच्चक्खाण, सहायपच्चक्खाणे, भत्तपच्चक्खाणे, सब्भाव पच्चक्खाणे, पडिरूवणया वेयावच्चे, सव्वगुणसपुण्णया वीयरागया, खती मुत्ती,

आराधना कर २० एकाग्र शुद्ध मन की स्थापना कर, २६ सतरा प्रकार संयम का पालन कर, २७ द्वादश प्रकार तप कर, २८ कर्म निकन्द का उपाव कर, २९ सुखशाखिपा पन का त्याग कर ३० अप्रतिबन्ध प्रवृति कर ३१ स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थानक का सेवन कर ३२ विशेष प्रकार निवृति भाव कर ३३ अन्य साधुओं के साथ आहार आदि सविभाग ग्रहण करने का त्याग कर, ३४ उपकरण उपाधी के त्याग कर, ३५ आहार को त्याग कर, ३६ कषाय के त्याग कर, ३७ योग प्रवृति के त्याग कर ३८ शरीर की शुश्रूषा के त्याग कर, ३९ सहाय (शिष्य—चेले) करने के त्याग कर ४० आहार मात्र के प्रत्याख्यान (सथारा) कर, ४१ अपने खोटे स्वभाव के त्याग कर, ४२ प्रति रूपता अर्थात् जिस प्रकार साधु के रूप है उस ही प्रकार साधु के गुण से युक्त होने से वैयावच्च—सेवा भक्ति करन से, ४४ ज्ञानादि सर्व गुण सम्पन्न होन, ४५ राग द्वेष रहित-मध्यस्थभावर्ती रखने से ४६ क्षमा

मइवे, अजवे, भावसच्च, करणसच्च, जोगसच्च, मणगुत्तया, वयगुत्तया-
कायगुत्तया, मणसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाण
संपन्नया, दंसण संपन्नया, चरित्त संपन्नया, सोइंदिय निग्गहे, चक्खिंदिय निग्गहे,
घाणिंदिय निग्गहे, जिब्भिंदिय निग्गहे, फासिंदिय निग्गहे, कोहविजए, माणविजए,
मायाविजए, लोहविजए, पेज्जदोसमिच्छादंसण विजए, सेलेसी, अकम्मया ॥ • ॥

५० भावसत्यता अन्तःकरण की शुद्धवृत्ति रखने से, ५१ करण सत्य शास्त्रोक्त विधी प्रमाने प्रतिलेखनादि क्रिया करने से, ५२ योग सत्यता मन वचन काया के शुद्ध योग प्रवर्ताने से, ५३ मन को गुप्त कर रखने से, ५४ वचन को गुप्त कर रखने से, ५५ काया को गुप्त कर रखने से, ५६ मन को शुद्ध विचार में स्थापने से, ५७ वचन को शुद्धोचार में स्थापने से, ५८ काया को शुद्धाचार में स्थापने से, ५९ सूत्रादि ज्ञान युक्त होने से, ६० क्षायिकादि सम्यक्त्व युक्त होने से, ६१ सामायिकादि चारित्र युक्त होने से, ६२ श्रोतेन्द्रिय (कान) का निग्रह करने से, ६३ चक्षु इन्द्रिय (आंख) का निग्रह करने से, ६४ घ्राणेन्द्रिय, (नाक) का निग्रह करने से, ६५ रसेन्द्रिय [जिव्हा का निग्रह करने से, ६६ स्पर्शेन्द्रिय [काया] का निग्रह करने से, ६७ क्रोध का जय करने से, ६८ मान का जय करने से, ६९ माया का जय करने से, ७० लोभ का जय करने से, ७१ रागद्वेष और मिथ्यात्व

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्म न बंधइ, तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए णं अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीए यणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

इन तीनों का भय करने स ७२ मनसादि त्रियोग का निरुंधन कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होने से और ७१ सर्वकर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७१ बोल का सम्यक प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में शुद्धता होती है पर तो ७१ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ फल कहते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने स अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है एव फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि

सव्व विसएसु विरज्जइ, सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिच्चायं करेइ, आरंभ परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ सिद्धिमग्गं पडिवन्ने भवइ ॥ २ ॥ धम्म सद्धाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ? धम्म सद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगार धम्मं च णं चयइ, अणगारिएणं जीवे सारीर माण

उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं और कदाचित उस भवमें मोक्ष नहीं जावे तो तीसरे भवका तो उल्लंघन नहीं करे अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्वी तीसरे भवमें जरूर ही मोक्ष प्राप्त करे ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! निर्वेद भाव-विषयाभिलाषा रहितपने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्वेद कर देवता मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी कामभोग में निरभिलाषीपना का शीघ्र ही प्राप्त होवे विषयकी निरभिलाषा कर शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय में वैराग्य को प्राप्त होवे सर्व विषय से वैराग्य भाव को प्राप्त हुवा जीव आरंभ परिग्रहका त्याग करे, आरंभ परिग्रह का त्याग कर संसार परिभ्रमण का रास्ता जो मिथ्यात्वादि है उसका व्यवच्छेद करे, मोक्षमार्ग को अविषम होवे ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! धर्म करने की श्रद्धा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म करने की श्रद्धा कर साता वेदनीय कर्मोदय से जो उत्पन्न हुवे हैं साता सुख उस में अनुराग करता था उस से वैराग्य को प्राप्त होवे, उस से वैराग्य

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्म न बंधइ, तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए ण अत्थेगई तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीएयणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहण नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

इन तीनों का नय करने से ७२ मनादि त्रियोग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७३ सकर्माश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७३ बोल का सम्यक प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में पुष्टता होती है यह तो ७३ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ कथन करते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्त होती है ? अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फि[illegible] कर्मों का बन्ध नहीं होता है. जब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि

जणयइ ? निव्वेएणं दिव्व माणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ, सव्व विसएसु विरज्जइ, सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिच्चाय करेइ, आरंभ परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ सिद्धिमग्गं पडिवन्ने भवइ ॥ २ ॥ धम्म सद्धाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्म सद्धाएणं सायासो क्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगार धम्मं च णं चयइ, अणगारिएणं जीवे सारीर माण

उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं और कदाचित उस भवमें मोक्ष नहीं पावे तो तीसरे भवका तो उल्लंघन नहीं करे अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्वी तीसरे भवमें जरूर ही मोक्ष प्राप्त करे ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! निर्वेद भाव-विषयाभिलाषा रहितपने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्वेद कर देवता मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी कामभोग में निराभिलाषिपना का विचार से प्राप्त होवे विषयकी निरभि-लाषा कर शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय में वैराग्य को प्राप्त होवे सब विषय से वैराग्य भाव का प्राप्त हुवा जीव आरंभ परिग्रहका त्याग करे, आरंभ परिग्रह का त्याग कर संसार परिभ्रमण का रास्ता जो मिथ्यात्वादि है उसका व्यवच्छेद करे, मोक्षमार्ग को प्रतिपन्न होवे ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! धर्म करने की श्रद्धा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म करने की श्रद्धा कर साता वेदनीय कर्मोदय से जो उत्पन्न हुवे हैं साता सुख उस में अनुराग करता था उस से वैराग्य को प्राप्त होवे, उस से वैराग्य

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणंताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्मं न बंधइ, तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए णं अत्थेगईए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीएयणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

इन तीनों का क्षय करने से ७२ मनसोंदि त्रियोग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७१ सर्वकर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७१ बोल का सम्यक् प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में पुष्टता होती है या तो ७१ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ प्रश्न करते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को श्रेन से गुन की प्राप्त होती है ? अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है. तब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि कर [illegible] की आराधना कर- कितनेक तो

य ण विणयमूलाइ सव्व कज्जाइ साहेइ, अन्ने य बहवे जीवे विणिइत्ता भवइ ॥ ४ ॥ आलोयणाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? आलोयणाएण माया नियाण मिच्छादसण सल्लाण मोक्खमग्ग विग्घाण अणत ससार बधणाण उद्धरण करेइ, उज्जु भाव च जणयइ, उज्जुभावं पडिवन्ने यण जीवे अमाई इत्थीवेय नपुसकवेयच न बंधइ पुव्वबद्ध च ण निज्जरेइ ॥ ५ ॥ निंदणयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? निंदणयाएण पच्छाणुताव जणयइ, पच्छाणुतावेण विरज्जमाणे करणगुणसढि पडिवज्जइ

उस वीनीत के गुणावलोकन कर बहुत से जीवों विनय में अपनी आत्मा को स्थापन करे ॥ ४ ॥ अहो भगवन् ! गुरु आदि को समीप अपना आत्मा के दुर्गुन की आलोचना प्रकाश करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गुरु आदि समीप स्वात्म के दोष प्रकाशने से जो मोक्ष मार्ग में विघन के कर्ता और संसार की वृद्धि कर्ता माया शल्य, निदान शल्य, मिथ्या दर्शन शल्य है इन तीनों शल्य का उद्धार कर, तीनों शल्य का उद्धार करने से जीव सरलता (मत्रिक पना] उपार्जन करे, सरलता उपार्जन किया हुवा जीव पर्वे जो स्त्री वेद के तथा नपुंसक वेद के कर्मोपार्जन किये हो उन के निर्जरे क्षय करे ॥ ५ ॥ अहो भगवन् ! अपनी आत्मा की साक्षी से अपने दुर्गुनों की निन्दा करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! स्वयं कृत पाप का पश्चाताप करने से वैराग्य

साण दुक्खाण छेयण भेयण सजोगाईण वोच्छेय करइ, अव्वावहं च सुह निव्वत्तेइ ॥ २ ॥ गुरु साहम्मिय सुस्सूसणाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गुरु साहम्मिय सुस्सूसणाएणं विणयपडिवत्तिं जणयइ विणय पडिवन्ने य णं जीवे अणुच्चासाय णसीले नेरइय तिरिक्खजोणिय मणुस्स देव दुग्गइओ निरुम्भइ, वण्णसजल-णभत्ति बहु माणयाए मणुस्स देवगईओ निबंधइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाई

जो गाढ हुवा गृहस्थावास का त्याग कर साधु पना अंगीकार करे साधु हो कर शारीरिक मानसिक दुःख का छेदन भेदन करे, सर्व प्रकार की बाधा पीडा रहित हो मोक्ष के निराबाध सुख की प्राप्ति करे ॥२॥ अहो भगवन्! गुरु और स्वधर्मीयों की सेवा भक्ति करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो शिष्य ! गुरु स्वधर्मीयों की सेवा भक्ति करने से, विनय गुन की प्राप्ति होती है, विनयवंत होने से जो सम्यक्त्वादि सद्गुणों की नाश करने वाली असातना है उस का त्याग करे, वह नरक तिर्यंच चांडालादि मनुष्य व किल्विषी आदि देवता की जो दुर्गति है उस का निरुंधन करे गुरु आदि की कीर्ति करके गुन का दीपाने वाला होवे, गुरु आदि का बहुमान करने वाला होवे उत्तम मनुष्य व उत्तम देवगति का आयुर्बन्धन करने वाला होवे और मोक्षगति का जो ज्ञानादि है उसे शुद्ध करे मोक्षमार्ग ज्ञानादि शुद्ध करके प्रशस्त[प्रशंसनीय विनय मूल श्रुतादि ज्ञान व से पाम्यक्ति कार्य निष्पन्न करे ऐसे

जणयइ ? चउव्वीसत्थएण दंसणविसोहिं जणयइ ॥ ९ ॥ वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ उच्चागोयं कम्मं निबंधइ, सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ ॥ १० ॥ पडिक्कमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिक्कमणेणं वयछिद्दाणि पिहेइ पिहियछिद्दे पुण जीवे, निरुद्धासवे असबल चरित्ते अट्ठसु पवयण मायासु उवउत्ते

पाठ का पठन) करने से जीव कौनसे गुण की प्राप्ति करे ? अहो गौतम ! चौवीस तीर्थंकर के गुण कीर्तन कर सम्यक्त्व को निर्मल करने रूप गुण की प्राप्ति होवे ॥ ९ ॥ अहो भगवन् ! गुरु आदि ज्येष्ठ जनों को वंदना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गुरु आदि को वंदना करने से नीच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों का क्षय करे और ऊंच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों की उपार्जना करे, सौभाग्यपने का उपार्जन करे आदेय कर्म का उपार्जन करे अर्थात् जिन किसी को जो कुछ आज्ञा करे उस का वह उल्लंघन नहीं कर सके और उस का वचन सब को प्रियकर होवे ऐसे कर्मोपार्जन करे ॥ १० ॥ अहो भगवन् ! प्रतिक्रमण (पाप से निवृत्ति रूप) करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! प्रतिक्रमण करने से व्रत के अतिचार रूप छिद्र को ढके अतिचार रूप छिद्र के ढकने से जीव हिंसादि आश्रव के द्वारों का [illegible] को आश्रव रहित होवे दोष रहित निर्मल चारित्र

करणगणसेढी पडिवज्जइ अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ॥ ६ ॥ गरहण याएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गरहणयाए अपुरेक्कारं जणयइ, अपुरेक्कारगएणं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ पसत्थेय पडिवज्जइ पसत्थ जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ ॥ ७ ॥ सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ॥ ८ ॥ चउव्वीसत्थएणं भंते ! जीवे किं

भाव की प्राप्ति होवे, वैराग्य की प्राप्ति होने से पहिले जो कषाय के मन्दता रूप करण की प्राप्ति नहीं हुई थी एसे अपूर्व करण [क्षपक श्रेणि] रूप अंगीकार करे वह साधु दर्शन मोहनीय आदि आठों कर्मों का क्षय करे ॥ ६ ॥ अहो भगवन् ! गुरु के समीप स्वात्मा के दुगुन की निन्दा करने से आत्माको कौनसे गुन का प्राप्ति होवे ? अहो शिष्य ! स्वात्मा के दोषों गुरु आदि के आगे प्रकाशने से अपनी आत्मा की हीलना करने का स्थान उपार्जन करे जिस से मन वचन काया के दुष्ट योग से निवर्ते और प्रशस्त (अच्छे) मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति करे वह साधु अनंत केवल ज्ञान केवल दर्शन के घातक करनेवाले कर्मों का क्षय करे ॥ ७ ॥ अहो भगवन् ! सावद्य योग की निवृत्ति रूप सामायिक करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सामायिक करने से सावद्य योग के निरुंधन रूप वृत्ति का उपार्जन करे ॥ ८ ॥ अहो भगवन् ! चतुर्विंश जिन का स्तवन (लोगस्स के

विणाय तण्हे सीयलभूए विहरइ ॥ १३ ॥ थयथुइमगलेणं भंते, ! जीवे किं जणयइ ? थयथुइ मगलेण नाण दसण चरित्त बोहिलाभ जणयइ, नाणदसण चरित्तबोहिलाभसपन्नेयण जीवे अंतकिरिय कप्पविमाणो ववत्तिग, आराहण आराहेइ ॥ १४ ॥ काल पडिलेहणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काल पडिलेहणयाएण नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥ १५ ॥ पायच्छित्त करणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पावविसोहिं जणयइ, निरइयारेयावि भवइ, सम्म च ण पाय-

निर्बंधन करेगा वह सर्व द्रव्य की तृष्णा रूप ज्वाला से निवृत्त होकर शीतलीभूत बन विचरे ॥ १३ ॥ अहो भगवन् ! स्तुति मंगल (नमुत्थुणं के पठन) करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्तुति मंगल करने से ज्ञान दर्शन चारित्र बोधबीज रूप लाभ की प्राप्ति होवे ज्ञानादि लाभको प्राप्त हुआ जीव मोक्ष की आराधना करे तथा बारा देवलोक नवग्रैवेयक पांच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने की आराधना को आराधन करे ॥ १४ ॥ अहो भगवन् ! स्वाध्याय के काल का प्रति लेखना करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्वाध्याय के काल की प्रति लेखना (देखने) का ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे ॥ १५ ॥ अहो भगवन् ! सूत्रोक्त विधी प्रमाणे प्रायश्चित करने से जीव कौन से गुन की प्राप्ति करे ? अहो गौतम ! प्रायश्चित करने से पाप

अणुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ॥ ११ ॥ काउसग्गेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? काउसग्गेण तीय पडुप्पन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्ध पायच्छित्ते य जीवे निव्वुय हियए, ओहरियभरोव्व भारवहे पसत्थ ज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरेइ ॥ १२ ॥ पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइं निरुम्भइ, पच्चक्खाणेण इच्छानिरोहं जणयइ इच्छानिरोह गए य णं जीवे सव्व दव्वेसु

जिस का होवे, आठ प्रवचन माता के हैं उन में सावधान बने जिस संयम योग कर जिन की आत्मा दूर नहीं होवे सम्यक् प्रकार संयम में समाधि सहित विचरे ॥ ११ ॥ अहो भगवन् ! कायुत्सर्ग करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कायुत्सर्ग करने से अतीत काल का और वर्तमान काल का प्रायश्चित कर पाप की विशुद्धि करे यों अतिचार रहित निर्मल अन्तःकरणी बन कर यह जिस प्रकार भारवाहक [हमालादि] वजन दूर होने से हलका होता है तैसे ही कर्म के वजन से हलका होजावे धर्म ध्यान तथा शुक्लध्यान का ध्याता बन कर सुख प्राप्त करने की परम्परा को अंगीकार कर सुख २ से विचरे ॥ १२ ॥ अहो भगवन् ! प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! प्रत्याख्यान करने से निरन्तर आते हुवे आश्रवद्वार का निरुंधन करे और अनेक प्रकार की उपभोग परिभोग की वस्तु से तृष्णा का निरुंधन करे जो जीव तृष्णा का

जणयइ सुयस्सय अणासायणाए वट्टइ, सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे, तित्थ धम्मं अवलंबइ, तित्थधम्मं अवलंबमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥१९॥ पडिपुच्छणयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिपुच्छणयाएणं सुत्तत्थ तदुभयाइं विसोहेइ कंखा मोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ ॥२०॥ परियट्टणाएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

होवे? अहो गौतम! वांचना देने से कर्मों की निर्जरा रूप फलोपार्जन करे सिद्धान्त की आसातना टालने वाला होवे, सिद्धान्त की असातना टालने से तीर्थंकर गणधर का श्रुत धर्म ज्ञान धर्म का आचार का आचरन कर धर्म का आचरन करता हुआ महा निर्जरा का करन वाला भव का तथा कर्म का अन्त करनेवाला होवे ॥ १९ ॥ अहो भगवन्! सूत्र अर्थादि का संदेह निवारनेके लिये प्रश्न पुछने से जीव को कौनसे गुन की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! प्रश्न पुछने से सूत्र का अर्थ का निर्मल करनेवाला होवे और सूत्रार्थ में निःसन्देह पना हुवा शास्त्राभ्यास मैं करता या नहीं! इस प्रकार की कांक्षा तथा संशय रूप मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का छेदन करनेवाला होवे ॥ २० ॥ अहो भगवन्! सूत्र या पुस्तक ज्ञान को वारम्वार फेरने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सूत्रादिक ज्ञान वारम्वार फेरने से भूले हुवे ज्ञान को याद करनेवाला होवे तथा अक्षरानुसारिणी पदानुसा

च्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारफलं च आराहेइ ॥ १६ ॥ खामावणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? खामावणयाएणं पल्हायण भावं जणयइ पल्हायणभावं मुवगएय सव्व पाण भूय जीव सत्तेसु मेत्तीभाव मुप्पाएइ, मेत्तीभाव मुवगएयावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ ॥ १७ ॥ सज्झाएणंभंते ! जीवे किं जणयइ ? सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्म खवेइ ॥ १८ ॥ वायणाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वायणाएणं निज्जरं

कर्म के क्षय करने रूप शुद्धता का उपार्जन करे, और अतिचार रहित शुद्ध बना सच्चे मन से प्रायश्चित्त ... का मार्ग ... सम्यक्त्व और इस का गुण उसे निर्मल करे, चारित्र तथा चारित्र के फल की आराधना करे ॥ १६ ॥ वैर भाव की निवृत्तिरूप क्षमत क्षमापना करनेसे जीवको कौन से गुनकी प्राप्ति होवे? अहो गौतम ! क्षमतक्षमापना करने से चित्त प्रसन्न भावपने को प्राप्त करे, चित्त का प्रसन्न पना जीव सब प्राणीभूत जीव सत्त्व का हितचिन्तक मन यों सब से मैत्रीभाव को प्राप्त हुआ जीव भाव विशुद्धी स रागद्वेष रहित पने कर सातों भय से रहित बने ॥ १७ ॥ अहो भगवन् ! स्वाध्याय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे ॥ १८ ॥ अहो भगवन् ! शास्त्र की वांचना देने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति

मुज्जो मुज्जो उवचिणाई, अणाइय चणं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥ २२ ॥ धम्मकहाए ण भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्म-कहाएणं निज्जरं जणयइ, धम्मकहाएणं पवयणं पभावेइ पवयणं पभावेणं जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ ॥ २३ ॥ सुयस्स आराहणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ न य संकिलिस्सइ

महा दीर्घ रास्तेवाला जो यह संसार रूप अरण्य [अटवी] है उसे शीघ्रता से उल्लंघन कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ २२ ॥ अहो भगवन् ! धर्मकथा कहने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म कथा कहने से कर्म क्षय करने की विधी का उपार्जन करे धर्म कथा कहने से प्रवचन (शास्त्र) की प्रभावना करे *प्रभावना करता हुवा जीव आगामिक काल में अपनी आत्मा का भद्र कल्याणकारी फल की उपार्जना करे ॥ २३ ॥ अहो भगवन् ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से अज्ञान का क्षय करे और क्लेश का भोक्ता

* प्रभावना ८ प्रकार की–१ सिद्धान्त के गुण कथन कर जैन मार्ग दीपावे, २ धर्म कथा कहकर जैन मार्ग दीपावे, ३ सवाद (धर्म चरचा) करके जैन मार्ग दीपावे, ४ तीनों काल का ज्ञान होकर जैन मार्ग दीपावे, ५ तपश्चर्या करके जैन मार्ग दीपावे ६ विद्या के प्रभाव से जैन मार्ग दीपावे, ७ सिद्धान्त का चमत्कारिक वार्तो से जैन मार्ग दीपावे और ८ कवित्त कहकर जैन मार्ग दीपावे,

परियट्टणाएण वंजणाइ जणयइ, वजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥२१॥ अणुप्पेहाएण भंते! जीवे किं जणयइ ? अणुप्पेहाएण आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ धणिय बंधण बद्धाओ सिढिल बंधण बद्धाओ पकरेइ, दीहकाल ठिईयाओ हस्सकालठिईआओ करेइ, तिव्वाणु भावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयंच कम्मं सिया बंधइ सिया नो बंधइ, आसायावेयणिज्जंच कम्मं नो

रिषी लब्धि प्राप्त होवे ॥ २१ ॥ अहो भगवन्! सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सूत्रार्थ के चिन्तवन करने से आयुष्य कर्म छोडकर बाकी के सातों कर्म प्रकृति मजबूत बंधी हो उस के ढीले बन्धन करे, जिन कर्मों की बहुत काल की स्थिति हो उसे थोडे काल की करे, जो तीव्र रस रूप बहुत दुःख से भोगने की हो उसे मंद रस सहज में मुक्त की जावे ऐसी करे, कर्म पुद्गलों के दल बहुत होवे उने थोडे कर और आयुष्यकर्म का बन्ध कोई करे कोई नहीं भी करे. * असातावेदनीय कर्म का बन्ध बारम्बार नहीं करे, और जो अनादि अनन्त

* क्यों कि संख्यात वर्षायुवाले के आगमिक आयुबन्ध भोगवते हुवे आयुके तीसरे विभाग में होता है वह हो गया हो या आगे को होने का हो वह उस वक्त बन्ध नहीं करता है और उस वक्त आयुर्बन्ध होने का हो वह उसी वक्त करता है

भुज्जो भुज्जो उवखिणाई, अणाइयं चणं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥ २२ ॥ धम्मकहाए ण भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्मकहाएण निज्जरं जणयइ, धम्मकहाएण पवयणं पभावेइ पवयणं पभावेण जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ ॥ २३ ॥ सुयस्स आराहणयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स अराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ नय संकिलिस्सइ

महा दीर्घ रास्तेवाला जो यह संसार रूप अरण्य [अटवी] है उसे शीघ्रता से उल्लंघन कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ २२ ॥ अहो भगवन् ! धर्मकथा कहने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म कथा कहने से कर्म क्षय करने की विधी का उपार्जन करे धर्म कथा कहने से प्रवचन (शास्त्र) की प्रभावना करे*प्रभावना करता हुवा जीव आगामिक काल में अपनी आत्मा का भद्र कल्याणकारी फल की उपार्जना करे ॥ २३ ॥ अहो भगवन् ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से अज्ञान का क्षय करे और क्लेश का भोक्ता

* प्रभावना ८ प्रकार की—१ सिद्धान्त के गुण कथन कर जैन मार्ग दीपावे, २ धर्म कथा कहकर जैन मार्ग दीपावे, ३ सवाद (धर्म चरचा) करके जैन मार्ग दीपावे, ४ तीनों काल का ज्ञान होकर जैन मार्ग दीपावे, ५ तपश्चर्या करके जैन मार्ग दीपावे ६ विद्या के प्रभाव से जैन मार्ग दीपावे, ७ सिद्धान्त का चमत्कारिक बातों से जैन मार्ग दीपावे और ८ कवित कहकर जैन मार्ग दीपावे,

॥ २४ ॥ एगग्गमण संनिवेसणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? एगग्गमण सनिवेसणयाएण चित्तनिरोह करेइ ॥ २५ ॥ संजमएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सजमेण अणण्हयत्तं जणयइ ॥ २६ ॥ तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? तवेण वोदाणं जणइ ॥ २७ ॥ वोदाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वोदाणेण अकिरियं जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ, परिनिव्वायइ,

नहीं होवे ॥ २४ ॥ अहो भगवन् ! ज्ञानादि शुभ पदार्थ में एकाग्र मन की स्थापना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! श्रुतादि अवलम्बन कर एकाग्र मन की स्थापना करने से चित्तवृत्ति उन्मार्ग में जाती हो उस का निरूंपन करे ॥ २५ ॥ अहो भगवन् ! सतरा प्रकार का संयम के पालन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! संयमाराधन कर आश्रव का निरूंधन करे ॥ २६ ॥ अहो भगवन् ! बारा प्रकार के तप करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! तपश्चर्या करने से पूर्वोपार्जित कर्म को निर्जरा करे (निकन्द कर) ॥ २७ ॥ अहो भगवन् ! कर्म को छेदे—निवृत्त करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कर्म को निर्वृत्त करने से पाप की क्रिया रहितपना उपार्जन करे, पाप की क्रिया रहित होने वाला सर्व भव की सिद्धी करता सिद्ध होवे सर्वज्ञ होवे

सव्वदुक्खाणमंत करेइ ॥ २८ ॥ सुहसाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ, अणुस्सुयाएणं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥ २९ ॥ अप्पडिबद्धयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? अप्पडिबद्धयाएण निस्संगत्तं जणयइ, निस्संगत्तेण जीवे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्पडिबद्धेयावि विहरइ ॥ ३० ॥ विवित्त सयणासणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ, विवित्त सयणासणयाएण चरित्तगुत्तिं जणयइ चरित्तगुत्तेयण

दुःख का क्षय करे ॥ २८ ॥ अहो भगवन् ! सुख सेलीया (सुकुमाल) पना टालने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सुख सेलीये पने का त्याग करने से अनत्सुकता (उछरग रहित पना) उपार्जन करे, अनुत्सुक पना हुवा जीव परजीवों को दुःखी देखकर तत्काल अनुकम्पा करे और हर्ष विषवाद रहित शोक रहित रहकर मोहनीय कर्म क्षय करे ॥ २९ ॥ अहो भगवन् ! गृहस्थादि के प्रतिबन्धपने रहित होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गृहस्थादि के प्रति बन्धता रहित रहने से असंगीपना प्राप्त करे, असंगी जीव अकेला राग द्वेष रहित ज्ञानादि में चित्त की एकाग्रता युक्त रात्रिदिन किसी भी सम्बन्ध को नहीं सजता हुवा सर्व संग का परित्याग करता हुवा अप्रतिबन्ध विहारी बने ॥ ३० ॥ अहो भगवन् ! स्त्री पशु नपुसक रहित स्थानक पाट आदि भोगवने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! स्त्री पशु नपुसक रहित स्थानक पाटादि भोग

जीवे विविचाहार दढ़चरित्त एगंतरए मोक्खभाव पडिवन्न अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ ॥ ३१ ॥ विनियट्टयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? विनियट्टयाएणं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ, पुव्वबद्धाणय निज्जरणयाए तं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरंतं संसारकंतारं वीइवयइ ॥ ३२ ॥ संभोगपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संभोगपच्चक्खाणेणं आलंबणाइं खवेइ, निरालंबणस्स य आयतट्ठिया

पने से चारित्र का रक्षण करनेवाला होता है, और चारित्र रक्षण करनेवाला जीव विगय की सरसाइ रहित आहार करता हुवा निर्मल चारित्र का धारक होवे निर्मल संयम में रक्त व तत्पर बना हुवा मोक्ष का साधक आठ कर्म की ग्रंथी (गांठ) को निर्जरे ॥ ३१ ॥ अहो भगवन् ! विषय से विरक्त आत्मा को करता हुवा जीव कौनसे गुण की प्राप्ति करता है ? अहो गौतम ! विषय विरक्त जीव पाप कर्म त्यागी होने से धर्म में उद्यमवंत होवे, पूर्वोपार्जित पाप कर्म की निर्जरा करे, पाप को आत्मा से दूर कर चतुर्गति रूप संसार अटवी का उल्लंघन कर मोक्ष को प्राप्त करे ॥ ३२ ॥ अहो भगवन् ! संभोग के प्रत्याख्यान से अर्थात् साधुओं को प्राप्त हुवे आहार पत्रादि का संविभाग (हिस्सा) को ग्रहण करने के त्याग करने से (आप को प्राप्त हुवा ही आप भोगवे अन्य साधु को प्राप्त हुवा ग्रहण नहीं करे) उस जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! संभोग के प्रत्याख्यान करने से दूसरे के अवलम्बन रहित होवे, अवलम्बन रहित बना

योगा भवति, सएण लाभेणं संतुस्सइ, परलाभ नो आसाएइ, परलाभं नो तक्केइ नो पीहेइ, नो पत्थेइ नो अभिलसइ, परलाभं अणस्सायमाणे अतक्केमाणे अपीहे माणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे, दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताण विहरइ ॥ ३३ ॥ उवही पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? उवही पच्चक्खाणेणं अपलिमथं जणयइ, निरुवहिएणं जीवे निक्कंखी उवहिमंतरेणय न संकिलिस्सई ॥ ३४ ॥ आहार पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आहार पच्चक्खाणेणं जीवियासं

मोक्ष प्राप्त रूप भारभार्थ है जिस का ऐसे साधु को संयम व्यापार की वृद्धि होवे वह साधु अपने ही लाभ कर संतोष को प्राप्त होवे, दूसरे साधु के लाभ की आशा करे नहीं इस प्रकार आशा रहित बना, वह इस प्रकार की कल्पना भी नहीं करे की अमुक मुझे देवो, वचन कर कहे भी नहीं की अमुक मुझे देवो, इसप्रकार अन्य साधु के लाभ की इच्छा नहीं करता हुवा अपनी वांछा अन्य को नहीं जगाता हुवा दूसरी सुख शय्या का अवलम्बन कर विचरने वाला होवे ॥ ३३ ॥ अहो भगवन् ! वस्त्र पात्रादि उपाधी के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! उपाधी के प्रत्याख्यान करने से जीव वस्त्र पात्रादि की अभिलाषा रहित बना शारीरिक तथा मानसिक क्लेश रहित होवे ॥ ३४ ॥ अहो भगवन् ! आहार के प्रत्याख्यान कर चउत्थ भक्तादि तपश्चर्या करने से आत्मा को कौन से गुन

संसप्पओग वोच्छिदइ जीविया ससप्पओग वोच्छिदित्ता जीवे आहारमतरेण न सकिलिस्सइ ॥ २५ ॥ कसायपच्चक्खाणेणं भते ! जीवे किं जणयइ ? कसाय पच्चक्खाणेणं वीयरागभाव जणयइ, वीयराग भाव पडिवन्नेवियण जीवे समसुह दुक्ख भवइ ॥ ३६ ॥ जोग पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोग पच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ, अजोगीणं जीवे नवकम्म न बंधइ, पुव्वबंध निजरेइ ॥ ३७ ॥ सरीर पच्चक्खाणेण भते ! जीवे किं जणयइ ? सरीर पच्चक्खा-

की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! आहार के प्रत्याख्यान करने से जीवित की आशा-वांछा का छेदन कर जीवित की आशा का छेदकर आहार की प्राप्ति नहीं होने से क्लेशित नहीं बने ॥ ३५ ॥ अहो भगवन् ! कषाय के प्रत्याख्यान करने ने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कषाय के प्रत्याख्यान कर वीतरागी (रागद्वेष रहित) पने को प्राप्त होवे, और वीतरागभाव को प्राप्त हुवा जीव सुख दुःख में समभावी बने ॥ ३६ ॥ अहो भगवन् ! मन वचन काय के योगों की प्रवृत्ति का रुंधन कर योग के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! योग के प्रत्याख्यान करने से अयोगी होवे अर्थात् योगों की चपलता रहित होवे अयोगी बना जीव नये कर्मों का बन्धन नहीं करे और पुराने कर्मों की निर्जरा करे ॥ ३७ ॥ अहो भगवन ! शरीर की शोभा शुश्रूषा के

णेणं सिद्धातिसयगुणकित्तणं निव्वत्तेइ, सिद्धातिसयगुण संपन्नेय णं जीवे लोगग्गमुवगए परमसुही भवइ ॥ ३८ ॥ सहाय पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सहाय पच्चक्खाणेण एगीभाव जणयइ एगीभावभूए वि य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिएयावि भवइ ॥ ३९ ॥ भत्त पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं

प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! शरीर के प्रत्याख्यान करने से सिद्ध के अतिशय गुन कर संयुक्त होवे (सिद्ध के ३१ अतिशय–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान, ३ वेद, १ काया, १ कर्म, १ मृत्यु रहित हैं, तैसा यह भी बने) सिद्धातिशय गुन को प्राप्त हुवा जीव लोकाग्र मोक्ष स्थान में सुस्थित होवे सुखी बने ॥ ३८ ॥ अहो भगवन् ! सहायक [शिष्य चेला] के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! अपना शिष्य करने का प्रत्याख्यान करने से एकीभावपना उपार्जन करे, अकेला बना जीव एकत्व भावना भावता हुवा उसे झुनकर बोलना नहीं पडे, क्लेश करना नहीं पडे, अभीमान रूप कषाय नहीं होवे, किसी को तू कार से बोलना नहीं पडे और उस के संयम की वृद्धि होवे, संवर की वृद्धि होवे, सदैव समाधी भाव में रक्त रहे ॥३९॥ अहो भगवन्! भक्त प्रत्याख्यान भोजन के त्याग करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है?

जणयइ ? भत्तपच्चक्खाणेण अणेगाइ भव सयाइ निरुम्भइ ॥ ४० ॥ सब्भाव पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सब्भाव पच्चक्खाणेण, अनियट्टिं जणयइ अनियट्टिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ, तंजहा-वेयणिज्ज, आउय, नाम, गोयं, तओ पच्छा सव्व दुक्खाण अंत करेइ ॥ ४१ ॥ पडिरूव याएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिरूवयाएण, लाघवियं जणयइ लघुभूएण

भरो गौतम ! भक्त प्रत्याख्यान करने से अनेक सहस्रों भवों में परिभ्रमण का नाश कर थोरे ही भव में संसार पार होवे ॥ ४० ॥ अहो भगवन् ! जीव का योग स्वभाव परता है उस के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्वभाव के प्रत्या ख्यान करने से जीव अनिवृत्ति करण शुक्लध्यान यक्त बने अनिवृत्ति करण प्राप्त हुवा साधु केवल ज्ञानी के चार अघातिक कर्म रहे थे उनों के नाम—१ वेदनीय २ आयुष्य ३ नाम और ४ गोत्र इन का क्षय हुवे बाद सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सर्व दु ख का अन्त करे ॥ ४१ ॥ अहो भगवन् ! प्रतिरूपता अर्थात् जैसा साधु का बाह्य लिंग है वैसा ही साधु के गुनों अन्दर होने से उस जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! प्रतिरूपता धारन करने से वह द्रव्य से अल्प उपकरणवाला और भाव से अप्रतिबन्धपना उपार्जन करे, यों दोनों प्रकार हलका होवे वह प्रमाद रहित होवे और उस का

जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्व पाणभूयजीवसत्तेसुवीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेह जिइन्दिए विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ ॥ ४२ ॥ वेयावच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वेयावच्चेण तित्थयर णाम गोत्त कम्म निबन्धइ ॥४३॥ सव्व गुण संपन्नयाएण भंते! जीवे किं जणयइ? सव्व गुण संपन्नयाए अपुणरावत्तिं जणयइ, अपुणरावत्तिं पत्तएयण जीवे सरीर माण-

पेप निश्चय में तथा व्यवहार में दोनों प्रकार से शुद्ध होवे और उस का जो उप रजोहरण मुख वस्त्रिकादि है वे सब जीवदया के हेतु भूत है वह निर्मल सम्यक्त्व का धारक होता है उसका सम्यक्त्व पेपता पांच समिति आदि साधु के गुन सम्पूर्ण है, जिस से वह सब प्राणी-बेइन्द्रि आदि, सब भूत-वनस्पति, सब जीव-पंचेन्द्रिय और सब सत्व पृथव्यादि इन सब को विश्वास पात्र होता है, वह किसी का हिंसा नहीं करे इस लिये उस से भी कोइ डरे नहीं, और भी जिस के अल्प उपकरन है उस का प्रतिलेखनादि कार्य भी थोडा होता है जिस कर ज्ञानाभ्यास इन्द्रिय जय विस्तीर्ण तप समिती आदि अनेक गुनों की वृद्धि होवे ॥ ४२ ॥ अहो भगवन् ! वैयावच्च करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! आचार्यादि की वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर गोत्र नाम कर्म का उपार्जना करे ॥ ४३ ॥ अहो भगवन् ! ज्ञानादि सब गुन सम्पन्न होवे उस जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम !

साए पुक्खाए नो भागी भवइ ॥ ४४ ॥ वीयरागयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? वीयरागयाएण नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिंदइ, मनुन्नामणुन्नेसु–सद्द–फरिस–रूव–गंधेसु चेव विरज्जइ ॥ ४५ ॥ खंतीएण भंते ! जीवे किं जणयइ? खंतीएण परिसहे जिणइ ॥ ४६ ॥ मुत्तीएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मुत्तीएण अकिंचणं जणयइ, अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाण अपत्थणिज्जो भवइ ॥ ४७ ॥

सब पुन सम्पन्न पुनरावृत्ति कर रहित जो मोक्ष गति में जावे कि जहां से पीछा संसार में अवतार नहीं लेना पडे, और जो जीव संसार में पीछा अवतार नहीं लेगा वह जीव व्याधि वेदनादि शारीरिक दुःख और चिन्ता रूप मानसिक दुःख का भागी भोगवनेवाला नहीं होवेगा ॥ ४४ ॥ अहो भगवन् ! राग द्वेष रहित वीतराग भाव धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! वीतरागता धारन करने से जीव स्नेहरूप बन्धन-लोभरूप बन्धन का छेदन करे, मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द रूप गंध रस स्पर्श में विरक्तता धारन करे ॥ ४५ ॥ अहो भगवन् ! क्षमा करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! क्षमा करने से प्राप्त होते परिषह उपसर्ग का जय करने वाला होवे ॥ ४६ ॥ अहो भगवन् ! मुक्ति निर्लोभता धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्लोभता धारन करने से आकिंचन (धन रहित) वृत्तिवाला होवे आकिंचन वृत्तिवाला जीव जो अर्थ के लोलुपी चोरादि जीवों हैं उन का अप्रार्थनीय होवे अर्थात् वे उसे लूटने का

अज्झवयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अज्झवयाएणं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ, अविसंवायणसंपन्नयाएणं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥ ४८ ॥ मद्दवयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मद्दवयाएणं अणुस्सियत्तं जणयइ अणुस्सियत्तेणं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयठाणाइं निट्ठावेइ ॥ ४९ ॥ भावसच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? भावसच्चेणं भाव-

इरादा नहीं करे ॥ ४७ ॥ अहो भगवन् ! आर्यता-सरलता-निष्कपटता रूप गुण धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सरलता धारन करने से काया का भी सरल होवे भाव-अभिप्राय का भी सरल होवे, वचन भाषा सरल होवे, मन वचन काया के जोगों की विषमता रहित होवे और मनादि जोगों की अविषमता धारन किया हुआ जीव ठगाइ नहीं करता हुवा श्रुतधर्म चारित्र धर्म का आराधक होवे ॥ ४८ ॥ अहो भगवन् ! मार्दवता-निराभिमानी जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! अहंकार रहित जीव को अनुत्सुकता (उछरंग रहित) रूप गुण की प्राप्ति होवे अनुद्धत बना जीव मृदु-कोमल नम्र स्वभाववाला बन अहंकार रहित जीव—१ जाति, २ कुल, ३ बल, ४ रूप ५ तप, ६ श्रुत, ७ लाभ, ८ ऐश्वर्य इन आठों मद के स्थान से निवृत्ति भाव धारन करे ॥४९॥ अहो भगवन् ! भाव की सत्यता अर्थात् अन्तःकरण की विशुद्धता करने से जीव को कौनसे गुण की

विसाहिं जणयइ भावविसोहिए वट्टमाणेजीवे अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहए भवइ ॥ ५० ॥ करण सच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? करणसच्चेण करणसत्तिं जणयइ करण सच्चे वट्टमाणे जीवे जहा वाइ तहा कारियावि भवइ ॥ ५१ ॥ जोग सच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोग सच्चेण जोग विसोहेइ ॥ ५२ ॥ मणगुत्तयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! भाव की सत्यता रखने से जीव भाव की विशुद्धता रूप गुण की उपासना करता है, भाव विशुद्ध बना जीव अर्हत भाषित धर्म के आराधन में उद्यमवन्त होवे और जो अर्हत भाषित धर्म को आराधने में उद्यमी बना वह परलोक में भी धर्म का आराधिक होवे ॥ ५० ॥ अहो भगवन् ! साधु की प्रतिलेखनादि जो क्रिया है उस की विशुद्धता करते हुवे जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! क्रिया की विशुद्धता कर जीव को क्रिया करने का सामर्थ्य (बल) प्राप्त होवे और विधी युक्त क्रिया करता हुवा जीव वह जिस प्रकार अन्य को क्रिया करने का उपदेश करता है वैसा ही स्वयं भी करनेवाला होता है ॥ ५१ ॥ अहो भगवन् ! मन वचन काया के योगों की सत्यता कर जीव को किनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! योग प्रवर्ती की सत्यता कर मनादि वियोग के जो दोषों हैं उन कर रहित होवे ॥ ५२ ॥ अहो भगवन ! पाप विचार से मन को गुप्त कर रखने से जीव को

मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणइ, एगग्गचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥ ५३ ॥ वयगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वयगुत्तयाएणं निव्वियारत्तं जणयइ निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहणजुत्तेयावि भवइ ॥ ५४ ॥ कायगुत्तयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कायगुत्तयाएणं संवरं जणयइ संवरेण कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥ ५५ ॥ मण समाहारणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ एगग्गं जणइत्ता नाण

कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मनःगुप्ति करने से जीव धर्म में चित्तवृत्ति को एकाग्र कर सकता है और धर्म में चित्त की एकाग्रता होने से यह जीव संयम का आराधक होता है ॥ ५३ ॥ अहो भगवन् ! पापाचार से वचन को गुप्त रखने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! वचन गुप्ति करने से विकथा (खोटी बातों) का करनेवाला नहीं होता है विकथा नहीं करता हुवा वचन को गुप्त रखने से स्वाध्याय ध्यानादि व्यापार की वृद्धि करनेवाला होता है ॥ ५४ ॥ अहो भगवन् ! पापाचार से काया की गुप्ति करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! काया गुप्ति करने से संवर धर्म की उपार्जना करता है संवर धर्म उपार्जन कर काया गुप्ति युक्त जीव पाप के आने के आश्रव द्वारों का निरुंधन करता है ॥ ५५ ॥ अहो भगवन् ! मन की समधारा धर्म ध्यानादि में प्रवर्तन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मन की समधारा

विसोहेइ, अहक्खाय चरित्त विसोहेत्ता चत्तारि केवली कम्मसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्व दुक्खाण मत करेइ ॥ ५८ ॥ नाण सपन्नयाए णं भते ! जीवे किं जणयइ ? नाण सपन्नयाएण जीवे सव्वभावाहिगम जणयइ, नाणसपन्नेणं जीवे चाउरंते ससारकंतार न विणस्सइ, जहा सूई ससुत्ता न विणस्सइ, तहा जीवे ससुत्ते ससारे न विणस्सइ, नाणविणय तवचरित्त जोगे

प्राप्त करता है, जब यथाख्यात चारित्र पर्याय निर्मल हुवे तब—१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र इन चारों अघातिक कर्मों का क्षय कर फिर सर्व कार्य की सिद्धी से सिद्ध होता है, सर्वज्ञ हो बुद्ध होता है संसार से मुक्त होता है कषाय ताप बुझा शीतल होता है और जन्मादि सर्व दुःख का क्षय करता है ॥ ५८ ॥ अहो भगवन्! श्रुतादि ज्ञान युक्त होने से जीव को कौनसे गुणकी प्राप्ति होती है? अहो गौतम ! श्रुतादि ज्ञान सम्पन्न होने से जीव सर्व जीवादि नव ही पदार्थ का जानपना उपार्जन करता है और ज्ञान युक्त बना जीव चारों गति संसार रूपी अटवी में विनाश नहीं पाता है अर्थात् मुक्तिपंथ से दूर नहीं होता है जिस प्रकार सूत-डोरे सहित सूई होती है वह खोवाती नहीं है वैसे यह भी जीव सिद्धान्त प्रवचन के जानने कर ससार में विनाश को प्राप्त होता नहीं है परंतु विनय तप चारित्र योग्य प्रधान व्यापार को प्राप्त होता है और स्वसमय-जैन मत तथा पर समय अन्य मत दोनों

सपाउबइ, ससमय परसमय विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दसण संपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त छेयण करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मसे खवेइ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध तत्त्व स्वरूप का भान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होवे उसे कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, वह उत्कृष्ट उस ही भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है उत्कृष्ट केवल ज्ञान तक का प्रकाश कर सकता है प्रधान प्रथम गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सम्यक् भाव से आत्मा का भावता हुवा विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेशी (पर्वत जैसी भावों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेशी भाव अंगीकार करनेवाला साधु—

१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त शीतल हो

तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥ ६१ ॥ सोइंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय निग्गहेण मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चइय कम्म न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६२ ॥ चक्खिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिंदिय निग्गहेण मणुन्ना-मणुन्नेसु रूवेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइय कम्म न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६३ ॥ घाणिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? घाणिंदिय

सब दुःख का अन्त करता है ॥ ६१ ॥ अहो भगवन् ! श्रोतेन्द्रिय को जीव अजीव मिश्र के शब्द से निग्रह करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! श्रोतेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द से राग द्वेष करने से निवर्तता है राग द्वेष से निवृत्ति पाया जीव शब्द कर कर्म बन्धन नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६२ ॥ अहो भगवन् ! कृष्ण नील रक्त पित श्वेत रंग के पुद्गलों के अवलोकन से चक्षुइन्द्रिय [आंख] का निग्रह करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ रूप में राग द्वेष नहीं करता है राग द्वेष का निग्रह होने से जीव चक्षु इन्द्रिय कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और प्रथम के बंधे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६३ ॥ अहो भगवन् ! सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ?

सपाउभइ, ससमय परसमय विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दंसण संपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दंसणसंपन्नयाएणं भवमिच्छत्त छेयण करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ? चरित्त संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध तत्त्व स्वरूप का भान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होवे उसे कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, इस लिए उस ही भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है इसलिए केवल ज्ञान तक का प्रकाश कर सकता है, प्रधान दर्शन गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सम्य भाव से आत्मा को भावता हुआ विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेशी (पर्वत जैसी भावों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेशी भाव अंगीकार करनेवाला साधु १ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर

... सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥ ६१ ॥ सोइंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६२ ॥ चक्खिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिंदिय निग्गहेणं मणुन्ना मणुन्नेसु रूवेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरइ ॥ ६३ ॥ घाणिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? घाणिंदिय

सब दुःख का अन्त करता है ॥ ६१ ॥ अहो भगवन् ! श्रोतेन्द्रिय को जीव अजीव मिश्र के शब्द से निग्रह करने में जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! श्रोतेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द में राग द्वेष करने से निवर्तता है राग द्वेष से निवृत्ति पाया जीव अब कर कर्म बन्धन नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६२ ॥ अहो भगवन् ! कृष्ण नील रक्त पित श्वेत रंग के पुद्गलों के अवलोकन से चक्षुइन्द्रिय [आंख] का निग्रह करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ रूप में राग द्वेष नहीं करता है राग द्वेष का निग्रह होने से जीव चक्षु इन्द्रिय कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६३ ॥ अहो भगवन् ! सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ?

सपाउणइ, ससमय परसमय विसारए असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दसण सपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दसणसपन्नयाएणं भावमिच्छत्त छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेणं नाणदसणेणं अप्पाणं सजो माणे सम्म भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त सपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मसे खवेइ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध वस्तु स्वरूप का ज्ञान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होवे उस कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, यह उत्कृष्ट उस ही भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है इसलिए केवल ज्ञान तक वह प्रकाश का पता सकता है, प्रधान दर्शन गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सत्य भाव से आत्मा को भावता हुआ विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेषी (पर्वत जैसी भावों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेषी भाव अंगीकार करनेवाला साधु

[1] वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त जीवन हो

सूत्र

कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६६॥ कोहविजएण भंते ! जीवे किं जणयइ? कोहविजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६७ ॥ माणविजएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? माणविजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च, निज्जरेइ ॥ ६८ ॥ मायाविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मायाविजएणं अज्जवं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बंधइ,

अर्थ

की निवृत्ति वाला जीव स्पर्श कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और पहिले बन्धे हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६६ ॥ अहो भगवन् ! क्रोध कषाय जीतने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! क्रोध कषाय का विजय करने से क्षमा गुन की प्राप्ति करता है क्रोध से जो कर्मों का बन्धन होता है वह उस के नहीं होता है और पहिले बन्धे किये कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६७ ॥ अहो भगवन् ! मान कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मान कषाय का विजय करने से मार्दव गुन—अहंकार रहित पना प्राप्त करता है मान कर जो कर्म बन्धते हैं उन कर्मों का बन्धन वह नहीं करता है और पहिले बन्धे हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६८ ॥ अहो भगवन् ! माया कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! माया कषाय का विजय करने से आर्जवता—सरलता रूप गुन की

निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइय कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६४॥ जिब्भिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जिब्भिंदिय निग्गहेण मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोस निग्गह जणयइ, तप्पच्चइय कम्म न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६५ ॥ फासिंदिय निग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ? फासिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइय

अहो गौतम! घ्राणेन्द्रिय के निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में राग द्वेष का निग्रह करता है गंध में राग द्वेष नहीं करने से जीव घ्राणेन्द्रिय कर नये कर्म की उपार्जना नहीं करता है और प्रथम उपार्जन किये हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६४ ॥ अहो भगवन्! तिक्त कटुक कषाय खट्टे रस से रसेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! रसेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ रस में राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है, इससे राग द्वेष से निपजा भाव रसेन्द्रिय कर नवीन कर्म का बन्ध नहीं करता है और पहिले बन्धे कर्म की निर्जरा करता है ॥ ६५ ॥ अहो भगवन्—लघु गुरु शीत उष्ण मृदु कठिन रूक्ष स्निग्ध इन आठों स्पर्श से स्पर्शेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! स्पर्शे-न्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ ...

नवविह दंसणावरणिज्जं पंचविहं अंतराइय, एएतिन्निवि कम्मसे जुगवं खवेइ, तओ पच्छा अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्ण निरावरण वितिमिर विसुद्धं लोगालोगप्पभाव केवलवरणाण दसणसमुप्पाडेइ, जाव सजोगी भवइ, ताव इरियावहिय कम्मं निबंधइ, सुहफरिस दुसमयठिइय त पढमसमए बद्ध विइय समए वेइय तइय समए निज्जिण्ण त बद्ध पुट्ठ उदीरिय वेइय निज्जिण्णं सेयाले य अकम्म चावि भवइ॥७१॥

अह आउय पालइत्ता अतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोगनिरोह करेमाणे सुहुम किरिय

कर्म के क्षय होने से पांच ज्ञानावर्णिय नव दर्शनावर्णिय और पांच अन्तराय, इन तीनों कर्मोके अंशको एकही साथ में क्षय करता है फिर अनुत्तर-सब ज्ञानों में प्रधान कृत्स्न अखण्ड प्रतिपूर्ण आवरन-रहित रजन रहित, अज्ञान अन्धकार रहित विशुद्ध-निर्मल लोकालोक का प्रकाशक, प्रधान केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति करता है ये केवलज्ञानी के जहां तक मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति रहती है वहां तक इर्यापथी नाम बन्धन करते हैं, वह बन्ध सुखप्रद होता है परन्तु दुःख प्रद नहीं होता है उस बन्ध की फक्त दोसमय की ही स्थिति होती है अर्थात् प्रथम समय बन्ध कर दूसरे समय उसे वेद कर तीसरे समय में उस को निर्जरा कर देता है यों इर्यापथी कर्म बन्धा, स्पर्शन किया उदय आया भोगवा और वह कर्म क्षय भी होगया इस लिये अनागत काल चौथे समय में वे कर्म रहित हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ वन केवली भगवान का अन्तमुहूर्तादि कुछ कम क्रोड पूर्व पर्यंत जितना

पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६९॥ लोभविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? लोभविजएण संतोसं जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥७०॥ पिज्जदोस मिच्छादंसण विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पिज्जदोस मिच्छादंसण विजएण नाण दंसण चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगंठि विमोयणयाए तप्पढ- मयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं

प्राप्ति होती है. माया कर जो कर्म बन्धते हैं वे उस को नहीं बंधते हैं और पहिले बंधे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६९ ॥ अहो भगवन् ! लोभ कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! लोभ कषाय का विजय करने से संतोष रूप गुन की प्राप्ति होती है लोभ कर जो कर्म बन्धते हैं व उस के नहीं बंधते हैं और पहिले बंधे कर्मों की निर्जरा होती है ॥ ७० ॥ अहो भगवन् ! राग द्वेष तथा मिथ्यात्व दर्शन इन तीनों को जीतने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ! अहो गौतम ! राग द्वेष मिथ्यात्व दर्शन का विजय करने से ज्ञान दर्शन व चरित्र रूप गुन की आराधना करने में जीव उद्यमी बनता है और जो अति दुःखरूप से क्षय हो ऐसी आठ कर्म रूप ग्रन्थी को क्षय करने का उद्यम करता है और जिस मोहनीय कर्म का प्रथम क्षय नहीं हुआ था उस मोहनीय कर्म की अठाईस ही प्रकृतिका अनुक्रम से क्षय करता है मोहनीय

बुज्झइ जाव अंतंकरेइ ॥ ७२ ॥ एस खलु सम्मत्त परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए, पन्नविए, परूविए, दंसिए, उवदंसिए ॥ त्ति बेमि॥

इति सम्मत्त परक्कमो नामज्झयणं सम्मत्तं ॥ २९ ॥

त्याग कर एक नहीं परन्तु ऋजु श्रेणि प्रकाश की श्रेणी में प्रतिपन्न हुवे जितने आत्म के प्रदेश हैं उतने ही आकाश प्रदेश को स्पर्श न करता अन्यदा प्रदेश को बिना छूये एक ही समय मात्र में ऊर्ध्वगति में मोक्षगति पर्यन्त गमन करे वहां ज्ञान उपयोग सहित सर्व भव काटकर सिद्ध होवे सर्वज्ञ सर्वदर्शी बुद्ध बने संसार से मुक्त होवे, शीतलीभूत होवे सब दुःख का अन्त कर परम सुख ही सुख के भोक्ता बने, ॥ ७१ ॥ श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि अहो जम्बू ! निश्चय से यह सम्यक्त्व में पराक्रम-गुणता का कर्ता अध्ययन श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजीने सम्यक् प्रकार कहा, सब ७२ बोल का फल बताया, स्वरूप कर प्ररूपन किया, बहुत भेद दृष्टान्त कर समझाया, द्वादश परिषदा में उपदेशा मैंने जैसा भगवंत के मुख से सुना वैसा तुझे कहा ॥ इति सम्यक्त्व पराक्रम नामका गुनतीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २९ ॥

अप्पडिवाई सुक्कझाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोग निरुम्भइ, वइजोग निरुम्भइ, आणपाणनिरोह करेइ, इसि पंच रहस्सक्खरुच्चारणट्ठाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि सुक्कझाणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं च एए चत्तारि कम्मं जुगवं खवेइ ॥ ७२ ॥ तओ ओरालिय कम्माइं सव्वाहिं विप्पजहिता उज्जु सेढि पत्ते अफुसमाणगइ उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ

आयुष्य शेष रहे तब पालन कर शेष अन्तर मुहूर्त आयुष्य रहे तब मन वचन काया के योगों का व्यापार-प्रवृत्ती का निरुंधन कर जिस को ग्रहण कर पीछा पडना न हो ऐसा शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद को ध्याते हुवे प्रथम मन का व्यापार का रुंधन करे फिर वचन जोग का निरुंधन करे फिर काया योग का रुंधन करे फिर श्वासोश्वास को रूंधे, फिर अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांचों स्वर का उच्चार करने में जितना काल लगता है उतने काल में शैलेशी (पर्वत जैसी) अवस्था में रहे वे साधु मन वचन काय की क्रिया रहित बन के कर्मों का क्षय किया विना सध्यान की निवृत्ति होवे नहीं ऐसा शुक्ल ध्यान का चौथा पाया को ध्याकर १ वेदनीय २ आयुष्य, ३ नाम, और ४ गोत्र इन चारों कर्मों के अंश को एक ही वक्त में क्षय करे ॥ ७२ ॥ तब फिर—१ औदारिक, २ तेजस और ३ कार्मन इन तीनों शरीर का सर्वथा

दोस समज्जिय ॥ जहाय खवइ भिक्खू, त मे एगमणो सुण ॥ ४ ॥ जहा महा तलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे ॥ उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥ ५ ॥ एवं तु संजयस्सावि, पाव कम्मनिरासवे ॥ भव कोडी संचिय कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ॥ ६ ॥ सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा ॥ बाहिरो

५ समिति, ३ गुप्ति, ४ अकषायी, ५ जितेन्द्रि, ३ अगार्वी ३ निशल्य इन २९ गुन कर रहित पना प्रथम था उस वक्त जीवन राग द्वेष कर अतिशय पाप कर्मो का उपार्जन किया था उन कर्मों का आगम सो २९ गुन धार कर रोक दिया परंतु प्रथम के संचित कर्म बाकी रहे हैं उसे तप कर क्षय करते हैं वही तप का अधिकार मैं तुझे कहता हूं सो तू एकाचित्त श्रवण कर ॥ ४ ॥ इस पर दृष्टान्त जैसे महा तलाव में जो नालों कर पानी आता था उसे तो पाल बान्ध नालों को बन्ध कर रोक दिया और अन्दर रहा हुवा प्रथम के पानी को उलीचने से तथा सूर्य के आताप से अनुक्रम से शोष कर सुकाते हैं तब वह तलाव निर्लेप होता है ॥ ५ ॥ इस ही प्रकार निश्चय से संयम व्रत कर नवे आते हुवे कर्मों को तो रोक दिये और प्रथम के भवकोटी के संचित कर्मों को तपश्चर्या कर क्षय करते हैं ॥ ६ ॥ वह कर्म क्षय करने का तप दो प्रकार का कहा है तद्यथा—१ बाह्य जो तप शरीर की दुर्बलतादि लक्षणों द्वारा प्रगट में देखने में आवे, और २ आभ्यन्तर जो तप प्रगट देखने में तो न आवे परन्तु गुप्त

॥ तपमार्ग नामक त्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

जहा उ पावग कम्म राग दोस समज्जिय ॥ खवेइ तवसा भिक्खू तमेगग्गमणो सुण ॥ १ ॥ पाणवह मुसावाया अदत्त मेहुण परिग्गहा विरओ ॥ राई भोयण विरओ जीवो होइ अणासवो ॥ २ ॥ पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ ॥ अगारवाय निसल्लो, जीवो होइ अणासवो ॥ ३ ॥ एएसिं तु विवच्चासे राग

गुनतीसवे अध्ययन में सम्यक्त्व पराक्रम कहा सो जो सम्यक्त्व सहित तप करे वही योग्य गिना जावे इस लिये तीसवे अध्ययन में तप का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि अहो जम्बू ! इस जीवन को राग द्वेष करके पाप कर्मों की उपार्जना की है उन कर्मों का नाश साधु तप करके करते हैं उस का अधिकार मैं कहता हूं सो तू एक चित्त कर श्रवण कर ॥ १ ॥ प्राणवध—जीव हिंसा, मृषावाद झूठ बोलना व अदत्तादान-चोरी करना, मैथुन-स्त्री आदि का सेवन, परिग्रह-पुद्गलों पर मूर्च्छा और रात्रि में चारों आहार का भोगवना इन छ ही कामों का जिनोंने त्याग किया है वे जीवों नवीन कर्मों को ग्रहण करने से निवर्ते हैं ॥ २ ॥ और जो पांच समिति समिता तीन गुप्ति गुप्ता चारों कषाय रहित, पांचों इन्द्रिय जीतनेवाले, ऋद्धि आदि तीनों गर्व रहित, मायादि तीनों शल्य रहित इन गुन कर सहित होते हैं वे भी नये कर्मों को ग्रहण करने से [कर्म बन्ध से] निवर्ते हैं ॥ ३ ॥ अहो शिष्य ! अब ५ महाव्रत,

दोस समज्जिय ॥ जहाय खवइ भिक्खू, त मे एगमणो सुण ॥ ४ ॥ जहा महा तलायरस्स सन्निरुद्धे जलागमे ॥ उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥ ५ ॥ एवं तु सजयस्सावि, पाव कम्मनिरासवे ॥ भव कोडी सचिय कम्म, तवसा निज्जरिज्जइ ॥ ६ ॥ सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा ॥ बाहिरो

५ समिति, ३ गुप्ति, ४ अकषायी, ५ जितेन्द्रि, १ अमायी १ निशल्य इन २९ गुन कर रहित प्रथम था उस वक्त जीवन राग द्वेष कर अतिशय पाप कर्मों का उपार्जन किया था उन कर्मों का आगम तो २९ गुन धारन कर रोक दिया परंतु प्रथम के संचित कर्म बाकी रहे हैं उसे तप कर क्षय करते हैं वही तप का अधिकार मैं तुझे कहता हूं सो तू दत्तचित्त श्रवण कर ॥ ४ ॥ इस पर दृष्टान्त जैसे महा तलाव में जो नालों कर पानी आता था उसे तो पाल बान्ध नालों को बन्ध कर रोक दिया और अन्दर रहा हुवा प्रथम के पानी को उलीचने से तथा सूर्य के आताप से अनुक्रम से शोष कर सुकाते हैं तब वह तलाव निर्लेप होता है ॥ ५ ॥ इस ही प्रकार निश्चय से संयम व्रत कर नये आते हुवे कर्मों को तो रोक दिये और प्रथम के भवकोटी के संचित कर्मों को तपश्चर्या कर क्षय करते हैं ॥ ६ ॥ यह कर्म क्षय करने का तप दो प्रकार का कहा है तद्यथा—१ बाह्य जो तप शरीर की दुर्बलत्वादि लक्षणों द्वारा प्रगट में देखने में आवे, और २ आभ्यन्तर जो तप प्रगट देखने में तो न आवे परन्तु गुप्त

छव्विहो वुत्तो एव मब्मतरो तवो ॥ ७ ॥ अणसण मुणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ॥ काय किलेसो सलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ ८ ॥ इत्तरिय मरण कालाय, अणसणा दुविहा भवे ॥ इत्तरिय सावकखा निरवकखा उबिइज्जिया

रने ही कर्मों का क्षय करे इस में बाह्य तप के भी ६ प्रकार कहे हैं और आभ्यन्तर तप के भी ६ प्रकार कहे हैं ॥ ७ ॥ अब ६ प्रकार के बाह्य तप के नाम कहते हैं—१ अनशन, २ ऊणोदरी, ३ भिक्षाचरी ४ रस परित्याग, ५ काया क्लेश और ६ प्रति संलिनता यह छ प्रकार का बाह्य तप कहा ॥ ८ ॥ इस में प्रथम अनशन तप का स्वरूप कहते हैं—अनशन तप दो प्रकार का तद्यथा—१ इत्तरीय यावे (मर्यादित) काल का और २ अवकारिक-आवज्जीव का इस में इत्तरिये तप छ प्रकारका कहा है तद्यथा—१ श्रेणि तप, नोकारसी, पहरसी यावत् एक उपवास दो उपवास यावत् छ महिने के उपवास सो छ महिने उपरांत तप नहीं है २ प्रतर तप की विधी यंत्र से जानना सोले कोठे में जिस प्रकार अंक भरे हैं उस प्रकार अनुक्रम से तप करे

प्रतर तप

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

तप ३ इस प्रकार ८×८+६४ कोठक में अंक आवे वैसा तप करे यह घन तप, ४ ऐसे ६४×६४=४०९६ कोठक में अंक आवे वैसा तप करे यह वर्ग तप' ५ ऐसे ही ४०९६×४०९६ =१६७७७२१६ कोठे में अंक आवे वैसा तप करे यह 'वर्गावर्ग तप' और ६५ प्रकीर्ण तप सो कनका [illegible]

॥ ९ ॥ जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो ॥ साउतवा पयरतवा, घेणा य
सह होइ वग्गो य ॥ १० ॥ ततो य वग्गवग्गो, पंचमा छट्ठओ पइण्णतवो ॥
मणइच्छिय चित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥ ११ ॥ जा सा अणसणा मरणे
दुविहा सा वियाहिया ॥ सवियार, अवियारा, कायचिट्ठं पई भवे ॥ १२ ॥ अहवा
सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ॥ निहारिमनीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि

सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रप्रतिमा, महा भद्रप्रतिमा, वज्रमध्यप्रतिमा, जवमध्यप्रतिमा, गुणरत्न संवत्सर तप, वर्ध मानविल वर्धमान तप इत्यादि अनेक प्रकार के जानना यह इतरीये तप के भेद हुवे इस प्रकार अनेक प्रकार के तप मोक्ष की अभिलाषा कर ऋषि यथार्थ करते हैं जिस के भेद कहे ॥ ११ ॥ अब जो यावत्कालिक तप जावज्जीव सम्बन्धी है उसे अनसन तपभी कहते हैं उस के दो भेद, तद्यथा-१ जो फक्त तीन आहार के या चारों आहार के प्रत्याख्यान जावज्जीव पर्यंत करे परंतु हलन चलन विहारादि करे वह भक्त प्रत्याख्यान और २ जो आहार के तथा शरीर के दोनों के प्रत्याख्यान कर कटी हुई वृक्षकी डाली की तरह हलन चलन रहित जावज्जीव रहे सो पादोपगमन तप ॥ १२ ॥ अथवा और भी अवकालिक तप के दो प्रकार कहे हैं तद्यथा-१ जो भक्त प्रत्याख्यान कर अन्य साधुओं के पास से वैयावच्च करावे वह प्रति क्रमण सहित होता है अर्थात् वे देवसी रायसी आदि प्रतिक्रमण करते हैं और २ जो पादोपगमन है वह अन्य साधु के पास वैयावच्च नहीं कराते हैं तथा प्रतिक्रमण भी नहीं करते हैं और भी दो भेद-१ एक

॥ १३ ॥ ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं ॥ दव्वओ खेत्त कालेण, भावेण पज्जवेहि य ॥ १४ ॥ जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ॥ जहन्नेणेग सित्थाइ एवं दव्वेण ऊ भवे ॥ १५ ॥ गामे नगरे तह रायहाणि, णिगमे य आगरे पल्ली । खेडे कव्वड दोणमुहं, पट्टण मडंब संबाहे ॥ १६ ॥

ग्राम में करे उन के शरीर का निहारन होवे और जो ग्राम के बाहिर गिरी कंदरादि में करे उन के शरीर का निहारन नहीं होवे इन दोनों प्रकार के तप में जावज्जीव आहार का त्याग करना इति अनशन तप कहा ॥ १३ ॥ अब दूसरा ऊणोदरी तप कहते हैं—इच्छा की पूरती नहीं करे वह ऊणोदरी तप पांच प्रकार से कहते हैं तद्यथा—१ द्रव्य से २ क्षेत्र से, ३ काल से, ४ भाव से और ५ पर्याय से ॥१४॥ जिस जीव का जितना आहार होवे उस में से एक ग्रास-कवल मात्र कुछ भी कम आहार करें उसे द्रव्य से ऊणोदरी तप कहना ॥ १५ ॥ क्षेत्र से—१ जहां वस्तु का कर लगे ऐसे ग्राम में २ जहां वस्तु का कर नहीं लगे ऐसे नगर में, ३ राजा रहता हो ऐसी राज्यधानी में, ४ वनीये की वस्ती बहुत हो ऐसे निगम में, ५ सुवर्णादि की खान हो ऐसे आगर में, ६ चोरों की वसति अधिक हो ऐसी पल्ली में, ७ जहां धूलका कोट हो ऐसे खेडे में, ८ छोटा ग्राम हो ऐसे कर्बट में, ९ जहां जलपथ स्थलपथ दोनों हो ऐसे द्रोणमुख (बंदर) में, १० जहां सब प्रकार के पदार्थों मिले ऐसे पट्टन में, ११ जहां चारों दिशाओं में प्रकार २

आसमपए विहार, सन्निवसे समायघोस य ॥ थलिसेणा खधारे, सत्थे संवट्ट कोट्टे य
॥ १७ ॥ वाडेसुत्र रच्छासु, य घरेसुत्रा एवमित्तिय खेत्त ॥ कप्पइ उ एवमाई एत्र
खत्तेण ऊमवे ॥ १८ ॥ पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्तिय पयंग वीहिया चेव ॥ सम्बुक्का-

कोश ग्राम न हो ऐसे मरुप में १२ पर्वत पर ग्राम हो ऐसे सवाह में, ११ जहां तापसों की वस्ती हो ऐसे आश्रम में, १४ जहां भिक्षुकों की वस्ती हो ऐसे विहार में, १५ जहां गोपालकों की वस्ती हो ऐसे सन्नी वस में, १६ जहां पंथीजनों विश्राम लेते हों एसी सराय-धर्मशालाओं में, १७ जहां गवादि गोकुल रहता हो एसे घास में १८ खेती के ढग हो ऐसी थली में, १९ जहां चतुरंगिणी सेना रहती हो ऐसे सेना स्थान में २० जहां सेना का उतारा होता हो ऐसे खधार में, २१ जहां सार्थवाही उतरते हों ऐसे सार्थ में, २२ कुछ भय प्राप्त होने से मनुष्यों छिपकर रहे ऐसे संवाह में २३ किल्ले के अंदर वस्ती हो ऐसे कोट में २४ ग्राम के पाडे-मोहल्ले में २५ घरान्तर की गलीयों में, २६ घर की कोटडीयों में इत्यादि स्थान में आहार प्राप्त हो उसे ग्रहण करे यह क्षेत्र से ऊनोदरी ॥ १९ २० ॥ और भी क्षेत्र से ऊनोदरी के छ भेद कहे हैं, तद्यथा—१ पेटी (संदूका) के आकार से चारों कोने के चार घर की गोचरी करे, २ आधी पेटी के आकार दो कोने के दो घर स्पर्शे ३ बैल के मूत्र की तरह एक घर इधर का एक उधर का यों गोचरी करे, ४ पतंगीया उडे त्यों फुटकर घरों की गोचरी करे ५ शंखावर्त एक

चहायपयंतु पयागयाछट्टा ॥ १९ ॥ दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्ह पि उ जत्तिओ भवे कालो ॥ एवं चरमाणो खलु कालोमाण मुणेयव्वं ॥ २० ॥ अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसतो ॥ चउभागूणाएवा एवं कालण ऊ भवे ॥ २१ ॥ इत्थी वा पुरिसोवा, अलंकिओ वा नलंकिओ वा वि॥अन्नयर वयत्थो वा अन्नयरेण चवत्थेणं ॥ २२ ॥ अन्नेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ ॥ एवं चरमाणो खलु भावो माण मुणेयव्वं ॥२३॥ दव्वे खेत्ते काले भावम्मि य आहिया उ जेभावा

ऊपर का एक नीचे का फिर एक ऊपर का इस प्रकार गौचरी करे ६ सलंग सतरपंथ घरों की गौचरी करे ॥ १९ ॥ अब काल से ऊणोदरी तप कहते हैं-दिन के चार प्रहर में से हर किसी एक प्रहर में आहार ग्रहण करूंगा अमुक प्रहर में भोगवूंगा ऐसा अभिग्रह करे यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २ ॥ अथवा तीसरे प्रहर में कुछ कम तीसरे प्रहर में, चौथे प्रहर में अथवा पांच भाग कम पोरसी में इत्यादि काल में आहार आदि मिलेगा तो लेवूंगा यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २१ ॥ अब भाव से ऊणोदरी तप कहते हैं-स्त्री अथवा पुरुष भूषणों कर अलंकृत हो व नहीं हो, अनेक प्रकार के वस्त्र में से शाटिकादि अमुक वस्त्र का धारक हो, अमुक विशेषन नाम का धारक हो, अमुक अवस्थावाला हो, कृष्णादि अमुक वर्णवाला हो, इत्यादि धारना धमाने दातार हो उस के हाथ से आहार ग्रहण करूंगा इस प्रकार अभिग्रह धारन करे उसे भाव ऊणोदरी तप जानना ॥ २२ २३ ॥ अब पर्याय ऊणोदरी तप

एएहि ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥ २४ ॥ अट्ठविह गोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा ॥ अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरिय माहिया ॥ २५ ॥ खीर दहि सप्पिमाई, पणीय पाणभोयणं ॥ परिवज्जणं रसाण तु भणियं रसविवज्जणं ॥ २६ ॥

करते हैं द्रव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से उक्त कथन प्रमाण चारों प्रकार से साथ ही अभिग्रह धारण करे उसे पर्याय ऊनोदरी कहते हैं यह दूसरा ऊणोदरी तप हुवा ॥ २४ ॥ अब तीसरा भिक्षाचरी तप कहते हैं—भिक्षाचरी के ८ भेद—तद्यथा—१ पूरी सन्दूक के आकार, २ आधी सन्दूक के आकार ३ गोमुत्र के आकार, ४ पतंगिये के आकार, ५ अभ्यंतर शंखावर्त, ६ बाह्य शंखावर्त, ७ सीधा और ८ बांका यों आठ प्रकार से भिक्षाचरी करे तथा एषणा के सात भेद—१ संसठ भरे हाथ से ले, २ असंसठ-बिना भरे हाथ से ३ उद्धड जिस द्रव्य से भाजन तथा हाथ भरा वही द्रव्य लेना, ४ अल्पलेपी सीका हुवा धान्यादि ग्रहण करे ५ उद्ग्राहिता-मालक के ही हाथ से ले ६ पर गृहता, अन्य के हाथ से ले और ७ उज्झित धर्म जो पदार्थ फेंक देने लायक है उसे डालने जाते वैसा ले तथा ऊनोदरी में कहे मुजब ही द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भिक्षाचरी के अभिग्रह धारन करे उसे भिक्षाचरी तप कहना यह तीर्थंकरों का कहना है ॥ २५ ॥ अब चौथा रस परित्याग तप कहते हैं—१ दूध, २ दही, ३ घृत ४ तेल, ५ मीठाइ, इन पांचों विगय के त्याग करें उसे रस परित्याग तप कहना ॥ २६ ॥ अब

थह्वायपर्गतु पच्चागयाछ्छ्ता ॥ १९ ॥ दिवसस्स पोरुसीण, चउण्ह वि उ जत्तिओ भवे कालो ॥ एव चरमाणो खलु, कालोमाण मुणेयव्व ॥ २० ॥ अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसतो ॥ चउभागूणाएवा एव कालण ऊ भवे ॥ २१ ॥ इत्थी वा पुरिसोवा, अलंकिओ वा नलंकिओ वा वि॥अन्नयर वयत्थो वा अन्नयरेण ववत्थेण ॥ २२ ॥ अन्नेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ ॥ एवं चरमाणो खलु भावो माण मुणेयव्व ॥२३॥ दव्वे खेत्ते काले भावम्मि य अहिया उ जेभावा

ऊपर का एक नीचे का फिर एक ऊपर का इस प्रकार गोचरी करे ६ सलंग सवरपन्थ घरों की गोचरी करे ॥ १९ ॥ अब काल से ऊणोदरी तप कहते हैं-दिन के चार प्रहर में से हर किसी एक प्रहर में आहार ग्रहण करूंगा अमुक प्रहर में भोगवूंगा ऐसा अभिग्रह करे यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २ ॥ अथवा तीसरे प्रहर में कुछ कम तीसरे प्रहर में, चौथे प्रहर में अथवा पांच भाग कम पोरसी में इत्यादि काम में आहार आदि मिलेगा तो लेवूंगा यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २१ ॥ अथ भाव से ऊणोदरी तप कहते हैं-स्त्री अथवा पुरुष भूषणों कर अलंकृत हो व नहीं हो, अनेक प्रकार के वस्त्र में से साटिकादि अमुक वस्त्र का धारक हो, अमुक विशेषण नाम का धारक हो, अमुक अवस्थावाला हो, कृष्णादि अमुक वर्णवाला हो, इत्यादि धारना धारने दातार हो उस के हाथ से आहार ग्रहण करूंगा इस प्रकार अभिग्रह धारन करे उसे भाव ऊणोदरी तप कहना ॥ २२ २३ ॥ अथ पर्याय ऊणोदरी तप

पायच्छित्तं तु दसविहं ॥ जं भिक्खू वहई सम्म, पायच्छित्तं तमाहियं ॥ ३१ ॥
अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवासण दायणं ॥ गुरुभत्तिभाव सुस्सूसा, विणओ

१ आलोचना किसी कार्य के लिये स्थानक बाहिर जा पीछा आवे तब जिस प्रकार वह कार्य किया हो सो गुरु के आगे प्रकाश करे, यह आलोचना प्रायश्चित्त, २ प्रतिक्रमण आहार विहार भाषण में बिना उपयोगसे लगे पापों की शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त ३ दूसरा प्रायश्चित्त का काम उपयोगयुक्त करे जिस का आलोचना प्रतिक्रमण दोनों प्रायश्चित्त ४ विवेक-अशुद्ध आहारादि को परिठावना का प्रायश्चित्त ५ दुःस्वप्नादि पाप का कायुत्सर्ग प्रायश्चित्त ६ सचित्तादि का संघट्ट का वगैरा का आयंबिल उपवासादि तप का प्रायश्चित्त ७ अपवाद मार्ग सेवनादि का पांच दिनादि दीक्षा का छेद का प्रायश्चित्त ८ जानकर हिंसादि पाप सेवनादि का मूल से पुनः संयम देने का प्रायश्चित्त ९ अनवस्थित स्वात्म तथा परात्म का क्रूर मार से प्रहार आदि पाप लगाने वाले के पास ऐसा कठिनतप करावे की उससे दूसरे के सारे बिना उठा नहीं जावे यह अनवस्थ प्रायश्चित्त और १० पारंचिय प्रवचन उत्थापकादि पाप के सेवन करने वाले को ६ महिने से १२ वर्ष पर्यंत संघ के बाहिर रख फिर दीक्षित करे यह पारांचिक प्रायश्चित्त, इन दशों प्रायश्चित्तों को सम्यक् प्रकार सेवन करे, यह प्रायश्चित्त तप ॥ ३१ ॥ दूसरा विनय तप—१ गुरु आदि ज्येष्ठ को आते ध्यान वन के सन्मुख जावे, २ दोनों हाथ जोड प्रतिलाप करे, ३ जाते आते मत्थएण वंदामि ' शब्द

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ॥ उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ॥ २७ ॥ एगंतमणावाए इत्थीपसु विवज्जिए ॥ सयणासण सेवणया, विवित्त सयणासण ॥२८॥ एसो बाहिरग तवो, समासेण वियाहिओ ॥ अब्भिंतरो तवोएत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ २९ ॥ पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ॥ झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिंतरो तवो ॥३०॥ आलोयणारिहाईयं,

पांचवा कायक्लेश तप कहते हैं—एक स्थान खडा रहे या बैठा रहे, जमीन को पांव लगा कुरसी पर बैठे फिर कुरसी निकाल ले वह उस ही प्रकार बैठा रहे सो बीरासन, दंडासन-दोनों लम्बे हाथ कर खडा रहे इत्यादि अनेक प्रकारके आसनसे स्थिर रहे, मोक्ष मार्गकी प्राप्ति करने लिये काया को समाधि सह परीषह सहे उसे कायक्लेश तप कहा है ॥ २७ ॥ अब छठा प्रतिसंलीनता तप कहते हैं एकान्त जहां स्त्री पशु पण्डक चित्त को विकार करनेवाले की वस्ती न हो वैसा शय्या [स्थानक] आसन का सेवन कर पांचों इन्द्रिय चारों कषाय तीनों योगों का निग्रह कर रहे यह छठा प्रतिसंलीनता तप जानना ॥ २८ ॥ अहो जम्बू ! यह छ प्रकार के बाह्य तप का स्वरूप कहा अब आगे छ प्रकार के आभ्यन्तर तप का स्वरूप अनुक्रम से कहता हूं उसे तुम चित्त श्रवण कर ॥ २९ ॥ आभ्यन्तर तप भी छ प्रकार के कहे हैं उन के नाम—१ प्रायश्चित्त २ विनय, ३ वैयावच्च, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, और ६ व्युत्सर्ग यह छ आभ्यन्तर तप जानना ॥ ३० ॥ प्रथम प्रायश्चित्त तप के १० प्रकार, यथा—

धम्मसुक्काइ झाणाई झाण तं तु बुहा वए॥ ३५ ॥सयणासणठाणे वा,जे उ भिक्खू न वावरे ॥ कायस्स विउसग्गो छठो सो परिकित्तिओ ॥ ३६ ॥ एवं तवं तु दुविहं, जे सम्म आयरे मुणी ॥ सो खिप्प सव्व ससारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ ॥ ३७ ॥ त्तिबेमि ॥ इति श्री तवमग्ग अज्झयण सम्मत्त ॥ ३० ॥ * *

ध्यान अप्रशस्त हैं इन को छोडकर–वीतरागकी आज्ञा का, कर्म से होते अपाय का, शुभाशुभ कर्मो का, और लोक के संस्थान का विचार करे सो धर्म ध्यान और एकत्ववीतर्क, अन्यत्ववीतर्क, सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति सो शुक्लध्यान यह दो ध्यान प्रशस्त अच्छे हैं इनको चित्तकी दृढता से समाधीवंत ध्यावे उसे ध्यान तप कहना ॥ १० ॥ अब छठा कायोत्सर्ग तप कहते हैं–सोता हुवा बैठा ऊभारहा कायुत्सर्ग करे हलन चलन नहीं करे वह कायुत्सर्ग तप यह छ प्रकार का अभ्यन्तर तप कहा ॥ ३६ ॥ यह छ प्रकार का बाह्य तप और छ प्रकारका अभ्यन्तर यों बारे प्रकार का तप कहा उसें साधु सम्यक् प्रकार समाचारे आदरे वे पंडित ससार समुद्र से शीघ्र मुक्त होवे यों सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जंबू ! जैसा मैंने सुना वैसा तुझे कहा ॥ इति तप नामक तीसवा अध्ययन समाप्त ॥ ३०॥

एस वियाहिओ ॥ ३२ ॥ आयरिय माईए, वेयावच्चमि दसविहे ॥ आसेवण जहा
थाम, वेयावच्च तमाहिय ॥३३॥ वायणा पुच्छणा चेव तहेव परियट्टणा ॥ अणुपेहा
धम्मकहा, सज्झाओ पचहा भवे ॥ ३४ ॥ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता,झाएज्जा सुसमाहिए ॥

करे ४ आसन छोड खडा रहे तथा उन को आसन का आमंत्रण करे, ५ यथा उचित उन की भक्ति करे, ६ अन्तःकरण की प्रीति पूर्वक गुरु आज्ञा को इच्छे तथा ७ ज्ञान का २ दर्शन का ३ चारित्र का, ३ योगों का, ४ लोक व्यवहार इत्यादि ४० प्रकार का विनय का सांचवन करे यह विनय तप ॥ ३२ ॥ तीसरा वैयावच्च तप कहते हैं-१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी ५ रोगी ६ नवदीक्षित-शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल—गुरु भ्रात, ९ गण-एक सम्प्रदाय के और १० संघ-चारों तीर्थ इन दशों की अपनी शक्ति प्रमाने सेवा भक्ति करे यह वैयावच्च तप ॥ ३३ ॥ चौथा स्वाध्याय तप पांच प्रकार का—१ गुरु आदि को विनय भक्ति से प्रसन्न कर उन के पास सूत्रादि की वाचनीले तथा आप स्वयं वांचे यह वांचना, २ संदेह निवारन करने प्रश्नादि पूछे यह पृच्छना, ३ पठार्थ पढे इस को वारम्वार फेरे यह परीयटना, ४ सूत्रार्थ को दीर्घ दृष्टि मे विचार करे यह अनुपेक्षा और ५ धर्मोपदेश देवे यह धर्म कथा यह पांच प्रकार स्वाध्याय तप जानना ॥ ३४ ॥ अब पांचवा ध्यान तप कहते हैं-ध्यान चार प्रकार के इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग, रोग का नाश और भोग की आश करे सो आर्तध्यान, हिंसा झूठ चोरी सरीर सरक्षण का अनुबन्ध करे सो रौद्रध्यान यह दोनों

जे भिक्खू रुम्मए निधं, स न अच्छइ मंडले ॥ ४ ॥ दिव्य य ज उवसग्गे,
तेरिच्छ माणुसे ॥ जे भिक्खू सहई सम्म, से न अच्छइ मंडले ॥ ५ ॥ विगहा
फसाय सन्नाण, झाणाणं चदुय तहा ॥ जे भिक्खू वज्जए निच्च से न अच्छइ
मंडले ॥ ६ ॥ घएसु इंदियत्थेसु, समिईसु किरियासु य ॥ जे भिक्खू जयइ निच्च,

फल का मांगना) शल्य और ३ मिथ्यात्व दर्शन शल्य, इन तीनों के तीन २ भेदो को जो साधु सदैव
आत्मा से दूर करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ४ ॥ देवता सम्बन्धी मनुष्य
सम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी इन तीनों प्रकार में से जो उपसर्गों-सङ्कटों प्राप्त होवे उसे सममाव सहे
वह ससार मंडल में परिभ्रमन नहीं करे ॥ ५ ॥ १ स्त्री कथा, २ भोजन कथा ३ देश कथा, और ४
राजकथा यह चार विकथा १ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ, यह चार कषाय, १ आहार
संज्ञा, २ भयसंज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा, और ४ परिग्रह संज्ञा यह ४ संज्ञा और १ आर्त ध्यान तथा रौद्र
ध्यान, इन सब को सदैव काल आत्मा से दूर कर धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावेगा वह संसार मंडल में
परिभ्रमण नहीं करे ॥ ६ ॥ १ अहिंसा, २ सत्य, ३ दत्त, ४ ब्रह्मचर्य, और ५ निर्ममत्व इन पांच
महा व्रत की १ श्रोत्र, २ चक्षु ३ घ्राण, ४ रस और ५ स्पर्श इन पांचों इन्द्रिय के अर्थ में १ ईर्या,
२ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान निक्षेपना, और ५ परिठावणिया यह पांच समिती १ कायिकी, २ आधि
करणी, ३ पाउसिका, ४ परितावणी, और ५ प्राणातिपातकी इन पांच क्रिया में इन सब को जो

॥ चरणविधि नामक एकत्रिंशत्तम अध्ययनम् ॥

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ॥ जं चरित्ता बहु जीवा तिण्णा संसार सागरं ॥ १ ॥ एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ॥ असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥ २ ॥ रागदोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे ॥ जे भिक्खू रुम्भइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ३ ॥ दण्डाणं गारवाणंच, सल्लाणं च तियं तियं॥

तीसवे अध्ययन में तप का कथन किया वह तो चारित्रवंत को होता है इस लिये इस इकतीसवे अध्ययन में चारित्र का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जम्बू ! जिस चरित्र को अंगीकार करके बहुत से जीवों संसार समुद्र को तिरकर पार हुवे हैं उस चारित्र की विधि में तुझे कहता हूं सो तू एकचित्त से श्रवण कर ॥ १॥ चारित्रीये एक प्रकार के असंयम से अपना आत्मा को निवार कर एक प्रकार के संयम में प्रवर्ते कर ॥ २ ॥ जो मिथ्यात्व मैल कर मलीन बने हुवे और पाप कर्मों में प्रवृत्ति के करा वाले ऐसे राग और द्वेष यह दोनों ही है इससे अपना आत्मा को दूर करेगा वह इस संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ३ ॥ १ मन दंड २ वचन दंड और ३ काया दंड, यह तीन दंड, २ ऋद्धि गर्व, २ रस गर्व, और ३ साता गर्व, यह तीन गर्व, १ माया (कपट) सल्य, निदान (करनीके

सत्तसु ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मदेसु बम्भगुत्तीसु

भिक्खुधम्ममि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ १० ॥

१ इस लोक-मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान-चोरों का भय, ४ अकस्मात-असिन्त्व भय ५ आजीविका-पेट भराई का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डैषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टाटी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर सजावे का शृंगार सजे नहीं इन ९ बाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ खंति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ आर्जव सरलता रखे, ४ मार्दव-मान नहीं करे, ५ लाघव हलका रहे, ६ सत्य सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैत्य ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दस साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

से न अच्छइ मडले ॥ ७ ॥ तेसासु छसु काएसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् महाव्रत समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावृत्य करने ३ ईर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने इन छ कारण से आहार करे बिना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ–स्वच्छ (बिना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवुंगा २ असस्वच्छ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धत–भाजन में से निकालता हुवा देवे तो लेवुं, ४ अप्पलेपी–फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे ऐसा लेवुं ५ उदग्गाही–अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं. ६ प्रागहित–अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवुं और ७ जो खुरचनादि भोगन करते पर डालने जैसा हो वसे देवे तो लेवुंगा इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का अभिग्रह धारन करे,

सत्तसु ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मदेसु बम्भगुत्तीसु भिक्खुधम्मंमि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ १० ॥

१ इस लोक-मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान-चोरों का भय, ४ अकस्मात-अचिन्त्य भय ५ आजीविका-पेट भराइ का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डैषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर वस्त्रादि का शृंगार सजे नहीं इन ९ वाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ क्षांति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ आर्जव सरलता रखे, ४ मार्दव मान नहीं करे, ५ लाघव-हलका रहे, ६ सत्य-सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैत्य ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दश साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

से न अच्छइ मंडले ॥ ७ ॥ लेसासु छसु काएसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् पंचाश्रव, समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावच्च करने ३ इर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने इन छ कारण से आहार करे बिना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ-स्वच्छ (बिना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवूंगा २ संसठ्ठ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धड-भाजन में से निकालता हुवा देवे तो लेवुं, ४ अप्पलेपी-फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे ऐसा लेवुं ५ उवग्गहीत-अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं ६ पग्गहित-अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवुं और ७ जो उज्झितधम्मिय भोजन ऊकरडे पर डालने जैसा हो वह देवे तो लेवूंगा इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का अभिग्रह धारन करे,

सयसु ॥ जे भिक्खू जयई निच, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मवेसु बभगुत्तीसु
भिक्खुधम्मंमि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच, से न अच्छइ मडले ॥ १० ॥

१ इस लोक–मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान–चोरों का भय, ४ अकस्मात-आकस्मिक भय ५ आजीविका-पेट भराई का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डेषणा सप्त भय की सदैव यत्ना करते हैं वे ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद, ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद, ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर वस्त्रादि का शृंगार सजे नहीं इन ९ बाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ खंति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ अज्जव सरलता रखे, ४ मार्दव मान नहीं करे, ५ लाघव हलका रहे, ६ सच-सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैत्य ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दस साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

से न अच्छइ मडले ॥ ७ ॥ लेसासु छसु काएसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे
भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् यत्नावंत समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावच्च करने ३ ईर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने इन छ कारण से आहार करे बिना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ–स्वच्छ (बिना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवूंगा २ अस्वच्छ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धृत–भाजन में से निकालता हुवा देवे तो लेवुं, ४ अप्पलेपी–फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे ऐसा लेवुं ५ उदग्राही–अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं ६ प्रागरहित–अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवुं और ७ जो खुरचनादि भोजन कचरे पर डालने जैसा हो उसे देवे तो लेवुंगा इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का अभिग्रह धारन करे,

मडले ॥ ११ ॥ किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं,

गोदूहआसन, वीरासन अंबखुज्जासन यह तीनों में का एक आसन करे ११ चौविहार छठ भक्त (बेला) करे, बेल को ग्राम बाहिर एक अहो रात्रि का कायोत्सर्ग करे, और १२ चोविहार अष्टम भक्त (तेला) करे तेले के दिन स्मशान में एक पुद्गल पर दृष्टी ठेरा कायोत्सर्ग करे तिर्यंच मनुष्य देवता सम्बन्धी उपसर्ग को सहे इन १२ प्रतिमा में साधु सदैव यत्नावंत बनेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमन नहीं करता ॥ ११ ॥ २ अर्थादंडक्रिया-मतलब सिर पाप करे, २ अनर्थादंडक्रिया बिना मतलब पाप करे, ३ हिंसा दंडक्रिया हिंसा करे, ४ अकस्मात् दंडक्रिया मारे किसे और कोई मरजाय, ५ दृष्टी विपरियासिया क्रिया शत्रु के भरोसे मित्र को मारडाले, ६ मोसवती-झूठ बोले, ७ अदीन दानवती चोरी करे ८ अज्झत्थवती-खराबविचार करे, ९ मित्रदोषवती मित्रों के साथ विरोध रखे, १० मानवती अभिमान करे, ११ मायावती-दगलबाजी करें, १२ लोभवती लालच करे, और १३ इर्यावही सो केवली भगवंत को योगों की प्रवृति से प्रथम समय लगे दूसरे समय वेदे तीसरे समय निर्जर कर दूर करे इन तेरे ही क्रिया का त्याग करे ॥ १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय का, २ बादर एकेन्द्रिय, ३ बेइन्द्रिय, ४ तेइन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असंज्ञी पचेन्द्रिय, और संज्ञी पचेन्द्रिय इन सात का अपर्याप्ता और पर्याप्ता यह १४ जीव के भेद जानना १ अंब, २ अंबरीस, ३ शाम, ४ सबल, ५ रौद्र, ६ वैरौद्र, ७ काल,

उवसगाणं पडिमासु भिक्खूणं पडिमासु य ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं से न अच्छइ

१ सम्यक्त्व निर्मल पाले २ व्रत निर्मल पाले, ३ त्रिकाल शुद्ध सामायिक करे ४ महिना के छ पौषध करे, ५ चार प्रहर का कायोत्सर्ग करे, स्नान करे नहीं रात्रि भोजन कर काछ लगावे नहीं, दिन का ब्रह्मचर्य पाले, इन पांच बोल का पालन करे, ६ सर्वथा ब्रह्मचर्य पाले, ७ सचित्त का आहार नहीं करे ८ स्वयं आरंभ नहीं करे, ९ अन्य पास भी आरंभ नहीं करावे, १० आरंभ की अनुमोदना भी करे नहीं और ११ साधु वेष धारन करे विशेष शिर पर चोटी रखे ज्ञातकुल की गोचरी करे इन इग्यारे श्रावक की प्रतिमा श्रावक को धारे १ प्रथम महिने एकेक दात आहार पानी की, २ दूसरे महिने दो दात आहार पानी की, ३ तीसरे महिने तीन २ दात आहार पानी की, ४ चौथे महिने चार २ दाती आहार पानी की, ५ पांचवे महिने पांच २ दाती आहार पानी की ६ छठे महिने छ दाती आहार पानी का, ७ सातवे महिने सात दाती आहार पानीकी ८ आठवे महिनेमें सात अहो रात्रि चौविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापनाले, रात्रि को तीन प्रकार के आसन करे, १ सोते २ बैठे, ३ खडे आसन पलटे नहीं ९ सात अहो रात्रि चौविहार एकान्तर उपवास कर दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि का—दंडासन, लकुटासन और उत्कटासन इन तीनों आसनों में का आसन करे, १० आठ अहोरात्रि चौविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि का—

भिक्खु जयई निच्चं से न अच्छइ मंडले ॥ १४ ॥ १गथीसाए सयले, धावीसा० नहीं मन वचन काया कर ७-२सेवता अच्छा माने नहीं मन वचन काया कर इस प्रकार ही ९भांगे वैक्रेय शरीर के यों १८प्रकार अब्रह्म का सेवन नहीं करे गुन्नीस ज्ञाता धर्म कथांग के अध्ययन १मेघकुमारका २धनासेठका, ३मयुरांडा का, ४ काछवा का, ५ थावरचा पुत्र का ६ तुम्बडी का, ७ रोहणी का, ८ मल्लीनाथजी का, ९ जिनरक्ष जिनपाल का १० चन्द्रमा का, ११ दवदव वृक्ष का १२ सुबुद्धि प्रधान का १३ नंद मणियार का, १४ पोटिला का, १५ नंदीफल का, १६ द्रोपदी का, १७ आकीण जाति के घोडा का, १८ सुसमा पुत्री का और १९ कुंडरिक पुंडरिक का, इन गुन्नीस अध्ययन के न्याय प्रमाणे संयमपाले ॥ वीस असमाधी दोष १ शीघ्रता से चले, २विना पूंजे चले ३पूंजे कहां पात्र कहांरखे, ४ पाटादि अधिक भोगवे, ५बडे के सन्मुख बोले, ६ स्थविर की घात चिन्तवे ७ सर्व जीवों की घात चिन्तवे, ८ क्षीण २ में क्रोध करे ९ दूसर की निन्दा कर, १० वारवार निश्चय भाषा बोले ११ नयाक्लेश करे १२ पुराण क्लेश उदेरे, १३ अकाल में स्वाध्याय करे, १४ सचित्त रजभरे पांव तथा आसन विना पूंजे बैठे, १५प्रहर रात्रि गय बाद जोर से बोले, १६ महा क्लेश करे, १७ मृषा वचन बोले, १८ अपनी पराइ आत्मा को असमाधी करे, १९ प्रभात से श्यामतक खावूं २ खावूं २ करे और २० अशुद्ध आहार भोगवे इन २० असमाधी दोष से आत्मा बचावे ॥ २० ॥ इक्कीस सबल दोष १हस्त कर्म करे, २मैथुन सेवे, ३रात्रि भोजन करे, ४ आधा कर्मी आहार करे, ५ राज्यपिंड आहार भोगवे, ६ मोल का, उदार लिया, छीनकर लिया, मालक की

सेन अच्छइ मडले ॥ १२ ॥ गाहा सोलसएहिं तहा असजमम्मि य, जे भिक्खू
जयइ निच, सेन अच्छइ मडले ॥१३॥बमम्मि नायज्झयणेसु,ठाणेसुअसमाहिए ॥ जे

८ महा काल, ९ असीपत्र, १० धनुष्य, ११ कुंभ, १२ वालु, १३ वैतरणी १४ खरस्वर और १५ महाघोष यह १५ परमाधामी देव इन में जो साधु सदैव प्रयत्न करे वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १२ ॥ १ स्वसमय पर समय, २ वैताली, ३ उपसर्ग, ४ स्त्री प्रज्ञा, ५ नरक विभूती, ६ वीर स्तुती, ७ कुशील प्रम, ८ सकाम अकाममरण, ९ धर्म, १० समाधी, ११ मोक्षमार्ग, १२ समवसरण, १३ यथातथ्य, १४ ग्रन्थ १५ आदानियास्म,और१६ गाथावती इन १६ ही सुयगडांग सूत्र के अध्ययन का अर्थ यथार्थ श्रद्धान करे १७ प्रकार का असयम—१ पृथ्वी २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति, ६ बेइन्द्रिय, ७ तेइन्द्रिय, ८ चौरिन्द्रिय, ९ पंचेन्द्रिय १० अजीवक्रिया इन दशों की यत्ना करे ११ पेहा-सर्व जीवात्मा निजात्मा सम माने, १२ उपेहा-सदैव उपयोग युक्त क्रिया करे, १३ प्रमार्जन-देख कर पूंजकर वस्तु वापरे, १४ परिठावणिया यत्ना से परिठावे (डालने योग्य वस्तु डाले), १५ मन १६ वचन और १७ काया, इन तीनों योगों को शुभ प्रवर्तावे यह १७ प्रकार संयम पाले और असंयम टाले इन में जो साधु सदैव यत्नावंत होगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १३ ॥ १ औदारिक शरीर सम्बन्धी मैथुन सेवे नहीं, मन वचन काया कर, ४ ९ सेवावे

भिक्खु जयई निच्चं से न अच्छइ मंडले ॥ १४ ॥ ९गणीसाए सबले, बावीसाए

नहीं मन वचन काया कर ७-९सेवना अच्छा माने नहीं मन वचन काया कर इस प्रकार ही ९मांगे वैक्रेय शरीर के यों १८प्रकार ममममका सेवन नहीं करे गुणीस ज्ञाता धर्म कथांग के अध्ययन १मेघकुमारका २धनासेठका, ३मयुरईडा का, ४ काछवा का, ५ थावरचा पुत्र का ६ तुम्बडी का, ७ रोहणी का, ८ मल्लीनाथजी का, ९ जिनरक्ष जिनपाल का, १० चन्द्रमा का, ११ दवद्व वृक्ष का १२ सुबुद्धि प्रधान का १३ नंद मणियार का १४ पोटिला का, १५ नंदीफल का, १६ द्रौपदी का, १७ आकीर्ण जाति के घोडा का, १८ सुसमा पुत्री का और १९ कुडरिक पुंडरिक का, इन गुणीस अध्ययन के न्याय प्रमाणे संयमपाले ॥ वीस असमाधी दोष १ शीघ्रता से चले,२विना पूंजे चले ३पूंजे कहां पांव कहां रक्खे,४ पाटादि अधिक भोगवे,५बडे के सन्मुख बोले, ६ स्थविर की घात चिन्तवे ७ सर्व जीवों की घात चिन्तवे, ८ क्षीण २ में क्रोध करे ९ दूसर की निन्दा कर, १० वारवार निश्चय भाषा बोले ११ नवा क्लेश करे १२ पुराण क्लेश उदेरे १३ अकाल में स्वाध्याय करे, १४ सचित रजभरे पांव तथा आसन विना पूंजे बैठे,१५प्रहर रात्रि गय बाद जोर से बोले, १६ महा क्लेश करे, १७ झूठ वचन बोले, १८ अपनी पराइ आत्मा को असमाधी करे, १९ प्रमाद से स्यामतक लावू २ खावू २ करे और २० अशुद्ध आहार भोगवे इन २० असमाधी दोष से आत्मा बचावे ॥१५॥ इक्कीस सबल दोष १हस्त कर्म करे,२मैथुन सेवे,३रात्रि भोजन करे,४ आधा कर्मी आहार करे, ५ राज्यपिंड आहार भोगवे, ६ मोल का, उधार लिया, छीनकर लिया, पालक की

परीसहे ॥जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मडले ॥ १५ ॥ तेवीसाइ सूयगडे रखा बिना, सन्मुख लाया इन पांच दोष सहित आहार भोगवे, ७ वारम्वार प्रत्याख्यान का भंग करे, ८ छ महिने पहले सम्प्रदाय पलटे, ९ एक महिने में तीन नदी का लेप लगावे १० एक महिने में तीन माया स्थान सेवे, ११ शैय्यांतर का आहार ग्रहण करे, १२ जानकर, हिंसा कर १३ जानकर झुठ बोले, १४ जानकर चोरी करे, १५ सचित्त पृथ्वी पर सोवे बैठे, १६ सचित्त रज स भरे पाटलादि पर सोवे बैठे, १७ सडे हुवे पाट पाटले भोगवे १८ मूल, कन्द, स्कन्ध त्वचा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल बीज, हरी यह दश प्रकार की वनस्पति भोगवे, १९ एक वर्ष में दश नदी के लेपलगावे, २० एक वर्ष में दश माया स्थान सेवे, और २१ सचित्त वस्तु से हाथ भाजन भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे यह २१ सबल दोष को सदैव वर्जे बावीस परिषह–१ क्षुधा का, २ तृषा का, ३ शीत का, ४ उष्ण का, ५ दंश मसक का, ६ अचेल का, ७ अरतिका, ८ स्त्रीका, ९ चलने का, १० बैठने का १२ स्थानक का, १३ आक्रोश वचन का, १४ वध मारने का, १५ अजाच का १६ रोगका, १७ तृण स्पर्श का ८ जलमैल का, १९ सत्कार सन्मान का, २० प्रज्ञा का, २१ अज्ञान का और २२ दर्शन-सम्यक्त्व का,इन २२ परिषह को सम्यक् प्रकार से सहे इस प्रकार जो साधु यत्ना करता है वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करता है॥१५॥सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्याय ... [illegible] ... श्रुतस्कन्ध के ७ अध्याय १ पुष्करणी का २ क्रिया का, ३ आहार प्रज्ञा ४ प्रत्याख्यान प्रज्ञा ५ ...

रूवाहिएसु सुरेसु य ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ १९ ॥ पण वीस भावणाहिं, उद्देसेसु दसाइण ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले

माया का, ६ आर्द्रकुमार का और ७ उदकपेढाल पुत्रका यों २३ ॥ अध्ययन का अर्थ सम्यक् प्रकार श्रद्धे चौवीस देव १० भुवनपति ८ व्यन्तर ५ ज्योतिष और १ वैमानीक यों २४ देवताको जाने इनमें जो सदय यत्ना करे वह संसारमें परिभ्रमण नहीं करे ॥१८॥पांच महाव्रतकी २५ भावना १ ईर्या, २ मन, ३ वचन, ४ एषणा, ५ निक्षेपन (यह पहिले महाव्रत की) ६ विचारकर बोले, ७ क्रोधवश झूठ नहीं बोले ८ लोभवश झूठ नहीं बोले, ९ भयवश झूठ नहीं बोले, १० हास्यवश झूठ नहीं बोले, [यह पांच दूसरे महाव्रत की] ११ निर्दोष स्थान याचकर भोगवे, १२ तृण काष्ट कंकरादि याचकर भोगवे, १३ छ कायका आरम्भकर स्थानक नहीं संमारे, १४ राजाका सेठ का गुरुका जीव का अदत्त नहीं ले १५ गुरु ज्ञानी रोगी तपस्वी नव दीक्षित की वैयावच करे, [यह ५ तीसरे महाव्रत की] १६ स्त्री पशु रहित स्थान भोगवे १७ स्त्री की कथा करे नहीं १८ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, १९ पूर्वकृत कामभोग याद करे नहीं २० नित्य प्रति सरस आहार करे नहीं (यह ५ चौथे महाव्रत की) २१ शब्द २२ रूप २३ गंध २४ रस २५ स्पर्श अच्छे पर राग करे नहीं और खोटे पर द्वेष करे नहीं इन २५ भावना का सम्यक प्रकार पालन करे १० दशाश्रुतस्कन्ध के, ६ बृहत्कल्प के, १० व्यवहार के इन २६ उद्देश का कालोकाल पठन करे इन की जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १७ ॥ सत्तावीस साधु के गुण—५ महाव्रत, पंचेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय टाले, यह १४ और १५ भाव सत्य,

परीसहे ॥जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ १५ ॥ तेवीसाइ सूयगडे

रमा विना, सन्मुख माया इन पांच दोष सहित आहार भोगवे, ७ वारम्वार प्रत्याख्यान का भंग करे, ८ छ महिने वाहरले सम्प्रदाय पलटे, ९ एक महिने में तीन नदी का लेप लगावे १० एक महिने में तीन माया स्थान सेवे, ११ शैयांतर का आहार ग्रहण करे, १२ जानकर, हिंसा कर १३ जानकर झुठ बोले, १४ जानकर चोरी करे, १५ सचित्त पृथ्वी पर सोवे बैठे, १६ सचित्त रज स भरे पाटलादि पर सोवे बैठे, १७ सड़े हुवे पाट पाटले भोगवे १८ मूल, कन्द, स्कन्ध त्वचा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल बीज, हरी यह दश प्रकार की वनस्पति भोगवे, १९ एक वर्ष में दश नदी के लेपलगावे, २० एक वर्ष में दश माया स्थान सेवे, और २१ सचित्त वस्तु मे हाथ भाजन भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे यह २१ सबल दोष को सदैव वर्जे बाइस परिषह–१क्षुधा का, २ तृषा का, ३ शीत का, ४ उष्ण का, ५ दंश मशक का, ६ अचेल का, ७ अरतिका, ८ स्त्रीका, ९ चलने का, १० बैठने का ११ स्थानक का, १३ अक्रोश वचन का, १४ वध मारने का, १५ अज्ञाप का, १६ रोगका, १७ तृण स्पर्श का ८ जलमेल का, १९ सत्कार सन्मान का, २० प्रज्ञा का, २१ अज्ञान का और२२दर्शन-सम्यक्त्व का,इन २२परिषह को सम्यक् प्रकार से सहे इस प्रकार जो साधु यत्ना करता है वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करता है॥१५॥सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्याय

रूवाहिएसु सुरेसु य ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मडले ॥ १६ ॥ पण वीस भावणेहिं, उद्देसेसु दसाइण ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मडले

माया का, ६ आर्द्रकुमार का और ७ उदकपेढाल पुत्रका यों २३ ॥ अध्ययन का अर्थ सम्यक् प्रकार श्रद्धे वैमानिक देव १० भुवनपति ८ व्यन्तर ५ ज्योतिष और १ वैमानिक यों २४ देवताको जाने इनमें जो सदैव यत्ना करे वह संसारमें परिभ्रमण नहीं करे ॥१६॥पांच महाव्रतकी२५भावना १ईर्या,२मन, ३वचन, ४एषणा ५ निक्षेपन(यह पहिले महाव्रत की) ६विचारकर बोले,७क्रोधवश झूठ नहीं बोले८ लोभवश झूठ नहीं बोले,९ भयवश झूठ नहीं बोले, १० हास्यवश झूठ नहीं बोले, [यह पांच दूसरे महाव्रत की] ११ निर्दोष स्थान याचकर भोगवे, १२ तृण काष्ट कंकरादि याचकर भोगवे,१३ छ कायका आरंभकर स्थानक नहीं समारे, १४ राजाका, शेठ का गुरुका जीव का अदत्त नहीं ले १५ गुरु ग्लानी रोगी तपस्वी नव दीक्षित की वैयावृत्य करे, [यह ५ तीसरे महाव्रत की] १६ स्त्री पशु रहित स्थान भोगवे १७ स्त्री की कथा करे नहीं १८ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, १९ पूर्वकृत कामभोग याद करे नहीं २० नित्य प्रति सरस आहार करे नहीं (यह ५ चौथे महाव्रत की) २१ शब्द २२ रूप २३ गंध २४ रस २५ स्पर्श अच्छे पर राग करे नहीं और खोटे पर द्वेष करे नहीं इन २५ भावना का सम्यक प्रकार पालन करे १० दशाश्रुतस्कन्ध के, ६ बृहत्कल्प के, १० व्यवहार के इन २६ उद्देश का कालोकाल पठन करे इन की जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमणनहीं करेगा ॥ १७ ॥ सत्तावीस साधु के गुण—५ महा व्रत, पंचेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय टाले, यह १४ और १५ भाव सत्य,

॥ १७ ॥ अणगार गुणेहिं च पकप्पम्मि तहेव य ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ १८ ॥ पावसुय पसंगेसु, मोहठाणे सु चेवय ॥ जे भिक्खू जयई

१६ करण सत्य १७ जोग सत्य १८ क्षमावंत, १९ वैराग्यवंत २० मन समाधारना २१ वचन समाधारना; २२ काया समाधारना; २३ ज्ञान संपन्न; २४ दर्शन संपन्न; २५ चारित्र संपन्न; २६ वेदनीय सहिया से; और २७ मरणांतिक सहिया से इन २७ गुण साधु के धारन करे २८ प्रकार के

नंबर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
महिने	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३	३
दिन	०	५	१०	१५	२०	२५		५	१०	१५	२०	२५	०	५
नंबर	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
महिने	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	६
दिन	१०	१५	२०	२५	०	५	१०	१५	२०	२५	२७	०	२७	०

प्रायश्चित के स्थानक आचार करप इन में जो साधु सदैव यत्ना करे वह ससार में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १८ ॥ गुणतीस पाप सूत्र १ भूमीकम्प, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ अतलिक्ख; ५ अंग स्फुरण; ६ स्वर; ७ व्यंजन; और ८ लक्षण इन ८ का सूत्र, ८ का अर्थ और ८ की कथा सब २४ और २५ विकथा का, २६ विद्या का; २७ मंत्र का, २८ योग का (तंत्र का) और २९ अनमतियों के आचार का इन २९ पाप सूत्र का उपदेश करे नहीं तीस महामोहनी कर्म स्थान १ त्रस जीवको पानीमें डूबाकर मारे, २ त्रस जीव के श्वासोच्छ्वास रोक कर मारे, ३ त्रस जीव को धूम कर के मारे ४ त्रस के मस्तक में लकड़ादि के घाव कर मारे, ५ त्रस के मस्तकमें

निय, स न अच्छइ मंडले ॥ २१ ॥ सिद्धाइगुण जोगेसु, तेत्तीसासायणासु य॥

घमरा पीट कर मारे ६ पावले गुंगे की मस्करी करे ७ अनाचार सेवन कर छिपावे ८ आप अनाचार सेवन कर दूसरे के सिर डाले ९ सभा में मिश्र भाषा बोले १० भोगी के भोग रूंधे ११ पालब्रह्म चारी नहीं पालब्रह्मचारी नाम धरावे १२ ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी नाम धरावे १३ सेठ का धन चोषे १४ पांच मिल बडा स्थापन किया वह पंचों को दुःख दे १५ विश्वास घात कर स्त्री पुरुषादि परस्पर घात करे १६ एक देश के राजा की घात चिंतवे १७ बहुत देश के राजा की घात चिंतवे १८ साधु को संयम से भ्रष्ट करे १९ तीर्थंकर की निन्दा करे २० तीर्थंकर के मार्ग की निन्दा करे २१ आचार्य उपाध्याय की निन्दा करे २२ आचार्य उपाध्याय का विनय वैयावच नहीं करे २३ बहु सूत्री नहीं बहुसूत्री नाम धरावे २४ तपस्वी नहीं तपस्वी नाम धरावे २५ वृद्ध रोगी तपस्वी का विनय वैयावच नहीं करे २६ चार तीर्थ में फूट डाले २७ ज्योतिष निमित्त वशीकरण प्रकाशे २८ अन होते देव मनुष्य तिर्यंच के काम भोग इच्छे २९ संयम पाल देवता हुवे उन की निन्दा करे. ३० चार जाति के देवता अपने पास नहीं आवे हो और कहे कि मरे पास देवता आते हैं इन ३० काम करने से महा मोहनीय कर्म का बंध होता है जिस से ७० क्रोडाक्रोड सागर संसार में भटकना पडे इन काम से जो साधु सदैव बचे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥१९॥ इकतीस सिद्ध के गुना ५ प्रकार ज्ञानावरणीय क्षय किया; ९ प्रकार दर्शनावरणीय कर्म क्षय किया, २ प्रकार वेदनीय कर्म क्षय

॥ जे भिक्खू जयइ निच्च से न अच्छइ मंडले ॥ २० ॥ इय एएसुठाणेसु जे

किया; २ प्रकार गोत्नीय कर्म क्षय किया; ४ प्रकार आयुष्य कर्म क्षय किया, २ प्रकार नाम कर्म क्षय किया, २ प्रकार गोत्र कर्म क्षय किया और ५ प्रकार अन्तराय कर्म क्षय किया यों ३१ सिद्ध भगवंत के गुणग्राम करे पचीस योगसंग्रह १ लगे दोष गुरु के आगे प्रकाशे, २ वे दोष गुरु किसी को कहे नहीं; ३ कष्ट पडे धर्म में दृढ रहे ४ इस लोक परलोक के सुख की इच्छा रहित तप करे; ५ आसेवना ज्ञान को और ग्रहणा आचार की दोनों शिक्षा धारन करे, ६ शरीर की विभूषा नहीं करे ७ अज्ञात कुल की गोचरी करे, ८ शुद्ध तपस्या करे, ९ परिषह उत्पन्न हुवे क्षमा भाव धारे १० सदा सरल भाव रखे ११ संयम सहित प्रवर्ते १२ सम्यक्त्व सहित प्रवर्ते १३ चित्त की समाधी सहित प्रवर्ते १४ पांच प्रकार के आचार सहित प्रवर्ते १५ विनय प्रवर्ते १६ तप में वीर्य फोरे १७ वैराग्य सहित प्रवर्ते १८ आत्मा के यत्न निधान समान करे, १९ पास थे के भाव सहित प्रवर्ते २० संवर की पुष्टी करे २१ आत्मा के अवगुन दूर करे २२ सब काम भोग से निवर्ते २३ प्रति दिन प्रत्याख्यान में वृद्धि करे २४ उपाधि अहंकार को त्याग कर कायोत्सर्ग करे २५ पांच प्रमाद छोडे २६ थोडा बोले और काले काल क्रिया करे २७ धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावे २८ शुभ योग सहित प्रवर्ते २९ मरणांतिक वेदना प्राप्त हुवे समभाव रखे ३० सर्व संग का परि त्याग करे अलोयना निन्दना कर निशल्य होवे और ३२ संलेखना कर संथारा करे इन ३२ योग संग्रह अंगीकार करे ॥ १ तेत्तीस अशातना-गुरु के आगे चले

२ गुरु के पीछे भड़कर चले, ३ गुरु के दोनों बाजु भड़कर चले, ४ गुरु के आगे खड़ा रहे, ५ गुरु के बराबर खड़ा रहे, ६ गुरु के पीछे अड़कर खड़ा रहे ७ गुरु के आगे बैठे, ८ गुरु के बराबर बैठे, ९ गुरु के पीछे भड़कर बैठे, १० गुरु शिष्य एकही पातरी ले जंगल गये हों गुरु पहिले चेला शुची करे, ११ गुरु शिष्य बाहिर जाकर आये गुरु पहिले इर्यावही प्रतिक्रमे, १२ स्थानक में आये पुरुषादि को गुरु के पहिले आप बोलावे १३ रात्री को गुरु पूछे की कौन २ सोते कौन जगते हैं ? आप जागता हुवा भी उत्तर नहीं दे, १४ शिष्य गोचरी कर आया हो और प्रथम दूसरे साधु के आगे आलोचना करे फिर गुरु आगे आलोचना करे, १५ तैसे ही वह आहार पहिले छोटे साधु को बतावे फिर गुरु को बतावे, १६ तैसे ही लाया हुवा पदार्थ पहिले छोटे साधु को आमन्त्रे फिर गुरु को आमन्त्रे, १७ वह लाया हुवा आहार आदि प्रथम छोटे साधु को दे फिर गुरु का दे, १८ गुरु शिष्य दोनों एक मंडल पर भोजन करने बैठे तब गुरु की आज्ञा विना सरस २ आहार आप भोगवे १९ गुरु का वचन सुना अनसुना करे, २० गुरु शिष्य को बोलावे तब आसन उपर बैठा ही उत्तर दे २२ गुरु को शिष्य बोलावे तब कहे क्या कहते हो ? २४ गुरु को रेकारे तूकारे आदि हलके वचन से बोलावे, २३ गुरु हित शिक्षा दे तब उन के सन्मुख तैसा ही प्रत्युत्तर दे २४ गुरु कहे वृद्ध रोगी तपस्वी नव दक्षित का विनय वैयावच्च करो तुमारे को लाभ होगा ! शिष्य कहे तुम वैयावच्च करोगे तो तुमारे को भी लाभ होगा २५ गुरु धर्म कथा कहते हुवे कुछ गाथादि भूलगये हों तो उन को सिद्ध करने कहे यह

भिक्खू जयइ सया ॥ खिप्प सो सव्व संसारा विप्पमुच्चइ पंडिओ ॥ २१ ॥ त्तिबेमि ॥ इति चरण विह अज्झयण सम्मत्त ॥ ३१ ॥ * * * *

ऐसे नहीं परंतु ऐसे है २६ गुरु धर्माचार करते या धर्म कथा करते कहे कि यह बात फिर याद कर कहूंगा ? तब शिष्य कहे क्या इतना भी याद नहीं है ॥ २७ गुरु की प्रशंसा सुनकर नाराज होवे, २८ यह गुरुजी के श्रावक और यह मेरे श्रावक यों फूट डाले, २९ गुरु धर्म कथा करते हो तब रस छेदन करे, अर्थात् कहां तक तामें जावोगे गोचरी का वक्त होगया है वगैरा ३० गुरु की कही हुइ धर्मकथा उस ही परिषदा में पीछे आप विस्तार से कहे गुरु का अपमान करे ३१ गुरु के बीछोने संथारेपरन को पांव लगावे, ३२ गुरु के बिछाने पर बैठ्या करे बैठे और ३३ गुरु से उच्च आसनादि कर मान अभिमानकर बैठा रहे इन तेत्तीस काम करने से गुरु की असातना लगती है उसे टाल कर सदैव प्रवर्ते वह साधु संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ २० ॥ इन ३१ बोलों में से आदरने योग्य बोल आदरे, जानने योग्य बोल जाने और छोड़ने लायक बोल छोड़े वह बुद्धिमान संसार समुद्र के पार होवे, यों सुधर्मास्वामीने जम्बू स्वामी से कहा ॥ इति आचारविधि नामका एकतीसवा अध्ययन समाप्त ॥३१॥

॥ पमाद स्थान नामकं द्वात्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

अच्चंत कालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ॥ त भासओ मे पडि पुण्ण चित्ता, सुणेह एगंत हियं हियत्थं ॥ १ ॥ नाणस्स सव्वस्स पगासणाए अण्णाण मोहस्स वि वज्जणाए ॥ रागस्स दोसस्सय संखएणं, एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥ २ ॥ तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा विवज्जणा बालजणस्स दूरा ॥ सज्झाय एगंत निसेवणाय, सुतत्थ संचिंतणया धिई य ॥ ३ ॥ आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं

एकतीसवे अध्ययन में चारित्र पालने का कथन कहा. जो अप्रमादी होता है वही शुद्ध चारित्र पाल सकता है इस लिये इस अध्ययनमें अप्रमादी का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि—अहो जम्बू ! यह अनादि संसार मिथ्यात्वादि मूल सहित दुःख का सागर इस मे मुक्त होने का उपाय जो सर्व प्रकार हित का कर्ता मास का अर्थ है वह तुझे कहता हूं सो दृढ चित्त से श्रवण कर ॥ १ ॥ जो अज्ञान और दर्शन मोह का नाश कर मतिज्ञानादि ज्ञान की प्राप्ति कर राग द्वेष का सर्वथा प्रकार से क्षय करता वह एकान्त निराबाध मोक्ष के शाश्वत सुख प्राप्त करेगा ॥ २ ॥ मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञानादि गुण करके सहित गुरु की सेवा करे और जो पासत्था तथा अज्ञानियों की संगत से दूर रहे और एकान्त स्थान में रह सूत्रार्थ स्वाध्याय तथा एकाग्र चित्त ध्यान करे ॥ ३ ॥ जो ज्ञान दर्शनचारित्र तप रूप मोक्ष

सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धि ॥ निकेय मिच्छज्ज विवेगजोग्ग, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥ ४ ॥ न वा लभेज्जा निउणं सहाय, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ॥ एगोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ ५ ॥ जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहा य ॥ एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाय तणं वयंति ॥ ६ ॥ रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयाति ॥

मार्ग में समाधि सहित विचरने की इच्छावाले साधु हैं उन को आहार की इच्छा होवे तो मर्यादा पूर्वक ४२ दोष रहित शुद्ध आहार को ग्रहण कर भोगवे जिस को शिष्य की इच्छा हो तो जिस की जीवादि नव तत्त्व में निर्मल बुद्धि हो ऐसे शिष्य की इच्छा करे; और उपाश्रय की इच्छा हो तो स्त्री पशु नपुंसक रहित उपाश्रय की वांच्छा करे ॥ ४ ॥ जो कदाचित अपने से गुणकर अधिक तथा समान उत्तम शिष्य की प्राप्ति नहीं भी होवे तो अकेलाही पापकारी अनुष्ठान का त्याग कर, काम भोग का अविलम्ब नहीं करता हुवा संयम में विचरे ॥ ५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवन्तने कहा है कि-जिस प्रकार अण्डे से पक्षी की उत्पत्ति होती है और पक्षी से अण्डे की उत्पत्ति होती है उस ही प्रकार मोह से तृष्णा होती है और तृष्णा से मोह होता है ॥ ६ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने कहा है कि—राग और द्वेष यह दोनों कर्म के बीज है, और कर्म से मोह की उत्पत्ति होती है, यह कर्म है वे ही जन्म मृत्यु के मूल है और

कम्मस्स जाइ मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई मरणं वयाति ॥ ७ ॥ दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ॥ तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइ ॥ ८ ॥ रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तु कामेण समूळजालं ॥ जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्वि ॥ ९ ॥ रसापगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं ॥ दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥ १० ॥ जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ

दुःख का मुख्य हेतु जन्म मृत्यु ही है ॥ ७ ॥ जिसने दुःख की घात की है उस के मोह नहीं होता है, और जिस के मोह नहीं होता है उस के धनादि की तृष्णा नहीं होती है और जिस के तृष्णा नहीं होती है उस के लोभ नहीं होता है और जिस के लोभ नहीं होता है उस के धनादि कुच्छ भी नहीं होता है ॥ ८ ॥ अहो जम्बू ! अब आगे मैं मोह वृक्ष के मूल रूप जो राग द्वेष का समूह है इन को उद्धार करने की इच्छावालेको उनका उद्धार करने का उपाय अनुक्रम से कहता हूं सो तुम चित्त श्रवण कर ॥ ९ ॥ जिस प्रकार फल फूल कर पुष्ट हुए वृक्ष को बहुत से पक्षियों आकर दुःख देते हैं तैसे ही जिसने दुग्धादि पांचों विगय का सेवन कर अपने शरीर को पुष्ट बनाया है वैसे उन्मत्तका काम-कर्दम स पुरुष आकर हानी करता है ऐसा जानकर काम के जय की इच्छावाले साधु दूध दही घृत तेल मिष्टान्न पदार्थ का सेवन नहीं करते हैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जिस वन में काष्ट बहुत होता है वहां आगे

नोनरमं उवेइ ॥ पणिंदियग्गी वि पगाम भोइणो, न बंभयारिस्स हियाय कस्सइ ॥ ११ ॥ विवित्त सेज्जासण जंतियाणं ओमासणाणं दमिइंदियाणं ॥ न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवो सदेहिं ॥ १२ ॥ जहा विरालं वसहस्स मूले, नमूसगाणं वसही पसत्था ॥ एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स खमो निवासो ॥ १३ ॥ न रूवलावण्ण विलास हासं न जंपियं इंगिय पेहियं वा ॥

प्रकार के वायु से भी अग्नि वृद्धि ही पाती जाती है परंतु मन्दी से बुझती नहीं है, वैसे ही इन्द्रियों के विषय रूप अग्नि सरस आहार के भोग से प्रज्वलित हो विकार वायु से वृद्धि पाती हैं इस लिये ब्रह्मचारी को सरस भोजन हित का करता नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार रोगियों का रोग औषधी और उपचार से नाश पाता है उस ही प्रकार राग रूपी शत्रु की पशु नपुंसक रहित उपाश्रय के सेवन से ५ इन्द्रियों का दमन करने से पराभव नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार जिस मकान में बिल्ली रहती हो उस मकान में चूहे का रहना कल्याणकारी नहीं होता है उस ही प्रकार जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में ब्रह्मचारी का रहना कल्याणकारी नहीं होता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी १ स्त्री का रूप लावण्यता २ देखने की चतुरता, ३ वस्त्र की शोभा, ४ भोग की लीला, ५ मुस्कराकर हंसना, ६ कामचार उपचार, ७ अंगोपांग मरोडने, ८ कटाक्ष दृष्टि देखने, इतने स्त्री के काम जाग्रत करने के जो कारण है

इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ॥ १४ ॥ अदंसणं चेव अपत्थणं च अचिंतणं चेव अकित्तणं च ॥ इत्थी जणस्सारियझाण जुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं ॥ १५ ॥ कामं तु देवीहि विभूसियाहिं नचाइया खोभइउं तिगुत्ता ॥ तहावि एगंत हियंति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ॥ १६ ॥ मोक्खाभि कंखस्सउ माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ॥ नेयारिसं दुत्तरमत्थिलोए,

उस का कदापि दृष्टी कर देखे नहीं किम्बहुना मन में चिन्तवन मात्र भी नहीं करे परंतु संयम तप से आत्मा भावता विचरे ॥ १४ ॥ जो सदैव ब्रह्मचर्य में रक्त व धर्म ध्यान में स्थिर आत्मा है व स्त्री का दर्शन मात्र भी नहीं करे स्त्री की इच्छा भी नहीं करे, कदाचित स्त्री का रूप देखने में आगया हो तो उस का विचार नहीं करते हैं और स्त्री के गुण के कीर्तन कथा भी नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ जो साधु तीन गुप्तकर गुप्तात्मा है उनको सर्व अलंकार से अलंकृत बनी अप्सरा भी अनेक छल करके भी छलित नहीं कर सकती है काम नहीं उपजा सकती है ऐसे वैराग्य साधु को भी स्त्री पशु पंडग रहित ही स्थानक में रहना श्रेय है ॥ १६ ॥ अज्ञानियों के मन को हरन करनेवाली स्त्री को जानकर चतुर्गति रूप संसार के परिभ्रमण से डर कर मोक्ष की इच्छा वाले धर्म में दृढात्मा बने ऐसे मनुष्य को स्त्री का त्याग

नोवस्स उवेइ ॥ पुर्विदियग्गी वि पगाम भोइणो, न बम्भयारिस्स हियाय कस्सइ ॥ ११ ॥ विवि० सेज्जासण ऋतियाण ओमा०ण ण दमिइन्दियाणं ॥ न रागसत्तू घरिसेइ चित्त, पराइओ वाहिरिवो सहेहिं ॥ १२ ॥ जहा विरालाः वसहस्स मूले, नमूसगाणं वसही पसत्था ॥ एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे, न बम्भयारिस्स खमो निवासो ॥ १३ ॥ न रूवलावण्ण विलास हासं न जंपियं इंगिय पेहियं वा ॥

समकर के वायु से अग्नि वृद्धि ही पाती जाती है परंतु सस्ती से शुभवी नहीं है, वैसे ही इन्द्रियों के विषय रूप अग्नि सरस आहार के भोग से प्रज्वलित हो विकार वायु से वृद्धि पाती हैं इस लिये ब्रह्मचारी को सरस भोजन हित का करता नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार रोगियों का रोग औषधी और उपचार से नाश पाता है उस ही प्रकार राग रूपी रोग भी पथ्य नपुंसक रहित उपाश्रय के सेवन से इन्द्रियों का दमन करने से पराभव नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार जिस मकान में बिल्ली रहती हो उस मकान में चूहे का रहना कल्याणकारी नहीं होता है उस ही प्रकार जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में ब्रह्मचारी का रहना कल्याणकारी नहीं होता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी १ स्त्री का रूप लावण्यता २ हंसने की चतुरता, ३ वस्त्र की शोभा, ४ भोग की लीला, ५ मुस्कराकर हंसना, ६ मनमनाव सम्भोपचार, ७ अंगोपांग मरोड़ने, ८ कटाक्ष दृष्टी देखने, इतने स्त्री के काम जागृत करने के जो कारण है

विवागे ॥२०॥ जे इन्द्रियाण विसयामणुन्ना, न तेसु भाव निसिरे कयाइ॥न यामणुण्णेसु मण न कुज्जा समाहि कामे समणे तवस्सी॥२१॥चक्खुस्स रूवं गहण वयति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु॥तं दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समोय जो तेसु सवीयरागो॥२२॥रूवस्स चक्खु गहणं वयति चक्खुस्स रूव गहण वयति॥रागस्स हेउं समणुन्न माहु, दोसस्स हेउ अमणुन्न माहु ॥ २३ ॥ रूवेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्व, अकालिय पावइ से विणास

॥ २० ॥ ऐसे जो समाधि के वांछक तपस्वी साधु हैं वे पांचों इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय मे कभी मन का राग भाव बनाते नहीं हैं और अमनोज्ञ विषय में द्वेष भाव बनाते नहीं है, यों राग द्वेष का त्याग कर वे सदैव मध्यस्थभावी रहते हैं ॥ २१ ॥ अब पांचो इन्द्रिय के विषय का कथन करते हुवे प्रथम चक्षइन्द्रिय का कथन करते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु के रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय करती है उस में से जो मनोज्ञ रूप होता है उस पर राग भाव के हेतु भूत है और जो अमनोज्ञ रूप है वह द्वेष भाव के हेतु भूत है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि रूप का ग्रहण चक्षुइन्द्रिय करती है और चक्षइन्द्रिय रूप को ग्रहन करने योग्य है उस मे मनोज्ञ रूप राग का कर्ता होता है और अमनोज्ञ रूप द्वेष का कर्ता होता है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दीपकपर आसक्त हो पतंगीया झपापात कर मृत्यु को प्राप्त होता है तैसे ही रूप

जहिहियिअो वाल्मगोहराआ ॥ १७ ॥ एए य सगे समइकमिचा, सुठत्तरा चेव भवति सेसा ॥ जहा महा सागर मुत्तरिचा, नई भवे अवि गगा समाणा ॥ १८ ॥ कामाणुगिद्धिप्प भव खु दुक्ख सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ॥ ज काइय माणसिय च किंचि, तरसतणं गच्छइ वीयरागो ॥ १९ ॥ जहा य किंपाग फला मणोरमा, रसेणवण्णणय भुज्जमाणा ॥ ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा

करना जितना दुष्कर होता है उतना दुष्कर किसी भी वस्तु का त्याग करना नहीं होता है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रों से पार स्वयंभूरमण समुद्र को तिरमये बाद गंगा जैसी नदी को तिरना कठिन नहीं होता है उस ही प्रकार स्त्री का त्याग किये बाद अप धनादि सामग्री छोडना कठिन नहीं होता है ॥ १८ ॥ इस जगत् में व्याधि आदि शारीरिक दुःख और चिन्ता वगैरा मानसिक दुःख हुवे है वे सब निश्चय निरतर काम भोग की इच्छा से ही उत्पन्न हुवे हैं इन दुःखों का अन्त वीतरागी ही कर सकते हैं ॥ १९ ॥ जिस प्रकार किंपाक नाम के वृक्ष के फल वर्ण रूप के मनोरम स्वाद कर के मिष्ट होते हैं परन्तु भोगवे बाद क्षीण मात्र में आयुष्य का नाश करते हैं मृत्यु प्राप्त करते हैं वैसे ही काम भोग भी देखने में मनोहर भोगवते अच्छे लगते हैं परन्तु उन के पाप के फल भोगवते हुवे बहुत दुःख दायक होते हैं

विवागे ॥२०॥ जे इंदियाण विसयामणुन्ना,न तेसु भावं निसिरे कयाइ॥न यामणुण्णेसु मण न कुज्जा समाहि कामे समणे तवस्सी॥२१॥चक्खुस्स रूवं गहण वयति,तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु॥त दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समोय जो तेसु सवीयरागो॥२२॥रूवस्स चक्खु गहणं वयन्ति चक्खुस्स रूव गहण वयति॥रागस्स हेउं समणुन्न माहु, दोसस्स हेउ अमणुन्न माहु ॥ २३ ॥ रूवेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्व, अकालिय पावइ से विणास

॥ २० ॥ ऐसे जो समाधि के वांछक तपस्वी साधु हैं वे पांचों इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय मे कभी मन का राग भय बनाते नहीं हैं और अमनोज्ञ विषय में द्वेष भय बनाते नहीं है यों राग द्वेष का त्याग कर वे सदैव मध्यस्थभावी रहते हैं ॥ २१ ॥ अथ पांचो इन्द्रिय के विषय का कथन करते हुवे प्रथम चक्षुइन्द्रिय का कथन करते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु के रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय करती है उस में से जो मनोज्ञ रूप होता है उस पर राग भाव के हेतु भूत है और जो अमनोज्ञ रूप है वह द्वेष भाव के हेतु भूत है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि रूप का ग्रहण चक्षुइन्द्रिय करती है और चक्षुइन्द्रिय रूप को ग्रहन करने योग्य है उस मे मनोज्ञ रूप राग का कर्ता होता है और अमनोज्ञ रूप द्वेष का कर्ता होता है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दीपकपर आसक्त हो पतंगीया झंपापात कर मृत्यु को प्राप्त होता है तैसे ही रूप

जहिंरियआ बालमणोहराआ ॥ १७ ॥ एए य सगे समइक्कमित्ता, सुउत्तरा चेव भवति सेसा ॥ जहा महा सागर मुत्तरित्ता नई भवे अवि गगा समाणा ॥ १८ ॥ कामाणुगिद्धिप्प भवं खु दुक्खं सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ॥ ज काइय माणसिय च किंचि तरसतणं गच्छइ वीयरागो ॥ १९ ॥ जहा य किंपाग फला मणोरमा, रसेणवण्णणय भुज्जमाणा ॥ ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा

करना जितना दुष्कर होता है उतना दुष्कर किसी भी वस्तु का त्याग करना नहीं होता है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रों से परा स्वयंभूरमण समुद्र को तिरगये बाद गंगा जैसी नदी को तिरना कठिन नहीं होता है उस ही प्रकार स्त्री का त्याग किये बाद अप धनादि सामग्री छोडना कठिन नहीं होता है ॥ १८ ॥ इस जगत् में व्याधि आदि शारीरिक दुःख और चिन्ता वगैरा मानसिक दुःख हुवे है वे सब निश्चय निरंतर काम भोग की इच्छा से ही उत्पन्न हुवे हैं इन दुःखों का अन्त वीतरागी ही कर सक्ते है॥१९॥जिस प्रकार किंपाक नाम के वृक्ष के फल वर्ण कर के मनोरम स्वाद कर के मिष्ट होते हैं परन्तु भोगवे बाद क्षीण पाक में आयुष्य का नाश करते हैं मृत्यु प्राप्त कराते हैं वैसे ही काम भोग भी देखने में मनोहर भोगवते अच्छे लगते हैं परन्तु उन के पाप के फल भोगवते हुवे बहुत दुःख दायक होते हैं

अप्पट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ २७ ॥ रूवाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहं सुहंसे संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ २८ ॥ रूवे अतित्ते य परिग्गहेय, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं॥ अतुट्ठि दोसेण दुहीपरस्स, लोभाविले आययइ अदत्तं ॥ २९ ॥ तण्हाभि भूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स, परिग्गहेय ॥

प्राणीयों को अनेक प्रकार के त्रास कर परव करता पीडित करता है ॥ २७ ॥ मनोज्ञ रूप का रागी बना मनोज्ञ रूप को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुरूप स्त्रीयादि पदार्थ रूप परिग्रह अपने लिये या परके लिये सम्यक प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जना करता है उन उपार्जन किये का चोर जारादि से संरक्षण करता है, यों करते २ दोनों में से एक (यह रूपवंत पदार्थ तथा उस का मालक) अवश्य नाश को प्राप्त होता है तो कहाँ उस सुरूप पदार्थ से उस को किस प्रकार सुख की प्राप्ति होवे ! अर्थात् मनोज्ञ रूप का रागी कदापि सुखी नहीं होता है !!! ॥ २८ ॥ मनोज्ञ रूप में असन्तोषी जीव रूपवंत परिग्रह में अत्यन्त लुब्ध बना हुवा किंचित भी संतोष प्राप्त नहीं करता हुवा फिर सुरूप के लोभ कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असन्तोष के दोष कर अन्यकी रूपवंत वस्तु को देखकर उस वस्तुके मालक की रजा विना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरी करके भी इच्छा तृप्त करता है ॥२९॥रूपवंत परिग्रहको प्राप्त करने में असंतोषपना जीव तृष्णाकर पराभव पाया हुवा रूपवंत वस्तु

रागउरे से जह वा पयंगे आलोय लोले समुवेइ मच्चुं ॥ २४ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि रूवं अवरज्झई से ॥ २५ ॥ एगंत रत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ २६ ॥ रूवाणुगा सागुगए य जीवे, चराचरे हिंसइणेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ

में लीन मूर्च्छा वाला जीव अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो कोइ अमनोज्ञ रूप को देख कर तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होता है वह जीव आप ही आप कर दुःख को प्राप्त होता है परन्तु वह अमनोज्ञ रूप किंचित किसी प्रकार अपराधी नहीं है ॥ ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के तावे में पड जीव स्वयं ही दुःखी होता है ॥२५॥ जो जीव एकान्त मनोज्ञ रूप में ही रक्त होवे हैं उनको अमनोज्ञ रूप सहचरी द्वेष युक्त होते हैं जिसकर वे आप ही दुःख को प्राप्त होते हैं ऐसा जानकर जो वीतराग होते हैं वे द्वेष रूप मैल कर अपना आत्मा को लिप्त नहीं करते हैं ॥ २६ ॥ जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ रूप प्राप्त करने को ही आत्मा का महाकार्य महालाभ समज रखा है वह मनोज्ञ रूप के राग रूप रोग कर पीडित बना मनोज्ञ रूप के पीछे ही चलता है अर्थात् उस मनोज्ञ रूप को प्राप्त करने (या प्राप्त मनोज्ञ रूप का रक्षण करने को) अनेक प्रकार के त्रस स्थावर

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ३३ ॥ रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं ॥ ३४ ॥ १ ॥ सोयस्स सद्दं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु, तं दोस हेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥ ३५ ॥ सद्दस्स सोयं गहणं वयंति सोयस्स सद्दं गहणं

द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है, विशेष में द्वेष से कर्म बन्ध होता है सो मलग फिर व कर्म उस जीव को इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत दुःख दाता होते हैं ॥ ३३ ॥ और जो ज्ञानी जन मनोज्ञ रूप में विरक्त भाव धारन करते हैं वे शोक रहित होते हैं उक्त प्रकार के दुःख भोगवने वाले नहीं होते हैं, वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र आलिप्त रहता है तैसे वे भी निर्लेप रहते हैं इति चक्षु इन्द्रिय का कथन ॥ ३४ ॥ १ ॥ अब श्रोतेन्द्रिय (कान) का कहते हैं—श्री तीर्थंकर भगवंतने कहा है कि श्रोतेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने योग्य है उस में जो शब्द मनोज्ञ होते हैं वे राग भाव के उत्पादक होते हैं और जो अमनोज्ञ होते हैं वे द्वेष भाव के उत्पादक होते हैं इन मनोज्ञ व अमनोज्ञ शब्दों में जो राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है वह वीतराग जानना ॥ ३५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं—कान शब्द को ग्रहण करनवाले हैं, कान को शब्द ग्रहण करने योग्य हैं उस में जो मनोहर

मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ३० ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ३१ ॥ रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ३२ ॥

की चोरी करने वाला होता है उसे कोई पूछे कि तैने अमुक वस्तु ग्रहण की ' तब उस को कपट युक्त झूठा जवाब देते भी उस पाप के फल भुक्तने से वह जीव मुक्त नहीं होता है, पाप फल तो अवश्य भुक्तने ही पडते हैं ॥ ३० ॥ रूप गृद्धी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है तैसे ही पहिले भी पश्चाताप करना पडता है, उस का मन सदैव चिन्ता गृस्त बना रहता है कि—अमुक मुझे पूछगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा ' रखे मेरी झूठ या चोरी प्रगट होजावे, इस प्रकार रूपवंत स्त्री आदि वस्तु के चोरने वाले दुःख ही दुःख भोगवते हैं, उन का कोइ सखा (सहायक) भी नहीं होता है इस प्रकार उस के दुःख का अन्त आना बहुत कठिन होता है ॥ ३१ ॥ उक्त प्रकार जो जीवों रूप में आसक्त हो रहे हैं उन को सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार हो सकती है क्या ? अर्थात् वे किसी प्रकार सुखी नहीं होते हैं, उक्त उस मनोज्ञ स्वरूप स्त्री आदि के भोग में फसे अनेक प्रकार के क्लेश भोगवते हैं उस के भोगवने के लिये अनेक कष्ट उपार्जन करते हैं ॥ ३२ ॥ और इस प्रकार ही खराब रूप में

पेगरूवे ॥ विवेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ४० ॥
सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहंसुह से
संभोगकालेय अतित्तलाभ ॥ ४१ ॥ सद्दे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न
उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ४२ ॥

कोर आत्मा का महा भय महालाभ समान रसा है वह मनोज्ञ शब्द के राग कर पीडित हुआ मनोज्ञ शब्द के पीछे २ पडता है अर्थात् मनोज्ञ शब्द को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों को अनेक प्रकार से पीडित करता है या घात करता है ॥ ४० ॥ मनोज्ञ शब्द का रागी बना हुआ मनोज्ञ शब्द को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुशब्दवाली वीणा आदि परिग्रह को अपने लिये या अन्य के लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है, उस महा कष्ट से उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से रक्षण करता है, यों करते २ भी दोनों में से [उस शब्द संजोगी पदार्थ का या प्राप्त करनेवाले का] एक का तो अवश्य ही विनाश होता है, तो कहो वह शब्द संजोगी पदार्थ उस को किस प्रकार सुखदाई बन सके अर्थात् मनोज्ञ शब्द का रागी कदापि सुखी नहीं होता है॥४१॥ मनोज्ञ शब्द में असंतोषी जीव मनोज्ञ शब्दों में लुब्ध बना फिर भी संतोष को प्राप्त नहीं होता हुवा सुशब्द के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुशब्द वाली वस्तु को देख कर उस वस्तु के मालक की रजा विना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरी

सयंति ॥ रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्सहेउ अमणुन्नमाहु ॥ ३६ ॥ सद्देसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालिय पावइ स विणास ॥ रागाउरे हरिणमिगे घ मुद्धे सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चु ॥ ३७ ॥ जे यावि दोस समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्ख ॥ददंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि सद्द अवरज्झई से ॥३८ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि सद्दे अतालिसे से कुणई पओस ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाल, न लिप्पइ तेण मुणी विरागो ॥ ३९ ॥ सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ

शब्द हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ शब्द हैं वे द्वेष के हेतु हैं ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार शब्द का अनुरागी वन का मृग पशु अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है वैसे ही जो शब्द में तीव्र मूर्च्छावाला होता है वह अकाल में मृत्यु पाता है ॥ ३७ ॥ जो कोई अमनोज्ञ शब्द को सुनकर तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह आप आपही पाप कर दुःख को प्राप्त होता है वह अमनोज्ञ शब्द इस लिये किसी प्रकार अपराधी नहीं है ऐसे द्वेष रूप शत्रु के ताप में पड़े जीव स्वयं दुःखी होते हैं ॥ ३८ ॥ जो जीव एकान्त मनोज्ञ शब्द में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ शब्द पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं जिस कर वे आपही दुःख को प्राप्त होते हैं ऐसा जानकर जो वीतराम होते हैं वे द्वेष रूप मैल कर लिप्त नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ शब्द प्राप्त करने

णेगरूवे ॥ चिंचेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ४० ॥ सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहसुहं से संभोगकालेय अतित्तलाभ ॥ ४१ ॥ सद्दे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ॥ अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्त ॥ ४२ ॥

कोइ आत्मा का महा अथ महालाभ समय रखा है यह मनोज्ञ शब्द के राग कर पीडित हुआ मनोज्ञ शब्द के पीछे २ पड़ता है अर्थात् मनोज्ञ शब्द को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों को अनेक प्रकार से पीडित करता है या घात करता है ॥ ४० ॥ मनोज्ञ शब्द का रागी बना हुआ मनोज्ञ शब्द को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुशब्दवाली वीणा आदि परिग्रह को अपने लिये या अन्य के लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है, उस महा कष्ट से उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से संरक्षण करता है, यों करते २ भी दोनों में से [उस शब्द संयोगी पदार्थ का या प्राप्त करनेवाले का] एक का तो अवश्य ही विनाश होता है, तो कहो यह शब्द संयोगी पदार्थ उस को किस प्रकार सुखदाई हो सके अर्थात् मनोज्ञ शब्द का रागी कदापि सुखी नहीं होता है ॥ ४१ ॥ मनोज्ञ शब्द में असंतोषी जीव मनोज्ञ शब्दों में लुब्ध बना किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता हुवा सुशब्द के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुशब्द वाली वस्तु को देख कर उस वस्तु के मालक की रजा बिना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरा

तेण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥४३॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ४४ ॥ सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव

करके भी इच्छा तृप्त करता है ॥ ४२ ॥ मनोज्ञ शब्द रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुवा और तृष्णा कर पराभव पाया हुवा सुशब्द वाली वस्तु का चोरी करने वाला होता है, उसे कोई पूछे कि तुमने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब उस को कपट युक्त झूठा जवाब देने से भी उस पाप के फल भुगतने से उस का छूट का नहीं होता है, अर्थात् पाप के फल नक्कर ही भुक्तने पडते हैं ॥ ४३ ॥ शब्दानुरागी जीव एक प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है तैसे पहिले भी पश्चाताप करता है अर्थात् उस का मन सदैव चिन्ता ग्रस्त ही बना रहता है, अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा रखे मेरी झूठ या चोरी प्रगट हो जावे इस प्रकार शब्द संयोगी पदार्थ के घोर दुःख भोगवते हैं उन का कोई सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होजाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार जो जीवों शब्द में आसक्त होते हैं उन को सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार है क्या ! अर्थात किसी भी उपाय कर वे सुखी नहीं होते हैं उक्त उस मनोज्ञ सुशब्द के पदार्थों में फसकर

भोगे वि किलेस दुक्ख, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥ ४५ ॥ एमेव सद्दम्मिगओ पओस, उवेइ दुक्खोह परपराओ ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म, ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥ ४६ ॥ सद्दे विरत्ता मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि सतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥ ४७ ॥ २ ॥ घाणस्स गध गहण वयति, त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु

अनेक प्रकार का क्लेश भोगवते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाने पडते हैं ॥ ४५ ॥ और इस प्रकार ही स्वरात शब्द से द्वेष को प्राप्त हुवा मन भी दुःख के समुह को प्राप्त होता है, विशेष द्वेष से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस जीव को इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ४६ ॥ और जो ज्ञानी जनों मनोज्ञ शब्द में विरक्त भाव धारण करते हैं वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं उक्त दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है तैसे ही अलिप्त रहते हैं इति श्रोत्रेन्द्रिय कथन ॥ ४७ ॥ अब घ्राणेन्द्रिय का कथन करते हैं श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि घ्राणेन्द्रिय गंध को ग्रहण करने की योग्यता रखती है उस में जो सुरभिगंध होती है वह राग भाव की उत्पादक होती है और दुरभिगंध होती है वह द्वेषभाव की उत्पादक होती

स वियरागो ॥ ४८ ॥ गधस्स घाणं गहणं वयंति घाणस्स गंधं गहणं वयंति ॥ राग-स्सहेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ४९ ॥ गंधेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे ओसहि गंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमंते ॥ ५० ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि गंधं अवरुज्झई से ॥ ५१ ॥ एगंत रत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणई

रे. इस मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में जो रागद्वेष को प्राप्त नहीं होता है वह वीतराग कहा जाता है ॥ ४८ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि गंध को घ्राण ग्रहण करती है और नाक का गंध ग्रहण करने योग्य होती है जो मनोज्ञ गंध है वह रागभाव की उत्पादक होती है और अमनोज्ञ गंध है वह द्वेष भाव को उत्पादक होती है ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार औषध जड़ी या पुष्पादि के गन्ध से लुब्ध बना सर्प बिल में से बाहिर निकल कर दुःख को प्राप्त होता है वैसे गंध गृद्ध जीव अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ जो कोई अमनोज्ञ गंध प्राप्त होने से तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं व आप ही अपने को दुःखी बनाते हैं परन्तु यह गंध उनकी अपराधिनी नहीं है उस द्वेष रूप दुर्दम्य शत्रु के सामने में पड़े हुवे जीवों स्वयं दुःखी होते हैं ॥ ५१ ॥ जो जीवों एकान्त मनोज्ञ गंध में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ गंध में सहज ही द्वेषको

पओसे ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी वीरागो ॥५२॥ गन्धाणु गासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाल, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ५३ ॥ गंधाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसंनिओगे॥ वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ५४ ॥ गंधे अतित्ते य

प्राप्त होते हैं जिस से वे अज्ञानी दुःख को प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर द्वेष रूप मैल कर वीतराग लिप्त नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने में ही आत्मा का महा अर्थ महा लाभ समझ रखा है वह मनोज्ञ गंध के राग रूप रोग कर पीडित हुवा मनोज्ञ गंध के पीछे २ ही चलता है अर्थात् मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों की घात करता है तथा पीडित करता है ॥ ५३ ॥ मनोज्ञ गंध का रागी बना जीव मनोज्ञ गंध को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके मनोज्ञ गंधवाले कस्तूरी आदि परिग्रह को अपने लिये या पर के लिये गंध के काम में आने के लिये उपार्जन करता है उस उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से स्वरक्षण करता है यों करते २ भी दोनों में से (उस गंधवाले पदार्थ का या उस के मालक का) एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिये वह गन्धलुब्धात्मा किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं होता है ॥ ५४ ॥ मनोज्ञ गंध में असंतोषी जीव

आतिसो दुहिओ अणिस्सो ॥ ५७ ॥ गधाणुरत्तस्स नरस्स एव, कत्तोसुह होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्ख, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ५८ ॥ एमेव गधम्मि गओ पओस, उवेइ दुक्खोह परपराओ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइकम्मं, ज से पुणोइ दुह विपागे ॥५९॥ गधे विरत्तो मणुओविसोगो एएण दुक्खोह परपरेण॥नलिप्पए भवमज्झेवि सतो जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥६०॥३॥ जीहाए

है उन का कोइ सहायक नहीं होता है अथात् उस के दु ख का अन्त आना बहुत मुशकिल होता है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार गंध रक्त जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां स ? अर्थात् वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं उलट उस मनोज्ञ गंध के पदार्थों में फस कर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ५८ ॥ और इस ही प्रकार खराब गध में द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दु ख के समुद्र को प्राप्त होता है, विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है, वे कर्म उस जीव को इस लोक में पर लोक में दोनों लोक में बहुत दु खकारी होते हैं ॥ ५९ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जनों मनोज्ञ गध में विरक्त भाव धारन करते है वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं उक्त दु ख के भोक्ता नहीं होते हैं, वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता हैं तैसे गधकर कर्मों के लेप से अलिप्त रहते हैं इति घ्राणेन्द्रिय कथन ॥३॥ ६० ॥ अब जिव्हा इन्द्रिय का कहते

परिग्गहेय सत्तोवसत्तो न उवेइतुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ५५॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गंधे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ५६ ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो गंधे

मनोज्ञ गंध में आसक्त बना हुवा किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता है सुरभिगंध के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुगंधी वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ ५५ ॥ मनोज्ञ गंध रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुवा जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुवा सगंधवाली वस्तु की चोरी करने वाला होता है उस कोई पूछे कि तने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब उसे कपट युक्त झूठा जबाब देने से भी उस पाप के फल भुक्तने उस से छूटका नहीं होता है अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तना पड़ता है ॥ ५६ ॥ गंधानुरागी जीव वक्त झूठ बोले बाद भी पाप फल भुक्तता पश्चाताप करता है तैसे पहिले भी पश्चाताप करता है, याने उस का मन सदैव चिन्ताग्रस्त रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जबाब दूंगा ! रखे मेरी यह चोरी प्रगट होजावे ! इस प्रकार गंध संयोगी पदार्थ के वास्ते दुःख ही दुःख भोगते

अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी वियरागो ॥ ६५ ॥ रस गुणामाणुगएय जीवे चराचर हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ॥ ६६ ॥ रसाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ॥ वए विओगेय कहंसुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ६७ ॥ रसे अतित्तेय परिग्गहेय सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण

॥ ६४ ॥ जो जीवों एकान्त मनोज्ञ रस में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ रस में सहज ही द्वेष को प्राप्त होवे हैं जिस से वे ही अज्ञानी जीवों दुःखके भोक्ता होते हैं ऐसा राग द्वेष रूप मैलकर वीतरागी लिप्त नहीं होवे हैं ॥ ६५ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ रस ही आत्मा का मद्दा अर्थ समझ रखा है, वह मनोज्ञ रस के राग रूप रोग कर पीड़ित हुआ मनोज्ञ रस के पीछे २ ही चलता है, अर्थात् मनोज्ञ रस को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणीयों की घात करता है तथा पीड़ित करता है ॥ ६६ ॥ मनोज्ञ रस का रागी बना जीव मनोज्ञ रस को ग्रहण करने की मूर्च्छा कर, मनोज्ञ रस वाले मिष्टान्नादि परिग्रह को अपने लिये यापर के लिये भोगने के काम में आने के लिये उपार्जन करता है फिर उपार्जन किये पदार्थों का चोरादिसे रक्षण करता है यों करते २ दोनों में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिए वह रस लुब्ध जीव किंचि भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ६७ ॥ मनोज्ञ रस में असंतोषी जीवों मनोज्ञ रस में लुब्ध बने हुवे किंचित भी संतोष को प्राप्त नहीं होवे हैं, स्वादि रस

१८ गहणं वयंति तं रागहेउ तु मणुन्नमाहु॥ त दोसहेउ अमणुन्नमाहु समो य जो तेसु स वीयरागो ॥६१॥ रसस्स जीहं गहणं वयंति, जीहाए रसं गहणं वयंति ॥ रागस्स हेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ६२ ॥ रसे सु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे बडिस विभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिस भोगगिद्धे ॥ ६३ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि रसं अवरज्झई से ॥ ६४ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि रसे,

है श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि जिव्हा इन्द्रिय रस को ग्रहण करने की योग्यता रखती है उस में जो मनोज्ञ रस होता है वह रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ रस होता है वह द्वेषोत्पादक होता है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों प्रकार के रस पर जो रागद्वेष नहीं करता है वही वीतराग कहा जाता है॥६१॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि-रस को जिव्हा ग्रहण करती है और जिव्हा का रस ग्रहण करने योग्य है उस में मनोज्ञ रस रागोत्पादक और अमनोज्ञ रस द्वेषोत्पादक होता है ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार मांस भक्षण के रस में लुब्ध बना मच्छ लोह के कांटे में अपना कंठ छेदन करा अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है. ऐसे ही रस गृद्धी जीवों भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ६३॥ जो कोई अमनोज्ञ रस की चाह से तीव्रद्वेष भाव को प्राप्त होवे व आप ही अपने को दुःखी बना लेवे हैं परंतु वह रस उस का अपराधी नहीं है वैसे द्वेष रूप दुर्दम्य पशु के वाथे में पडे हुवे जीवों स्वय ही दुःखी होवे हैं.

निच्चपईं जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्म, जं से पुणो होइ दुह विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलासं ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फासं गहणं वयाति तं रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागा।

कर सकते हैं, उत्कट उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवत हैं उस की प्राप्ति के लिये अनक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समुह को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्तवी पक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी मन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे ही वे अलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

दुहीपरस्स, लोभाविले आययई अदत्त ॥ ६८ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुस वड्ढइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ६९ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंत ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ७० ॥ रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं

के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य का भोजनादि को देखकर उस ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥६८॥ मनोज्ञ रस रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ रसमय वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उस कोइ पूछे-उनने अमुक वस्तु ग्रहण की ' तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटका नहीं पाता है अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तना पड़ता है ॥६९॥ रसानुरागी जीवों उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पाप फल प्राप्त हुये पश्चाताप करते हैं याने उन का मन सदैव चिन्ताग्रस्त बना रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जबाब दूंगा ? रख मेरी झूठ या चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार रस पदार्थ के चोरनेवाले दुःख ही दुःख भोगवते हैं उन का कोइ सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार रस लुब्ध जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां से ! वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं

निव्वचई जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओस, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्म,ज से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि सतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फास गहण वयति त रागहेउं तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागा।

कर सकते हैं, उपट उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समुद्र को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्ती वक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे ही वे अलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्त्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्त्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

दुहीपरस्स, लोभाविले आययई अदत्त ॥ ६८ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहे य ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ६९ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ७० ॥ रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्खं

के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असतोष के दोष कर अन्य का भोजनादि को देखकर उस ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥६८॥ मनोज्ञ रस रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ रसमय वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उस कोइ पूछे तैने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटना नहीं पाता है अर्थात् पाप के फल अवश्य ही भुक्तना पडता है ॥६९॥ रसानुरागी जीवों उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पाप फल प्राप्त हुवे पश्चाताप करते हैं यानें उन का मन सदैव चिन्ताग्रस्त बना रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा ? रखे मेरा झूठ या चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार रस पदार्थ के चोरनेवाले दुःख ही दुःख भोगवते हैं, उन का कोइ सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार रस मुग्ध जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहांसे ? वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं

निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलासं ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फासं गहणं वयाति तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ॥ तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

कर सकते हैं, उत्कट उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवत हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समुह को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्तती वक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल भलिप्त रहता है तैसे ही व आलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

॥ ७४ ॥ फासस्स काय गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयंति ॥ रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउ अमणुन्नमाहु ॥ ७५ ॥ फासेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे सीयजलावसण्णे गाहग्गिहीए महिसे विवन्ने ॥ ७६ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतु, न किंचि फासं अवरुज्झइ से ॥ ७७ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले न लिप्पई तेण

हैं, वे ही वीतरागी कहे जाते हैं ॥ ७४ ॥ श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि-स्पर्श को काया ग्रहण करती है उस में से मनोज्ञ स्पर्श रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ स्पर्श द्वेषोत्पादक होता है ॥ ७५ ॥ जिस प्रकार पाडा भैंसा शीतल स्पर्श की लुब्धता कर पानी में ही पडा रहता है, उस का ग्रसण पानी में रहनेवाले ग्राह नामक जलचर जीवों करने से वह अकाल में मृत्यु प्राप्त होता है वैसे ही स्पर्श गृद्ध जीवों भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ जो कोई अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे आपही आत्मा को दुःखी बना लेते हैं परंतु वह स्पर्श उन का अपराधी नहीं होता है ऐसे द्वेष रूप दुष्ट भाव के दावे में पडे जीवों स्वयं ही दुःखी होते हैं ॥ ७७ ॥ जो जीव एकान्त मनोज्ञ स्पर्श में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ स्पर्श पर सहज ही द्वेष करते हैं जिस से वे अज्ञानी जीवों ...

मुणी विरागो ॥ ७८ ॥ फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ॥ ७९ ॥ ॥ फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ॥ वए विओगे य कह सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ८० ॥ फासे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तो वसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ८१ ॥ तण्हाभिभूयस्स

ऐसा ज्ञान वीत रागी जन द्वेष रूप मैल में लिप्त नहीं होते हैं ॥ ७८ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ स्पर्श को ही आत्मा का महा अर्थ समझ रखा है वे मनोज्ञ स्पर्श के राग रूप रोग कर पीडित हुवे मनोज्ञ स्पर्श के पीछे २ ही चलते हैं, मनोज्ञ स्पर्श को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की घात करते हैं ॥ ७९ ॥ मनोज्ञ स्पर्श का रागी बना जीव मनोज्ञ स्पर्श को ग्रहण करने की मूर्छा कर मनोज्ञ स्पर्शवाले स्त्री आदि परिग्रह का अपने या परके भोगवने के लिये उपार्जन करता है, फिर उपार्जन किये परिग्रह का चोरादि से रक्षण करता है, यों करते २ दोनो में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिये वह स्पर्श लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ८० ॥ मनोज्ञ स्पर्श में असंतोषी जीवों मनोज्ञ स्पर्श में लुब्ध बने हुवे किंचित् भी संतोषित नहीं होते हैं, मनोज्ञ स्पर्श के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन हो रहा है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य के स्त्री शयनासनादि देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है, तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ ८१ ॥ मनोज्ञ स्पर्श का परिग्रह प्राप्त करने में

अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ८२ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओय पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ८३ ॥ फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ८४ ॥ एमेव फासम्मि गओ

असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर परवश पाया हुआ वस्त्र भूषणादि स्पर्शने योग्य वस्तु की चोरी करनेवाला होता है उस को कोई पूछे कि तैने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटता नहीं है, अर्थात् पाप के फल अवश्य ही भुक्तने पडते हैं ॥ ८२ ॥ स्पर्श के रागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है वैसे ही पहिले भी पश्चाताप करता है यों उस का मन सदैव चिन्तातुर रहता है, अमुक मुझ पूछेगा तो मैं क्या कहुंगा ? ऐसे मेरी झूठ चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार स्पर्श के पदार्थ की चोरी करने वाला दुःख ही दुःख भुक्तता है, उस का कोई सहायक नहीं होता है जिस से उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होजाता है ॥ ८३ ॥ इस प्रकार स्पर्श के गृद्धि जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां से ? अर्थात वे किसी भी उपाय कर सुखी नहीं हो सकते हैं उलटे उन मनोज्ञ स्पर्श मय पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भुक्तते हैं, उस की प्राप्ती के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ८४ ॥ और इस ही प्रकार खराब

पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ, पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म, जं से पुणो होइ दुह विवागे ॥ ८५ ॥ फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पइ भवमज्झे विसंतो जलेण वा पोक्खरिणी पलास ॥ ८६ ॥ ५ ॥ मणस्स भाव गहण वयंति, त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥ ८७ ॥ भावस्स मणं गहण वयंति, मणस्स भाव

स्पर्श पर द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समोह को प्राप्त होता है विक्षिप्त द्वेषी बना हुआ कर्मों का बन्धन करता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत ही दुःखकारी होते हैं ॥ ८५ ॥ ऐसा जान कर ज्ञानी होते हैं वे मनोज्ञ स्पर्श से विरक्त भाव धारन करते हैं वे सब प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त कहे दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे वह भी अलिप्त रहते हैं ॥ इति स्पर्शेन्द्रिय कथन ॥ ८६ ॥ ५ ॥ अब नो इन्द्रिय-मन का कथन करते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि—मन को भाव ग्रहण करने योग्य है, उस में जो मनोज्ञ भाव हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ भाव हैं वे द्वेष के हेतू हैं, इन दोनों प्रकार के भावों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ ८७ ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि—भाव को मन

गाय थयंति ॥ रागस्सहेउ समणुन्नमाहु दोसस्सहेउ अमणुन्नमाहु ॥ ८८ ॥ भावेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिएव्वनागे ॥८९॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तंसिक्खणे सेउ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू न किंचि भावं अवरुज्झई से ॥ ९० ॥ एगंतरत्तो रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले नलिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ९१ ॥ भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ

ग्रहण करता है और मन को भाव ग्रहण करने योग्य होते हैं, इस में मनोज्ञ भाव रागोत्पादक होते हैं और अमनोज्ञ भाव द्वेषोत्पादक होते हैं॥८८॥ जिस प्रकार हाथी पकडने वाले हाथी जितना खड्डा खोद उस पर पतले बांस की चीपट बिछाकर कागज की हथनी खडी करते हैं उस में लुब्ध बना हाथी खड्डे में गिर अकाल मृत्यु पाता है वैसे ही विषय गृद्धी मनुष्यों भी अकाल में मृत्यु पाते हैं ॥ ८९ ॥ जो कोई अमनोज्ञ भावों का सम्बन्ध होते तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह आप ही अपना दुःखी बना लेता है परंतु वह भाव उस का अपराधी नहीं है ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के वश में पडे जीवों स्वयं ही दुःखी होते हैं ॥ ९० ॥ जीवों एकान्त मनोज्ञ भावों में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ भावों पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं जिसे वे अज्ञानी जीवों दुःख के भोक्ता बनते हैं ऐसा जान वीतरागी जीव द्वेष रूप पाप कर लिप्त नहीं होते हैं ॥९१॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ भावों की ही आशा धर्य सम्यक् समझा है वे मनोज्ञ

पेगरूवे ॥ चिरोहि ते परितावेइबाले, पीलिइ अत्तट्ठगुरु किलेट्ठे ॥ १२ ॥ भावाणुवाएण परिग्गहेण,उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहं सुह से, सभागकाले य अतित्त लाभे ॥ १३ ॥ भावेअतित्त य परिग्गहे य सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ १४ ॥ तण्हाभि भूयस्स अदत्तहारिणो, भावेअतित्तस्स परिग्गहे य ॥ मायामुस वड्ढइ

भाव का राग कर पीडित हुवे मनोज्ञ भावों केपीछे ही फिरते हैं मनोज्ञ भावोंको प्राप्त करने मन ॠ त्रस स्थावर की घात करते हैं पीडा देते हैं ॥ १२ ॥ मनोज्ञ भावों का रागी बना जीव मनोज्ञ भावों को ग्रहण करने की मूर्च्छा कर मनोज्ञ भाव के उत्पादक नृत्यादि परिग्रह का अपने या परके भोग के लिये उपार्जन करता है उपार्जन किये परिग्रह का रक्षण करता है यों करते २ दोनों में से एक का नाश जरूर ही होता है इस लिये वह भाव लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ १३ ॥ मनोज्ञ भावों में असंतोषी जीवों मनोज्ञ भावों में लुब्ध बन हुए किंचित् भी संतोषी नहीं बनते हैं मनोज्ञ भावों के अनुराग कर जिन का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की नृत्यादि सामग्री देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करते हैं तो भी उन की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ १४ ॥ मनोज्ञ भावों का परिग्रह प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ नृत्यादि सामग्री भावों के योग्य वस्तु की चोरी करनेवाला होता है उसे कोई पूछे-देने अमुक वस्तु ग्रहण की ' तब वह

लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न वि मुच्चई से ॥ ९५ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ९६ ॥ भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्खं निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ९७ ॥ एमेव भावम्मिगओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं

कष्ट युक्त झूठा भवाब देता भी उस के कटु फल भुक्तने से छूटता नहीं है पाप के फल जरूर ही भुक्तने पड़ते हैं ॥ ९५ ॥ भावानुरागी जीवों उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करते हैं, जैसे ही पहिले भी पश्चाताप करते हैं वे सदैव चिन्तातुर रहते हैं अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या कहूंगा ? ऐसे मरी सब चोरी प्रगट होजावे यों भावों के पदार्थ की चोरी करनेवाला दुःख ही दुःख भुक्तता है उस का कोई सहायक नहीं होता है उस के दुःख का अन्त आना मुश्किल हो जाता है ॥ ९६ ॥ इस प्रकार भावों के गृद्धी जीवों को सुख की प्राप्ति कहां से ही कहां से ! वे किसी भी उपाय कर सुखी नहीं होते हैं उलटे इन मनोज्ञ भावों मय पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भुक्तते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ९७ ॥ और इस ही प्रकार खराब भाव पर द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बना हुवा कर्मों का बन्ध करता है उस के फल इस लोक

विवागो ॥ ९८ ॥ भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ॥ न लिप्पइ भवमज्झे वि संतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥ ९९ ॥ ५ ॥ एविंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउ मणुयस्स रागिणो ॥ ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरागस्स करेंति किंचि ॥१००॥ न काम भोगा समयं उवेंति न यावि भोगा विगइं उवेंति॥जे तप्पओसी य परिग्गही य,सो तेसु मोहा विगइउवेइ॥१०१॥

परलोक में मुझने बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ९८ ॥ ऐसा भान जो ज्ञानी होते हैं वे मनोज्ञ भावों से विरक्त भाव धारन करते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे वे भी अलिप्त रहते हैं वे सब प्रकार चिन्ता रहित होते हैं और किसी भी प्रकार के दुःख को प्राप्त नहीं होते हैं इति भाव कथन ॥९९॥ अब समुच्चय संक्षेप करते हैं—इस प्रकार—१ शब्द २ रूप ३ गंध ४ रस, ५ स्पर्श और ६ भाव इन में राग द्वेष में प्रवर्ते उस को दुःख का हेतू होता है परंतु उक्त छ ही वस्तु में जो वीतराग रहता है और राग द्वेष नहीं करता है वह किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं पाता है ॥१००॥ काम भोग को भोगवता हुवा जीव रागद्वेष से विरक्त कदापि नहीं होता है तैसे ही उसे संतोष प्राप्त भी नहीं होता है, कुछ काम भोग विषय विकार को उत्पन्न नहीं करते हैं परतु पांचों इन्द्रिय और मन करके ही काम भोग की उत्पत्ति होती है और जो जीव रागद्वेष सहित होते हैं वे अमनोज्ञ काम भोग पर द्वेष करते है और मनोज्ञ काम भोग पर राग करते हैं [illegible]

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुञ्छं अरइं रइं च ॥ हासं भयं सोग पुमित्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे ॥ १०२ ॥ आवज्जइ एवमणेग रूवे एवंविहे कामगुणेसु सत्तो ॥ अन्ने य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥ १०३ ॥ कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणुतावेण तवप्पभावं ॥ एवं वियारे अमियप्पयारे,

क्रम से प्राप्त होते हैं ॥ १०१ ॥ मोहनीय कर्म से १४ बोल की प्राप्ति होती है उन के नाम-१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ दुगच्छा, ६ अरति, ७ रति, ८ हास्य ९ भय, १० शोक, ११ पुरुषवेदोदय १२ स्त्री वेदोदय, १३ नपुंसक वेदोदय और १४ अनेक प्रकार के हर्ष विषाद ॥ १०२ ॥ जो काम भोग में आसक्त होते हैं वे रागद्वेष के विकार से पराभव पाये हुवे पूर्वोक्त बहुत प्रकार के दुःख प्राप्त करते हैं विषय के भोग से क्रोधादि की उत्पत्ति होती है विषय से ही दुर्गति में जीव जाता है, विषय से ही दयापात्र (परवश) जीव देखाता है दीनता (गरीबाइ) भी विषय से ही होती है विषय अनेक प्रकार के स्वरूपों में लज्जावंत होता है सब को अप्रतीतकारी होता है उसे दुख हरेक का द्वेष भाव उत्पन्न होता है इत्यादि दोष विषय वांछा से उत्पन्न होते हैं ॥ १०३ ॥ जो साधु शिष्यादि सहाय को भी तो इच्छा करता है परंतु शुद्धाचार पालने की इच्छा नहीं करता है वह साधु चारित्र अंगीकार करके तपश्चर्या करके भी खेदित दुःखी हो पश्चाताप करता है ऐसा ही तप करनेकी तो इच्छा नहीं करें परंतु कदापि करे तो भी तपके महाप्रभावस जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उसकी वांछा नहीं करता हुवा इस लोकमें

आवज्जई इंदिय चोरवस्से ॥ १०४ ॥ तओ से जायंति पओयणाइ, निमज्जिउ मोहमहण्णवम्मि ॥ सुहेसिणो दुक्ख विमोयणट्ठा तप्पच्चय उज्जमए य रागी ॥ १०५ ॥ विरज्जमाणस्स य इंदियत्था सद्दाइया तावइयप्पगारा ॥

महिमा पूजा तथा लब्धि आदि और परलोक में चक्रवर्ति आदि के पद की वांछा करे इस प्रकार जो इन्द्रियों रूपी चोरों के वशमें पडा है वह प्रमाण रहित ससार मे पडता है अर्थात् ससारमें बहुत परिभ्रमण करता है. ॥१०४॥ जो वशमें पडा है वह इन्द्रियों के विषय सेवन के लिये हिंसादि पापोंका आचरन पाप सेवन से मोह रूपी महा समुद्र में अपनी आत्मा को डूबाता है संसार के सुखों का गवेषी बना कुबुद्धि दुख निकन्द करने दुःखोत्पादक रागद्वेष हिंसादि निमित में उद्यमी बनता है। ॥ १०५ ॥ और जो विषय विरक्त बने हैं वे इन्द्रियों को २३ विषय और२४०विकारादि भेद* हैं उन में से अच्छे पर राग और खोटेपर

* १ श्रोतेन्द्रिय की ३ विषय १ जीव शब्द २अजीव शब्द, और ३ मिश्र शब्द, इस के १२ विकार. उक्त तीनों शब्द को शुभ अशुभ से दुगने करे ६ हुवे और रागद्वेष से दुगुन किये १२ होते हैं, २ चक्षु इन्द्रिय की ५ विषय १ कृष्ण, २नीला, ३रक्त ४ पीत, और ५ शुक्ल इस के ६०विकार, उक्त सचित उक्त अचित उक्त मिश्रसे तीन गुने किये१५ हुवे शुभ अशुभ से दो गुन किये ३० हुवे, रागद्वेष से दुगुने किये ६० हुवे ३ घ्राणेन्द्रिय की २ विषय-सुगन्ध,और दुर्गन्ध, इस के १२ विकार-उक्त दो सचित्त दो अचित्त २ मिश्र से तीगुने किये ६ हुवे, रागद्वेष से दुगुने किये १२ हुवे ४रसेन्द्रिय

न तस्ससव्वे वि मणुन्नय वा निव्वत्तयति अमणुन्नय वा॥१०६॥ एव ससकप्पविकप्प णासु संजायइ समय मुवट्ठियस्स ॥ अत्थे असकप्पयओ तओसे पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥ १०७ ॥ से वीयरागो कयसव्वकिच्चो, खवेइ णाणावरणं खणेण॥ तहेव जं दंसणमावरेइ, ज चंतराय पकरेइ कम्म ॥ १०८ ॥ सव्व तओ जाणइ

द्वेषपना उपार्जन नहीं करते हैं ॥ १०६ ॥ इस प्रकार जो ज्ञान बुद्धि करके अपने अध्यवसाय के विचारों में जो सावधान है वे सराग अध्यवसाय को छोडकर अच्छे अध्यवसाय में प्रवर्तते हैं वे ही समता भाव उपार्जन करते हैं वे समता भाव करके कामभोग की तृष्णा को कमी करते हैं और तत्त्व ज्ञान के विचार में मशगुल (लीन) रहते हैं ॥ १०७ ॥ इस प्रकार जो तृष्णा का क्षय करते हैं वे ही वीतराग होते है वे बीसों क्षीण भाव में मोह के क्षय हुवे बाद पांच प्रकार ज्ञानावरणीय, ९ प्रकार दर्शनावरणीय और पांच प्रकार अन्तराय इन तीनों कर्मों को युगवत् (साथही) क्षय करते हैं ॥ १०८ ॥ इस प्रकार मोहनीय यावत् अन्तराय इन चारों घन घातिक कर्म के आवरण रहित

की ५ विषय तिक्त कटु कषाय खट्टा और मधुर, इस के ६० विकार चक्षु इन्द्रिय के जैसे जानना और ५ स्पर्शेन्द्रिय की ८ विषय कर्कश कोमल शीत, उष्ण, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, इस के ९६ विकार-उक्त ८ सचित्त ८अचित्त ८मिश्र से तीन गुने करे २४ हुवे, इसे शुभ अशुभ से दुगने करे ४८ हुवे और इसे रागद्वेष से दुगने किये ९६ होते हैं यों पांचों इन्द्रिय के मिलकर सब २३ विषय और २४० विकार होते हैं

पासए य, अमोहणे होइ निरन्तराए ॥ अणासवे झाणसमाहिजुत्तो, आउक्खए मोक्ख मुवेइ सुद्धे ॥ १०९ ॥ सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को जं बाहई सययं जतुमेयं॥ दीहामय विप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चतसुही कयत्थो ॥११०॥ अणाइकालप्प भवस्स एसो सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो ॥ वियाहिओ ज समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चतसुही भवति ॥ १११ ॥ त्तिबेमि ॥ इति पमायठाणज्झयणं सम्मत्त ॥ ३२ ॥

हुवा आत्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर सर्वज्ञ-सब जाननेवाला सर्व दर्शी-सब देखनेवाला होता है फिर शुक्ल ध्यान कर बाकी रहे चारों कर्मों आयुष्य कर्म के साथ ही क्षय कर आठों कर्म रहित निर्मल बनकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥ १०९ ॥ यों अत्यन्त में निरन्तर दुःख दाता बहुत दीर्घ काल की स्थितिवाले कर्म रूप रोग से मोक्षगामी जीव मुक्त होते हैं वे मोक्ष प्राप्त कर सर्व जगत् में प्रशंसा पात्र होते हैं तैसे ही उनोंने सब आत्महित के कार्य सिद्ध किये हैं, वे सिद्ध अनन्त सुख के भोक्ता होते हैं ॥ ११० ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने अनादि काल के दुःख से मुक्त करने का न्याय मार्ग यहां कहा है इस मार्ग को प्राप्त करके बहुत से जीवों गये काल में मोक्ष गये हैं, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र से जा रहे हैं और आगामिक काल में जावेंगे अनंत सुख की प्राप्ति करते हैं, यों सुधर्मास्वामीने जम्बू स्वामी से कहा इति प्रमाद स्थान नामक बत्तीसवा अध्ययन समाप्त हुवा ॥ ३२ ॥

॥ कर्मप्रकृति नामकं त्रयस्त्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहाकमं ॥ जेहिं बद्धो अयं जीवो संसारे परियट्टई ॥ १ ॥ नाणस्सा वरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ॥ वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥ २ ॥ नामकम्मं च गोत्तं च, अंतरायं तहेव य ॥ एव मेयाइं

बत्तीसवे अध्ययन में प्रमाद का कथन कहा सो प्रमादी जीव कर्म बन्ध करता है इस लिये तेत्तीसवे अध्ययन में कर्म का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जम्बू ! जिन कर्मों के बन्धन में बन्धाया हुवा जीव इस संसार में परिभ्रमण करता है उन कर्मों का कथन मैं अनुक्रम से करता हूं उसे तू ध्यान दिलश्रवण कर ॥ १ ॥ कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं उन के नाम—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय, ५ आयुष्य ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय १ जिस प्रकार सूर्य के तेज का बद्दल रुकते हैं उस प्रकार आत्मा के ज्ञान गुण को ज्ञानावरणीय कर्मने रुके हैं २ जिस प्रकार आंख पर पट्टा पड़ा पदार्थ को देखने नहीं देता है उस आत्मा के दर्शन गुण दर्शनावरणीय कर्मने रुके हैं ३ मधु [सेहत] का भरा हुवा खड्ग जिव्हा पर फिराने से किंचित् मधुर रस दे कर महा दुःख दाता होता है वैसा वेदनीय कर्म आत्मिक सुख का घातिक है ४ मदिरा पीने से जीव बेभान होता है वैसा मोहनीयकर्म सम्यक्त्व गुण रोकता है ५ जिस प्रकार चोर का

कम्माई, अट्ठेव उ समासओ ॥ २ ॥ नाणावरणं पंचविहं, सुयं आभिणिबोहियं ॥
ओहिनाणं च तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥ निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा
पयलपयला य ॥ तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥ चक्खुम चक्खू

लोहे में डाला हुवा पांव मुद्दत पहिले छूटता नहीं है तैसे आयुष्य कर्म से प्राप्त गति में जीव रहता है
६ जिस प्रकार चित्रकार मनमाने चित्र करता है तैसा नाम कर्मसे जीव नाम पाता है ७ जैसे कुंभार मनमाने
बरतन बनाता है तैसे गोत्र कर्मसे जीव गति आदि पाता है, और ८ जैसा धन देना राजाका भंडारी रोकता है
तैसे अन्तराय कर्मने आत्म शक्ति गुण रोके है ॥ २-३ ॥ अब आठों कर्म की उत्तर प्रकृति कहते हैं
प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृति—१ मति ज्ञानावरणीय, २ श्रुति ज्ञानावरणीय ३ अवधि ज्ञाना
वरणीय, ४ मनःपर्यव ज्ञानावरणीय और ५ केवल ज्ञानावरणीय (इन का बंध ६ प्रकार से होता है—
१ ज्ञानी की निन्दा करे, २ ज्ञानी का उपकार छिपावे, ३ ज्ञानी की असातना करे, ४ ज्ञान की अन्तराय
देवे, ५ ज्ञानी पर द्वेष करे और ६ ज्ञानी के साथ झूठे झगडे करे) ॥ ४ ॥ दूसरा दर्शनावरणीय कर्म की
९ प्रकृति—१ निद्रा-सुख से आवे सुख से जाग्रत होवे, २ निद्रानिद्रा दुःख से आवे, दुःख से जागे,
३ प्रचला—बैठे २ खडे २ आवे, ४ प्रचला प्रचला रास्ते चलते आवे और ५ थीणधी निद्रा—इस में आधे
वासुदेव का बल आवे, ६ चक्षु दर्शनावरणीय—आंखों के पडल आवे, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय—चारों

अ हिस्स, दसण कम्रल य आवरण ॥ एव तु नवविगप्प, नायव्व दसणावरण॥६॥ वेयणिय पि य दुविहं, सायमसाय च आहिय॥सायस्स बहु भेया एवमेव असायस्स वि ॥ ७ ॥ मोहणिज्जं पि दुविह, दसण चरणे तहा ॥ दसणे तिविह वुत्त, चरणे दुविह भव ॥ ८ ॥ सम्मत्त चेव मिच्छत्त, सम्मामिच्छत्त मेव य ॥ एयाओ तिन्निपयडीओ,

इन्द्रियोंव मनके पदसभा ।,८ अवधि दर्शनावरणीय अवधि दर्शनसे देख नहीं सके और ९ केवल दर्शना वरणीय केवल दर्शन से देखनेका पटल (यह कर्म ६ प्रकार बन्धे १ दर्शनी की निन्दा करे, २ दर्शनीका उपकार छिपावे, ३ दर्शनी की असातना करे, ४ दर्शनी की अन्तराय दे ५ दर्शनी पर द्वेष करे, और ६ दर्शनी के साथ झूठे झगडे करे) ॥९॥ तीसरे वेदनीय कर्म के दो प्रकार १ साता वेदनीय, और २ असातता वेदनीय इस में साता वेदनी कर्म के ८ भेद—१ इष्ट शब्द २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गंध ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ मन का सुख ७ वचन का सुख और ८ काया का सुख इन के उलट अनिष्ट शब्दादि आठ भेद असाता वेदनीय कर्म के भी जानना (यह कर्म प्राण भूत जीव सत्व को दुःख झूरना पीटना शोक परिताप नहीं उपजावे साता देवे तो साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है और दुःख झूरना वगैरा उपजावे तथा दुःख देवे तो असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है) ॥ ७ ॥ चौथे मोहनीय कर्म के दो भेद कहे हैं—१ दर्शन मोहनीय जिस के तीन भेद और २ चारित्र मोहनीय जिस के दो भेद ॥ ८ ॥ अब दर्शन मोहनीय के ३ भेद कहते हैं—१ सम्यक्त्व मोहनीय सो मिथ्यात्व के अबद्ध पुद्गलों रूप होवे तब सम्यक्त्व

मोहणिज्जस्स दंसणे ॥ ९ ॥ चरित्त मोहणं कम्मं, दुविहं तं वियाहियं ॥ कसाय मोहणिज्जं तु, अकसाय तहेवय ॥ १० ॥ सोलसविह भेएण, कम्म तु कसाय जे ॥

प्राप्त होवे उसे जिस वक्त मिथ्या प्रकृति ग्रहण करे, तब सम्यक्त्व में अतिचार लगे तथा उपशमिकादि भाव में जिस वक्त मुरझावे उस वक्त सम्यक्त्व मोहनी कहना २ मिथ्यात्व मोहनीय-जिस आत्मा के सम्यक्त्व का अभाव है मिथ्यात्व के अशुद्ध दलिये से आत्मा अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि और तत्व में अतत्त्व बुद्धि कर उस में मुरझावे वह मिथ्यात्व मोहनी ३ मिश्र मोहनीय-शुद्धाशुद्ध दलिक रूप जिस का जैन धर्म पर राग भी नहीं तैसा द्वेष भी नहीं वैसे ही अन्य धर्म पर राग भी नहीं तैसे द्वेष भी नहीं ऐसा स्वभाव जब हो वह मिश्र मोहनी दृष्टान्त—काले बद्दल में ढके सूर्य समान मिथ्यात्व मोहनीय, कुछ काले कुछ श्वेत बद्दल में सूर्य ढके समान मिश्र मोहनीय और श्वेत बद्दल में ढके सूर्य समान सम्यक्त्व मोहनीय ॥ ९ ॥ चारित्र मोहनीय के दो भेद-१ कषाय मोहनीय और २ नो कषाय मोहनीय ॥ १० ॥ कषाय मोहनीय के १६ भेद-१ अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थर की तराड जैसा, २ मान पत्थर के स्थंभ जैसा, ३ माया-बांस की जड जैसी, ४ लोभ किरमजी रेशम के रंग जैसा, ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध जमीन की तराड, ६ मान हड्डी का स्थंभ, ७ माया मेंढा का शृंग, ८ लोभ खंजर का रंग, ९ प्रत्याख्यानी क्रोध रेती की लकीर, १० मान

अउव्विह नवविह्वा कम्म नो कसाय ज ॥ ११ ॥ नेरइय तिरिक्खाउं, मणुस्साउं
तहेव य ॥ देवाउय चउत्थतु आउं कम्म चउव्विह ॥ १२ ॥ नामकम्मं दुविह,
सुहअसुह च आहियं ॥ सुभस्स उ बहुभेया, एमेव असुभस्सवि ॥१३॥ गोय कम्मं

काष्ट स्तम्भ, ११ माया-चलते बैल का मूत्र, १२ लोभ-कीचड़ का लेप १३ संज्वल का क्रोध पानी की लकीर, १४ मान तृण का स्तम्भ, १५ माया बांस की छुली, और १६ लोभ-पतंग का रंग दूसरी कषाय की उत्पादक नो कषाय के ९ भेद—१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक, ६ दुगंछा, ७ स्त्री वेद, ८ पुरुष वेद और ९ नपुंसक वेद सब मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति हुई ॥ ११ ॥ आयु कर्म की चार प्रकृति—१ नरक २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव इस में नरकायु चार प्रकार बंधे—महा आरंभ, महा परिग्रह, पंचेन्द्रिय की घात, मांस का आहार, २ तिर्यंचायु चार प्रकार बंधे—१ माया, २ निबड माया झूठ बोले ४ खोटे तोल माप रखे ३ मनुष्यायु चार प्रकार बन्धे—१ स्वभाव से भद्रिक २ स्वभाव से विनीत ३ दयावंत, ४ मत्सर रहित ४ देवता का आयुष्य चार प्रकार बंधे १ सराग संयम, २ संयमा संयम ३ बाल तपस्वी और ४ अकाम निर्जरा ॥ १२ ॥ छठा नाम कर्म के दो भेद—१ शुभ नाम कर्म और २ अशुभ नाम कर्म, शुभ नाम कर्म चार प्रकार बन्धे—काया का सरल भाषा का सरल भाव का सरल और विसंवाद योग रहित अशुभ नाम कर्म इन चारों विपरीत प्रकार से बन्धे—

दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं ॥ उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं ॥ १४ ॥ दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ॥ पंचविह मंतरायं, समासेण वियाहियं ॥ १५ ॥ एयाओ मूल पयडीओ उत्तराओ य आहिया ॥ पएसग्गं खेत्त काले य,

शुभकर्म १४ प्रकार भोगवे १ - इष्टकारी शब्द रूप, गंध, रस स्पर्श ६ ९ इष्टकारी, गति, स्थिति, यश लावण्यता, १० इष्टस्वर, ११ कतस्वर १२ प्रियस्वर, १३ मनोज्ञ स्वर और १४ इष्ट उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषात्कार पराक्रम और २ अशुभ नाम कर्म उक्त १४ विपरीत प्रकार से भोगवे ॥ १३ ॥ सातवा गोत्र कर्म के दो भेद १ ऊंच गोत्र और २ नीच गोत्र नीच गोत्र आठ प्रकार बन्धे—१ जाति का, २ कुल का, ३ बल का, ४ रूप का ५ तप का, ६ श्रुत का, ७ लाभ का और ८ ऐश्वर्यता का; इन आठों का मद करे तो नीच गोत्र कर्म का बन्ध होवे और इन आठों का मद नहीं करे तो ऊंच गोत्र का बन्ध होवे नीच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु हीन पावे और ऊंच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु उत्तम पावे ॥ १४ ॥ आठवा अन्तराय कर्म की ५ प्रकृति—१ दान अंतराय, २ लाभ अंतराय, ३ भोग अंतराय, ४ उपभोग अंतराय और ५ बल वीर्य अंतराय इन पांच काम की अंतराय देने से अंतराय कर्म का बन्ध होवे हैं यह पांचों ही की प्राप्ति होने पाव प्रकार भोगवे ॥ १५ ॥ यह आठों ही कर्म की मूल आठ प्रकृति और उत्तर ९३ प्रकृति कही अब आगे अहो शिष्य ! १ द्रव्य से जीव कितने कर्म पुद्गलों का बन्ध करता है २ क्षेत्र से कितनी दिशा के पुद्गलों ग्रहण करता है, ३ काल से-कर्मों की कितने काल की स्थिती है

भाव च उत्तर सुण ॥ १६ ॥ सव्वेसिं चेव कम्माण, पएसग्ग मणतग ॥ गठिय सत्ताईय अंतो, सिद्धाण आहिय ॥ १७ ॥ सव्व जीवाण कम्मतु सगहे छद्दिसागय॥ सव्वसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥ १८ ॥ उदही सरिस नामाण, तीसई कोडाकोडीओ ॥ उक्कोसिया ठिई होइ, अतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १९ ॥ आवरणि ज्जाण दुण्हपि वेयणिज्जे तहेव य ॥ अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया

और ४ भाव से कर्म पुद्गल किस प्रकार आते हैं इन का स्वरूप कहता हूं सो दत्तचित्त से श्रवन कर ॥१६॥ श्री तीर्थंकर भगवत ने कहा है कि—१ द्रव्य से आठों ही कर्म के सब पुद्गलों अनतानंत हैं जिस का एकही समय में बन्ध करता है उसे अनत प्रदेशिक स्कन्ध करते हैं यों हरेक कर्म के अनंतानत स्कन्ध होते हैं वे स्कन्ध अभव्य जीव से अनत गुने अधिक और सिद्ध भगवंत से अनंत वे भाग जितने होते हैं ॥ १७ ॥ क्षेत्र से—सब जीवों कर्म बन्धन करते जो जो पुद्गलो ग्रहण करते हैं वे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची नीची यों छ ही दिशा के पुद्गलों ग्रहण करते हैं, जिन २ पुद्गलों को कर्म बन्ध पने ग्रहण किये जाते हैं व सब पुद्गलों सब जीवों के अपने २ आत्म प्रदेश के साथ बन्धाते हैं, ॥ १८ ॥ अब काल से—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शना वरणीय, ३ वेदनीय, और ४ अन्तराय इन चारों कर्मों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट समुद्र के पानी के समान बहुत असंख्यात

॥ २० ॥ उदही सरिस नामाण, सत्तरिं कोडाकोडीओ ॥ मोहणिज्जस्स उक्कोसा,
अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ २१ ॥ तेत्तीस सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ॥
ठिईउ आउकम्मस्स, अतोमुहुत्तं जहन्निया ॥ २२ ॥ उदही सरिस नामाण,
वीसई कोडाकोडीओ ॥ नाम गोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहन्निया ॥ २३ ॥
सिद्धाणणंत भागो य, अणुभागा हवंतिओ ॥ सव्वेसु वि पएसग्ग, सव्वजीवे

कोग कोटी वर्ष का एक सागरोपम, ऐसे तीस कोटाकोटी (क्रोड को क्रोड गुन करे इतने) सागरोपम की स्थिति कही है (साता वेदनीय की १५ क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है) ५ मोहनीय कर्म जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सीत्तर [७०] कोटाकोटी सागरोपम की, आयुष्य कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की नाम कर्म की और गोत्र कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बीस कोटाकोट सागरोपम की स्थिति जानना ॥ २१ २३ ॥ अब भाव से—१ द्रव्य से जिस वक्त पूछो उस ही वक्त मुमुक्षय जीव आश्रिय सब सिद्ध भगवंत के अनंतवे भाग में जितने अनंत होते हैं उतने अनंते कर्म के पुद्गलों के स्कन्ध एक समय में जीव भोगवते हैं २ क्षेत्र से जीवों से भोगवने के सब पुद्गलों के स्कन्ध की जो कदाचित् गिनती करें तो सब जगत् के जीवों से भी अनत गुने अधिक होवें, काल-वर्तमान काल में अनुभाग से भोगवने योग्य अनत प्रदेशी स्कन्ध अनंत भोगवता है उस एकेक स्कन्ध में अनंतानंत परमाणु हैं इसलिये वे परमाणुओं सब जीव से अनंतगुने अधिक हैं इतने अनंत परमाणुओं

मावं च उत्तर सुण ॥ १६ ॥ सव्वासिं चेव कम्माण, पएसग्ग मणतग ॥ गठिय सत्ताईय अतो सिद्धाण आहिय ॥ १७ ॥ सव्व जीवाण कम्मतु संगहे छद्दिसागय॥ सव्वेसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥ १८ ॥ उदही सरिस नामाण, तीसई कोडाकोडीओ ॥ उक्कोसिया ठिई होइ, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १९ ॥ आवरणि ज्जाण दुण्हपि, वेयणिज्जे तहेव य ॥ अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया

और ४ भाव से कर्म पुद्गल किस प्रकार आते हैं इन का स्वरूप कहता हूं सो दत्तचित्त से श्रवन कर ॥१६॥ श्री तीर्थंकर भगवंत ने कहा है कि—१ द्रव्य से आठों ही कर्म के सब पुद्गलों अनंतानंत हैं. जिस को एकही समय में बन्ध करता है उसे अनंत प्रदेशिक स्कन्ध कहते हैं यों हरेक कर्म के अनंतानंत स्कन्ध होते हैं वे स्कन्ध अभव्य जीव से अनंत गुने अधिक और सिद्ध भगवंत से अनंत वे भाग जितने होते हैं ॥ १७ ॥ क्षेत्र से—सब जीवों कर्म बन्धन करते जो जो पुद्गलो ग्रहण करते हैं वे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची नीची यों छ ही दिशा के पुद्गलों ग्रहण करते हैं, जिन २ पुद्गलों को कर्म बन्ध पने ग्रहण किये जाते हैं व रूप पुद्गलों सब जीवों के अपने २ आत्म प्रदेश के साथ बन्धाते हैं. ॥ १८ ॥ अब काल से—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शना वरणीय, ३ वेदनीय, और ४ अन्तराय इन चारों कर्मों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट समुद्र के पानी के समान बहुत असंख्यात

॥ २० ॥ उदही सरिस नामाण सत्तरिं कोडाकोडीओ ॥ मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ २१ ॥ तेत्तीस सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ॥ ठिईउ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ २२ ॥ उदही सरिस नामाण, वीसई कोडाकोडीओ ॥ नाम गोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहन्निया ॥ २३ ॥ सिद्धाणणंत भागो य, अणुभागा हवंतिओ ॥ सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवे

कोटा कोटी वर्ष का एक सागरोपम, ऐसे तीस कोटाकोटी (क्रोड को क्रोड गुने करे इतने) सागरोपम की स्थिति कही है (साता वेदनीय की १५ क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है) ५ मोहनीय कर्म जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सीत्तर [७०] कोटाकोटी सागरोपम की, आयुष्य कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की नाम कर्म की और गोत्र कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट वीस कोटाकोट सागरोपम की स्थिति जानना ॥ २१ २३ ॥ अब भाव से—१ द्रव्य से जिस वक्त पूछो उस ही वक्त मुमुक्षु जीव आश्रिय सब सिद्ध भगवंत के अनंतवे भाग में जितने अनंत होते हैं उतने अनंते कर्म के पुद्गलों के स्कन्ध एक समय में जीव भोगवते हैं २ क्षेत्र से जीवों से भोगवने के सब पुद्गलों के स्कन्ध की जो कदाचित् गिनती करें तो सब जगत् के जीवों से भी अनंत गुने अधिक होवें, काल-वर्तमान काल में अनुभाग से भोगवने योग्य अनंत प्रदेशी स्कन्ध अनंत भोगवता है उस एकेक स्कन्ध में अनंतानंत परमाणु हैं इसलिये वे परमाणुओं सब जीव से अनतगुने अधिक हैं इतने अनंत परमाणुओं

अंजण नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥ ४ ॥ नीलासोग सकासा, चासपीच्छ समप्पभा ॥ वेरुलिय निद्धसकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥ ५ ॥ अयसी पुप्फ सकासा कोइलच्छद सन्निभा ॥ पारेवय गीवनिभा, काओलेसा उ वण्णओ ॥ ६ ॥ हिंगुलधाउ संकासा तरुणाइच्च सन्निभा ॥ सुगतुण्डपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥ ७ ॥ हरियाल भेवसंकासा हलिद्दाभेय समप्पभा ॥ सणासण कुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥ ८ ॥ ससंककुंदसकासा, खीर पूरसमप्पभा ॥ रययहार सकासा सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥ ९ ॥ जह कडुग तुंबगरसो, निंयरसो कडुग

वाले होते हैं तैसा कृष्ण लेश्या का काला रंग जानना ॥ ४ ॥ जैसा हरा अशोक वृक्ष, तोते की पांख वैडूर्य रत्न का हरा रंग होता है तैसा नीललेश्या का रंग जानना ॥ ५ ॥ जैसा अलसी का फूल कोकिलाकी पांख कबुतर की ग्रीवा, इनका जैसा आसमानी रंग होता है तैसा कापुतलेश्या का रंग जानना ॥ ६ ॥ जैसा लाल हिंगलु, उदय पाता सुर्य, तोते का मुख, दीपे की शिखा का जैसा लाल रंग होता है तैसा तेजू लेश्या का रंग जानना ॥ ७ ॥ जैसा पीला हरिताल का टुकडा सन का फूल का पीला रंग होता है तैसा पीला पद्मलेश्या का रंग जानना ॥ ८ ॥ जैसाश्वेत शंख अंकरत्न मचकुन्द का फूल, दूध की धार, रूपे का हार का श्वेत रंग होता है तैसा शुक्लेश्या का श्वेत रंग जानना ॥ ९ ॥ तीसरा रस द्वार जैसा कडुआ तुम्बा, कडुआ निंब, रोहणी वनस्पति का जैसा कडुआ

रोहिणिरसो वा ॥ एत्तो वि अणतगुणो, रसोय किण्हाए नायव्वो ॥ १० ॥ जह
निगडुयरस य रसो तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ॥ एत्तोवि अणन्तगुणो, रसो उ
नीलाए नायव्वो ॥ ११ ॥ जह तरुण अम्बगरसो, तुवरकविट्ठस्सवावि जारिसओ ॥
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो ॥ १२ ॥ जह परिणियम्बगरसो,
पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ ॥ एत्तोवि अ णन्तगुणो रसो उ तेऊए नायव्वो ॥ १३॥
वरवारुणी एव रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ ॥ महु मेरयस्स व रसो,
एत्तो पम्हाए परएण ॥ १४॥ खज्जूर मुद्दिय रसो, खीररसो खण्ड सक्कर रसो वा ॥

स्वाद होता है इस से अनंत गुन कडुवा कृष्णलेश्या का स्वाद मानना ॥ १० ॥ जैसा तीखा
त्रिकटु (सूंठ पीपल मिरच) के रस का स्वाद हस्ती पीपल का स्वाद जैसा तीखा होता है इस से
अनंत गुना तीखा नीललेश्या का स्वाद मानना ॥ ११ ॥ जैसा कच्चे आम (केरी) का खट्टा स्वाद
तुम्बर वनस्पति का खट्टा स्वाद कच्चे कबीठ का खट्टा स्वाद होता है इस से भी अनंत गुना खट्टा
कापोतलेश्या का स्वाद मानना ॥ १२ ॥ जैसा पका हुआ आम्र, पका कबीठ का खटामिठा स्वाद
होता है वैसा तेजुलेश्या का स्वाद मानना ॥ १३ ॥ जैसा उत्तम वारुणी का रस, जैसा आसवका
स्वाद होता है इस से भी अनंतगुना मिठा पद्मलेश्या का स्वाद मानना ॥ १४ ॥ जैसा खरजु का स्वाद

एसोवि अणंत गुणो रसो उ सुक्काण नायव्वो ॥ १५ ॥ जह गोमडस्स गंधो, सुणग मडस्स व जहा आहमडस्स ॥ एत्तो वि अणंत गुणो लेसाण अप्पसत्थाण ॥ १६ ॥ जह सुरहि कुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाण ॥ एत्तो वि अणंत गुणो पसत्थ लेसाण तिण्ह पि ॥ १७ ॥ जह करगयस्स फासो गोजिब्भाए य सागपत्ताण ॥ एत्तो वि अणंत गुणो लेसाण अप्पसत्थाण ॥ १८ ॥ जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सरीस कुसुमाण ॥ एत्तो वि अणंत गुणो, पसत्थ लेसाण तिण्ह पि

द्राक्ष का, खीर का स्वाद शक्कर का स्वाद जैसा मधुर मिष्ठ होता है वैसा शुक्ल लेश्या का स्वाद जानना ॥ १५ ॥ अब चौथा गंध द्वार कहते हैं—जैसा गाके मडे (कलेवर) कुत्ते के मडे की सर्प के मडे की जैसी दुर्गंध होती है ऐसी कृष्ण नील कपोत इन तीन अप्रशस्त लेश्या की दुर्गंध जानना ॥ १६ ॥ जैसा केवडे आदि फूलों की सुगंध जैसा केसर कस्तूरी आदि पीसते हुवे सुगंध होती उस से भी अनंत गुनी सुगंधी तेजु पद्म शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्याकी जानना ॥ १७ ॥ अब पांचवा स्पर्श द्वार कहते हैं—जैसा करवत का स्पर्श जैसा गौ जिव्हा का स्पर्श, जैसा शाग वृक्ष के पत्तों का स्पर्श खरदरा होता है इस से भी अनंत गुना कर्कश स्पर्श कृष्ण नील कापोत इन तीनों अप्रशस्त लेश्याका जानना ॥ १८ ॥ जैसा बूर वनस्पति का स्पर्श जैसा मक्खन का स्पर्श, जैसा सरसव के फूल का स्पर्श मृदु होता है उस से अनंत

॥ १९ ॥ तिविहोव नवविहोवा, सत्तावीसइविहे कसीओ वा ॥ दुसओ तेयालो या,
लेसाणं होइ परिणामो ॥ २० ॥ पचासवप्पवत्तो तिहिं अगुत्तो छसु अविरओ य ॥
तिव्वारम परिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो ॥ २१ ॥ निद्धंधस परिणामो, निस्ससो
अजिइंदिओ ॥ एय जोग समाउत्तो, किण्हलेस तु परिणमे ॥ २२ ॥ ईसा

गुना कोमल स्पर्श तेजु पद्म शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्या का जानना ॥ १९ ॥ अब छठा परिणाम द्वार—लेश्या के परिणाम तीन प्रकार के होते हैं—१ जघन्य, २ मध्यम और ३ उत्कृष्ट इस के ९ भेद—१ जघन्य का जघन्य, २ जघन्य का मध्यम, ३ जघन्य का उत्कृष्ट ४ मध्यम का जघन्य ५ मध्यम का मध्यम ६ मध्यम का उत्कृष्ट ७ उत्कृष्ट का जघन्य ८ उत्कृष्ट का मध्यम और ९ उत्कृष्ट का उत्कृष्ट इस ही प्रकार इन एकेक के तीन २ भेद करते ९×३=२७ भेद होते हैं फिर भी इन के भी तीन २ भेद करते २७×३=८१ भेद और होते हैं ८१ को भी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट से तीन गुने करते ८१×३=२४३ भेद होते हैं इतने परिणाम छ ही लेश्या के जानना ॥ २० ॥ सातवा लक्षण द्वार—पांच आश्रव सेवन करे, तीनों योग की अगुप्ति रखे, छ काया की हिंसा तीव्र परिणाम से करे, आरंभ करता अचकावे नहीं, सर्व जीवों का अहितकारी हिंसा करने में साहसिक होवे, इस लोक परलोक के दुःख से डरे नहीं, निर्दय परिणामी, जीव की घात में घृणा रहित, अजीतेन्द्रिय इस प्रकार के योगों के व्यापार कर युक्त होवे उसे कृष्ण लेश्यावाला जानना

उवहाणवं ॥ २७ ॥ पियधम्मे दढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए ॥ एय जोग समाउत्तो तेओलेसं तु परिणमे ॥ २८ ॥ पयणु कोह माणय, माया लोभय पयणुए ॥ पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥ २९ ॥ तहा पयणुवाई य उवसंते जिइंदिए ॥ एय जोग समाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे ॥ ३० ॥ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्म सुक्काइ झायए ॥ पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥ ३१ ॥ सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए ॥ एय जोग समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे

मत्सगुरु सिद्धान्त भ्यास करने मो तप करना हो उस तप कर सहित, धर्म प्रमी दृढ धर्मी पाप का डर रखन वाला मोक्ष का इच्छक, इन लक्षण युक्त हो उसे तेजो लेश्यावाला जानना ॥ २७-२८ ॥ जिस के क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष उपशान्त हुए हो स्वात्मा का दमन करने वाला, तीनों जोगको स्वत के वश में रखने वाला उपधान का करन वाला थोडा बोले उपशान्त चित्त जीतेन्द्रिय इन गुन युक्त होय उसे पद्मलेश्या वाला जानना ॥ २९-३० ॥ आर्त रौद्र ध्यान का वर्जने वाला धर्म शुक्ल ध्यान का ध्यान वाला राग द्वेष कर उपशान्त चित्त स्वात्मा वश का करने वाला, पांच समिति समता तीन गुप्ति गुप्त, सरागी संयमी तथा वीतरागी संयमी, जीतेन्द्रिय इन लक्षण युक्त हो उसे शुक्ललेश्या वाला जानना ॥ ३१-३२ ॥

॥ ३२ ॥ असंखिज्जा णो सप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया ॥ संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइं ॥ ३३ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना तेत्तीसा सागरा मुहुत्तहिया ॥ उक्कोसा होई ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥ ३४ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलिय मसंखभाग मब्भहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा नीललेसाए ॥ ३५ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंख भागमब्भहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा काउ लेसाए ॥ ३६ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलिय मसंखभाग

भावार्थ स्थान द्वार—दश क्रोडा क्रोड सागरोपम का अवसर्पिणी (पडता) काल और दश क्रोडा क्रोड सागरोपम का उत्सर्पिणी (चडता) काल ऐसी असंख्याती सर्पनी उत्सर्पनी के जितने समय होवे हैं तथा यह तीनसो चौयालीस राज का घनाकार लोक है ऐसे संख्याते लोक के जितने आकाश प्रदेश होवे हैं उतने लेश्या के स्थानक हैं ॥ ३३ ॥ नवमा लेश्या स्थिति द्वार—कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर्मुहूर्त अधिक ॥ ३४ ॥ नीललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दश सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ३५ ॥ कापोत लेश्या की स्थिति—जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ३६ ॥ तेजोलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दो सागरोपम

मुहुत्तमहिया ॥ उक्कोसा होई ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥ ३७ ॥ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना दसहोंति य सागरा मुहुत्तमहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥ ३८ ॥ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, तत्तीस सागरा मुहुत्तहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ३९ ॥ एसा खलु लेसाण, ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ चउसु वि गईसु, एत्तो, लेसाण ठिइ तु वोच्छामि ॥ ४० ॥ दस वास सहस्साइं, काऊए ठिई जहन्निया होइ ॥ तिण्णुदही पलिओवम, असंखभाग च उक्कोसा ॥ ४१ ॥ तिण्णुदही पलिओवम संखभागो जहन्नेण नील ठिई ॥ दस उदही पलिओवम,

एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक ॥ ३७ ॥ पद्मलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दश सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक जानना ॥ ३८ ॥ शुक्ललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक ॥ ३९ ॥ हे शिष्य यह तो छहों लेश्या की ओघ (समुच्चय) स्थिति कही अब गति आश्रिय लेश्या की स्थिति कहते हैं ॥ ४० ॥ नरक गति की लेश्या की स्थिति—कापूतलेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष (प्रथम नरक आश्रिय) उत्कृष्ट तीन सागर (दूसरा नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक (मनुष्य तिर्यच के आयुष्य मय आश्रिय) ॥ ४१ ॥ नीललेश्या की जघन्य तीन सागरोपम (तीसरी नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग

असंख भागम उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असंखभागं जहन्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा नेरइयाण लेसाण ठिई उ वणिया होइ ॥ तेण परं वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाणं ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवलं लेस ॥ ४५ ॥ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहि वरिसेहि ऊणा

भाग (उक्त प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवी नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह तो नरक गति में तीन ही लेश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छही लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिले की चार लेश्या पावे) तेऊ, वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पहिली पावे) गर्भज तिर्यंच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी को छोड कर) इन में छही लेश्या होती है इन सब की छ ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

एसा तिरिय नराणं, लेसाए ठिई उ वण्णिया होइ ॥
नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ४६ ॥ दस वास सहस्साइं, किण्हाए
तेणपरं वोच्छामी, लेसाण ठिई उ देवाण ॥ ४७ ॥
ठिई जहन्निया होई । पलिय मसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४८ ॥
जा किण्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेणं नीलाए
पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ४९ ॥ जा नीलाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय
मब्भहिया ॥ जहन्नेणं काऊए, पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ५० ॥ तेण परं

वर्ष (९ वर्ष) कम क्रोड पूर्व की ॥ ४६ ॥ यह तिर्यंच की और मनुष्य की स्थिति का कथन करा अब देवता की लेश्या की स्थिति का कहते हैं ॥ ४७ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष की (भुवनपति आश्रिय) उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की ॥ ४८ ॥ जो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस उपरांत एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उत्कृष्ट स्थिति उस के उपरान्त पल्योपम के असंख्यातवें भाग की जानना ॥ ४९ ॥ जितनी नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस पर एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उस उपरांत पल्यो-पम के असंख्यातवे भाग अधिक उत्कृष्ट स्थिति जानना ॥ ५० ॥ अब अहो शिष्य ! भुवनपति वाण-

अससंख भागम उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असंखभागं जहन्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा नेरइयाण लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेण परं वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाण ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥ ४५ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहि वरिसेहि ऊणा

भधिक (उक्त प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवीं नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह तो नरक गति में तीन ही लश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छही लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिली की चार लश्या पावे) तेऊ वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पहिली पावे) गर्भज तिर्यंच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी को छोड कर) इन में छही लेश्या होती है इन सब की छ ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

नायन्त्रा सुक्कलेसाए ॥ ४६ ॥ एसा तिरिय नराणं, लेसाए ठिई उ वण्णिया होइ ॥
तेणपरं वोच्छामी लेसाण ठिई उ देवाण ॥ ४७ ॥ दस वास सहस्साइ, किण्हाए
ठिई जहन्निया होई । पलिय मसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४८ ॥
जा किण्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण नीलाए
पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ४९ ॥ जा नीलाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय
मब्भहिया ॥ जहन्नेण काऊए, पलिय मसंखं च उक्कोसा ॥ ५० ॥ तेण पर

दश (१ वर्ष) कम क्रोड पूर्व की ॥ ४६ ॥ यह तिर्यंच की और मनुष्य की स्थिति का कथन कहा अब
देवता की लेश्या की स्थिति का कहते हैं ॥ ४७ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष की
(भुवनपति आश्रिय) उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की ॥ ४८ ॥ जो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट
स्थिति है उस उपरांत एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उत्कृष्ट स्थिति
उस के उपरान्त पल्योपम के असंख्यातवे भाग की जानना ॥ ४९ ॥ जितनी नील लेश्या की उत्कृष्ट
स्थिति है उस पर एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उस उपरांत पल्यो
पम के असंख्यातवे भाग अधिक उत्कृष्ट स्थिति जानना ॥ ५० ॥ अब अहो शिष्य ! भुवनपति वाण-

असंख भागम उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असखभाग जह्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा ने इयाण लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेण परं वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाण ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराण वा, वज्जिचा केवलं लेस ॥ ४५ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहिं वरिसहि ऊणा

धिक (इक प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवीं नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह जो नरक गति में तीन ही लेश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छही लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिले की चार लेश्या पावे) तेऊ वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पहिली पावे) गर्भज तिर्यंच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी के छोड कर) इन में छही लेश्या होती है इन सब की छ ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

तेत्तीस मुहुत्त मब्भहिया ॥ ५५ ॥ किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहमलेसाओ ॥ एयाहि तिहि वि जीवो दुग्गइं उववज्जइ ॥ ५६ ॥ तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ॥ एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई ॥ ५७ ॥ लेसाहिं सव्वाहि पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ॥ न हु कस्सइ उववाओ, परभवे अत्थि जीवस्स ॥ ५८ ॥ लेसाहिं सव्वाहिं चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु ॥ न हु कस्सइ उववाओ परभवे होइ जीवस्स ॥५९॥ अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहु

मन्तर मुहूर्त अधिक मानना ॥ ५५ ॥ दशवा गति द्वार—कृष्ण नील कापूत इन तीन लेश्या कर जीव अधर्म गति [दुःखदायी स्थान] में उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥ तेजू पद्म और शुक्ल इन तीनों लेश्या कर जीव सद्गति (सुखदाई गति में) उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ इग्यारवा चवन द्वार जब जीवों के भव के आयुष्य का अंत आता है तब जावों के जिस गति में जाने का बंध पड़ा होता है उस गति में जो लेश्या होती है वह परिणमती है जिस समय में वह लेश्या परिणमती है उस समय में उस का मृत्यु नहीं होता है ॥ ५८ ॥ तैसे ही मृत्यु की वक्त सब ही जीवों की जिस गति में जाना हो उस गति स्थान में जो लेश्या होती है वह परिणमती है उस वक्त भी कोइ जीव परभव में उत्पन्न नहीं होता है ॥ ५९ ॥ परन्तु मृत्यु के अन्त से आगे जिस भव में जाना हो उन सुख स्थान में जो लेश्या होती है

वोच्छामी तेउलेसा जहा सुरगाण ॥ भवणवइ वाणमंतर जोइस वेमाणियाण च ॥ ५१ ॥ पलिओवम जहन्न, उक्कोसा सागराओ दुन्नहिया ॥ पलियम संखेज्जेण, होइ भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥ दस वास सहस्साइ तेऊए ठिई जहन्निया होइ ॥ दुन्नुदही पलिओवम, असंखभाग च उक्कोसा ॥ ५३ ॥ जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण पम्हाए दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥ ५४ ॥ जा पम्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण सुक्काए,

व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक इन चारोंमें तेजो लेश्या पाती है उस की स्थिति कहते हैं—तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की (प्रथम दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) उत्कृष्ट दो सागरोपम (पहिले दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) कुछ (पल्योपम का असंख्यातवा भाग) अधिक (पूर्व भव आश्रिय मानना) ॥ ५२ ॥ और भी तेजो लेश्या की जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति [भुवनपति वाणव्यन्तर आश्रिय] उत्कृष्ट दो सागरोपम की पल्योपम की असंख्यातवा भाग अधिक (मध्यम स्थिति में ज्योतिषी मानना) ॥ ५३ ॥ जो तेजो लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति होवे उस से एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति और पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक मानना (पांचवे देवलोक आश्रिय) ॥ ५४ ॥ जो पद्मलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति कही उस से एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति मानना और शुक्ल लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम

संठाणओ विय ॥ २६ ॥ वण्णओ जे भवे सुक्किले, भइए से उ गंधओ ॥ रसओ फासओ चेव भइए संठाणओ विय ॥ २७ ॥ गंधओ जे भवे सुब्भी भइए से उ वण्णओ, रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ २८ ॥ गंधओ जे भवे दुब्भी भइए से उ वण्णओ॥ रसओ फासओ चेव भइए संठाणओ विय॥ २९ ॥ रसओ तित्तए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओचेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३० ॥ रसओ कडुए जेउ, भइए से उ वण्णओ॥गंधओ फासओ चेव भइए संठाणओ विय ॥ ३१ ॥ रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३२ ॥ रसओ अंबिले जे उ, भइए से

॥ २६ ॥ जो श्वेत वर्ण के पुद्गल हैं उन में २० बोल पाते हैं २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥२७॥ जो सुगंधी पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ २८ ॥ जो दुर्गंधी पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान, ॥२९॥ जो तिक्तरस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण २ गंध, ८ स्पर्श ५ संस्थान ॥ ३० ॥ जो कटु रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ ३१ ॥ जो कषाय ले रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ ३२ ॥ जो खट्टे

पम्मि समणुवेत्र ॥ लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोय ॥ ६० ॥ तम्हा ए-
यापि लेसाण आणुभाव वियाणिया ॥ अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थ ओ हिट्ठिए
मुणि ॥ ६१ ॥ त्तिबेमि ॥ इति लेसज्झयणं चो तिस सम्मत्त ॥ ३४ ॥

उस लेश्या के परिणाम वाली रही आत्मा में परिणाम में बदल जब लेश्या की जो स्थिती है उस स्थिति का अन्तर मुहूर्त का काल बाकी रहे और अन्तर मुहूर्त ही बाकी रहे तब जीव यहां से परभव में जाता है अर्थात् प्रथम और अन्तिम समय की स्थिति के दोनों समय छोड कर बीच के समय में जीव परभव में गमन करता है ॥ ६० ॥ हे भव्यो ! अशुभ लेश्या से दुर्गति में और शुभ लेश्या से सद्गति में जीव जाता है ऐसा जानकर कृष्ण नील कापोत इन तीनों खोटी लेश्या को छोड कर तेजू पद्म और शुक्ल इन तीन लेश्या को आदर कर सुखी होवो ! यों सुधर्मा स्वामीने जंबू स्वामी से कहा ॥ इति लेश्या नामक चौतीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ ३४ ॥ * * *

विय ॥ ३८ ॥ फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३९ ॥ फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ४० ॥ फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ४१ ॥ फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ४२ ॥ परिमंडलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ विय ॥ ४३ ॥ संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ

५ संस्थान ॥ ३८ ॥ जो शीत स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ३९ ॥ जो उष्ण स्पर्श के पुद्गल है उनमें २३ बोल पावे-५ वर्ण २ गंध, ५ रस ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ४०॥ जो चिकने स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४१ ॥ जो लूखे स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४२ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे-५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४३ ॥ जो

उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय ॥ ३३ ॥ रसओ महुरए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥३४॥ फासओ कक्खडे जे उ भइए से उ वण्णओ ॥ गधअ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३५ ॥ फासओ मउए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३६ ॥ फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३७ ॥ फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ

रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श ५ संस्थान ॥ ३३ ॥ जो मधुर रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध ८ स्पर्श ५ संस्थान॥३४॥ जो कठोर स्पर्श के पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं— ५ वर्ण २ गंध ५ रस, ६ स्पर्श (कठोर कोमल नहीं) ५ संस्थान ॥ ३५ ॥ जो कोमल स्पर्श के पुद्गल है उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (कठोर कोमल नहीं) ५ संस्थान ॥ ३६ ॥ जो भारी स्पर्श के पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (भारी हलका नहीं) ५ संस्थान ॥ ३७ ॥ जो हलके स्पर्श के पुद्गल हैं उस में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श [भारी हलका नहीं]

विय ॥ ३८ ॥ फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३९ ॥ फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४० ॥ फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणआ विय ॥ ४१ ॥ फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४२ ॥ परिमडलसठाणे, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए फासओ विय ॥ ४३ ॥ सठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ

५ संस्थान ॥ ३८ ॥ जो शीत स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ३९ ॥ जो उष्ण स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे-५वर्ण २ गंध, ५ रस ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ४०॥ जो चिकने स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४१ ॥ जो लूखे स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४२ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे-५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४३ ॥ जो

चेव, भइए से फासओ विय ॥ ४४ ॥ संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव भइए से फासओ विय ॥४५॥ संठाणओ भवे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥ ४६ ॥ जे आयय संठाणे भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥४७॥ एसा अजीव विभत्ती, समासेण वियाहिया ॥ इत्तो जीव विभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ ४८ ॥ संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ॥ सिद्धाणेगविहा वुत्ता, त मे कित्तयओ

वर्तुल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ॥५४॥ जो त्रिकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ५५ ॥ जो चौकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ५६ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ५७ ॥ अहो शिष्य ! यह श्री तीर्थंकरने ५ वर्ण के १०० बोल, २ गंध के ४६ बोल, ५ रस के १०० बोल ८ स्पर्श के १८४ बोल और ५ संस्थान के १०० बोल सब मिलकर अजीव रूपी पुद्गलों के भाव से ५३० भेद कहे हैं ॥ ५८ ॥ अब आगे जीव के भेदों का वर्णन अनुक्रम से कहता हूं अहो जम्बू ! तीर्थंकरने जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ कर्म सहित सो संसारी जीव, और २ कर्म रहित सो सिद्ध भगवंत के

....जभालिंगे य गिहिलिंगे सुण ॥४९॥इत्थी पुरिस सिद्धा य तहेव य नपुंसगा ॥ उड्ढं अहय तिरिय च तहेव य ॥ उक्कोसोगाहणाए य जहन्नमज्झिमाए य ॥ पुरिसेसु य अट्ठसय, समुद्दम्मि जलम्मिय ॥ ५१ ॥ दस य नपुंसएसु, वीसइत्थियासु य ॥ सलिंगेण चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंग दसेव य ॥ समएणेगेण सिज्झई ॥ ५२ ॥

जीव इस में से प्रथम सिद्ध के जीव के अनेक भेद कहे हैं सो मैं तुझे म अनुक्रम से कहता हूं उसे स्वस्थ चित्त श्रवण कर ॥ ४९ ॥ संसार के जीवों जिस प्रकार सिद्ध होवे हैं सो कहते हैं—१ स्त्री लिंग से सिद्ध होवे, २ पुरुष लिंग से सिद्ध होवे, ३ नपुंसक लिंग से सिद्ध होवे ४ स्वलिंग सो साधु के लिंग से सिद्ध होवे ५ सन्यासी आदि के अन्य लिंग स शुद्ध श्रद्धा कर सिद्ध होवे ६ गृहस्थ लिंग (भाव चारित्र) से सिद्ध होवे ॥ ५० ॥ जघन्य दो हाथ की (वामना संस्थान आश्रय) अवगाहना वाला सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध होवे और उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध होवे ऊंची भूमी पर्वतादि पर से सिद्ध होवे, नीची भूमी गर्तादि स्थानादि में से सिद्ध होवे तिरछा महा द्वीप में स सिद्ध होवे कोई देवता छद्मस्त साधु का हरन कर लवण समुद्र तथा कालोदधी समुद्र में डाल दे वहां केवल ज्ञान पाकर सिद्ध होवे ऐसे ही नदी आदि अन्य जलाशय में स सिद्ध होवे ॥ ५१ ॥ एक समय में—नपुंसक लिंगी १० सिद्ध होवे, स्त्री लिंगी २० सिद्ध होवे और पुरुष लिंगी १०८ सिद्ध होवे ॥ ५२ ॥ एक समय में—गृहस्थ लिंग से भाव चारित्र भाव कर ४ सिद्ध होवे, अन्य लिंग से

चेव, भइए से फासओ विय ॥ ४४ ॥ संठाणओ भवे तसे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव भइए से फासओ विय ॥४५॥ संठाणओ भवे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय॥ ४६ ॥ जे आयय संठाणे भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥४७॥ एसा अजीव विभत्ती, समासण वियाहिया ॥ इत्तो जीव विभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ ४८ ॥ संसार त्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ॥ सिद्धाणेगविहा वुत्ता, त मे कित्तयओ

चतुरंस संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ॥४४॥ जो त्रिकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४५ ॥ जो चौकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४६ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४७ ॥ अहो शिष्य ! यह श्री तीर्थंकरने ५ वर्ण के १०० बोल, २ गंध के ४६ बोल ५ रस के १०० बोल ८ स्पर्श के १८४ बोल और ५ संस्थान के १०० बोल सब मिलकर अजीव रूपी पुद्गलों के भाव से ५३० भेद कहे हैं ॥ ४८ ॥ अब आगे जीव के भेदों का वर्णन अनुक्रम से कहता हूं अहो जम्बू ! तीर्थंकरने जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ कर्म सहित सो संसारी जीव, और २ कर्म रहित सो सिद्ध भगवंत के

…… अन्नलिंगे य गिहिलिंगे सुण ॥ ४९ ॥ इत्थी पुरिस सिद्धा य तहेव य नपुंसगा ॥ सलिंगे अन्नलिंगे य गिहिलिंगे तहेव य ॥ उक्कोसोगाहणाए य जहन्नमज्झिमाए य ॥ उड्ढं अहय तिरियं च समुद्दम्मि जलम्मि य ॥ ५१ ॥ दस य नपुंसएसु, वीसइं इत्थियासु य ॥ पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥ ५२ ॥ चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य ॥ सलिंगेण

जीव इस में से प्रथम सिद्ध के जीव के अनेक भेद कहे हैं सो मैं तुझे स अनुक्रम से कहता हूं उसे दत्त चित्त श्रवण कर ॥ ४८ ॥ संसार के जीवों जिस प्रकार सिद्ध होते हैं सो कहते हैं—१ स्त्री लिंग से सिद्ध होवे, २ पुरुष लिंग से सिद्ध होवे, ३ नपुंसक लिंग से सिद्ध होवे ४ स्वलिंग सो साधु के लिंग से सिद्ध होवे ५ संन्यासी आदि के अन्य लिंग से शुद्ध श्रद्धा कर सिद्ध होवे ६ गृहस्थ लिंग (भाव चारित्र) से सिद्ध होवे ॥ ५० ॥ जघन्य दो हाथ की (वामना संस्थान आश्रय) अवगाहना वाला सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध होवे और उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध होवे ऊंची भूमी पर्वतादि पर से सिद्ध होवे, नीची भूमी गर्तादि खड्डादि में से सिद्ध होवे तिरछा अढाइ द्वीप में से सिद्ध होवे कोइ देवता छद्मस्त साधु को हरन कर लवण समुद्र तथा कालोदधी समुद्र में डाल दे वहां केवल ज्ञान पाकर सिद्ध होवे ऐसे ही नदी आदि अन्य जलाशय में से सिद्ध होवे ॥ ५१ ॥ एक समय में—नपुसक लिंगी १० सिद्ध होवे, स्त्री लिंगी २० सिद्ध होवे और पुरुष लिंगी १०८ सिद्ध होवे ॥ ५२ ॥ एक समय में—गृहस्थ लिंग से भाव चारित्र प्राप्त कर ४ सिद्ध होवे, अन्य लिंग से

अट्ठसयं समुप्पेगेण सिज्झइ ॥ ५३ ॥ उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झते जुगव दुवे ॥ चत्तारि जहन्नाए मज्झे अठुत्तर सय ॥५४॥ चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहि तहेव य ॥ सय च अठुत्तर तिरियलोए समएणेगेण सिज्झइ धुवम् ॥ ५५ ॥ कहिंपडिहया सिद्धा कहिं सिद्धापइट्ठिया ॥ कहिं बोंदिं चइत्ताण, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ ५६ ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गेय पइट्ठिया ॥ इहं बोंदिं

माव सम्यक्त्व प्राप्ति मास कर दश सिद्ध होवे, साधु के लिंग से १०८ सिद्ध होवे ॥ ५३ ॥ एक समय में-जघन्य अवगाहना वाले चार जीव सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले १०८ जीव सिद्ध होवे उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव सिद्ध होवे ॥ ५४ ॥ एक समय में मेरु पर्वत की चूलकादि उर्ध्वलोक में उत्कृष्ट चार सिद्ध होवे समुद्र में दो जीव सिद्ध होवे, नदी प्रमुख के पानी में तीन जीव सिद्ध होवे अधोगामिनी विजय आदी नीचे लोक में २० जीव सिद्ध होवे तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवे ॥ ५५ ॥ गौतम स्वामीने प्रश्न किया कि-अहो भगवान ! सिद्ध भगवत कहां जाकर अटके है ? कहां रहे है ? कहां शरीर छोडा है ? और कहां जाकर सिद्ध हुवे है ? भगवंतने उत्तर दिया कि-अहो गौतम ! सिद्ध भगवंत ऊर्ध्व लोक में अलोक से जाकर अटके है, लोकाग्र भाग में रहे है, इस मनुष्य लोक में शरीर का त्याग कर वहां लोकाग्र में सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध

चउसाणं, तत्थ गतूण सिज्झई ॥ ५७ ॥ बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ॥ ईसिपब्भार नामाउ, पुढवी छत्तसठिया ॥ ५८ ॥ पणयाल सयसहस्सा, जोयणाण तु आयया ॥ तावइय चेव विच्छिण्णा, तिगुणो साहिय परिरओ ॥ ५९ ॥ अट्ठजोयण बाहुल्ला सा, मज्झम्मि वियाहिया ॥ परिहायंति चरिमंते, मच्छियपत्ताउ तणुयरि ॥ ६० ॥ अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं ॥ उत्ताण गच्छत्तगसठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥ संखककुद सकास पण्डुरा निम्मला

हुवे हैं ॥ ५७ ॥ वह सिद्ध क्षेत्र कहां है सो कहते हैं—सर्वार्थ सिद्ध महा विमान से बारा योजन ऊपर ईषत्प्रागभार नामक मुक्ति शिला है वह पृथ्वी परिणाम मय भणामी चित्ते छत्र के सस्थान से संस्थित है ॥ ५८ ॥ वह सिद्ध शिला पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी गोल है, उस से त्रिगुनी [१४२- ३०२४९] योजन कुछ अधिक] परधी है ॥ ५९ ॥ वह सिद्ध शिला मध्य में आठ योजन की जाडी है फिर आगे चारों तरफ अनुक्रम से पतली पतली २ अन्तिम अग्रभाग किनारे पर मक्षिका की पांख से भी बहुत पतली रहगई है ॥ ६० ॥ वह सिद्ध शिला अर्जुन (श्वेत) सुवर्णमय निर्मल है और उत्तानछत्र के आकार से तीर्थंकरने कही है ॥ ६१ ॥ वह सिद्ध शिला—शंख, अंकरत्न, मचकुंद मोगरा का फूल

अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झइ ॥ ५३ ॥ उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झंते जुगव दुवे ॥ चत्तारि जहन्नाए, मज्झे अट्ठुत्तर सयं ॥५४॥ चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव य ॥ सयं च अट्ठुत्तर तिरियलोए समएणेगेण सिज्झइ धुवम् ॥ ५५ ॥ कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ॥ कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ ५६ ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥ इहं बोंदिं

मात्र सम्यक्त्व चारित्र मात्र कर दश सिद्ध होवे, साधु के लिंग से १०८ सिद्ध होवे ॥ ५३ ॥ एक समय में-जघन्य अवगाहना वाले चार जीव सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले १०८ जीव सिद्ध होवे उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव सिद्ध होवे ॥ ५४ ॥ एक समय में मेरु पर्वत की चूलकादि ऊर्ध्वलोक में उत्कृष्ट चार सिद्ध होवे समुद्र में दो जीव सिद्ध होवे, नदी प्रमुख के पानी में तीन जीव सिद्ध होवे अधोगामिनी विजय आदी नीचे लोक में २० जीव सिद्ध होवे तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवे ॥ ५५ ॥ गौतम स्वामीने प्रश्न किया कि-अहो भगवान ! सिद्ध भगवत कहां जाकर अटके हैं ? कहां रहे हैं ? कहां शरीर छोडा है ? और कहां जाकर सिद्ध हुवे हैं ? भगवंतने उत्तर दिया कि-अहो गौतम ! सिद्ध भगवंत ऊर्ध्व लोक में अलोक से जाकर अटके हैं, लोकाग्र भाग में रहे हैं, इस मनुष्य लोक में शरीर का त्याग कर वहां लोकाग्र में सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध

तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ॥ तस्स कोसस्स, छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६२ ॥ तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया ॥ भवपवंचओ मुक्का,

शस्त्र करके भी द्विभाग न होवे, अनंत व्यवहार परमाणु का ऊष्ण श्रेणिया [गरमी के पुद्गल] आठ ऊष्ण श्रेणिये पुद्गल जितना एक शीत श्रेणिया (ठंढ के पुद्गल) आठ शीत श्रेणिये जितना एक ऊर्ध्वरेणु (खलके में देखावे सो) आठ ऊर्ध्वरेणु जितनी एक त्रस रेण [त्रस काया का शरीर] आठ त्रस रेणु जितनी एक रथ रेणु [रथ चलते धूल उडे वह] आठ रथ रेणु जितना एक देवकुरु उत्तर कुरु क्षेत्र के युगलीये का वालाग्र आठ देवकुरु उत्तर कुरु के वालाग्र जितना एक हरीवास, रम्यकवास क्षेत्र के युगलीये का वालाग्र, आठ हरीवास रम्यकवास क्षेत्र के मनुष्यों का वालाग्र जितना एक हेमवय ऐरणवय क्षेत्र के मनुष्यों का वालाग्र, आठ हेमवय ऐरणवय क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना एक पूर्व महा विदेह पश्चिम महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य का वालाग्र आठ महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना एक भरतैरावत क्षेत्र के सख्यात वर्षाय वाले मनुष्य के वालाग्र आठ भरतैरावत क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितनी लीख, आठ लीख की एक यूका, आठ यूका का एक जव मध्य, आठ जवमध्य का एक अंगुल, ६ अंगुल का एक पाउ २ पावका एक वेंत २ वेंत एक हाथ, २ हाथ एक कुछ दो कुछका एक धनुष्य, २००० धनुष्य का एक कोश ४ कोश का एक योजन ऐसे उत्सेध अंगुल के ४००० कोश होवे तब प्रमाणु अंगुल का एक योजन) ॥ ६१ ॥ वहां सिद्ध क्षेत्र में रहे सिद्ध भगवंत अनंत ज्ञान रूप ऋद्धि कर

सुद्धा ॥ मसियाए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिओ ॥ ६२ ॥ जोयणस्स उजो

समान श्वेत उज्वल निर्मल है उस सिद्ध सिला क ऊपर एक योजन प्रमाण में लोक का अन्त है ॥ ६२ ॥ उस सिद्ध के ऊपर के एक योजन में के तीन हजार नवसे निन्याण वे (३०९९)योजन नीचे छोडना ऊपर का एक कोस रहा उस के ६ भाग करना उस में से पांच भाग नीचे छोडना ऊपर का एक भाग ३३३(तीन सो तेतीस)धनुष्य और ३२ अंगुल सब रहा है, इतनी सिद्ध की उत्कृष्ट अवगाहना है)उतने ऊपर क्षेत्र में(और पैंतालीस लक्ष योजन लम्बे चौडे क्षेत्र में) अनंत सिद्ध का अवगाह है ॥६३॥ (अंगुल का प्रमाण-चार मधुर तृण फल का एक श्वेत सरसव, १६ सरसव का उडद, दो उडद का एक गुंजा [चिरमी] पांच गुंजा का एक मासा, १६ मासा का एक सोनैया ८ सोनैये भर का एक कागुनी रत्न, उस रत्न के ६ तले ८ कोने १२ हांसे है वह सुवर्णकार की एरन के संस्थान से सस्थित होता है उस कागुनी रत्न का एकेक हांस एक उत्सेध अंगुल का चौडा होता है, वह उत्सेध अंगुल श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी का आधा अंगुल होता है, उस हजार गुना करने से एक परमाणु अंगुल होता है अर्थात् महावीर स्वामी के आत्म अंगुल का एक परमाणु अंगुल होता है ऐसे ६ परमाणु अंगुल का एक पांव, दो पांव का १ वेंत दो वेंत का एक हाथ दो हाथ की एक कुक्षी दो कुक्षी का एक धनुष्य,२००० धनुष्य का एक कोस चार कोस का एक योजन यह परमाणु अंगुल के योजन का माप कहा अब उत्सेध अंगुल का प्रमाण कहते हैं-अनंत सूक्ष्म परमाणु का एक बादर परमाणु तथा व्यवहार परमाणु, जिस के अति तीक्ष्ण

॥ ६८ ॥ संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तर्हि ॥ ६९ ॥ पुढवि आउ जीवा य, तहेव य वणस्सई ॥ इच्चेव थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥७०॥ दुविहा उ पुढवि जीवा, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ७१ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ॥ सण्हा खरा य बोद्धव्वा सण्हा सत्तविहा तर्हि ॥ ७२ ॥ किण्हा

पार हुये हैं सर्व कर्मांश क्षय करके मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त की है यह सिद्ध का स्वरूप जानना ॥ ६८ ॥ अब दूसरे संसारी जीवों का स्वरूप कहते हैं—जो संसार में रहे वे संसारी जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ त्रस जीव और २ स्थावर जीव इस में स्थावर जीव के तीन प्रकार कहे हैं ॥ ६९ ॥ अहो जम्बू! ये तीन भेद स्थावर के मैं तेरे से कहता हूं सो तू दत्तचित्त श्रवण कर—पृथ्वीकाय, २ अप्काय, और ३ वनस्पतिकाय ॥ ७० ॥ पृथ्वीकाय के भेद कहते हैं श्री तीर्थंकर भगवान ने द्रव्य से पृथ्वीकाय के दो भेद कहे हैं—१ सूक्ष्म और २ बादर, इस में सूक्ष्म के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त ॥ ७१ ॥ और भी बादर पृथ्वीकाय के दो भेद—१ कोमल और २ कठिन, इस में कोमल पृथ्वी काय के ७ भेद ॥ ७२ ॥ तद्यथा—१ काला मट्टी, २ हरी मट्टी, ३ लाल मट्टी, ४ पीली मट्टी, ५ श्वेत मट्टी,

सिद्धिवरगइगया ॥ ६४ ॥ उस्सेहो जस्स जो होइ भवम्मि चरिमम्मि ठ ॥ तिभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६५ ॥ एगत्तेण साईया अपज्जव-सिया विय ॥ पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसियाविय ॥ ६६ ॥ अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया ॥ अतुलं सुहसंपन्ना, उवमा जस्स नत्थिउ ॥ ६७ ॥ लोगेग देसे ते सव्वे, नाणदंसण सन्निया ॥ संसार पार नित्थिण्णा सिद्धिं वरगइं गया

प्रधान भाग्य वान हैं, अनंत बलवीर्य रूप प्रचंड कर महाशक्ति के धारक हैं सर्व लोक के ऊपर अग्रभाग में रहे नरकादि गति के भवों में भ्रमण करने के प्रपंच स निवृते हैं और मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त की है ॥६४॥ मनुष्य भव के चरिम-अन्तिम शरीर की जितना अवगाहना [ऊंचाइ] थी उस के तीन भाग में का एक भाग छोडकर बाकी रहे दो भाग जितनी सिद्ध भगवंतकी अवगाहना होती है॥६५॥ एकसिद्ध आश्रिय तो आदि अन्त सहित हैं जैसे महावीर स्वामीजी कार्तिक वद अमावस्या को मोक्ष गये और बहुत सिद्धों आश्रिय आदिअंत दोनों नहीं है ॥ ६६ ॥ ये सिद्ध भगवन्त कर्म रहित होने से अरूपी हैं शरीर रहित होने से सघन आत्म प्रदेश के धारक है केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप संज्ञा वाले हैं, और सुख की ओपमा रहित अतुल्य सुख को प्राप्त हुवे है, ॥ ६७ ॥ ये सिद्ध भगवन्त लोक के एक देश विभाग में रहे हैं, केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप सत्रोपयुक्त है संसार परिभ्रमण का छेदन कर संसार के

जलकते सूरकंते य ॥ ७७ ॥ एए खर पुढवीए भेया, छत्तीस माहिया ॥ एगविहम नाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ ७८ ॥ सुहुमा सव्व लोगम्मि, लोग देसेय बायरा ॥ इत्तो काल विभाग तु, तेसिं वुच्छ चउव्विह ॥ ७९ ॥ सतइ पप्प नाईया अपज्जवासिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ ८० ॥ बावीस सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिई पुढवीण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ ८१ ॥ असख काल मुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई पुढवीण, त

कठिन पृथ्वी के छत्तीस भेद कहे और सूक्ष्म पृथ्वी काया का तो एक ही भेद तीर्थंकरने कहा है ऐसे सब ४८ भेद पृथ्वी काया के हुवे ॥ ७८ ॥ २ क्षेत्र से—सूक्ष्म पृथ्वी काया के एक ही प्रकार के जीव सर्व लोक में व्याप रहे हैं और बादर पृथ्वी काया के जीवों लोक के देश विभाग में हैं ३ काल से पृथ्वी काया के जीवों के चार भेद हैं सो मैं कहता हूं ॥ ७९ ॥ १ पृथ्वी काया द्रव्य की अपेक्षा तो अनादि और अनंत है अर्थात् पृथ्वी काया कभी बनी नहीं और सब पृथ्वीकाया का नाश भी नहीं होगा वैसे ही पर्याय की अपेक्षा अर्थात् जीव शरीर का उत्पन्न होना और नाश होने की आपेक्षा आदि और अन्त दोनों सहित हैं ॥ ८० ॥ (२) पृथ्वीकाया की स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस [२२] हजार वर्ष की यह भव स्थिति कही ॥ ८१ ॥ (३) अब कायास्थिति अर्थात् पृथ्वीकाया का जीव मर २ कर पुन २ पृथ्वी काया में ही उत्पन्न होवे उस की (काया)

नीला य रुहिरा य, हलिद्दा सुक्किला तहा ॥ पंडु पणग मट्टिया खरा छत्तीसईविहा ॥ ७३ ॥ पुढवीय सक्करा वालुया य उवले सिला य, लोणूसे ॥ अय तउय तम्ब सीसग रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ ७४ ॥ हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाल ॥ अब्भ पडलब्भ वालुय, बायरकाए मणिविहाणे ॥ ७५ ॥ गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिगे य लोहियक्खे य ॥ मरगय मसारगल्ले, भुयमोयग-इन्दनीले य ॥ ७६ ॥ चंदण-गेरुय-हंसगब्भ, पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे ॥ चंदप्पह वेरुलिए

१ पांडु और ७ मोपीचंदन और कठिन मट्टी के १६ भेद कहे हैं ॥ ७३ ॥ यथा—१ खदान की मट्टी, २ मुरड-कंकर, ३ वेलु रेती ४ पाषान ५ सिला ६ समुद्रादि का निमक, ७ ओस-खारी, ८ लोहा, ९ ताम्बा १० तरुआ [कथीर] ११ सीसा १२ रूपा, १३ सवर्ण १४ वज्रहीरा, १५ हरताल, १६ हिंगलु, १७ मणसिला, १८ रत्नों की जाति १९ सुरमा, २० प्रवाल, २१ अभ्रक, २२ मोडल की धूल, यह २२ जाति की पृथ्वी काया ॥ ७४ ७५ ॥ सोले जाति के रत्न—१ गोमिज रत्न २ रुचक रत्न, ३ अंक रत्न ४ स्फटिक रत्न, ५ लोहिताक्ष रत्न, ६ मरकत रत्न, ७मसारगल रत्न, ८ भुजमोचक रत्न ९ इन्द्रनील रत्न १० चंदन रत्न ११ गेरुक रत्न १२ हंसगर्भ रत्न, १३ पुलक रत्न, १४ सौगंधिक रत्न, १५ चन्द्रप्रभ रत्न, १६ वैडूर्य रत्न, १७ जलकांत रत्न, १८ सूर्यकान्त रत्न ॥ ७६-७७ ॥ यह

एगविहँ मणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे यं वायरा ॥ ८७ ॥ सतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ ८८ सत्तेव सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे ॥आउठिई आऊण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ ८९ ॥ असख काल मुक्कोस, अतामुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई आऊण, त काय तु अमुच्चओ ॥ ९० ॥ अणंत काल मुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सएकाए, आऊ जीवाण अतर ॥ ९१ ॥ एएसिं वण्णओ, चेव, गंधओ

पानी ॥ ८६ ॥ श्री तीर्थंकरने सूक्ष्म अपकाया का तो एक ही भेद कहा है—२ क्षेत्र से सूक्ष्म अप्काय के जीव सर्व लोक में व्यापक हैं और बादर अपकाया के जीव लोक के देश विभाग में हैं ॥ ८७ ॥ ३ काल से—अपकाया चार प्रकार की है—१ अपकाया की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है, पवन उपजन आश्रिय सादि सान्त है ॥ ८८ ॥ अपकाया की भवस्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की ॥ ८९ ॥ अपकाया की काया स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असख्यात काल तक मर कर उसी में उत्पन्न होवे ॥ ९० ॥ अपकाया का जीव निकलकर पीछा अपकाया में जावे जिस का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ९१ ॥ ४ भाव से अपकाया के ५ वर्ण

काय तु असुंचओ ॥ ८२ ॥ अणत काल मुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढंमि

सए्काए, पुढवि जीवाण अतरं ॥ ८३ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ

॥ सठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ८४ ॥ दुविहा आऊ जीवा उ,

सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ८५ ॥ बायरा जे उ

पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया ॥ सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥ ८६ ॥

स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की ॥ ८३ ॥ (५) पृथ्वी काया के जीवों पृथ्वी काया का शरीर छोडकर पीछा पृथ्वी काया में उत्पन्न होवे उस के मध्य (बीच) में अन्तर पडे तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ८३ ॥ ६ भाव से पृथ्वी काया के वर्ण की गंध की रस की स्पर्श की और संस्थान की अपेक्षा से हजारों ही भेद होते हैं इति पृथ्वीकाया वर्णन ॥ ८४ ॥ अब अपकाया के भेद कहते हैं—१ द्रव्य से अपकाया के दो भेद—१ सूक्ष्म और २ बादर, इस में सूक्ष्म के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त ॥ ८५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने बादर पर्याप्त अपकाया के पांच भेद कहे हैं—१ शुद्ध मेघ का पानी, २ ओस का पानी, ३ हरे तृण पर रहा पानी, ४ धूंवर का पानी, और ५ हेम (बरफ) का

सूत्र

पकित्तिया ॥ आलए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य ॥ ९७ ॥ हरिली सिरिली सस्सिरिली, जावई केयकंदली ॥ पलंडु लसणकंदे य, कदली य कुडुव्वए ॥ ९८ ॥ लोहणी हूय थीहूय, तुहगाय तहेवय॥कण्हे य वज्जकंदे य, कंदे सूरणए तहा ॥९९॥ अस्सकण्णी य बोधव्वा, सीहकण्णी तहेव य ॥मुसुंढी य हलिद्दा य, णेगहा एवमायओ ॥१००॥एगविहमणाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया॥सुहुमा सव्व लोगम्मि लोग देसे य बायरा ॥ १०१ ॥ संतइं पप्प णाईया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया,

अर्थ

१२ हरित काय भाजीआदि यह बारा प्रकारादि प्रत्येक वनस्पति के भेद जानना ॥ ९६ ९३ ॥ अथ साधारन वनस्पति के भी अनेक भेद कहे हैं जैसे १ आलू २ मूला ३ अद्रक, ४ हिरली, ५ सिरली, ६ सस्सीरिली, ७ जवाय ८ कदली, ९ पंडलु, १० लशन, ११ कान्दे, १२ कुडक १३ लोहिणी, १४ हूयीया १५ कुहाग, १६ कृष्णकंद, १७ वज्रकंद १८ सूरणकंद १९ अश्वकर्णी, २० सिंहकर्णी २१ मुसली और २२ हल्दी, इत्यादि बहुत प्रकार की कन्द मूलादी साधारन वनस्पति की जाति है ॥ ९७ १०० ॥ और जो सूक्ष्म वनस्पति है उस का एक ही प्रकार कहा है २ क्षेत्र से सूक्ष्म वनस्पति सर्व लोक में भरी है और बादर वनस्पति लोक के एक देश में रही है ॥ १०१ ॥ काल से वनस्पति के चार प्रकार—१ वनस्पति काय की सदैव आस्ति होने से आदि और अन्त रहित है

रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १२ ॥ दुविहा वणस्सई जीवा, सुहुम बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो ॥ १३ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ॥ साहारण सरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ॥ १४ ॥ पत्तेग सरीराओ, णेगहा ते पकित्तिया ॥ रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा तहा ॥ १५ ॥ वलया पव्वगा कुहणा, जलरुहा ओसही तहा ॥ हरियकाया बोद्धव्वा, पत्तेया इइ आहिया ॥ १६ ॥ साहारण सरीराओ, णेगहा ते

२ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति अपकाया वर्णन ॥ १२ ॥ अब वनस्पति काया का कहते हैं—१ द्रव्य से वनस्पति के जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ सूक्ष्म और २ बादर इस में सूक्ष्म के दो भेद—पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे ही बादर के भी दो भेद—अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १३ ॥ बादर पर्याप्त वनस्पति काया के दो भेद कहे हैं—१ साधारण शरीर [एक शरीर में अनंत [जीव] स्वामी और प्रत्येक शरीर [एक शरीर में एक जीव] स्वामी ॥ १४ ॥ इस में प्रत्येक शरीरस्वामी वनस्पति के अनेक भेद कहे हैं—१ वृक्ष वृक्ष [यह दो प्रकार के होते हैं—एक बीजवाले सो आम्रादि और बहुत बीजवाले सीताफलादि] गुच्छा-रींगणी प्रमुख के, ३ गुल्म मालती आदि के, ४ लता-चम्पादि की ५ वेली तुम्बे प्रमुख की ६ तृण ८ पर्व-इक्षुआदि ९ कुहण भूमी फोडादि, १० जलवृक्ष-कमलादि ११ औषधि धान्य शालीप्रमुख, और

इच्चेउ तसे तिविहे वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ १०७ ॥ तेउ वाऊ य बोधव्वा, ओराला य तसा तहा ॥ इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १०८ ॥ दुविहा तेऊ जीवा उ सुहुमाबायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ १०९ ॥ बायरा ज उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया ॥ इगले मुम्मुरे अगणी, अच्चिजाला तहेव य ॥ ११० ॥ उक्का विज्जु य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १११ ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि,

प्रकार के त्रस जीवों का कथन अनुक्रम से कहूंगा ॥ १०७ ॥ तीनों त्रस के नाम—तेउकाय, २ वायुकाय और ३ औदारिक त्रस इन के भेदानुभेद आगे कहता हूं सो दत्त चित्त श्रवण कर ॥१०८॥ तेउकाया के जीव १ द्रव्य से दो प्रकार के कहे हैं १ सूक्ष्म और २ बादर इस में सूक्ष्म के दो भेद १ अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १०९ ॥ बादर तेजस्काय के पर्याप्त है जिस के अनेक भेद कहे हैं—१ अगारे, २ मोमर ३ अग्नि ४ज्वाला, ५ टूटी ज्वाला, तैसे ही ६ उल्कापात की अग्नि, ७ बिजली की अग्नि ८ इत्यादि बहुत भेद हैं और सूक्ष्म तेजस्काय का एक ही भेद

* तेऊ वायु को बहुत से स्थान स्थावरो में भी गिने हैं जिस का कारन एकेन्द्रिय होने से और यहां तथा जीवाभिगमजी में त्रस में गिने है वह चलन शक्ति की अपेक्षा से जानना

आयव्वसिया वि य ॥ १०२ ॥ दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया वणगाण ॥ वणस्सईण आउ, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १०३ ॥ अणतकालमुक्कोस ॥ अंतो मुहु० जहन्नग ॥ कायठिई पणगाण त काय तु अमुञ्चओ ॥ १०४ ॥ असंख कालमुक्कोस, अंतोमुहुत्तं जहन्नग ॥ विजढमि सए काए, पणग जीवाण अंतर ॥ १०५ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाणदेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १०६ ॥ इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ॥

वनस्पति प्रवाह अपेक्षा आश्रिय आदि और अन्त सहित है ॥ १०२ ॥ वनस्पति काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की है, उत्कृष्ट दश हजार वर्ष की है ॥ १०३ ॥ वनस्पति काया की कायस्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट अनन्त काल की है (यह कथन-अनंत काय आश्रिय मानना) ॥ १०४ ॥ वनस्पति काया का जीव निकल पुनः वनस्पति काया में उत्पन्न होवे तो उस का अन्तर जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट असंख्यात काल का ॥१०५॥ ४ भाव से वनस्पति काया के-५ वर्ण की २ गंध की ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति वनस्पति काया का कथन संपूर्ण ॥ १०६ ॥ अहो जम्बू ! यह तीनों प्रकार के स्थावर जीवों का भेदानुभेद कहा,-अब ती

जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ११८ ॥
बायरा जे उ पज्जत्ता' पचहा ते पकित्तिया ॥ उक्कालिया मंडलिया, घणगुंजा सुद्धवाया
य ॥ ११९ ॥ संवट्टगवाते वा णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १२० ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥
इत्तो काल विभागंतु, तेसिं वुच्छ चउव्विहा ॥ १२१ ॥ संतइं पप्प नाइया,
अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १२२ ॥ तिण्णेव
सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिइ वाऊण, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १२२ ॥

सूक्ष्म के दो भेद-अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ ११८ ॥
बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं—१ उत्कालिक वायु (ठेर २ कर चले) २ मंडलिक वायु
चक्कर खावे, ३ घनवाय जो जमीन के नीचे ४ गुंजवायु गुंजारव करे सो ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु
इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है ॥ ११९ १२० ॥ तिस से सूक्ष्म
वायुकाया सर्वलोक में व्यापक है और बादर वायुकाय लोक के देश विभाग में है १ काल से वायुकाय के चार
प्रकार हैं ॥ १२१ ॥ वायु काया की आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय
सादी सान्त है ॥ १२२ ॥ वायु काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष

लोगदेसे य सायरा ॥ इत्तो कालविभागंतु तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ १११ ॥ सन्तइं पप्प नाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ ११२ ॥ तिण्णेव अहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई तेउण, अतो मुहुत्तं जहन्निया ॥ ११४ ॥ असंखकाल मुक्कोस अतो मुहुत्तं जहन्नगं ॥ कायठिई तेऊणं तं कायं तु अमुच्चओ ॥ ११५ ॥ अणंत कालमुक्कोसं, अतो मुहुत्तं जहन्नयं ॥ विजढंमि सएकाए तेऊ जीवाण अंतरं ॥ ११६ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ ११७ ॥ दुविहा वाउ

है ॥ १११ ॥ २ क्षेत्र से-सूक्ष्म तेजस्काय के जीव तो सर्व लोक में व्याप्त है बादर तेजस्काय लोक के एक देश (अढाइ द्वीप) में ही है और ४ काल के चार प्रकार कहे ॥ ११२ ॥ अग्नि काय की संतति आश्रित आश्रिय अनादि अनंत है और जीवों के उत्पन्न चवन आश्रिय आदि और अंत सहित है ॥ ११३ ॥ २ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की ॥ ११४ ॥ तेजस्काया की कायास्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की ॥ ११५ ॥ तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ११६ ॥ ४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं तेजस्काय ॥ ११७ ॥ अब वायुकाया का कहते हैं—वायुकाया के दो भेद कहे हैं—सूक्ष्म और बादर इस में

जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो ॥ ११८ ॥
बायरा जे उ पज्जत्ता' पचहा ते पकित्तिया ॥ उक्कलिया मंडलिया, घणगुंजा सुद्धवाया
य ॥ ११९ ॥ सवट्टगवाते वा णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १२० ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥
इत्तो काल विभागतु, तेसिं वुच्छं चउव्विहा ॥ १२१ ॥ सतइं पप्प नाइया,
अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया विय ॥ १२२ ॥ तिण्णेव
सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिइ वाऊण, अतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १२२ ॥

सूक्ष्म के दो भेद-अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ २१८ ॥
बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं—१ उत्कालिक वायु (ठेर २ कर चले) २ मंडलिक वायु
चक्कर खावे, ३ घनवाय जो जमीन के नीचे ४ गुंजवायु गुंजारव करे सो ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु
इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है॥११९ १२०॥ क्षेत्र से सूक्ष्म
वायुकाया सर्वलोकमें व्यापक है और बादर वायुकाय लोक के देश विभाग में है १ काल से वायुकाय के चार
प्रकार हैं ॥ १२१ ॥ वायु काया की आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय
सादी सान्त है ॥ १२२ ॥ वायु काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष

लोगदेस य बायरा ॥ इत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ ११२ ॥ संतइं पप्प नाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ ११३ ॥ तिण्णेव अहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई तेऊण, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ ११४ ॥ असंखकाल मुक्कोस अंतो मुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई तेऊण तं कायं तु अमुंचओ ॥ ११५ ॥ अणंत काल मुक्कोस, अंतो मुहुत्त जहन्नगं ॥ विजढंमि सएकाए तेऊ जीवाण अंतरं ॥ ११६ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ११७ ॥ दुविहा वाउ

है ॥ १११ ॥ २ क्षेत्र से-सूक्ष्म तेजस्काय के जीव तो सर्व लोक में व्याप्त हैं और बादर तेजस्काय लोक के एक देश (अढाइ द्वीप) में ही हैं और ४ काल के चार प्रकार कहे ॥ ११२ ॥ अग्निकाय की संतति आश्रिय अनादि अनंत है और जीवों के उत्पन्न चवन आश्रिय आदि और अन्त सहित है ॥ ११३ ॥ २ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की ॥ ११४ ॥ तेजस्काय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की ॥ ११५ ॥ तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ११६ ॥ ४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति तेजस्काय ॥ ११७ ॥ अब वायुकाय का कहते हैं-वायुकाया के दो भेद कहे हैं-सूक्ष्म और बादर इन में

संसारसंखणगा तहा ॥ १२९ ॥ मच्छाया गुल्लया चेव, तहय य वराडगा ॥ जलूगा
जालगा चव, चदणाय तहेव य ॥ १३० ॥ इइ बेइंदिया एए णेगहा एवमायओ ॥
लोगेगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १३१ ॥ संतइं पप्प णाइया, अपज्जवसिया
विय ॥ ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसिया विय ॥ १३२ ॥ वासाइं बारसा चेव,
उक्कोसेण वियाहिया॥बेइंदिय आउठिई, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥१३३॥ संखिज्ज काल
मुक्कोस, अन्तोमुहुत्त जहन्नगा॥बेइंदिय काय ठिई,त कायतु अमुचओ॥१३४॥अणतकाल
मुक्कोस, अंतो मुहुत्त जहन्नगा॥बेइंदिय जीवाणं,अंतरं च वियाहियं॥१३५॥एएसिं वण्णओ

५ सीप ६ शंख, ७ संखोलिये [छोटे शंख] ८ पलोया, ९ गुन २० राता काए मसी, ११ जलोक, १२ कोड़े १३ चन्दन ॥ १२९ १३० ॥ सेप से इत्यादि बेइन्द्रिय के अनेक भेद हैं, वे सब लोक के एक देश में रहते हैं परंतु सर्व स्थान नहीं हैं ॥ १३१ ॥ काल से चार भेद—१ बेइन्द्रिय की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अंत सहित है ॥ १३२ ॥ बेइन्द्रिय की भव स्थिति-जघन्य अन्तमुहूर्त की उत्कृष्ट बारा वर्ष की है ॥ १३३ ॥ बेइन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्त मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल की इतने काल तक बेइन्द्रिय में ही रहे ॥ १३४ ॥ बेइन्द्रिय मरकर पुनः बेइन्द्रिय में उत्पन्न होने का अन्तर-जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १३५ ॥ ६ भाव से

असंखकाल मुक्कोसं, अंतो मुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई वाऊण, त कायतुं अमुचओ ॥ १२४ ॥ अणतकाल मुक्कोस, अतो मुहुत्त जहन्नग ॥ विजढंमि सए काए, वाऊ जीवाण अंतर ॥ १२५ ॥ एएसिं वण्णओ चेव गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि विहाणाइ सहस्ससो ॥ १२६ ॥ ओराला तसा जे उ चउहा ते पकित्तिया ॥ बेइंदिय तेइंदिय चउरो पंचिंदिया चेव ॥ १२७ ॥ बेइंदियाउ जे जीवा दुविहाते पकित्तिया ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो ॥ १२८ ॥ किमिणो सोमगला चेव, अलसा माइवाहया ॥ वासीमुहा य सिप्पिया,

की ॥ १२३ ॥ वायु काया की काया स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की, वहां तक वायु काया पन ही रहे ॥ १२४ ॥ वायु काया का जीव मरकर पुन वायु काया में उत्पन्न होने का अन्तर पडे तो जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १२५ ॥ भाव से वायु काया के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं ॥ इति वायु काया ॥ १२६ ॥ अब औदारिक त्रस के चार भेद कहे हैं—१ बेन्द्रिय २ तेन्द्रिय, ३ चौरिन्द्रिय, और ४ पंचेन्द्रिय ॥ १२७ ॥ बेइन्द्रिय जो जीव हैं उन के दो भेद कहे हैं—पर्याप्त और

तेइंदिय आउठिई, अंतोमुहुत्त जहन्नया ॥ १४२ ॥ [illegible]

तेइंदिय आउठिई, अंतोमुहुत्त जहन्नया ॥ १४२ ॥ [illegible],
अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ तेइंदियकायठिई, त कायतु अमुचओ ॥ १४३ ॥
अणतकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्तं जहन्नग ॥ तेइंदिय जीवाण, अतरं च वियाहिय
॥ १४४ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वा वि,
विहाणाई सहस्ससो ॥ १४५ ॥ चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ॥
पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ १४६ ॥ अधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया
मसगा तहा ॥ भमरे कीडपयगे य, ढिंकणे कंकणे तहा ॥ १४७ ॥ कुक्कुडे सिंग-
रीडीय, नदावत्ते य विच्छिए ॥ डोले भिंगारी य विरली, अच्छि वेहए ॥ १४८ ॥

तेइन्द्रिय की भव स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट गुनपचास [४९] दिन की ॥ १४२ ॥ तेइन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की तेइन्द्रिय मर कर पुन तेइन्द्रिय होवे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १४४ ॥ भाव से तेइन्द्रिय के ५ वर्ण, २ गंध ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान की अपेक्षा करके हजारों भेद होते हैं इति तेइन्द्रिय ॥ १४५ ॥ चौरेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे हैं—तद्यथा—अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १४६ ॥ चौरेन्द्रिय के नाम—१ अंधिका, २ पोतिका, ३ मच्छर, ४ डांस, ५ भ्रमर, ६ कीडे ७ पतंग ८ ढिंकण ९ कुकुणे, १० सींगरीडी, ११ नंदावृत, १२ बिच्छु, १३ गडोल, १४ भींगारी, १५ वीरली, १६ अक्षिवेधक,

चेव गंधओ रस फासओ॥सठाण दसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१३तेइंदिया उ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एएसिं भेए सुणेह मे ॥ १३७ ॥ कुंथु पिपीलि उद्दसा, उक्कलदेहिया तहा ॥ तणहार कट्ठहारा य मालुगापत्तहारगा ॥ १३८ ॥ कप्पासट्ठिमि जायंति दुगा तउसमिंजगा ॥ सदावरीय गुम्मीय बोधव्वा इंदगाइया ॥ १३९ ॥ इंदगोवग माईया, णेगहा एवमायओ ॥ लोएगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १४० ॥ संतइं पप्प णाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ १४१ ॥ एगूणपण्णहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥

तेइन्द्रिय के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति बेइन्द्रिय ॥ १३६ ॥ तेइन्द्रिय के दो भेद कहे हैं तद्यथा—पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ १३७ ॥ तेइन्द्रिय के नाम—१ कुंथुवा, २ कीड़ी, ३ उद्दसा, ४ उक्कलिया ५ उदइ ६ तृणाहारी ७ काष्ठाहारी, ८ मालुका, ९ पत्ताहारी, १० कपासिया, ११ अस्थिमींजा, १२ तुक, १३ समोंजग १४ सदावरीये, १५ गुमीए, १६ इन्द्रगाय, १७ इन्द्रगोप, इत्यादि तेइन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं २ क्षेत्र से सब तेइन्द्रिय जीव लोक के एक देश विभाग में हैं परंतु सर्व लोक में नहीं हैं ॥ १३८ १४० ॥ अब काल से चार प्रकार—१ तेइन्द्रिय जीवों की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत हैं उत्पन्न च्यवन आश्रिय सादी सांत हैं ॥ १४१ ॥

ठिय ॥ १५४ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ १५५ ॥ पंचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया ॥ नेरइया तिरिक्खा य मणुया देवा य आहिया ॥ १५६ ॥ नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तेसु भवे ॥ रयणाभ सक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥ १५७ ॥ पंकाभा धूमाभा तमा तमतमा तहा ॥ इइ नेरइया एए सत्तहा परिकित्तिया ॥ १५८ ॥ लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वियाहिया ॥ एत्तो कालविभाग, चउव्विहा ते वियाहिया ॥ १५९ ॥ सतइं पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया

अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १५४ ॥ ५ भाव से चौरेन्द्रिय के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं इति चौरेन्द्रिय ॥ १५५ ॥ अथ पंचेन्द्रिय के भेद कहते हैं—पंचेन्द्रिय चार प्रकार के कहे हैं १ नारकी, २ तिर्यंच ३ मनुष्य, और ४ देवता ॥ १५६ ॥ नारकी के द्रव्य से ७ भेद—१ रत्न प्रभा २ शर्कर प्रभा ३ वालुप्रभा, ४ पंक प्रभा, ५ धूम्रप्रभा, ६ तमप्रभा, ७ तमतमा प्रभा यह नरक के ७ प्रकार कहे ॥ १५७ १५८ ॥ क्षेत्र से नरक लोक के एक देश में है परंतु सब स्थान में नहीं है ३ काल से ४ भेद कहे हैं ॥ १५९ ॥ नारकी की आस्ति आश्रिय

अघेहिले साहए, अच्छिरोडए त्रिचित्ते चित्तपत्तए ॥ ठहिंजलिया जलकारी य, नीया तंतवगाइया ॥ १४९ ॥ इय चउरिंदिया, एए णेगहा एवमायओ ॥ लोगेग देसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १५० ॥ संतइं पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य॥ ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १५१ ॥ छच्चेव माम ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ चउरिंदिय आउठिई अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १५२ ॥ संखिज्जकाल मुक्कोस अंतो मुहुत्तं जहन्नग ॥ चउरिंदिय कायठिई, त काय तु अमुंचओ ॥ १५३ ॥ अणंतकाल मुक्कोस, अंतो मुहुत्तं जहन्नग ॥ चउरिंदिय जीवाण, अतर च वियाहिया-

१७ मच्छीका, १८ मागध, १९ रोड, २० विचित्रा, २१ ऊर्ध्व जानिक, २२ जलकारी २३ निया, २४ तवका ॥ १४७-१४९ ॥ इत्यादि बहुत प्रकार के चौरेन्द्रिय हैं २ क्षेत्र से चौरेन्द्रिय लोक के एक देश में हैं परन्तु सब लोक में नहीं है ॥ १५० ॥ काल से ४ भेद—चौरेन्द्रिय की संतति आश्रित आश्रिय आदि और अन्त दोनों नहीं है और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अन्त दोनों ही है ॥ १५१ ॥ चौरेन्द्रिय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ६ महिने की ॥ १५२ ॥ चौरेन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल तक ॥ १५३ ॥ चौरेन्द्रिय मर कर पुनः चौरेन्द्रिय होवे उस का

॥ १६७ ॥ जा चेव य आउट्ठिई नेरइयाण वियाहिया ॥ सा तेसिं काय ठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥ १६८ ॥ अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सए काए नेरइयाण अतर ॥ १६९ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ १७० ॥ पंचिदिय तिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया ॥ समुच्छिम तिरिक्खाओ, गब्भवक्कतिया तहा ॥ १७१ ॥ दुविहा ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा ॥ खहयरा य बोधव्वा, तेसिं भेदे सुणेहमे

सागर की ॥ १६७ ॥ नारकी की काया स्थिति—जो नारकी की भवस्थिति कही वही सातो नरक की कायास्थिति जानना अर्थात् नारकी का जीव मरकर पुन नरक में उत्पन्न नहीं होता है जिस से नारकी का एक ही भव होता है ॥ १६८ ॥ नरक का जीव मरकर पीछा नरक में उत्पन्न होवे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर मुहूर्त अन्तरमुहूर्तायु का तिर्यंच का भव कर पुन नरक में उत्पन्न होवे उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १६९ ॥ ५ भाव से-नरक में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान की अपेक्षा से नारकी के हजारों भेद होते हैं ॥ १७० ॥ तिर्यंच पंचेन्द्रिय का कहते हैं—पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दो प्रकार कहे हैं-समुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय ० १७१ ॥ उक्त दोनों प्रकार के जीव के अलग २ तीन २ भेद कहे हैं तद्यथा १ जलचर पानी में चलने वाले, २ स्थलचर—जमीन पर

सपज्जवसिया वि य ॥ १६० ॥ सागरोवम मेगतु, उक्कोसेण वियाहिया ॥ पढमाए जहन्नेण, दसवास सहस्सिया ॥ १६१ ॥ तिण्णेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ दोच्चाए जहन्नेणं, एग तु सागरोवम ॥१६२॥ सत्तेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ तइयाए जहन्नेण तिन्नेव सागरोवमा ॥ १६३ ॥ दस सागरोवमाऊ उक्कोसेण वियाहिया ॥ चउत्थीए जहन्नेण, सत्तेव सागरोवमा ॥ १६४ ॥ सत्तरस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ पंचमाए जहन्नेण, दस चेव सागरोवमा ॥ १६५ ॥ बावीस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥१६६॥ तेत्तीस सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया ॥ सत्तमाए जहन्नेण बावीस सागरोवमा।

अनादी अनंत है और उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि सहित अंत सहित है ॥ १६० ॥ नरक की भव स्थिति रत्नप्रभा में जघन्य दश हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर की ॥ १६१ ॥ सर्कर प्रभामें जघन्य एक सागर उत्कृष्ट तीन सागर की ॥ १६२ ॥ वालु प्रभा की जघन्य तीन सागर उत्कृष्ट सात सागर की ॥ १६३ ॥ पंक प्रभा की जघन्य सात सागर की उत्कृष्ट दश सागर की ॥ १६४ ॥ धूम्र प्रभा की जघन्य दश सागर की उत्कृष्ट सतर सागर की ॥ १६५ ॥ तमप्रभा की जघन्य सतरा सागर उत्कृष्ट बावीस सागर की ॥ [illegible] ॥ तमतमा प्रभा की जघन्य बावीस सागर की और [illegible]

॥ १७८ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ यावि, विहाणाइ सहस्सओ ॥ १७९ ॥ चउप्पयाय परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे ॥ चउप्पया चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण ॥ १८० ॥ एगखुरा दुखुरा चेव, गडीपय सणप्पया ॥ हयमाइ गोणमाइ, गयमाइ सीह माइणो ॥ १८१ ॥ भुओरग परिसप्पाय, परिसप्पा दुविहा भवे ॥ गोहाइ अहिमाई य,एक्केक्काणेगहा भवे॥१८२॥ लोएग देसे ते सव्वे, नसव्वत्थ वियाहिया ॥ एत्तो काल विभाग, चउव्विहा ते थिया

अनंत काल का ॥ १७८ ॥ ४ भाव आश्रिय-यह जलचर के ५ वर्ण से, २ गंध से, ५ रस से, ८ स्पर्श ५ सस्थान से हजारों भेद होते हैं इति जलचर ॥ १७९ ॥ स्थलचर तिर्यंच पचेन्द्रिय के दो भेद कहते हैं-१ चतुष्पद, और २ परिसर्प इस में चतुष्पद के चार भेद कहे हैं ॥ १८० ॥ तद्यथा- १ एक खुरा घोडा गद्धादि, २ दो खुरा-गौ महिषादि, ३ गडीपद-गोल पांववाले हाथी इत्यादि और ४ सनखपदा-पंजे नखवाले-सिंह कुत्ता बिल्ली आदि ॥ १८१ ॥ परिसर्प के दो भेद कहे हैं-१ उरपरीसप और २ भुजपरी सप सर्पादि पेट रगड कर चलनेवाले उरपरिसप के अनेक भेद हैं तैसे ही नकुलादि भुजपर भुजा के जोर से चलनेवाले के भी अनेक भेद हैं ॥ १८२ ॥ क्षेत्र से स्थलचर लोक के देश विभाग में हैं परंतु

॥१७२॥ मच्छा य कच्छभा य गाहाय मगरा तहा॥सुसुमारा य बोधव्वा पंचहा जलयरा हिया ॥ १७३ ॥ लोगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ एत्तो काल विभाग, चउव्विहा ते वियाहिया ॥ १७४ ॥ संतइं पप्प णाइया अपज्जवसिया वि या ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ १७५ ॥ एगाओ पुव्वकोडीओ उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई जलयराण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १७६ ॥ पुव्वकोडि पुहुत्त तु, उक्कोसेण वियाहिया ॥ कायठिई जलयराण, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥१७७॥ अनंत कालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सए काए, जलयराण अंतर

चलने वाले, और ३ खेचर—आकाश में चलने वाले ॥ १७२ ॥ जलचर के द्रव्य से—१ मच्छ, २ कच्छ ३ ग्राह-तांतीये मगर, ४ मगरमच्छ, और ५ सुसमार यह पांच भेद कहे हैं ॥ १७३ ॥ क्षेत्र से-जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय-लोक के एक देश में हैं परंतु संपूर्ण लोक में नहीं हैं ३ काल से जलचर के ४ भेद ॥ १७४ ॥ जलचर जीव की सदैव आस्ति आश्रिय-अनादि अनंत हैं और उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि सहित तथा अन्त सहित हैं ॥ १७५ ॥ जलचर की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्व कोटी वर्ष की ॥१७६॥ जलचर की कायास्थिति—जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पृथक्त्व (दो से नव तक) पूर्व कोटी वर्ष की॥१७७॥ जलचर मर कर पीछा जलचर होवे उस का अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट

पक्खिसय बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ॥ १८९ ॥ लोगेगदेसे ते सव्वे, नसव्वत्थ वियाहिया ॥ इत्तो कालविभाग तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ १९० ॥ सन्तइं पप्प नाईया, अपज्जवासिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ १९१ ॥ पलिओवमस्स भागो, असंखेज्जइमो भवे ॥ आउ ठिई खहयराण अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १९२ ॥ असंखभाग पलियस्स उक्कोसेण उ साहिया ॥ पुव्वकोडी पुहुत्तेण, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १९३ ॥ ठिई खहयराण, अंतरे तेसिमे भवे ॥ कालं अणंत मुक्कोसं,

खेचर के द्रव्य से चार भेद—१ चर्म पक्षी-चमड़े की पांखोंवाले वटवागुल चामचीडी आदि, २ रोम पक्षी-रोम की पांखोंवाले तोता कागआदि, ३ समुद्र पक्षी डब्बे की तरह ढकी पांखोंवाले, और ४ वितत पक्षी सदैव चौड़ी पांख रहे (पीछे के दोनों पक्षी अढाइ द्वीप के बाहिर हैं) ॥ १८९ ॥ क्षेत्र से खेचर लोक के एक देश में हैं परंतु सब स्थान नहीं है इन के काल से चार भेद हैं ॥ १९० ॥ खेचर की संतति की अपेक्षा आदि अंत रहित है उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि अंत सहित हैं ॥ १९१ ॥ खेचर की भव स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की ॥ १९२ ॥ खेचर की काया स्थिति-जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग ऊपर क्रोड पूर्व पृथक्त्व की ॥ १९३ ॥ खेचर मर कर पीछा खेचर होवे जिस का अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनंत काल का

हिया ॥ १८३ ॥ संतइ पप्प नाइय, अपज्जवासिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साइया, सपज्जवसिया वि य ॥ १८४ ॥ पलिओवमाइ तिण्णिओ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई थलयराण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १८५ ॥ पुव्वकोडि पुहुत्तेण, अतो मुहुत्तं जहन्निया ॥ कायठिई थलयराण, अतर तेसिम भवे ॥ १८६ ॥ कालमणत मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढम्मि सए काए, थलयराणतु अतर ॥ १८७ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओवावि, विहणाइ सहस्ससो ॥ १८८ ॥ चम्मे उ लोमपक्खी या, तइया समुग्ग पक्खिया ॥ वियय

सर्व स्थान नहीं है २ प्रवाह से इन के चार भेद कहे हैं ॥ १८३ ॥ स्थलचर की संतति आश्रित की अपेक्षा कर अनादि अनंत हैं और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अंत सहित है ॥ १८४ ॥ स्थलचर की भव स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ॥ १८५ ॥ स्थलचर की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम ऊपर पृथक्त्व पूर्व कोटि वर्ष ॥ १८६ ॥ स्थलचर मर कर पीछा स्थलचर होवे जिस का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १८७ ॥ वर्ण से स्थलचर के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थानकी अपेक्षाकर हजारों भेद होते हैं इति स्थलचर ॥ १८८ ॥ खेचरका वर्णन–

॥ १९८ ॥ समुच्छिमाण एसेव, भेओ होई वियाहिया ॥ लोगस्स एगदेसम्मि तेसव्वे वि

वियाहिया ॥ १९९ ॥ सतइ पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च

साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ २०० ॥ पलिओवमाउ तिन्निवि, असंखेज्ज इमो

क्षेत्र की मर्याद कर्ता चुल्लहिमवन्तके पर्वत पूर्व पश्चिम के अन्त में दो दो दाढों दोनों पर्वतकी चार दाढों एकेक दाढों पर सात२ द्वीप आठों दाढों के ७×८=२८ अन्तर द्वीप हुवे ॥ १९८ ॥ सम्मूर्छिम मनुष्य जो मनुष्यों के लघुनीत बडी नीत आदि चौदे स्थान में उत्पन्न होवे उन का एक ही भेद है २ क्षेत्र से मनुष्यों लोक के एक देश में रहे हैं परन्तु सब लोक में नहीं हैं ॥ १९९ ॥ काल से मनुष्यों के ४ प्रकार— १ मनुष्यों की सदैव आस्ति है इस अपेक्षा आदि अन्त रहित हैं और उत्पत्ति मृत्यु आश्रिय आदि अन्त सहित है ॥ २०० ॥ मनुष्य की भव स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम तथा पल्य का असंख्यातवा भाग अर्थात् कर्मभूमी मनुष्य के पांच भरत पांच एरावत में-उत्सर्पिणी के पहिला आरा बैठते तीन पल्योपम की उतरते दो पल्योपमकी, दूसरा आरा बैठते दो पल्योपम उतरते एक पल्योपम, तीसरा आरा बैठते एक पल्योपम उतरते क्रोड पूर्व चौथा आरा बैठते क्रोड पूर्व उतरते सो वर्ष कुछ अधिक पांचवा आरा बैठते सो वर्ष कुछ अधिक उतरते बीस वर्ष, छठा आरा बैठते २० वर्ष उतरते सोला वर्ष इस ही प्रकार अवसर्पिणीके छहो आरेमें घटती स्थिति जानना, पांचों महा विदेह क्षेत्रमें जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रोड

अतोमुहुत्त जहन्नगं ॥ १९४ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ, संठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १९५ ॥ मणुया दुविह भेया, ते मे कित्तय ओ सुण ॥ समुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कंतिया तहा ॥ १९६ ॥ गब्भवक्कंतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ॥ कम्म अकम्म भूमाय, अंतरद्दीवया तहा ॥ १९७ ॥ पन्नरस तीसविहा, भेया अट्ठवीसइ ॥ संखा उ कमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया

॥ १९४ ॥ ४ भाव से खेचर के ५ वर्ण, २ गंध ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं इति खेचर ॥ १९५ ॥ मनुष्य दो प्रकार के कहे हैं—१ समूर्च्छिम मनुष्य और २ गर्भज मनुष्य ॥ १९६ ॥ इस में गर्भ से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तीन तरह के कहे हैं—तद्यथा—१ कर्मभूमी जो असी मसी कृषि तीनों प्रकार से अपनी उपजीविका करे, २ अकर्मभूमी उक्त तीनों कर्म नहीं करे और कल्प वृक्षों से जिन की इच्छा पूर्ण ३ अंतर द्वीप जो समुद्र में डोंगरीयों पर युगल मनुष्य रहते हैं ॥ १९७ ॥ इस में कर्मभूमी के पन्दरा भेद—एक भरत एक एरावत एक महा विदेह यह तीन क्षेत्र जम्बूद्वीप में दो भरत, दो एरावत दो महा विदेह यह ६ क्षेत्र धातकी खण्ड में और यही ६ क्षेत्र पुष्करार्ध द्वीप में यों ५ भरत, ५ एरावत और ५ महा विदेह एसे १५ कर्मभूमी के क्षेत्र जानना एक हेमवय एक एरणवय, एक हरीवास, एक रम्यकवास, एक देवकुरु और एक उत्तर कुरु यह ६ क्षेत्र जम्बूद्वीप में दो दो धातकी खंडमें १२ क्षेत्र और पुष्करार्ध द्वीप में भी १२ क्षेत्र यों सब तीस अकर्मभूमी के क्षेत्र जानना जम्बूद्वीप में भरत

पचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥ २०६ ॥ असुरा नागसुवण्णा, विज्जू अग्गी वियाहिया ॥ दीवोदहि दिसा वाया थणिया भवणवासिणो ॥२०७॥ पिसाय भूय जक्खा य रक्खसा किन्नरा किंपुरिसा ॥महोरगा य गन्धव्वा, अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥ २०८ ॥ चन्दा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा ॥ दिसा विचारिणो चेव पचहा जोइसालया ॥ २०९ ॥ वेमाणियाउ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥ २१० ॥ कप्पोवगा बारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा ॥ सणंकुमार माहिंद, बम्भलोगा य लन्तगा ॥२११॥

॥ २०६ ॥ इन में भुवनपती के १० भेद, वाणव्यन्तर के ८ भेद, ज्योतिषी के ५ भेद, और वैमानिक के दो भेद ॥ २०६ ॥ १ असुरकुमार २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्नि कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधी कुमार, ८ दिशा कुमार, ९ वायु कुमार, और १० स्तनित कुमार यह भुवनपति के दश भेद जानना ॥ २०७ ॥ १ पिशाच २ भूत ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किंपुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व यह वाणव्यन्तर के ८ भेद ॥ २०८ ॥ १ चन्द्रमा २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा यह पांच ज्योतिषी के भेद जानना ॥ २०९ ॥ १ कल्पोपपन्न और २ कल्पातीत यह वैमानिक के दो भेद हैं ॥ २१० ॥ इन में कल्पोपपन्न के १२ भेद—१ सौधर्म देवलोक, २ ईशान देवलोक, ३ सनत्कुमार

मवे ॥ आउ ठिई मणुयाण, अंतामुहुत्त जहाणिया ॥२०१॥ पाल्आवमाइ ताान उ उक्कोसण उ साहिया ॥ पुव्वकोडि पुहुत्तेण, अंतोमुहुत्त जहाणिया ॥ २०२ कायठिई मणुयाण, अतर तेसिम भवे ॥ कालमणत मुक्कोस, अतामुहुत्त जहन्नग ॥ २०३॥ एएसि वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ २०४ ॥ देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयाओ सुण ॥ भोमिज्ज वाणमंतर, जोइस वेमाणिया तहा॥२०५॥दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो॥

पूर्व की अकर्म भूमी के तीस क्षेत्र में पांच हेमवय पांच एरणवय में एक पल्योपमकी, पांच हरीवास पांच रम्यकवासमें दो पल्योपमकी, पांच देवकुरु पांच उत्तरकुरुमें तीन पल्योपमकी छप्पन्न अंतर द्वीपमें पल्योपम के असंख्यातवे भाग की और सब संमूर्छिम मनुष्य की जघन्य उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त की ॥ २०१ ॥ मनुष्यों की काया स्थिति-जघन्य अन्तमुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम पृथक्त्व क्रोड़ पूर्व अधिक की क्यों कि लगोलग सात भव कर्म भूमि मनुष्य के कर एक भव अकर्मभूमि मनुष्यका फिर नियमासे देव होवे ॥ २०२ ॥ यह काया स्थिति कही अब मनुष्य मर कर पीछा मनुष्य होवे जिस के मध्य का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ २०३ ॥ ४ भाव से मनुष्य के ५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं इति मनुष्याधिकार ॥ २०४ ॥ अब देवता के भेद कहते हैं—द्रव्य से देवता के चार भेद—१ भुवनपति, २ वाणव्यन्तर ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक

जिया ॥ २१६ ॥ सव्वरयसिद्धगा चेव, पञ्चहाणुत्तरा सुरा ॥ इय वेमाणिया एए
णेगहा एव मायओ ॥ २१७ ॥ लोगस्स एग देसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ॥
इत्तो काल विभाग तु, तेसिं वुच्छ चउव्विहं ॥ २१८ ॥ संतइं पप्प नाईया,
अपज्जवसिया वि य ॥ठिइं पडुच्चसाईया, सपज्जवसिया वि य ॥ २१९ ॥ साहिय सागर
एक्क, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ भोमेज्जाण जहन्नेण दसवास सहस्सिया ॥ २२० ॥
पलिओवम दोऊणा, उक्कोसेण वियाहिया ॥ असुरेंद वज्जेत्ताण, जहन्ना दससहिस्सगा

सर्वार्थ सिद्ध यह पांच अनुत्तर विमानवासी देव जानना इन प्रकारादि विभाग कर वैमानिक देव के अनेक भेद होते हैं ॥ २१४ २१७ ॥ क्षेत्र से देवताओं लोक के एक देश विभाग में हैं, परतु सपूर्ण लोक में नहीं हैं और इन के काल स चार भेद होते हैं ॥ २१८ ॥ देवताओं की अपेक्षा प्रवाह आश्रित होने से अनादि अनत हैं और प्रत्येक देवताओं के उत्पन्न च्यवन आश्रिय सादि सान्त हैं॥२१९॥ भुवनपति में असुरकुमार देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर से कुछ अधिक स्थिति है ॥ २२० ॥ असुर कुमार छोडकर बाकी के नव जाति के भुवनपति देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति है [भुवनपति के असुरकुमार जाति के देवता के दो इन्द्र है १ दक्षिण दिशा के चमर इन्द्र और २ उत्तर दिशा के बल इन्द्र इस में चमर इन्द्र की उत्कृष्ट एक सागर की, चमर इन्द्र की देवी की साढी तीन पल्य की दक्षिण के नाग कुमारादि नव जाति के देव की

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा ॥ आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ॥ २१२ ॥ कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ गेविज्जाणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं ॥ २१३ ॥ हेट्ठिमा हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा मज्झिमा तहा ॥ हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा हिट्ठिमा तहा ॥ २१४ ॥ मज्झिमा मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा॥ उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा ॥२१५॥ उवरिमा उवरिमा चेव इय गेविज्जगा सुरा॥ विजया वेजयंता य, जयंता अपरा

देवलोक, ४ माहेन्द्र देवलोक, ५ ब्रह्म देवलोक ६ लांतक देवलोक, ७ महाशुक्र देवलोक, ८ सहस्रार देवलोक ९ आणत देवलोक, १० प्राणत देवलोक, ११ आरण देवलोक, और १२ अच्युत देवलोक इन १२ स्थान में जो देवों उत्पन्न होवे हैं वे कल्पोत्पन्न जानना॥ २११ २१२ ॥ और जो कल्पातीत देवता हैं उनके दो भेद यथा १ ग्रैवेयकवासी, और २ अनुत्तर विमानवासी. इस में ग्रैवेयकवासी देव नव प्रकार के कहे हैं ॥ २१३ ॥ १ नीचे की नीचली (भद्र) २ नीचे की बीचकी, (सुभद्र) ३ नीचे की ऊपरकी, (सुजात) ४ मध्य की नीचली (सुमानस) ५ मध्य की बीचकी (सुदर्शन), ६ मध्य की ऊपर की (प्रियदर्शन) ७ ऊपर की नीचली (अमोघ), ८ ऊपर की मध्यकी (सुप्रतिबद्ध) और ९ ऊपर की ऊपरली (यशोधर) यह नव ग्रैवेयक स्थान के देवता जानना १ विजय, २ वैजयंत, ३ जयंत, ४ अपराजित और

ठिई भवे ॥ अच्चुयंमि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥ २३५ ॥ तेवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पढमम्मि जहन्नेणं, बावीस सागरोवमा ॥ २३६ ॥ चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ बीइयम्मि जहन्नेण, तेवीस सागरोवमा ॥ २३७ ॥ पणवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे ॥ तइयम्मि जहन्नेण, चउवीस सागरोवमा ॥ २३८ ॥ छव्वीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे ॥ चउत्थम्मि जहन्नेण, सागरा पणुवीसई ॥२३९॥ सागरा सत्तवीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पंचमम्मि जहन्नेण, सागराउ छव्वीसई ॥ २४० ॥ सागरा अट्ठावीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥२४१॥ सागरा अउणतीस तु उक्कोसेण ठिई भवे॥ सत्तमम्मि जहन्नेण सागरा

देवलोक में जघन्य इकीस सागरोपम उत्कृष्ट बावीस सागरोपम यह बारे कल्पोत्पन्न देवों की स्थिति हुई ॥ २३५ ॥ अब ग्रीवेक के देवों स्थिति कहते हैं—प्रथम ग्रीवेक की जघन्य बावीस सागर की उत्कृष्ट तवीस सागरोपम की ॥ २३६ ॥ दूसरी ग्रीवेक की जघन्य तेवीस सागरोपम की उत्कृष्ट चोवीस सागरोपम की ॥ २३७ ॥ तीसरी ग्रीवेक की जघन्य चोवीस सागरोपम की उत्कृष्ट पचीस सागरोपम की ॥ २३८ ॥ चौथा ग्रीवेक की जघन्य पचीस सागरोपम की उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की ॥ २३९ ॥ पांचवी ग्रीवेक की जघन्य छब्बीस सागरोपम की उत्कृष्ट सतावीस सागरोपम की ॥ २४० ॥ छट्ठी ग्रीवेक की जघन्य सतावीस सागरोपम उत्कृष्ट अट्ठावीस सागरोपम ॥ २४१ ॥ सातवी ग्रीवेक की जघन्य अठावीस

जहन्नेण, सत्त ऊ सागरोवमा ॥ २२८ ॥ चउदस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ लंतगम्मि जहन्नेणं, दसउ सागरोवमा ॥ २२९ ॥ सत्तरस सागराई, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ महासुक्के जहन्नेण चउदस सागरोवमा ॥ २३० ॥ अट्ठारस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ सहस्सारम्मि जहन्नेण, सत्तरस सागरोवमा ॥ २३१ ॥ सागरा उणवीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ आणयम्मि जहन्नेण, अट्ठारस सागरोवमा ॥ २३२ ॥ वीसंतु सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पाणयम्मि जहन्नेण, सागरा अउणवीसई ॥ २३३ ॥ सागरा इक्कवीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ आरणम्मि जहन्नेण, वीसई सागरोवमा ॥ २३४ ॥ बावीसा सागराइं, उक्कोसेण

की उत्कृष्ट दश सागरोपम की ॥ २२८ ॥ छठे लांतक देवलोक में जघन्य दश सागरोपम की उत्कृष्ट चौदा सागरोपम, की ॥ २२९ ॥ सातवे महा शुक्र देवलोक में जघन्य चउदा सागरोपम की उत्कृष्ट सतरा सागरोपम की ॥ २३० ॥ आठवे सहस्रार देवलोक में जघन्य सतरा सागरोपम की उत्कृष्ट अठारा सागरोपम की ॥ २३१ ॥ नववे आणत देवलोक में जघन्य अठारा सागरोपम उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम ॥ २३२ ॥ दशवे प्राणत देवलोक में जघन्य उन्नीस सागरोपम उत्कृष्ट वीस सागरोपम ॥ २३३ ॥ इग्यारवे आरन देवलोक में जघन्य वीस सागरोपम उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम ॥ २३४ ॥ बारवे अच्युत

हिकुण य ॥सम्व नयाण मणुमए, रम्मेज्ज सजमे मुणी ॥ २५३ ॥ तओ बहूणि वासाई सामण्ण मणुपालिय ॥ इमेण कम्मजोगेण, अप्पाण संलिहेमुणी ॥ २५४ ॥ बारसेव उ वासाई, संलेहु कोसियाभवे ॥ संवच्छर मज्झिमिया, छम्मासाय जहन्निया ॥ २५५ ॥ पढमे वासचउक्कंमि विगई-निज्जूहण करे ॥ बिइए वास चउक्कमि,

जीव का तथा संसारी जीव का स्वरूप विस्तार पूर्वक उक्त प्रकार कहा है ॥ २५२ ॥ अहो शिष्य ! गुरुवादि के समीप उक्त कहे जीवादि का स्वरूप श्रवण कर सर्व (सातों) नय प्रमाणादि युक्ती कर यथार्थ श्रद्धा न कर सर्वांश् ज्ञानी बनकर फिर तप संयम में अपनी आत्माको रमन करावे॥२५३॥ तब फिर तप संयम में आत्मा का रमन करता हुवा बहुत वर्ष पर्यंत संयम का पालन कर आगे कहूंगा उस उपाय कर द्रव्य स शरीर को और भाव से कषाय को दुर्बल बनावे ॥ २५४ ॥ शरीर और कषाय को दुर्बल बनावे उसे संलेषना कहते हैं यह तीन प्रकार से करे जघन्य ६ महिने की, मध्यम एक वर्ष की, और उत्कृष्ट १२ वर्ष की ॥ २५५ ॥ अब बारा वर्ष की संलेषना किस प्रकार करे वह कहते हैं-प्रथम चार वर्ष पर्यंत दो दूध दही घृत तेल मिठाई इन पांचों विगय का भोगवने का त्याग करे फिर चार वर्ष पर्यंत चौथ भक्त छठ भक्तादि विविध प्रकार का तप करे ॥ २५६ ॥ फिर दो वर्ष पर्यंत एकांतर उपवास करे और पारणे में आयम्बिल करे (यह १० वर्ष हुवे) फिर ... महिने पर्यंत ... भक्तादि ... और

विविध तु तव चरे ॥ २५६ ॥ एगंतरमायामं, कट्टु संवच्छरे दुवे ॥ तओ संवच्छरद्धं
तु, नाइ विगिट्ठं तवं चरे ॥ २५७ ॥ तओ संवच्छरद्धं तु, विगिट्ठं तु तवं चरे ॥
परिमियं चेव आयाम, तंमि संवच्छरे करे ॥ २५८ ॥ कोडी सहियं मायाम, कट्टु

प्रकार का तप नहीं करे फिर छ महिने पर्यंत अट्ठम अट्ठमादि दुष्कर तप का आचरण करे पारने में आयम्बिलादि तप करे ॥२५७-२५८॥ फिर बारवे वर्ष में कोडी सहित तप करे अर्थात् मास क्षमन आधा मास क्षमन आदि तप करे और पारने में आयम्बिल करे फिर आहार का त्याग कर अनसन तप करे [जो आयुष्य अन्त नजीक न दिखता मास आधा मास खमनादि तप करता रहे] यह बारा वर्ष का संलेखना तप कहा ॥ २५९ ॥ अब जो साधु होकर जप व संयम से भ्रष्ट होते हैं उन की गति का कथन करते हैं—१ जो साधु हँसी मस्करी करता है वह कन्दर्पी (गायन नाटक करनेवाला) देवता होता है २ जो साधु मंत्रादि प्रयुंजता है वह अभियोगी (नौकर) देवता होता है ३ जो साधु आचार्य उपाध्यायादि बयोवृद्ध की असातना करे वह किल्विषी [नीच जाति का] देवता होवे ४ जो साधु अज्ञान कष्ट करे तथा बहुत काल तक रोष द्वेष भाव रखे वह असुर कुमार [परमाधर्मी] जाति का देवता होवे इन चार कर्मों को बहुत काल तक करनेवाले व मृत्यु के समय यह भाव प्राप्त होनेवाले साधु संयम के विराधिक होकर उक्त देवता की दुर्गति में देवतापने उत्पन्न होते हैं ॥ २६० ॥ मिथ्यात्व से दुःख के— जो जीव मिथ्यात्व दर्शन [कुमत] में रक्त होते हैं, करणी कर उस का नियाना [फल की वांछा]

कण्हले समोगाढा ॥ इय जे मरनि जीवा तसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२६२॥ जिणवयणे अणुरत्त जिणवयण करेंति भावेण ॥ अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी ॥२६३॥ बालमरणाणि बहुसो अकाममरणाणी चेव य बहुणि॥मरिहिंति ते वराया,

पार गाथा कर कहते हैं—अन्य को तथा स्वयं को हास्य उत्पन्न हो ऐसे वचन का तथा विषय विकार उत्पन्न हो ऐसे वचन का बोलने वाला, ऐसी ही कथा का कहने वाला भांडचेष्टा करे अर्थात् भांड की तरह लोकों को हसाने वाला, इन्द्रजालादि कौतुक कर लोगों को विस्मयका उत्पादक, इस प्रकार के स्वभाव वाले साधु मर कर इन्द्र का कंदर्पी देवता होता है वह वहां देवलोक में इन्द्र सभा में अनेक प्रकार की भांड चेष्टा कर देवताओं को हसाता है ॥ २६८ ॥ व्यन्तरादि के मन्त्रोपचार करे वशीकरणादि के योग तथा देवे करें पुत्रादि क रक्षणार्थ या प्राप्ति अर्थ भूत कर्म करे अर्थात् रास प्रमुख की पोटली बांध को बन्धे मनोज्ञ पट रस मय आहार की प्राप्ती का अहंकार करे, शिष्य प्रप्राप्ति ऋद्धि का अभिमान करे शारीरिक स्नानकादि की साता का गर्व करे इन तीनों का गर्व करने वाला, ऐसा जो साधु होता है वह मरकर अभियोगी (नोकर) देवता होता है वह इन्द्र की आज्ञा का पालन करता है किस भोगोप भोगभोगव नहीं सकता है सुख के लिये सदैव त्रसता रहता है ॥ २६३ ॥ ज्ञानी-पंडितों-श्रुत सूत्री का केवल ज्ञानी का या केवली के वचनों का, धर्माचार्य-गुरु का, साधु साध्वी श्रावक श्राविका तपस्वी आदि साधु सतीयों का इत्यादि महा पुरुषों का अवर्णवाद का

जिणवयणं ज नयाणाति ॥२६४॥ बहुआगम विन्नाणा, समाहि उप्पायगाय गुणगाही॥ एएण कारणेण अरिहा आलोयणं सोउ ॥ २६५ ॥ कंदप्पकुक्कुयाइ, तह सीलसहा वह सणविगहाइ ॥ विम्हवेंतो वि पर कंदप्प भावण कुणइ ॥ २६६ ॥ मंताजोग काउं, भूईकम्म च जे पउजति ॥ साय-रस-इड्ढिहेउ, अभिओग भावण कुणइ ॥ २६७ ॥ णाणस्स केवलीण, धम्मा यरियस्स सघ साहुणं ॥ माइ अवण्णवाई, किव्विसिय भावण कुणइ ॥ २६८ ॥ अणुबद्धरोस पसरो, तहय निमित्तमि होइ पडिसेवी ॥ एएहिं कारणेहिं आसुरियं भावण कुणइ ॥ २६९ ॥ सत्थ गहण विस भक्खणं च, जलण च जलपवेसोय ॥ अणायार भडसेवी, जम्मण मरणाणि बधति

बोलने वाला-निन्दा का करने वाला, किल्विषी नामक देवता होता है, वह सब देवता में नीच जाति वाला देवलोक से दूर निवास करने वाला महानी मिथ्या दृष्टी होता है॥२६४॥जिस किसी से वैरभाव हो उस के साथ पुनः क्षमापना नहीं करता हुआ दीर्घकाल पर्यन्त रोष धारन कर रखे, क्लेश की वृद्धि करे, ज्योतिष निमित्त का प्रकाश करे, वे जीवों मरकर असुर कुमार जाति के पर माधामी [यम] देवता में उत्पन्न होते हैं ॥ २७० ॥ जो शस्त्र प्रयोग कर, विषादि का भक्षण कर, अग्नि में जलकर, पानी में डूबकर, अनाचार का सेवन करके, मृत्यु करते हैं वे

॥२७०॥ इय पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए ॥ छत्तीस उत्तरज्झाए भवसिद्धीय सम्मए ॥ २७१ ॥ त्तिबेमि॥इति जीवा जीव विभत्ति नाम छत्तीसअ ज्झयण सम्मत्तं ॥३६॥ इति उत्तराध्ययन सम्मत्त ॥ * * * * *

हैं ॥ २७१ ॥ श्री सुधर्मास्वामीजी कहते हैं कि हे जम्बू! श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामीजी (अपर नाम ज्ञात पुत्र)ने इतना ही अर्थात् यह उत्तराध्यायन सूत्र के अध्ययन का यहां तक प्ररूपन करते यह ज्ञान प्रकट करते परिनिर्वान हुवे अर्थात् कर्म ताप को बुझाकर परम शीतली भूत बने सिद्ध गति को प्राप्त हुवे॥ यह उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययनो भव्य जीवों कोही प्रियकारक–हित कारक होंगे ॥ ॥ इति जीवाजीव विभक्ति नामका छत्तीसवा अध्याय समाप्तम् ॥३६॥ * * *

इति एकोनत्रिंशत्तम

॥ उत्तराध्ययन सूत्र समाप्तम् ॥

* वीराब्द २४४९ वैशाख कृष्णपक्ष १० भोमवार *

पुण्याधिकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के शुद्धाचारी पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य स्व. तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप श्रीने मुझे साथ ले महा परिश्रम से हैद्राबाद जैसा बड़ा क्षेत्र साधुमार्गीय धर्म में प्रसिद्ध किया व परमोपदेश से राजाबहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी को धर्मप्रेमी बनाये उनके प्रतापसे ही शास्त्रोद्धारादि महा कार्य हैद्राबाद में हुए इस लिये इस काम के मुख्याधिकारी आपही हुए जो जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महालाभ प्राप्त करेंगे व आपही के कृतज्ञ होंगे

उपकारी महात्मा

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्य पाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज! आप श्री की आज्ञाने ही शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार किया और आप के परमाशिर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस काम के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

आभारी-महात्मा

कच्छ देश पावन कर्ता मोटी पक्ष के पूज्य पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्यवर्य महात्मा कविवर्य श्री नागचन्द्रजी महाराज! इस शास्त्रोद्धार कार्य में आद्योपान्त आप श्री प्राचिन शुद्ध शास्त्र, हुंडी, गुटका और समय २ पर आवश्यकीय शुभ सम्मति द्वारा मदद देते रहनेसेही मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका इस लिये केवल मैं ही नहीं परन्तु जो जो भव्य इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

आपका अमोल ऋषि

हिन्दी भाषानुवादक

शुद्धाचारी पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य, आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज! आपने बड़े साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले कार्य का जिस हर्षोत्साह से स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश कार्य को अच्छा बनाने के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और ऐसा सरल बना दिया कि कोई भी हिन्दी भाषा सहज में समझ सके, ऐसे ज्ञानदान के महा उपकार तले दबे हुए हम आप के बड़े आभारी हैं

सबकी तर्फ से

मुखदेव सहाय ज्वालाप्रसाद

सहायक मुनिमंडल

अपनी छती ऋद्धि का त्याग कर हैद्राबाद सीकन्द्राबादमें दीक्षा धारक बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजीके शिष्यवर्य ज्ञानानंदी श्री देव ऋषिजी वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाका बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुखोपचार का संयोग मिला दो प्रहर का व्याख्यान, प्रसंगीसे वार्तालाप, कार्य दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया जिस से ही यह महा कार्य इतनी शीघ्रता से लेखक पूर्ण सके इस लिये इन कार्य वदक उक्त मुनिवरों का भी बडा उपकार है

और भी सहायदाता

पंजाब देश पावन कर्ता पूज्य श्री सोहन लालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी, तपस्वीजी माणकचन्दजी, कवीवर श्री अमी ऋषिजी युवाचार्य श्री दौलत ऋषिजी पं श्री रूपमलजी व श्री जोरावरमलजी कविवर श्री नानचन्द्रजी प्रवर्तिनी सतीजी श्री पार्वतीजी गुणज्ञ सतीजी श्री रंभाजी बागजी सर्वज्ञ भंडार भीनासरवाले कनीरामजी बहादरमलजी बाँठीया, श्रीवड़ी भंडार, कुचेरा भंडार, इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इन कार्य को बहुत सहायता मिली है इन लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं

दक्षिण हैद्राबाद निवासी जौहरी वर्ग में श्रेष्ठ धर्मधर्मी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहेब श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी!

आपने साधु सेवा के और ज्ञान दान जैसे महा लाभके लोभी बन जैन साधुमार्गीय धर्म के परम माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों को हिन्दी भाषानुवाद सहित छपाने को रु २००००, का खर्चकर अमूल्य देना स्वीकार किया और युरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव में वृद्धि होने से रु ४०००० के खर्च में भी काम पूरा होनेका संभव नहीं होते भी आपने उस ही उत्साह से काम को समाप्त कर सबको अमूल्य महालाभ दिया, यह आप की उदारता साधुमार्गीयों की गौरव दर्शक व परमादरणीय है!

सोभासा (काठीयावाड) निवासी धर्म प्रेमी कार्यदक्ष हृदय मणिलाल शिवलाल शेठ' इन्होंने जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम में संस्कृत प्राकृत व अंग्रेजी का अभ्यास कर तीन वर्ष उपरांत रु अच्छी योग्यता प्राप्त की इन से शास्त्रोद्धार का कार्य अच्छा होगा ऐसी सूचना गुरुवर्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज से मिलने से इन को बोलाए, इन्होंने अन्य प्रेस में शुद्ध अच्छा और शीघ्र काम होता नहीं देख शास्त्रोद्धार प्रेस स्थापन किया और प्रेस के कर्मचारियों को उत्साही कार्य दक्ष बना काम किया वैसे ही भाषानुवाद की प्रेस कॉपी बनाई, यद्यपि यह माह पगार से रहे थे तथापि इन्होंने इस कार्य की सेवा वेतन के प्रमाण से अधिक की इस लिये इनको भी धन्यवाद देते हैं

शास्त्र प्रकाशक

दक्षिण हैद्राबाद निवासी जौहरी वर्ग में श्रेष्ठ धर्मी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहेब श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी

आपने साधु सेवा के और ज्ञान दान जैसे महा लाभके लोभी बन जैन साधुमार्गीय धर्म के परम माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों को हिन्दी भाषानुवाद सहित छपाने को रु २००००, का सर्वस्व अमूल्य दान स्वीकार किया और यूरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव में वृद्धि होने से रु ४०००० के खर्च में भी काम पूरा होनेका सम्भव नहीं होवे भी आपने उस ही उत्साह से काम को समाप्त कर सबको अमूल्य महालाभ दिया, यह आप की उदारता साधुमार्गीयों की गौरव दर्शक व परमादरणीय है।

भाग्यदाता

सोनासा (काठीयावाड) निवासी धर्म प्रेमी कार्यदक्ष कृतज्ञ मणिलाल शिवलाल सेठ। इनोंने जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम में संस्कृत प्राकृत व अंग्रेजी का अभ्यास कर तीन वर्ष उपरांत ग अच्छी कौशल्यता प्राप्तकी इन से शास्त्रोद्धार का काय अच्छा होगा ऐसी सूचना गुरुवर्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज से मिलने से इन को बोलाय, इनोंने अन्य प्रेस में शुद्ध अच्छा और शीघ्र काम होता नहीं देख शास्त्रा और प्रेस कायम किया और प्रेस के कर्मचारियों को उत्साही कार्य दक्ष बना काम किया वैसे ही भाषानुवाद की प्रेसकॉपी बनाइ यद्यपि यह भाइ पगार से रहे थे तथापि इनोंने इस कार्य की सेवा वेतन के प्रमाण से अधिक की इस लिये इनको भी धन्यवाद देते हैं

आभारी महात्मा

कच्छ देश पावन कर्ता मोटी पक्ष के परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्यवर्य महात्मा कविवर श्री नागचन्द्रजी महाराज!

इस शास्त्रोद्धार कार्य में आद्योपान्त आप श्री प्राचिन शुद्ध शास्त्र, बुद्धी गुन्थ्या और समय पर आदरणीय शुभ सम्मति द्वारा मदत करते रहनेसे ही इस कार्य को पूर्ण कर सका इस लिये केवल मैं ही नहीं परन्तु जो जो भव्य इन शास्त्रोद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

आपका आभारी ऋषि

हिन्दी भाषानुवादक के उपकार

ब्रह्मचारी पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज ने आपने बडे साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले काम का जिस उत्साह से स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश कार्य को अच्छा बनाने के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और ऐसा सरल बनादिया कि कोई भी हिन्दी भाषी सहज में समझ सके, एसे ज्ञानदान के महा उपकार तले दबे हुए हम आप के बड़े आभारी हैं

भवदीय सुखदेव सहाय

सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद

मुख्याधिकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के शुद्धाचारी पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य स्व तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप श्रीने मुझे साथ ले महा परिश्रम से हैद्राबाद जैसा बडा क्षेत्र साधुमार्गीय धर्म में प्रसिद्ध किया व धर्मोपदेश से राजाबहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी को धर्मप्रेमी बनाये उनके प्रतापसे ही शास्त्रोद्धारादि महा कार्य हैद्राबाद में हुए इस लिये इन कार्य के मुख्याधिकारी आपही हुए जो जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महालाभ प्राप्त करेंगे वे आपही के कृतज्ञ होंगे

शिष्य अमोलक ऋषि

उपकारी महात्मा

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्य पाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज! आप श्री की आज्ञासे ही शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार किया और आप के परमाशीर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस कार्य के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

दास अमोल ऋषि